योरुप का इतिहास

भाई परमानन्द एम० ए०

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

१९२५

प्रथम संस्करण]

प्राक्कथन

बड़े घमण्ड के साथ यह प्रतिज्ञा की जाती है कि हमारा देश राजनीतिक जानकारी की दृष्टि से बहुत उन्नत होगया है। राजनीतिक नेताओं की संख्या भी अगणित सी होती जाती है। समाचार-पत्र भी बहुत हो गये हैं। प्रत्येक समाचार-पत्र का सम्पादक राजनीतिक विषयों पर अपने को बड़ा प्रमाण समझता है। और यों तो यह भी बलपूर्वक कहा जाता है कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के अधीन हम लोगों का विचार-क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है, परन्तु मुझे उस समय अतीव खेद होता है जब कभी मैं देखता हूँ कि हमारी भाषा में योरुपीय देशों का कोई इतिहास मौजूद नहीं।

व्यावहारिक राजनीति की कल्पना का दर्शन केवल इतिहास के द्वारा ही होता है, और वर्तमान राजनीतिक उन्नति अधिकतर योरुपीय जातियों ने की है, इसलिए उन्हीं के इतिहास में राजनीति की यथार्थ शिक्षा मिलती है। जो व्यक्ति योरुपीय जातियों के इतिहास को नहीं जानता, वह राजनीतिक सिद्धान्तों के तत्त्व को कुछ नहीं समझ सकता। योरुप एक बड़े भारी शतरञ्ज के सदृश है, जहाँ इन जातियों ने अपने अपने विशेष स्वार्थों को सामने रखकर चालें चली हैं। जो मनुष्य इन चालों को नहीं जानता, उसे इस शतरञ्ज

के खेल में कोई दिलचस्पी नहीं हो सकती, और जो शतरञ्ज नहीं जानता, उसे ये चालें समझ में नहीं आतीं। इसलिए मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि जिन व्यक्तियों ने योरुप के इतिहास का विचार-पूर्वक अध्ययन नहीं किया, उन्होंने राजनीति के विद्यालय का क ख भी नहीं सीखा। केवल इसी एक बात से हमारी राजनीतिक योग्यता या रुचि कूती जा सकती है कि हमारी भाषा में योरुपीय इतिहास पर कोई नाम लेने योग्य पुस्तक नहीं मिलती।

यह छोटी सी पुस्तक जो मैं जनता की भेंट कर रहा हूँ, योरुप का इतिहास है, ऐसा कहना बहुत बड़ी प्रतिज्ञा है। योरुप के भिन्न भिन्न देशों में अपने अपने देशों के विषय में सैकड़ों-सहस्रों इतिहास लिखे पाये जाते हैं। प्रत्येक भाषा में सारे योरुप के इतिहास पर भी अगणित पुस्तकें मौजूद हैं। सब बड़े बड़े विश्वविद्यालयों की ओर से योरुप के इतिहास पर दस दस बीस बीस बड़े बड़े ग्रन्थ-खण्ड लिखाये गये हैं। जहाँ किसी विषय का आरम्भिक ज्ञान ही न हो, वहाँ सविस्तर पुस्तकों का लिखना एक निष्फल चेष्टा है। यह छोटी सी पुस्तक लोगों को केवल आरम्भिक जानकारी के लिए लिखी गई है। यह योरुपीय इतिहास के अध्ययन के लिए विषय-प्रवेश या द्वार का काम देगी।

इससे यह कहा जाता है कि हम लोगों के अध्ययन के लिए अपना ही इतिहास पर्याप्त है, हमें अन्य देशों के इति-

हास के पाठ की क्या आवश्यकता है। इसके उत्तर में मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि हम लोगों के हृदय की यही संकीर्णता भारत के लिए संघातक रोग सिद्ध हुआ है। यहाँ के नेताओं ने यह उपदेश दिया कि अन्य देशों की ओर मत मुँह करो। वहाँ सब कहीं म्लेच्छ बसते हैं। विदेश जाने से तुम्हारा धर्म्म जाता रहेगा। भारत की इस एकाकी अवस्था ने लोगों को संसार की अवस्थाओं से बिलकुल अनभिज्ञ बना दिया। जगत् में क्या हो रहा है, इसका उन्हें कुछ भी ध्यान न रहा। दुनिया कहाँ की कहाँ चली गई। ये आलस्य की निद्रा से न जागे। जो इस संसार में जन्म लेकर संसार के सब वृत्तान्तों को जानना नहीं चाहता, और जान बूझकर नेत्र मूँद लेता है, वह संसार की प्रगति की दौड़ में एक भी पग आगे नहीं चल सकता।

एक बात मुझे और बताना है। सर्वसाधारण को योरुप के इतिहास का अध्ययन साधारण इतिहास से ज़रा निराले ढँग का बोध होगा। योरुप किसी एक देश का नाम नहीं। उसका इतिहास किसी एक जाति का इतिहास नहीं, जो सब घटनाओं को काल की दृष्टि से नियमपूर्वक एक क्रम में उपस्थित कर सके। हम लोगों को प्रायः इतिहास को संवतों के अनुसार पढ़ने का स्वभाव हो चुका है। पाठक इस ग्रन्थ-खण्ड में देखेंगे कि भिन्न भिन्न परिच्छेदों में हमारे संवत् कई बार कई शताब्दियाँ आगे पीछे होते रहेंगे। इसमें घबराने का

कोई कारण नहीं। योरुप का इतिहास वह बड़ा नाटक है जिसमें दृश्य, समय और स्थान की दृष्टि से, बहुत बदलते रहेंगे। कभी हम एक देश की कथा कहेंगे, और अगले परिच्छेद में हमारा दृश्य दूसरे देश और दूरस्थ काल में चला जायगा। परन्तु इस सबके नीचे मानव-जीवन के अन्दर काम करनेवाली कोई न कोई विशेष धारा काम करती दिखाई देगी। योरुप की भिन्न भिन्न जातियों के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में विशेष विशेष लहरें चलती रही हैं। इन लहरों की गति को जानना ही योरुप के इतिहास को जानना है। यह भी आवश्यक था कि योरुप के जीवन को आरम्भ से लिया जाय। जिस समय ईसा से कोई एक सहस्र व पूर्व का योरुप हमारे सामने आता है उस समय केवल दो जातियाँ हमारे ध्यान को अपनी ओर खींचती हैं। बा. सारा योरुप ऊसर के सदृश है, जिसमें हमारे प्रयोजन लिए कोई मानवी बस्ती नहीं। यूनान के नगरों ने उन्नति है। इनमें एथन्ज़ और स्पार्टा आगे बढ़े हुए हैं। थोड़ी बाद इटली का रोम नगर समस्त योरुप पर आधिपत्य लेता है। फिर इसका अधःपात होने से योरुप में अनेक के अन्दर उन्नति का उद्रेक हो जाता है। यूनान और का उत्कर्ष और अपकर्ष उन शताब्दियों की एक चेष्ट रोम के अपकर्ष के समय में योरुप में ईसाई-मत के एक नवीन शक्ति का प्रवेश होता है। रोम के सा

विशाल भवन गिर जाता है। परन्तु उसके स्थान में वह धर्म्म का एक विशाल दुर्ग तैयार कर लेता है। योरुप में एक सहस्र से अधिक वर्ष तक रोम और रोमन-धर्म्म का प्राधान्य रहता है। इन शताब्दियों में योरुप के समस्त देश किस प्रकार रोमन कैथालिक धर्म्म में दीक्षित हुए, और तत्पश्चात् किस प्रकार यही धर्म्म योरुप के जीवन का पथ-प्रदर्शन करता था, यह योरुप की एक दूसरी बड़ी लहर है। इस लहर का एक अतीव सुन्दर चित्र हमको उन धर्म-युद्धों में दिखाई देता है जो कि योरुप की ईसाई जातियों ने मुसलमानों से फल-स्तीन लेने के लिए किये। इसलाम की शक्ति का आरम्भ और उत्कर्ष भी इस बड़े नद की एक शाखा है। ईसाई-मत का उत्कर्ष हो जाने पर उसके अपकर्ष के चिह्न हमारे सामने आते हैं।

मुसलमानों के योरुप पर आक्रमण, प्राचीन रोमन और यवन विद्याओं का नये सिरे से योरुप में प्रचार, नवीन सागर-पथों और प्राचीन तथा नवीन जगत् का आविष्कार, और धर्म्म-संस्कार (रीफार्मेशन) का आन्दोलन, ये ऐसी लहरें हैं जो योरुप पर अपना प्रभाव डालती हैं। इनके पश्चात् और इनका सहज परिणाम योरुप में राजनीतिक स्वतंत्रता की लहर है। यह समय समय पर भिन्न भिन्न देशों में दौरा करती है। ये सब ऐसी लहरें हैं जो कि योरुपीय इतिहास के अन्तस्तल में चलती रही हैं, और जिनके कारण योरुप में

लड़ाई-झगड़े और क्रान्तियाँ हुई हैं। वास्तव में इन लहरों की गति ही योरुप का वास्तविक इतिहास है।

इस पुस्तक में जब हम स्पेन के बाद हालेण्ड, हालेण्ड के बाद इँग्लेण्ड और इँग्लेण्ड के बाद फ्रांस की कथा को लेते हैं, तब यह न समझना चाहिए कि ये भिन्न भिन्न देशों पर छोटे छोटे निबन्ध लिखे गये हैं, वरन इसका एक विशेष उद्देश है। वह यह कि जब जब कोई देश किसी लहरविशेष के प्रभावाधीन होता है, उस समय उसके अगले और पिछले वृत्तान्त का संक्षिप्त वर्णन पाठकों के सामने लाना आवश्यक होता है। पिछले वृत्तान्त का लिखना इसलिए आवश्यक है कि यह जतलाया जा सके कि उस लहर ने वहाँ पर किस प्रकार और क्यों कर अपना प्रभाव उत्पन्न किया। इस विचार-बिन्दु को सामने रखने पर हम देखेंगे कि वर्तमान जर्मनी या रूस या आयर्लैंड बहुत हाल के समय में योरुप के जीवन के प्रभावाधीन हुए हैं। इसी लिए उनका उल्लेख बहुत देर के बाद किया गया है। और उल्लेख करते हुए यह अतीव आवश्यक जान पड़ा है कि उनकी संक्षिप्त आरम्भिक कथा भी बता दी जाय।

क्योंकि मैंने इस पुस्तक के लिखने में इन्हीं लहरों का ख़याल रक्खा है, इसलिए लड़ाइयों आदि के और बहुत से ब्योरे छोड़ दिये गये हैं। मैं इस त्रुटि का भली भाँति अनुभव करता हूँ। परन्तु सब ब्योरों का या भिन्न भिन्न विचार-दृष्टियों से सब घटनाओं का एक छोटी सी पुस्तक में उल्लेख

कर देना सम्भव नहीं है। पाठक इस त्रुटि के लिए क्षमा करें, और इस बात का ध्यान रक्खें कि मैंने एक सागर को गागर में बन्द करने का यत्न किया है।

विषय-सूची

पहला भाग

दूसरा भाग—मध्य युग

तीसरा भाग—वर्तमान युग

शुद्धि-पत्र

—:०:—

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
का	की	११४	१६
वैयक्तिगत	व्यक्तिगत	११९	शीर्षक
उन्होंने	इन्होंने	१२२	(अन्त में)
फैला	फैल चुका	१२८	१८
एग्कर्ड	एग्बर्ट	१२९	७
रोमन-सभ्यता	रोमन सभ्यता	१४९	७
(दौड़)	दौड़	१७८	१६
वे	ये	१८४	१६
(प्रकरण २०)	२१	१८५	१२
इन राज्यों में	ये राज्य	१८५	१७
और	जब कि	१८६	३
शिक्षा-प्रचार	शिक्षा का प्रचार	१८७	२
कि	०	१८७	५
इस	जिस	१८८	१
दी	रक्खी	१८८	१०
केनयूट राज्य	केनयूट	१८८	शीर्षक
स्केण्डलेबिया	स्केण्डेनेविया	१८९	२२
कराई	०	१९१	५
स्टीफ़न	स्टीफ़ेन	१९२	८,११,१२

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
के	का	१६२	११
ही	भी	१६४	६
किन्तु	और	२२६	७
उसे	पोप को	,,	१०
राजाओं	राजा	,,	१७
पोपों	पोप	,,	६
देकर	लेकर	२२७	३
आया	आगया	,,	१२
मार्कोपोनो	मार्कोपोलो	,,	१७
इन	विभिन्न	२२८	१४
इसी	उसी	२२६	६
पर	में	,,	१३
प्रकरण ६२	प्रकरण ६१	२३०	१
मेम्बर	मेयर	२३३	१२
पार्कवंश	यार्कवंश	२४२	११
लोलर्डस	लोलार्ड	२४४	४
व्यय	व्यर्थ	२८१	७
कौंटरिफार्मेशन	कौन्टर रिफार्मेशन	३१२	१५
सेपैरटिस्ट	सेपेरेटिस्ट	३४२	शीर्षक
आडा	अर्माडा	३४५	शीर्षक
शन्ति थी	शान्ति न थी	३६६	४
१५०३	१६०३	४४४	शीर्षक
पिल्ग्रम्स	पिल्ग्रिम्स	४४७	३
अल्प्स्य	अल्स्टर	,,	८
कारथस-कानून	कारपस	४६७	शीर्षक
नाममात्र	नाममात्र को	४८१	६

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
१७८०	१७८८	५२१	२१
१७८२	१७९२	५३७	शीर्षक में
१७८३	१७९३	,,	,,
द्रहियो	द्रोहियों	५३८	१०
आमियङ्न्स	आमीन्स	५५४	१८
आमी-अङ्न्स	आमीन्स	५५६	१६
सन १७६७	१८६७	६२१	१६
तब	जब	६८०	१०
आज	इसी कारण आज	६८१	६
आयरलैंड नीसियो	वे अयरलैंड	,,	७
केन्द्र	केन्द्रीय	६८२	२२
वंट	बाँट दी	६८३	१५
गरेट	गरेटन	६८६	१७
ग्रोड को	को	६८७	१६
रहने	अस्तित्व	६८६	२१
मनुष्य	मानवी	६६०	६
शस्त्राग	शस्त्रागार	६६१	१०
नहीं	न	६६३	२
पी	०	,,	२०
पर	में	६६५	१३
वह पूरा	वह अपने इम्तिहान में पूरा	६६७	६
नामक	नाम की	६६८	१
इस	उस	,,	२२
से	०	,,	२२
स्टीफ़न्स	स्टीफ़ेन्स	६६६	१३
पिस्टल	पिस्तौल	७००	६

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
स्वराज्य या होमरूल	होमरूल या स्वराज्य	७०२	१२
वट	साइसेक वट	”	१२
और	०	”	१८
पहिली बात	बात	७०३	७
के रूप में	०	”	११
करता	भाषण करता	”	११
वह कहता था	उसका कहना था	”	१९
सन १७८८	सन १८८८	७०५	३
रीति को	रीति	”	१७
ढील	ढीला	”	५
छोटेपन	छुटपन	७०८	६
१८६४	१८४६	७०९	१६
यम	कायम	७१४	१३
सा	सौ	७२२	१४

योरुप का इतिहास

विषय-प्रवेश

मनुष्य-समाज या उसके किसी भाग के विषय में ऐसे वृत्तों का जानना जिनसे उसकी उन्नति या अवनति का आरम्भ हुआ हो इतिहास कहलाता है। इतिहास का आरम्भ उस समय होता है जब कि मनुष्य समाज की अवस्था में प्रविष्ट हो जाता है। जब तक वह इससे पहली अर्थात् जंगली अवस्था में होता है, उसे अपने-पराये की कुछ परवाह नहीं होती, और न वह दूसरों के साथ मिलकर रहना चाहता है। उस समय मनुष्य की केवल एक ही आवश्यकता होती है कि वह किसी प्रकार अपनी क्षुधा-निवृत्ति कर सके। मनुष्य की यह दशा पशु-दशा से मिलती-जुलती है। मनुष्य-समाज की रचना के लिए पहला उपदेश वेद में इन शब्दों में है—

इतिहास क्या है ?

"हम सब आपस में मिलें, आपस में बात-चीत करें, और हम सबके विचार एक हों।"

इस सिद्धान्त पर जब समाज की स्थापना होती है, तब मनुष्य पशु-अवस्था से निकल कर मनुष्य-पद को प्राप्त करता

है। समाज के बिना मनुष्य केवल एक जंगली जीव है। अक्ष मनुष्य का उन्नति या अवनति करना कुछ अर्थ नहीं रखता। समाज बन कर मनुष्य आगे बढ़ते हैं और पीछे भी गिरते हैं।

समाज के वृत्तान्त को जानकर हमें इस बात का बोध होता है कि समस्त संसार के मनुष्य समष्टिरूप से भी एक अस्तित्व रखते हैं। हम व्यष्टिरूप से कोई महत्त्व नहीं रखते। मनुष्य-समाज एक विस्तीर्ण सागर के समान है जिसमें कि हम एक बूँद-मात्र हैं। संसार की समस्त जातियों के मिलने से एक मनुष्य-समाज बनता है। देश के अन्दर रहनेवाले एक जाति कहलाते हैं। देश के अन्तर्गत नगरों और ग्रामों में मनुष्य-समुदाय रह कर उस जाति के भिन्न भिन्न अङ्ग कहलाते हैं। सागर में वायु से अथवा किसी अन्य कारण से तनिक सी गति होती है। इस गति से तरङ्ग उत्पन्न होती है। इस तरङ्ग का प्रभाव थोड़ा बहुत समुद्र के सभी भागों में फैल जाता है। इसी प्रकार किसी भूभाग में, किसी देश में, देश के किसी नगर या गाँव में कोई घटना घटित होती है, और वह घटना सागर-तरङ्ग के सदृश संसार के समस्त भागों में अपना प्रभाव उत्पन्न करती है। एक छोटे से देश के एक नगर में एक व्यक्ति की हत्या की जाती है। वह व्यक्ति एक सम्राट् का उत्तराधिकारी है। यह घटना एक चिनगारी की भाँति आग सी उत्पन्न कर देती है। इस चिनगारी से समस्त बड़े बड़े देशों में युद्धाग्नि

इतिहास हमें क्या शिक्षा देता है ?

युग कहना चाहिए; और जो आठ दस सहस्र वर्ष तक पीछे चला जाता है। इस काल में प्राचीन संसार के भारत, चीन, ईरान, मिस्र और बाबल आदि बड़े बड़े देशों ने उन्नति की। इन देशों में रहनेवाली जातियों ने अपनी अपनी भाषा, साहित्य और कला में जाति को बहुत कुछ आगे बढ़ाया। और इस बात में कोई सन्देह प्रतीत नहीं होता कि परस्पर सम्बन्ध उत्पन्न करके उन्होंने एक दूसरे पर प्रभाव डाला। इन देशों के प्राचीन वृत्तान्त शृङ्खलाबद्ध नहीं मिलते। फिर भी प्राचीन काल के इतिहास में हमें ऐसे वृत्तान्त पर्याप्त मिलते हैं जिनसे कि उन लोगों के समाज का चित्र हमारे सामने आ जाता है।

इतिहास की भिन्न भिन्न भागों में बाँट

दूसरा भाग योरुप के प्राचीन काल का इतिहास है। यह ईसा के कोई एक सहस्र वर्ष पहले आरम्भ होकर ईसा के कोई पाँच सौ वर्ष बाद आकर समाप्त हो जाता है। ये डेढ़ सहस्र वर्ष योरुप का प्राचीन इतिहास कहलाते हैं इस काल में हमें यूनान के माण्डलिक राज्यों और इटली के अन्दर रोम के एक बड़े साम्राज्य के उत्कर्ष और अध:पात के वृत्तान्त मिलते हैं। अत: पुराने इतिहास का अध्ययन करने के लिए हमें यूनान और इटली के इतिहास का संक्षिप्त वर्णन करना होगा। ईसा के सन् पाँच सौ से लेकर बीसवीं शताब्दी तक दूसरा डेढ़ सहस्र वर्ष है। यह वर्तमान योरुप का इतिहास कहलाता है। इस डेढ़ सहस्र वर्ष के अन्दर भी एक सहस्र

वर्ष के काल को योरुपीय इतिहास का मध्यकाल कहते हैं। इस मध्यकाल में ईसाई-धर्म का योरुप के देशों पर आधिपत्य रहता है। इसी काल में योरुप में भिन्न भिन्न जातियों और साम्राज्यों की नींवें पड़ीं। इस काल में योरुप के लोगों का दृष्टि-क्षेत्र बहुत संकीर्ण और परिमित रहता है। विद्या और कला में भी कोई उन्नति नहीं पाई जाती। इस काल की एक विशेषता यह है कि योरुप की जातियों की इसलाम की शक्तियों से कभी कभी प्रतियोगिता रहती है। अनेक प्रसिद्ध धर्म्म-युद्ध भी इसी समय में हुए हैं।

सोलहवीं शताब्दी से योरुप के आधुनिक काल का इतिहास शुरू होता है। इस काल का आरम्भ योरुप के बड़े धर्म्म-संस्कार से होता है। इसके साथ ही नवीन संसार का आविष्कार भी होता है। इन दोनों घटनाओं से योरुप में बौद्धिक स्वाधीनता की नींव पड़ती है। यद्यपि इसका एक परिणाम यह होता है कि पहले डेढ़ सौ वर्ष अर्थात् सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ से लेकर सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक योरुप में धार्मिक उपद्रव और लड़ाइयाँ होती हैं, परन्तु बौद्धिक स्वतंत्रता की स्थापना हो जाने पर धार्मिक उपद्रव की समाप्ति हो जाती है। और वर्तमान राजनैतिक स्वतंत्रता की लहर योरुप के देशों में चक्कर लगाना आरम्भ कर देती है। योरुपीय देशों का भीतरी इतिहास तो राजनैतिक स्वतंत्रता और समता के नियमों पर अवलम्बित पाया जाता है, परन्तु इन

जातियों के अपने सम्बन्ध पुराने और नये जगत् में वाणिज्य और उपनिवेशों के बढ़ाने के सिद्धान्त के साथ सम्बद्ध हैं। प्रत्येक जाति, एक दूसरे के पीछे, यही उद्योग करती है कि अपने उपनिवेश बनाकर वहाँ एक साम्राज्य की स्थापना करे।

इस पुस्तक में प्राचीन एशिया के देशों का वर्णन नहीं होगा, वरन् योरुप के दो प्राचीन देशों—यूनान और रोम—का संक्षेप से उल्लेख करने के पश्चात्, जो कि प्राचीन योरुप है, उपर्युक्त रीति पर मध्यकालीन तथा वर्तमान योरुप के संक्षिप्त वृत्तान्तों का उल्लेख किया जायगा।

प्राचीन योरुप

प्राचीन अथवा अर्वाचीन योरुप का इतिहास लिखते हुए हमें जिन जातियों से काम पड़ेगा वे प्रायः सबकी सब एक ही वंश से सम्बन्ध रखती हैं। यह महान् आर्यवंश जिसके कि समस्त योरुपीय समूह शाखायें हैं वही वंश है जिसमें से कि भारत के हिन्दू, ईरानी, और अफ़ग़ान आदि उत्पन्न हुए हैं। इन सब जातियों के पूर्वज आरम्भिक काल में एक ही जगह रहते थे। यह जगह हिमालय के उत्तर में मध्य-एशिया का प्रान्त अनुमान की जाती है। जब आर्यवंश ने अपनी प्राचीन मातृ-भूमि में रह कर बढ़ना आरम्भ किया, तो उसके भिन्न भिन्न

योरुपीय जातियों का वंश

समूह भिन्न भिन्न समयों में चल कर भूमण्डल के भिन्न भिन्न भागों में बसते गये। इन सब लोगों की सन्तान से जो जातियाँ इस समय बनी हैं उनकी भाषा में अधिक प्रयोग में आनेवाले शब्द एक ही प्रकार के हैं। जैसे कि अँगरेज़ी में फ़ादर, जर्मन वातर, ग्रीक पेतर, लेटिन पेटर, फ़ारसी पिदर, और संस्कृत पिता। भिन्न भिन्न अवस्थाओं में, अनेक शताब्दियाँ व्यतीत हो जाने के पश्चात्, इतना परिवर्तन होगया कि वे जातियाँ अब एक दूसरे से सर्वथा भिन्न बन गई हैं, परन्तु भाषा और वंश का मूल एक ही है। योरुप की जातियों के पूर्वजों के भिन्न भिन्न समूह एशिया माइनर होते हुए ग़ाल और जर्मन आदि में आबाद हो गये। चिरकाल तक उनकी अवस्था अस्थिरवासियों की सी रही। इसलिए उनका कोई इतिहास नहीं मिलता। केवल यूनानी और रोमन लोग ही ऐसे थे जिन्होंने नगर बनाकर रहना आरम्भ किया। इन दोनों की भाषाओं में भी बहुत सा सादृश्य पाया जाता है। यूनानी लोग अपने को हेलन्ज़ और अपने देश को हेलास कहा करते थे।

प्राचीन इतिहास की विशेषता

प्राचीन देश का इतिहास एक जाति के इतिहास के रूप में नहीं मिलता। यूनान भी न एक राष्ट्र था और न एक जाति थी। इसमें अनेक नगर थे, जो अपने को एक एक रियासत समझते थे। उनकी जनसंख्या थोड़ी थी और क्षेत्रफल कतिपय मीलों

तक ही परिमित था। परन्तु फिर भी अपना शासन, अपनी रीति-नीति, और अपना राजनियम अलग अलग था। वे कभी आपस में लड़ते थे, और कभी इनका मेल हो जाता था। यूनान में अनेक नगर होने का हेतु यह भी था कि यूनान दुर्गम पर्वतों के कारण जुदा जुदा टुकड़ों में बँटा था। और कभी सारा यूनान एक राज्य के नीचे नहीं रहा। इन नगरों में से स्पार्टा और एथन्ज़ सबसे बड़े थे।

यूनान के लोग

इन नगरों में भिन्न भिन्न कुलों के लोग रहा करते थे। इन कुलों के भिन्न भिन्न देवता थे। उनकी यह पूजा करते थे। कभी कभी अनेक कुल मिलकर किसी एक बड़े मन्दिर के देवता की पूजा करते थे। डेल्फी के मन्दिर में बारह कुल अपोलो का पूजन किया करते थे। वर्ष में दो बार इन कुलों के लोग खेलों में प्रतियोगिता करने के लिये इकट्ठे होते थे। इसी प्रकार ओलिम्पिया में 'ज़िउस' देवता का मन्दिर था। वहाँ भी ओलिम्पियन दौड़ें और खेल प्रति चौथे वर्ष हुआ करते थे। जीतनेवालों को पारितोषिक दिये जाते थे। ये पारितोषिक और कुछ नहीं, केवल वृक्षों की छोटी टहनियाँ हुआ करती थीं। पारितोषिक पानेवालों को इनसे बड़ी प्रसन्नता और अभिमान प्राप्त होता था।

प्रत्येक नागरिक साधारणतया सिपाही का काम करता था और प्रत्येक को अपनी सभा में मत देने का अधिकार प्राप्त था। जो नगर समुद्र-तट पर अवस्थित थे, उनको फीनी-

शियन नाम की एक प्राचीन नाविक जाति से वास्ता पड़ा। उनसे इन लोगों ने लेखन-कला, तोल-माप की विद्या, रङ्ग बनाने की विधि, धातुओं का निकालना और जहाज़ों का बनाना सीखा। फीनीशियन लोगों ने ये कलायें पूर्वी लोगों से सीखी थीं। प्राचीन यूनान के उपाख्यान इलियड और ओडेसी नाम के दो महाकाव्यों में पाये जाते हैं। इलियड महाभारत के सदृश युद्ध के वृत्तान्तों का वर्णन करता है और ओडेसी रामायण की भाँति पारिवारिक जीवन का चित्र है।

स्पार्टन

यूनान के एक पार्वत्य प्रदेश का नाम पैलोपनीसस था। इसमें एकियन और आयोनियन नाम के बड़े दो वंश अनेक भिन्न भिन्न नगरों में रहा करते थे। ईसा से कोई एक सहस्र वर्ष पूर्व की बात है कि डोरियन नाम की एक और जङ्गली जाति ने इस प्रदेश में प्रवेश किया। इसके भिन्न भिन्न समूहों ने नगरों को जीत कर इधर-उधर रियासतें बना लीं। पुराने वंश के जिन लोगों ने उनके नीचे रहना पसन्द न किया वे देश छोड़ कर एशिया कोचक में चले गये और वहाँ उन्होंने यूनानी उपनिवेश अथवा नगर बसाये। डोरियन लोग विजित वंशों के साथ बहुत बुरा बर्ताव करते थे। इनका ज़ोर स्पार्टा में बहुत था। इस नगर का यह नाम उन्होंने और खेतों के कारण (स्पार्टा = बोई हुई भूमि) रक्खा। ने विजित लोगों के दो भाग कर दिये। एक तो वे जिन पास भूमि थी। इनको सेवा में भरती करते थे। और दू

वे लोग जिनसे क्रीत दासों की भाँति खेती का काम लिया जाता था। इन विजेताओं को पड़ोसी लोगों से सदा युद्ध करना पड़ता था। इसलिए उन्होंने वाणिज्य की ओर या सुन्दर भवन बनाने की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। स्पार्टा सदा एक गाँव ही रहा।

स्पार्टा के लिए पहला स्मृतिकार लाईकर्गस था। उसके नियम के अनुसार जीवन का उद्देश्य केवल युद्ध की तैयारी थी।

लाईकर्गस

दुर्बल बालकों का पालन-पोषण नहीं किया जाता था। सात वर्ष की अवस्था में बालक को परिवार से निकाल कर अफ़सरों के अधीन रख दिया जाता था। वे उसे शास्त्र का प्रयोग और व्यायाम सिखाते थे। वहाँ उसे सब प्रकार के कष्ट और कठोरतायें झेलनी पड़ती थीं। सादा भोजन दिया जाता था। उसे संगीत भी सिखाया जाता था। पन्द्रह मनुष्य एक मेज़ पर खाना खाने बैठते थे। स्त्रियाँ वीरों पर प्रेम और कायरों से घृणा करती थीं। दूसरों के साथ वाणिज्य को बन्द रखने के लिए लोहे का सिक्का बनाया गया।

दो राजा होते थे ताकि एक मनुष्य सबसे अधिक शक्तिशाली न हो जाय। अट्ठाईस वृद्ध पुरुषों की एक राज्य-सभा

शासन

(कौंसल ऑव् स्टेट) होती थी। क़ानून पास करने के लिए सब नागरिक एक सभा में एकत्र होते थे। वे कोई वक्तृता न कर सकते थे। वे केवल हाँ या न कर सकते थे। यह सभा मजिस्ट्रेट चुना करती थी। जिनको एफर्ज़

कहते थे। उनका राजा से भी अधिक अधिकार होता था। स्पार्टा को छोड़ कर इस डोरियन वंश के लोग अन्य नगरों में भी बस गये। वहाँ राजाओं की शक्ति कम और धनिकों की शक्ति अधिक होती गई। ये धनिक-परिवार हीरोस की सन्तान होने से पवित्र समझे जाते थे। केवल वही क़ानून जानते थे और उन क़ानूनों को कण्ठस्थ रखते थे। यह समझा जाता था कि यह क़ानून उनका ही बना हुआ है। थोड़े से व्यक्तियों के शासन को अल्प-जन-सत्ताक राज्य (ऑलीगार्की) कहा जाता था।

विधिविरुद्ध राजा

स्पार्टा के सिकियन, अर्गास और कारिन्थ आदि राज्य पहले राजा के हाथ में थे। फिर धनिकों के हाथ में आ गये। स्थान स्थान पर ऐसे स्वेच्छाचारी मनुष्य उत्पन्न हो गये जिन्होंने राजा का स्थान ले लिया। क्योंकि ऐसे मनुष्य क़ानून को तोड़ कर राजा बने थे, इसलिए उनको यूनान में "टायरेण्ट" कहा जाता था। कारिन्थ में "पेरियण्डर" नाम का एक टायरेण्ट था। वह एशियाई राजाओं के ढङ्ग से रहा करता था। उसने एक बड़े दुर्ग पर एक राजभवन बनवाया। वहाँ वह दरबार किया करता था। धनिकों से धन छीनकर देवता की पूजा में लगा देता था। कवियों और गुणियों का सम्मान और सत्कार करता था। उसका मन धनाढ्यों से सदा भयभीत रहता था। उसने सभायें, सहभोज और व्यायाम आदि बन्द कर दिये। अविश्वास के कारण

वह दिन पर दिन अत्याचार करता रहा। यहाँ तक कि क्रोध में आकर उसने अपनी स्त्री को भी मार डाला। यह जानकर उसका एक पुत्र पिता से बोलना पसन्द न करता था। इसके क्रोध ने उसे भी घर से बाहर निकाल दिया। आज्ञा दी कि कोई उससे बात न करे। वह लड़का कई दिन तक भूखा फिरता रहा। कुछ दिनों के पश्चात् पिता ने उसे बुलाया। इस पर लड़के ने कहा कि तुमने आप ही अपना राजनियम भंग किया है। टायरेण्ट लोगों के शासन का एक लाभ यह हुआ कि उनके राजत्वकाल में धनाढ्य परिवारों और बाक़ी लोगों का पद एक तुल्य हो गया। जब इन टायरेण्ट लोगों का शासन समाप्त हुआ तब साधारण नागरिक भी शासन में भाग लेने लग गये और धनिकों तथा दरिद्रों का भेद उड़ गया। जो व्यक्ति पहला टायरेण्ट होता था वह साहसी और योग्यतासम्पन्न होता था। अपने समय में कविता और कला की उन्नति करता था। उसकी सन्तान प्रायः योग्यता-शून्य होती थी और अत्याचार के सिवा और कुछ न जानती थी। स्पार्टा के लोग प्रत्येक रियासत में इन टायरेण्टों के शासन के विरुद्ध सहायता देने पर उद्यत रहते थे। इसलिए स्पार्टा एक बड़ी रियासत बनता गया। इन टायरेण्टों के अत्याचार का एक फल यह भी हुआ कि अनेक नागरिक अपनी जन्मभूमि छोड़ कर रूमसागर और कृष्णसागर के किनारे पर जा बसे। ऐसी अनेक बस्तियाँ दक्षिणी इटली और

सिस्ली के किनारे पर भी बसाई गईं। ये सब बस्तियाँ देवताओं की पूजा के कारण मातृ-भूमि से सम्बन्ध रखती थीं।

यूनान

एथन्ज़ के प्रान्त का नाम एटिका था। एथन्ज़ के लोग आयोनियन कहलाते थे। इस प्रान्त में अनेक रियासतें थीं। एथन्ज़ ने उनको विजय न किया, वरन् शनैः शनैः अपने साथ मिला कर एक राज्य (स्टेट) बना लिया।

गवर्नमेण्ट की अवस्था

पहले-पहल एथन्ज़ में राजा को शासन मिला जो कि शासक भी था और पुरोहित भी। कुछ काल के अनन्तर पुरोहित का काम उससे ले लिया गया। तब उसे अर्कान कहते थे। कुछ काल और व्यतीत होने के बाद अरकान का पद केवल दस वर्ष के लिए कर दिया गया। ईसा पूर्व सन् ६८३ में इस पद को वार्षिक बना कर, भिन्न भिन्न कर्तव्यों के लिए, एक के स्थान में नौ अरकान नियुक्त किये गये। एथन्ज़ की प्रजा के तीन प्रकार थे—धनिक, किसान, और मज़दूर। आरम्भ में सारी शक्ति और धार्मिक प्रक्रियायें धनिकों के हाथ में रहती थीं। सर्वसाधारण का शासन में कोई भाग न था। और उनको बड़ा कष्ट इस बात का था कि न्याय के लिए न कोई लिखित क़ानून था और न कोई न्याया-

और सड़कें बनवाईं। पानी लाने का प्रबंध किया। उसने काव्य-कला की उन्नति की। उसकी सन्तान अयोग्य थी। उसके समय में बड़ा अत्याचार होने लगा। उसने एक धनाढ्य परिवार को देश-निकाला दे दिया था। उस परिवार ने स्पार्टा के राजा के मन में यह बात डलवाने का यत्न किया कि एथन्ज़ को स्वतंत्र करना चाहिए स्पार्टावालों ने एथन्ज़ पर आक्रमण किया। इसका परिणाम यह हुआ कि टायरेण्ट के शासन की समाप्ति हो गई।

निर्वासित परिवार का नेता क्लिस्थनीज़ था। यह परिवार एथन्ज़ में लौट आया और क्लिस्थनीज़ की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई।

क्लिस्थनीज़ के सुधार

क्लिस्थनीज़ ने एथन्ज़ की दशा को अच्छा बनाने के लिए अनेक सुधार किये। धनाढ्यों की शक्ति को कम करने के लिए उसने नगर को कई मण्डलों में और प्रजा को दस कुलों में बाँट दिया। कौंसिल के सदस्यों की संख्या पाँच सौ करके प्रत्येक कुल के पचास सदस्य नियत कर दिये।

इस कौंसिल की भिन्न भिन्न कमेटियाँ बनाईं। ये अपना अपना विशेष कार्य करती थीं। इनके सदस्य नये कुलों से चुने जाते थे। प्रत्येक कुल अपना अपना एक सेनानायक नियत करता था। ये बारी बारी से एक दिन सेना की कमान करते थे। सभा के अन्दर अभियोगों का निर्णय करने के लिए अनेक अदालतें नियत कर दी गईं। टायरेण्टों को रोकने के लिए

उन्होंने यह नियम बनाया कि जिस व्यक्ति को जनता भयावह समझे, छः सहस्र मनुष्यों की सम्मति हो जाने पर उसको निर्वासित कर दिया जाय। अरकान लोगों की दलबन्दियों को रोकने के लिए उसने गुणा या लाटरी डालने की रीति निकाली। एथन्ज़ की शासन-पद्धति को उसने सर्वथा लोकतंत्र बना दिया। इसमें दासों को छोड़ कर शेष सबको मत देने का अधिकार था।

स्पार्टा का आक्रमण

धनी लोग इस शासन-पद्धति के घोर विरोधी हो गये। उन्होंने स्पार्टा के राजा को लिखा कि क्लिस्थनीज़ अपने आपको स्पार्टा का राजा बनाना चाहता है। इसलिए एथन्ज़ को छुड़ाना चाहिए। स्पार्टा का राजा क्लियोमेनीज़ एथन्ज़ को नीचा दिखलाना चाहता था। वह सेना लेकर चढ़ आया। आते ही उसने सात सौ परिवारों को निर्वासित कर दिया। एथन्ज़ के सब लोग उसके विरुद्ध उठ खड़े हुए। उन्होंने स्पार्टा के सिपाहियों को ऐसी हार दी कि उनको वापस जाना पड़ा। जिन नागरिकों ने स्पार्टा की सहायता की थी, उन्होंने उन सबको निकाल दिया। तत्पश्चात् क्लियोमेनीज़ ने और रियासतों को बुलाकर एथन्ज़ पर चढ़ाई करनी चाही। परन्तु जब रियासतों को स्पार्टा का वास्तविक उद्देश्य बोध हुआ तब उन्होंने स्पार्टा का साथ देने से इन्कार कर दिया। फिर क्लियोमेनीज़ ने एथन्ज़ के टायरेण्ट परिवार को वापस लाने का यत्न किया। इस पर

कारिन्थ के एक सदस्य ने उसे खूब फटकारा कि एथन्ज़ की शत्रुता के लिए अब टायरेण्ट के सहायक बन गये हो! इसलिए यह चाल भी सफल न हुई। इस सारी चढ़ा-ऊपरी में एथन्ज़ बड़ा मज़बूत और शक्तिशाली बन गया। अगले अध्याय में हम देखेंगे कि यह शक्ति उसके बड़े काम आई।

ईरान और यूनान का युद्ध।

हम पहले लिख आये हैं कि एशिया माइनर में यूनानी उपनिवेश बस गये थे। उनमें से बारह बड़े प्रसिद्ध और धनाढ्य नगर थे। उनकी आपस में एकता न थी। इसलिए सन् ५५० ई० में लीडिया के राजा क्रोसस ने इनको विजय कर लिया। यह मनुष्य यूनानी कला और विचारों को बहुत पसन्द करता था। यदि लीडिया को एक दूसरी शक्ति नष्ट न कर डालती, तो सारे एशिया कोचक में यूनानी विचार फैल जाते। यह नवीन शक्ति यूनान का सम्राट् साईरस था।

एशिया के अन्तर्गत यूनानी उपनिवेश

ईसा से एक सहस्र वर्ष पूर्व नेनवा के राजों ने असीरिया साम्राज्य की स्थापना की। सम्भवतः उनका राज्य सिन्धु नदी तक फैला हुआ था। सन् ७५० ई० पू० में बाबल और मीडिया उससे स्वतंत्र हो गये। मीडिया ने ईरान की ओर एक प्रान्त विजय कर

मीडिया और लीडिया

लिया। उसके एक राजा कायकशेयर ने बाबल के राजा नेबकड-नज़र के साथ मिलकर सन् ६०६ ई० पू० में ननवा का विध्वंस किया। तत्पश्चात् मीडिया साम्राज्य एशिया-कोचक की ओर बढ़ा। एक बार इसकी मीडिया से भी टक्कर हुई। युद्ध के समय सूर्य-ग्रहण हो जाने से उन्होंने परस्पर संधि कर ली। परन्तु थोड़ी देर के बाद ईरानी जाति राजा साईरस के अधीन जाग उठी। उन्होंने सन् ५५९ ई० पू० में मीडिया पर अधिकार कर लिया। इस पर मीडिया-नरेश क्रोसस, अपनी जगह, ईरान के मुक़ाबले पर, युद्ध का आयोजन करने लगा। उसने मिस्र और बाबल से मैत्री की। स्पार्टा से भी सहायता का वचन लिया। एक मैदान में ईरानी सेना का सामना करके क्रोसस अपनी राजधानी सारडस में चला आया और पाँच मास के अन्दर सब कहीं से सेना माँगी। साईरस उससे पहले ही सारडस आ पहुँचा और लीडिया को अधीन होना पड़ा। अब यूनानी उपनिवेश भी साइरस की अधीनता पर तैयार थे, परन्तु वे अपने स्वत्व चाहते थे। ईरानी राजा उनके मन्दिरों और देव-मूर्तियों को तोड़ देते थे और किसी प्रकार के अधिकार देने पर उद्यत न थे। इसलिए यूनानी उपनिवेश युद्ध पर तैयार हो गये। उन्होंने स्पार्टा से भी सहायता माँगी, परन्तु वे ईरानी सेना के सामने न ठहर सके, और शनैः शनैः अधीन होते गये। इसी बीच में साइरस ने बाबल को विजय कर लिया। उसके पुत्र ने फीनीशियन

जाति को जीत कर मिस्र और साइप्रस को साथ मिला लिया।

इतने में साइरस की मृत्यु हो गई और उसका एक नातेदार दारा राजसिंहासन पर बैठा। दारा ने मीडिया के

दारा

सूसा नगर को राजधानी बना कर साम्राज्य को बीस भागों में विभक्त किया। उसने यूनानी नगरों में एक एक टायरेण्ट नियुक्त किया, और सन् ५१० ई० पू० में योरुपीय तातार पर चढ़ाई करने का संकल्प किया। यूनानी उपनिवेशों ने उसे छः सौ जहाज़ दिये और बास्फोरस पर एक नावों का पुल बना दिया। दारा सेना लेकर सिदिया में प्रविष्ट हुआ। वहाँ के अस्थिरवासी लोग आगे आगे चले गये। दारा और उसकी सेना मार्ग भूल गई। उन्हें घबरा कर वापस आना पड़ा। उस समय एक टायरेण्ट ने तो यह विचार प्रकट किया कि हमें पुल को नष्ट करके ईरानी सेना को उधर ही मरने देना चाहिए। परन्तु दूसरे टायरेण्ट ने कहा कि हमारी शक्ति तो ईरान के शासन के कारण से है। इस मनुष्य का नाम हिस्टियस था। दारा एक सेनानायक को थ्रेस-विजय करने के लिए छोड़ कर सार्डस वापस चला आया, और उसने हिस्टियस को बहुत सा देश दिया। अब हिस्टियस अपनी शक्ति को बढ़ाने के उपाय करने लगा। दारा ने उसे अपने पास बुलाया और उसके जामाता अरिस्टोगोरिस को उसके स्थान में नियुक्त किया। अरिस्टोगोरिस भी वैसे ही विचार

रखता था। एक अभियान की असफलता के कारण ईरान के सूबेदार के साथ रुष्ट होकर उसने विद्रोह करने का निश्चय कर लिया और सहायता माँगने के लिए यूनान को चला गया। स्पार्टावालों ने कोई सहायता न दी। एथन्ज़ ने बीस जहाज़ भेजे और उन्होंने सार्डस नगर को आग लगा दी। उधर से ईरानी सेना यूनानी उपनिवेशों पर चढ़ आई। एक लम्बा युद्ध आरम्भ हो गया। यूनानी लोग बड़े सुखप्रिय और प्रसन्न-प्रकृति थे। वे युद्ध करते करते तंग आगये। जब ईरानी जहाज़ों ने उनके बेड़े पर आक्रमण किया तब उनके जहाज़ एक एक करके भाग निकले। उन्हें बड़ी भारी हार हुई। मेलेनस नगर ने इस युद्ध में बड़ी वीरता दिखाई। उसके सब बच्चों और स्त्रियों को दास बना लिया गया और पुरुषों की हत्या कर दी।

एथन्ज़ के साथ युद्ध

दारा ने अब एथन्ज़ को उसकी शठता का दण्ड देने का निश्चय किया। जो सेना उसने पहली बार भेजी वह तूफ़ान के कारण से बहुत सी नष्ट हो गई। जो थोड़ी सी बाक़ी बची वह वापस चली आई। दूसरे वर्ष सन् ४९० ई० पू० में एक और बड़ी सेना और बेड़ा तैयार करके यूनान पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया। कुछ नगरों ने ईरान की अधीनता स्वीकार कर ली। कई जगह लोग नगर छोड़ कर भाग गये। अन्त को ईरानी सेना एथन्ज़ से बाईस मील के अन्तर पर माराथान जा पहुँची। अब

एथन्ज़ के लिए मुक़ाबले के सिवा और कोई उपाय न था। स्पार्टा ने कोई सहायता न भेजी। एथन्ज़ की सारी सेना नौ सहस्र थी। ईरानी सेना एक लाख के लगभग थी। एथन्ज़ का सेना-नायक मिलिटियेडीज़ अपनी दुर्बलता और शत्रु की शक्ति को भली भाँति समझता था। वह जानता था कि उसके सिपाहियों में विश्वासघाती लोग भी मौजूद हैं। यद्यपि युद्ध आरम्भ करने के विषय में सेनानायकों में मतभेद था, तो भी उसने चटपट लड़ाई आरम्भ करने के पक्ष में निर्णय किया, और अपने कुल को सम्बोधन करके आक्रमण करने के लिए ललकारा। यूनानी-सेना ने जब पहाड़ी के ऊपर से धावा किया, तब ईरानी-सेना भाग निकली और दलदल में फँस गई। उधर से विश्वासघातियों ने ईरानियों को दर्पण से संकेत किया कि एथन्ज़ बिलकुल ख़ाली पड़ा है। ईरानी बेड़ा एथन्ज़ की ओर चला। मिलिटियेडीज़ यह जान कर पहले से ही अपने सिपाहियों को वहाँ ले आया। ईरानी उनको देख कर इतने घबरा गये कि एशिया की सारी सेना भाग गई। यह बड़ी प्रसिद्ध लड़ाई हुई। यदि इसमें ईरानी सेना जीत जाती तो यूनान और एथन्ज़ ईरान के प्रान्त बन जाते और योरुप का इतिहास एशिया का सा हो जाता। इस विजय से मिलिटि-येडीज़ की शक्ति बहुत बढ़ गई। उसने टायरेण्ट के सदृश उस शक्ति का उपयोग करना चाहा। लोग उसके विरुद्ध हो गये। उसका परिणाम प्रतिष्ठाजनक न

उस समय एथन्ज़ में दो व्यक्ति बड़े शक्तिशाली थे। एक का नाम एरस्टेडलीज़ था। वह यह समझता था कि यदि एथन्ज़ ने ईरानियों को एक बार हरा दिया है तो वह भविष्य में भी उन्हें हरा सकेगा। वह सागर-सेना बनाने के विरुद्ध था, क्योंकि उसमें दरिद्र लोग भरती होंगे और उनकी शक्ति बढ़ जायगी। इसके विपरीत थेमिस्टाक्लीज़ यह समझता था कि ईरानी आक्रमण के लिए बड़े ज़ोर के साथ तैयारी करेंगे, और इसके लिए एथन्ज़ को बड़े भारी बेड़े की आवश्यकता होगी। उसकी सम्मति के अनुसार एथन्ज़वालों ने चाँदी की खानों की आय को जहाज़ बनाने में व्यय कर दिया और समुद्र के तट पर पिर्स के स्थान पर एक व्यापारिक नगर बसाया। उसने जनता की सम्मति लेकर एरिस्टडीज़ को दस वर्ष के लिए निर्वासित कर दिया।

थेमिस्टाक्लीज़

दारा के पुत्र ज़रकसिस ने बारह सौ लड़ाकू जहाज़ और अपनी अधीनस्थ छयालीस जातियों में से दस लाख के लगभग सेना एकत्र की। सन् ४८० ईसा पूर्व में उसने चढ़ाई आरम्भ की। हेलस पुआइन्ट पर दो पुल बनाये गये। वह स्वयं संगमरमर के सिंहासन पर एक पर्वत-शिखर पर बैठ गया। सात दिन और सात रात पुल पर से सेना गुज़रती रही। इस बार स्पार्टा ने एथन्ज़ को सहायता देना स्वीकार कर लिया। परन्तु उसने यह शर्त की कि सेना का नेतृत्व उसे दिया जाय। यद्यपि इस आक्रमण

थरमापली का युद्ध

से सारे यूनान को भय था, तो भी एथन्ज़ ने परम बुद्धिमत्ता से इस शर्त को स्वीकार कर लिया। अब भी बहुत सी रियासतें इसमें सम्मिलित न हुईं। युद्ध के विषय में यह निर्णय हुआ कि ईरानियों के साथ वहाँ मुक़ाबला किया जाय जहाँ कि मार्ग संकीर्ण हो, ताकि थोड़े से मनुष्य बहुतों का सामना कर सकें। थेस्ली के अन्तर्गत थर्मापली का दर्रा इस प्रयोजन के लिए चुना गया। स्पार्टा का राजा लियोनिडास तीन सौ सैनिकों के साथ वहाँ का सेनापति नियत हुआ। तीन चार सहस्र सिपाही और भी उसके साथ थे। चार दिन तक ईरानी सेना सामने पड़ी रही। वह स्पार्टन सिपाहियों को व्यायाम करते और बाल सँवारते देखती रही। पाँचवें दिन लड़ाई की आज्ञा हुई। युद्ध के आरम्भ होने के दो दिन पश्चात् एक सिपाही ने ईरानी सेना को ऊपर के मार्ग का पता दिया। लियोनिडास को बोध हो गया कि यदि मुझे प्राण-रक्षा करनी है तो मेरे लिए पीछे हटना आवश्यक है। परन्तु स्पार्टा का नियम इसके विरुद्ध था। वह तीन सौ सिपाहियों को साथ लेकर मुक़ाबले के लिए जम गया। सात सौ थस्पियन भी साथ देने के लिए तैयार हो गये। प्रत्येक सिपाही मरते दम तक ईरानी-सेना का सामना करता रहा। वे सबके सब मैदान में काम आये। लियोनिडास और उसके साथियों की मृत्यु ने यूनान की रियासतों के सामने वीरता और त्याग का ऐसा उदाहरण

प्रतिष्ठित किया जिसने उस समय उनके हृदयों को ढाडस दी, और जो अब तक यूनानियों के हृदयों में जीवन का सञ्चार करता है। इसके साथ ही यूनानी और ईरानी बेड़ों का भी युद्ध हुआ। इसमें सलामिस की लड़ाई बहुत प्रसिद्ध है। इस लड़ाई में यूनान बहुत घिर गया। उसके लिए भय भी बड़ा था। परन्तु ईरानी बेड़े की संख्या का अधिक होना ईरानियों के विनाश का कारण हुआ। राजा का हृदय घबरा गया। वह अपना बेड़ा वहीं छोड़ कर लौट गया। यूनान में वह अपने एक सेनानायक को तीन लाख सेना देकर छोड़ गया। एथन्ज़वालों को लौटने पर फिर अपना नगर आबाद करना पड़ा।

कुछ समय तक यूनानी राज्य ईरानी सेना का सामना करते रहे। इन लड़ाइयों में भाग्य के परिवर्तनों के होते हुए भी ईरानी-सेना सर्वथा नष्ट हो गई। ईरानी बेड़े की पराजय होने से ईरानी जहाज़ भी बिलकुल निकम्मे हो गये। इतनी बड़ी सेना के होते हुए भी ईरानी सेना के सेनानायकों की भूल और दुर्बलता से ईरान को ऐसी भारी पराजय उठानी पड़ी। एथन्ज़ की वीरता और स्पार्टा के नेतृत्व ने यूनान की स्वतन्त्रता को बचा लिया।

—:o:—

एथन्ज़ और स्पार्टा का युद्ध।

ईरान के साथ युद्ध की समाप्ति हो गई, परन्तु इसका प्रभाव यूनानी राज्यों पर चिर काल तक रहा। पहले तो जब उनका वैदेशिक भय दूर हो गया, तब उनकी शत्रुता की आग एक दूसरे के विरुद्ध भड़क उठी। दूसरे पिछले युद्ध के समय में ही एथन्ज़ और स्पार्टा के बीच द्वेष पाया जाता था। स्पार्टावाले अपने को सब राज्यों में बड़ा समझते थे। इस युद्ध में एथन्ज़ की वीरता और स्वदेशभक्ति ने उनको सबसे बढ़कर सम्मान के योग्य बना दिया था। एथन्ज़ के लोग फिर दुबारा युद्ध से वापस आये और उन्होंने एथन्ज़ का पुनः निर्माण किया। इस समय उन्होंने नगर की प्राचीर का क्षेत्र अधिक विस्तीर्ण बना लिया ताकि उस प्रदेश के लोग वहाँ आकर शरण ले सकें। इससे स्पार्टा तथा अन्य राज्य उनसे द्वेष करने लगे। जिस प्रकार स्पार्टा के अधीन उस प्रदेश के राज्यों का एक संघ बना हुआ था, उसी प्रकार अब थ्रेस और एशिया कोचक के तट-वर्ती राज्यों ने एथन्ज़ को अपना नेता मान लिया। उनका देवता 'अपोलो' और उसका कोष डेलास में रहता था। इसलिए इस संघ का नाम डीलास का चक्रान्त (कान्फेडरेसी) रक्खा गया। एथन्ज़ और स्पार्टा के संघों में भेद यह था कि स्पार्टा के सहायक स्थल-सेना से सहायता करते थे, और

गृहविद्रोह का बीज

एथन्ज़ के साथी जल-सेना से। स्पार्टावाले अल्पजन-सत्ताक राज्य (ऑलीगार्की) के पक्ष में थे, और एथन्ज़वाले प्रजातंत्र के पक्ष में। सब रियासतों में लोगों की सहानुभूति विचित्र प्रकार से विभक्त थी। एक ही नगर में धनाढ्य लोग स्पार्टा के पक्ष में और निर्धन लोग एथन्ज़ के पक्ष में थे। एथन्ज़वालों ने अपने संघ की रचना में इस दोष को स्थान दिया कि जहाज़ों की सहायता के स्थान में वे रुपया भी स्वीकार कर लेते थे। क्योंकि रुपया देना सुगम था इसलिए दूसरी रियासतें जहाज़ों के स्थान में रुपया देने लग गईं। इस प्रकार मित्र के स्थान में वे एथन्ज़ के अधीन हो गईं। कुछ समय के उपरान्त कोष एथन्ज़ में ले जाया जाकर नगर को सुन्दर बनाने और नागरिकों के न्योतों में व्यय किया जाने लगा। समुद्री युद्धों में एथन्ज़ के निर्धनों ने बड़ा भाग लिया।

इसका कारण यह था कि वे भी शासन में भाग चाहते थे। एरिस्टडीज़ ने यह देख कर कि पुरानी दशा को बदलना पड़ेगा, आप ही परिवर्तन का प्रस्ताव किया; जिससे निर्धन लोग भी सब पदों पर नियुक्त किये जा सकते थे। उसने एथन्ज़ को पूर्ण प्रजातंत्र राज्य बना दिया। उसकी मृत्यु के पश्चात् धनाढ्यों के नेता मिलिटिडीज़ का पुत्र कायमन हुआ। दूसरे दल का नेता धनाढ्य परिवार का एक व्यक्ति, पेराक्लीज़, था। उसने देखा कि एथन्ज़ एक कृषि-नगरी के स्थान में एक बड़ा व्यापारिक पुर बन गया है और

पेराक्लीज़

उसके पास एक शक्तिशाली बेड़ा भी हो गया है। उसके मन में लालसा उत्पन्न हुई कि एथन्ज़ के प्रत्येक पौर को शिक्षा देकर ऐसा चतुर बनाया जाय कि वह साम्राज्य पर शासन करने के योग्य हो जाय और एथन्ज़ के गौरव को बनाये रख सके। इसलिए वह चाहता था कि सब लोग शासक सभा की वक्तृताओं को सुना करें और अभियोगों में पंचायत पर बैठा करें। दस वर्ष तक पेराक्लीज़ का ज़ोर रहा। अपनी योग्यता और वक्तृता-शक्ति से वह शासन करता था। प्रबंध की योग्यता और बुद्धिमत्ता की दृष्टि से उसे सबसे बड़ा यूनानी समझना चाहिए। जनता के अधिकारों के विषय में उसका वही विचार था जो कि इस युग में पाया जाता है। उसने लोगों के अन्दर कविता और कला के प्रति अनुराग का भाव उत्पन्न किया। इसमें एथन्ज़ का गौरव है। पुस्तकों के अभाव के कारण उसने लोगों को खेलों (नाटकों आदि) और सार्वजनिक पूजा के द्वारा शिक्षा दी; और उनके जीवन को सरस और उपयोगी बनाया। देवताओं के कार्य-कलाप और बड़ी बड़ी घटनाओं के चित्र बनाकर लटकाये जाते थे। सामान्य स्थानों पर नाटक हुआ करते थे। इससे लोगों में प्रकृति पर प्रेम और मनन की शक्ति उत्पन्न होती थी। ये सब बातें पेराक्लीज़ ने अपने गुरु अनेक्सेगोरस से सीखी थीं। अनेक्सेगोरस का जन्म एशिया कोचक में हुआ था।

पेराक्लीज़ की यह धारणा थी कि शीघ्र ही अथवा कुछ काल के उपरान्त स्पार्टा के साथ युद्ध होगा। इसलिए भी वह एथन्ज़ को मज़बूत करना चाहता था। स्पार्टा अभी तक एक गाँव ही के रूप में रहा।

स्पार्टा से झगड़ा

जनता का जीवन एक सैनिक जीवन था। न उनमें कोई शिक्षा थी और न उनमें कोई परिवर्तन उत्पन्न हुआ। सन् ४६२ ईसा पूर्व में स्पार्टा में एक भूकम्प हुआ और वहाँ की प्रजा बिगड़ बैठी। स्पार्टावालों ने एथन्ज़ से सहायता की याचना की। सहायता भेजी गई। परन्तु उन पर सन्देह करके स्पार्टावालों ने उनको वापस कर दिया। इस पर एथन्ज़ के लोग बहुत अप्रसन्न हुए।

कायमन का दल निर्बल हो गया। सारी शक्ति पेराक्लीज़ के हाथ में आ गई। स्पार्टा से मित्रता गाँठ कर अर्गस से मैत्री कर ली गई। इस पर कारिन्थवालों ने एथन्ज़ पर आक्रमण कर दिया। एथन्ज़ की सेना इस समय मिस्र देश में ईरान के विरुद्ध लड़ रही थी। केवल बच्चों और बूढ़ों ने मिल कर कारिन्थ को पराजय दे दी।

एथन्ज़ और स्पार्टा की तरह थीबस भी एक संघ का नायक था। उसका एक नगर निकल कर एथन्ज़ के साथ मिल गया। स्पार्टा ने थीबस की सहायता के लिए सेना भेजी। आते हुए इस सेना ने एथन्ज़ पर आक्रमण

थीबस

किया। एक संग्राम हुआ परन्तु उनको एथन्ज़ में प्रवेश करने का

साहस न हुआ। इसके अनन्तर एथन्ज़ ने ४ मील लम्बी दो दीवारें, एक दूसरे से दो सौ गज़ के अन्तर पर, एथन्ज़ से पिर्स तक बना लीं। इससे उसका घेरा डालना असम्भव हो गया। एथन्ज़ की सेनाओं ने दो नगरों में प्रजातंत्र शासन स्थापित कर दिया और आप स्पार्टा से विद्रोह कर दिया। स्पार्टा ने उस कारण सन् ४४७ ई० पू० में एथन्ज़ पर आक्रमण कर दिया। पेराक्लीज़ ने स्पार्टा के नेता को घूस देकर तीस वर्ष के लिए संधि पर सहमत कर लिया। परन्तु पन्द्रह वर्ष के पश्चात् ही स्पार्टा का एथन्ज़ के साथ युद्ध आरम्भ हो गया। इसका कारण कारिन्थ और किरकरा का पारस्परिक कलह था। एथन्ज़ ने किरकरा की सहायता की, और स्पार्टा ने कारिन्थ की सहायता में युद्ध आरम्भ कर दिया। इस युद्ध में सब रियासतें एक या दूसरे पक्ष में सम्मिलित थीं। कभी कभी नगर में एक दल एक ओर होता था और दूसरा दूसरी ओर। स्पार्टावालों की स्थल-सेना प्रबल थी, और एथन्ज़ सागर-सेना में मज़बूत था। पेराक्लीज़ ने यह निर्णय किया कि वे स्थल की लड़ाई बिलकुल न लड़ें, और सब लोग एथन्ज़ में शरण लें। स्पार्टावाले दो वर्ष तक उनका शस्य नष्ट करते रहे। एथन्ज़ के दुर्भाग्य से वहाँ प्लेग फूट पड़ी। इसमें एथन्ज़ के बहुत से योग्य मनुष्यों की मृत्यु होगई। तत्पश्चात् एथन्ज़ में कोई योग्य नेता न रहा। लड़ाई भिन्न भिन्न स्थानों पर कभी एक के पक्ष में और कभी दूसरे के पक्ष में होती रही। एक

जगह स्पार्टा की सारी सेना घिर गई और उसे कैद कर लिया गया। इससे एथन्ज़ ने घमण्ड में आकर मैदानी लड़ाई शुरू कर दी। इससे युद्ध का प्रवाह एथन्ज़ के विरुद्ध बहने लगा। सन् ४२१ ई० पू० में एक बार संधि हुई। तीन वर्ष पीछे फिर संधि टूट गई। मीलोस नामक स्थान में लोगों के अधीनता स्वीकार न करने पर एथन्ज़वालों ने सारे पुरुषों की हत्या कर डाली, और स्त्रियों तथा बच्चों को दास बना लिया। न केवल यूनानी राज्यों में वरन् सिसली में यूनानी उपनिवेश, सेराक्यूज़, तक स्पार्टा और एथन्ज़ का युद्ध जारी हो गया। स्पार्टा ने एशिया कोचक में सेना भेज कर तीरवर्ती राज्यों को, एक दूसरे के पश्चात्, एथन्ज़ से विद्रोही बना दिया, और स्वयं ईरानी राजप्रतिनिधि से मैत्री कर ली। इसी प्रकार एथन्ज़ के भाग्य का नक्षत्र पीछे हटता गया। स्पार्टा ने एथन्ज़ पर सामुद्रिक आक्रमण भी आरम्भ कर दिया। स्पार्टा ने एथन्ज़ के विरुद्ध ईरानी सम्राट् की सहायता लेना भी स्वीकार कर लिया। एथन्ज़ को समुद्र से घेर लिया गया। समुद्र हाथ से निकल जाने से एथन्ज़ का भोजन बिलकुल बन्द हो गया। चार मास के घिराव के पश्चात् एथन्ज़ को अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। इसमें शर्त यह हुई कि एथन्ज़ अपना साम्राज्य त्याग दे और अपनी लम्बी दीवारों को गिरा दे। इस प्रकार २७ वर्ष के युद्ध के पश्चात् सन् ४०५ ई० पू० में एथन्ज़ का साम्राज्य और प्रतिष्ठा, एक भारी गृह-विद्रोह के कारण, मिट्टी में मिल गई।

इसके बाद एथन्ज़ में तीस टायरेण्टों का राज्य हुआ जिसमें बहुत सा अत्याचार और अंधेर मचा रहा। दो वर्ष के पश्चात् फिर जनता का राज्य हो गया। परन्तु इसके बाद एथन्ज़ के पुराने दिन फिर कभी लौट कर न आये। एथन्ज़ में उस समय तत्त्व-ज्ञान और अश्रद्धा बढ़ने लगी। उसी समय एथन्ज़ में वह बड़ा महात्मा उत्पन्न हुआ जिसे सच्चाई के बदले एथन्ज़वालों ने विष का प्याला पीने की आज्ञा दी। इस अधःपात के समय में सुकरात का नाम अंधकारमय गगनमण्डल में जाज्वल्यमान तारे के समान चमकता है।

स्पार्टा, थीबस और मकदूनिया

इस गृह-विद्रोह के अनन्तर स्पार्टा यूनान में सबसे प्रबलतम शक्ति बन गया। परन्तु स्पार्टा का प्राबल्य भी बहुत दिनों तक न टिका। स्पार्टा ने पहली बात तो यह की कि भिन्न भिन्न रियासतों में दस नागरिक और एक स्पार्टन शासक नियत किया। जिससे एक प्रकार का अल्पजनसत्ताक शासन प्रतिष्ठित हो गया। यह शासन बहुत बुरा था। इसलिए सब लोग स्पार्टा से घृणा करने लगे। दूसरे स्पार्टा ने ईरान को सहायता के लिए बुलाया था। यह भी उसके लिए बड़े अपयश का कारण बना। साईरस का बड़ा भाई ईरान में राजा बन गया। साईरस ने दस सहस्र यूनानी

स्पार्टा का प्राबल्य

सेना के साथ सिंहासन पर अधिकार कर लेने का निश्चय किया। इनको बाबल के समीप एक लड़ाई लड़नी पड़ी। इसमें साईरस मारा गया और यवन-सेना को पीछे लौटना पड़ा। इसे "दस सहस्र का प्रत्यागमन" कहते हैं। स्पार्टा को इस बात से बड़ी लज्जा हुई कि उसे एशिया-कोचक के यूनानी नगर ईरान के सिपुर्द कर दिये हैं। इस कलङ्क को धोने के लिए अब उन्होंने ईरान से युद्ध आरम्भ कर दिया। ईरानियों ने एक बेड़ा तैयार करके एथन्ज़वासी एक व्यक्ति, कोनिन को ही उसका सेनापति बनाया। कोनिन ने स्पार्टावालों को बहुत बुरी तरह हराया। और लौटने पर एथन्ज़ की लम्बी दीवार फिर से बनवाई। उसने साथ ही थीबस, कारिन्थ और एरियागास को स्पार्टा के विरुद्ध कर दिया। इसलिए स्पार्टावालों ने सन् ३८७ ई० पू० में ईरान के सम्राट् से एक बड़ी अपमानजनक संधि की। उसने एशिया-कोचक के समस्त नगर छोड़ दिये और ईरान-सम्राट् को यह अधिकार भी दे दिया कि वह सब यूनानी रजवाड़ों को संधि करने का आदेश दे; मानो वे सब उसकी प्रजा थे।

थीबस का वैमनस्य स्पार्टा के विरुद्ध बढ़ता ही गया। उसने एथन्ज़ के साथ मिलकर ७४ नगरों का एक संघ बना लिया। इसका उद्देश्य था कि वह स्पार्टा के स्थान में अपने आप को सरदार बना ले। इस पर एथन्ज़ भी थीबस से द्वेष करने लगा। उसने स्पार्टा से अलग

थीबस का संघ

संधि कर ली। स्पार्टा ने थीबस पर आक्रमण कर दिया; परन्तु थीबस के सेनापति ईपेमीनाण्डस ने स्पार्टा को ऐसा परास्त किया कि उसकी शक्ति का अन्त हो गया। स्पार्टा के जीते हुए नगरों को थीबस ने स्वाधीन करा दिया, परन्तु एक दूसरे युद्ध में उसका सेनापति मारा गया। थीबस की शक्ति कम होने लगी। इसी प्रकार यूनानी रजवाड़ों ने एक दूसरे के विरुद्ध लड़-भिड़ कर अपनी शक्ति नष्ट कर डाली। अन्त में वे एक ऐसे राज्य के अधीन हो गये जिसने अभी तक यूनान के इतिहास में कोई भाग न लिया था।

मकदूनिया

मकदूनिया के लोग देहात में रहा करते थे। वे एक राजा के शासन के नीचे थे। वे खेल और आखेट में अपना समय व्यतीत करते थे। उनके यहाँ किसी प्रकार की कला नहीं पाई जाती थी। यूनानी लोग उनको अपने से पृथक् समझते थे। उनका पिता फिलिप था। वह तीन बरस तक थीबस में बंदी रहा। वहाँ उसने सेना को सुव्यवस्थित करने, अपने को दृढ़ बनाने और शत्रु को निर्बल करने की रीतियाँ सीख लीं। उसकी प्रजा बड़ी आज्ञाकारी और वीर थी। उसने उन्हें एक बड़ी मज़बूत सेना का रूप दे कर यूनानी रजवाड़ों में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया। थ्रेस का बहुत बड़ा भाग विजय करके उसने अपने नाम पर वहाँ एक नगर बसाया। इसी बीच में थीबस ने फोकिस नामक एक रजवाड़े से झगड़ा आरम्भ कर दिया। एथन्ज़ और स्पार्टा थीबस के

विरुद्ध हो गये। इस पर थेस्ली के अमीरों ने फिलिप को सहायतार्थ बुलाया और फिलिप ने सन् ३५१ ई० पू० में थस्ली पर अधिकार कर लिया।

इन दिनों एथन्ज़ में एक महापुरुष विद्यमान था। उसका नाम डीमास्थनीज़ था। वह एक बहुत बड़ा वाग्मी और प्रभावशाली वक्ता था। एथन्ज़ के लोग तमाशों और खेलों के शौक़ीन हो गये थे। वे लड़ाई से घबराते थे इसलिए वेतनभोगी सिपाहियों द्वारा लड़ाई करना चाहते थे। डीमास्थनीज़ ही एक ऐसा मनुष्य था जो फिलिप के संकल्पों को समझता था। उसने अपनी वक्तृताओं से एथन्ज़वालों को जगाना चाहा; और आनेवाले भय से उनको सावधान किया। संसार के नामी वक्ताओं में इसका स्थान सबसे पहले है। उसने अपनी पहली वक्तृता फिलिप के विरुद्ध दी थी। यह "फिलिपिक" कहलाती है। डीमास्थनीज़ के कहने पर एथन्ज़वाले फिलिप के मुक़ाबले के लिए उद्यत हो गये। फिलिप शनैः शनैः सब नगर ले रहा था। उसने सब रियासतों में बड़ा विध्वंस मचाया। रजवाड़ों में बहुत फूट थी। डीमास्थनीज़ स्वयं वहाँ गया और उनको समझाया कि फिलिप समस्त यूनान का शत्रु है। यदि वह विजय पा लेगा तो सबको दास बना लेगा। अतएव सब यूनानियों को मिल कर अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करनी चाहिए। स्वतन्त्रता प्रत्येक यूनानी की जन्मसिद्ध सम्पत्ति

डीमास्थनीज़

है। हम सबको इस भयङ्कर शत्रु के सामने एक हो जाना चाहिए, क्योंकि वह हमें दास बनाना चाहता है। फिलिप उस समय रजवाड़ों पर आक्रमण कर रहा था। एथन्ज़ ने अपनी सेना भेजी। फिलिप को घिराव उठाना पड़ा। सन् ३३८ ई० पू० में फिलिप ने पेलापोनेसिस नामक एक नगर पर अधिकार कर लिया। इससे एथन्ज़ में चारों ओर भय फैल गया। डीमास्थनीज़ ने उनको समझाया कि थीबस के साथ मिल कर उन्हें उसका सामना करना चाहिए। परन्तु फिलिप ने उन सबको ख़ूब पराजित किया। इसलिए कारिन्थ में सारे यूनान की एक महा-सभा बुलाई गई। इस सभा में ईरान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। फिलिप अपनी पुत्री के विवाह में निरत था, इसी बीच में एक अमीर ने उसकी हत्या कर डाली।

फिलिप का पुत्र सिकन्दर

फिलिप की मृत्यु पर उसका पुत्र सिकन्दर बीस वर्ष की आयु में सिंहासन पर बैठा। वह चटपट कारिन्थ में पहुँचा जिससे लोगों को उसकी शक्ति का पूरा पूरा बोध हो जाय। उसने पहले डेन्यूब को लाँघ कर कुछ वंशों को जीतने की चेष्टा की। पर यह बात किसी ने उड़ा दी कि सिकन्दर मारा गया है। इसलिए थीबसवालों ने उसकी सेना पर आक्रमण कर दिया। सिकन्दर चटपट वहाँ पहुँचा, सारे नगर को गिरा दिया और नगर-वालों को दासता में बेच दिया। सिकन्दर के सिपाही बिलकुल ग्रामीण थे। उनको क़ानून अथवा स्वतन्त्रता की कुछ भी ख़बर

न थी। उनके लिए उनका राजा ही सब कुछ था। सिकन्दर एक असाधारण योग्यता का मनुष्य था। उसके सिपाही उस पर प्राण देते थे। सन् ३३४ ई० पू० में हेलस पुआइण्ट को लाँघ कर उसने एशिया में पाँव रक्खा। ईरान का राजा दारा ने तो पहले उसका मुक़ाबला किया। परन्तु फिर कायरता दिखा कर भाग गया। उसका कुटुम्ब सिकन्दर के हाथ पड़ गया। इसके पश्चात् सिकन्दर ने फ़ीनीशिया की ओर बढ़ कर दमिश्क पर अधिकार कर लिया। टायर नामक नगर आधे मील तक सागर में था। उसने एक पुल बनाकर उस पर आक्रमण किया और सात मास के पश्चात् विजय लाभ की। वहाँ से वह मिस्र पहुँचा। और वहां मिस्र के देवताओं की पूजा आरम्भ कर दी। इससे वहाँ के लोग उससे प्रसन्न हो गये। नील नदी के तट पर उसने सिकन्दरिया नगरी बसाई। मिस्र से लौट कर दजला-फ़रात होता हुआ अरबेला के स्थान पर उसने दारा को एक बार फिर परास्त किया और वहाँ से बाबल होता हुआ सूसा में पहुँचा। फिर केस्पियन समुद्र को लाँघ कर अफ़ग़ा-निस्तान की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में हरात और कन्धार की नींव डाली और समरकन्द पर विजय लाभ करता हुआ भारत को चला। झेलम पर उसने पोरस पर विजय पाई। व्यास नदी पर उसकी सेना ने आगे जाने से इनकार कर दिया और उसे लौटना पड़ा। बाबल लौटने पर सन् ३२३ ई० पू० में ३२ वर्ष की आयु में उसका देहान्त होगया। उसकी

मृत्यु के पश्चात् उसके साम्राज्य के तीन भाग हो गये। एक एशिया में था, जिसमें उसके सेनापति सिल्यूकस की सन्तान राज्य करती रही। शनैः शनैः सब भागों ने उससे विद्रोह कर दिया। केवल एक असीरिया रह गया। इसे भी सन् ६१ ई० पू० में रोम ने विजय कर लिया। दूसरा मिस्र था, जहाँ सिकन्दरिया नाम का बड़ा नगर था। इसमें एक बड़ा विश्व-विद्यालय और पुस्तकालय भी था। यहीं उक्लीदस और टाल्मो हुए। मिस्र में उसके सेनापति टाल्मी की सन्तान राज्य करती रही। इसकी अन्तिम महारानी क्लियोपेटरा थी। किन्तु मिस्र भी सन् ३० ई० पू० में रोम का प्रान्त बन गया। तीसरा मकदूनिया था, जिसमें इसके सेनापदि एण्टीगानेस की सन्तान राज्य करती थी। फिलिप नामक इसके एक राजा ने रोम के विरुद्ध कारथेज की सहायता की। इस पर रोमवालों ने चढ़ाई कर के इसे स्वतंत्र कर दिया। सब यूनानी रजवाड़े को भिन्न भिन्न संघ बना कर मकदूनिया के विरुद्ध हो गये। एक संघ ने स्पार्टा के विरुद्ध मकदूनिया से सहायता माँगी। इस पर स्पार्टा का विध्वंस कर दिया गया। ये संघ परस्पर झगड़ने और रोम से सहायता माँगने लगे। फल यह हुआ कि सन् १४९ ई० पू० में रोम ने समस्त यूनान को अपना प्रान्त बना लिया। यूनानी रजवाड़ों का परस्पर मिल कर काम न करना ही इनके विनाश का हेतु हुआ।

रोम

रोम-इतिहास का सबसे बड़ा महत्त्व इस बात में है कि यह पुराने और नये संसार को मिलानेवाली शृङ्खला है। यह उस जलाशय के सदृश है जिसमें पहले भिन्न भिन्न झरनों का पानी आकर संचित होता है और फिर उसमें से अनेक शाखाओं के रूप में निकल कर बाहर बँट जाता है। पहले समस्त प्राचीन जातियाँ रोमन-साम्राज्य में आत्मसात् हो गईं और फिर वही उससे नवीन जातियों के रूप में प्रकट हुईं।

रोम के इतिहास का महत्त्व

योरुप की जातियाँ, यद्यपि उनकी भाषा, रीति-नीति और क़ानून में भिन्नता पाई जाती है, एक दूसरे से बहुत सादृश्य रखती हैं। योरुप का इतिहास इस बात को भी स्पष्ट करता है कि किस प्रकार योरुप की सभी जातियों ने अपने विचार और क़ानून आदि रोम से ही लिये हैं, और किस प्रकार किसी के कम और किसी के अधिक प्रभावाधीन होने से उनमें कितनी भिन्नता उत्पन्न हुई है।

सारांश यह कि रोम का इतिहास हमें यह बताता है कि उसने किस प्रकार प्राचीन जगत् की जातियों को विजय कर किस प्रकार उन पर शासन किया, और किस प्रकार उनको क़ानून आदि सिखा कर अपने जैसा बनाया था। सबसे पहले हमें यह देखना होगा कि रोम क्योंकर सबको विजय करने

योग्य बना, किस साधन से उसने सब पर विजय पाई, किस प्रकार उन्हें अपने नीचे रक्खा और उसके अधःपात के क्या कारण थे।

इटली के उत्तर में गालूज़, एटरास्कन, जिनका नाम अभी तक टस्कनी में पाया जाता है और इटालियन आदि अनेक वंश रहते थे। इटालियन-वंश की एक शाखा लैटिन कहलाती थी। यह टाइबर नदी के दक्षिण में रहती थी। ये लोग गाँव में रहा करते थे और अपने गाँव की सभी बातों का निपटारा आप किया करते थे। इन लोगों ने एटरस्कन-वंश से अपनी रक्षा करने के उद्देश से टाइबर नदी पर एक नगर बसाया। नदी के व्यापार के कारण इस नगर का शीघ्र ही बढ़ना आरम्भ हो गया और इसी का नाम रोम पड़ा। रोमवाले अपने राजा को आप चुना करते थे। शनैः शनैः रोम की राजनैतिक-शक्ति बढ़ने लगी और वह कई ग्रामों का मुखिया बन गया।

इटली के वंश

रोम नदी के मुहाने से १५ मील की दूरी पर एक पहाड़ी पर बसना आरम्भ हुआ था। उसके गिर्द एक दीवार थी। शनैः शनैः लोग दूसरी पहाड़ियों पर भी बसने लगे। लगभग ७५० ई० पू० से आरम्भ होकर १५० वर्ष के भीतर यह नगर पर्वतों तक फैल गया। इसकी परिधि ५ मील हो गई। सर्वसाधारण खेती करते थे। कुछ व्यापारी थे जो नावों के द्वारा नदी में आते-जाते थे। रोम की

रोम और उसका शासन

शासनपद्धति बड़ी सीधी-सादी थी। कुटुम्ब का वृद्ध मनुष्य शासक होता था। जब कुटुम्बों की संख्या बढ़ गई तब ये सब वृद्ध मनुष्य एक सभा में इकट्ठे होने लगे। इसे वृद्ध-सभा या 'सेनेट' कहते थे। इसका प्रधान राजा कहलाता था। इसके बाद कुछ लोग बाहर से आकर भी रोम में बस गये। इनकी ओर से कोई वृद्ध मनुष्य सभा में न था। ये लोग सर्वसाधारण कहलाते थे। इस प्रकार रोम एक धनाढ्यवंशों का शासन बन गया, जिसमें सर्वसाधारण के साथ अच्छा बर्ताव नहीं होता था। यही बात रोम के परस्पर-झगड़े का मूल कारण हुई। रोम के कई राजाओं ने लोगों की अवस्था को सुधारने की चेष्टा की। परन्तु पुराने धनिक परिवार उनके विरुद्ध रहते थे। यहाँ तक टारकिनस नामक एक व्यक्ति ने अपने को 'टायरेण्ट' बना लिया। इसका नाम घमण्डी पड़ गया। जनता इससे तंग आगई। इसलिए सन् ५०९ ईसा पूर्व में राजा को हटा कर उसके स्थान में एक मनुष्य वर्ष भर के लिए एकाधिपति (डिक्टेटर) नियत किया गया। कुछ काल के उपरान्त उसे बहुत शक्तिशाली समझ कर दो और अधिकारी नियत किये गये। इनको कौंसल कहते थे। डिक्टेटर का पद केवल भय के लिए रक्खा गया था। कौंसल ही सेनेट के प्रधान होते थे और सेना की कमान किया करते थे। उनके समय में समस्त क़ानून सभा की स्वीकृति से बनाये जाते थे। उससे उसकी शक्ति बहुत बढ़ गई थी।

इसी बीच में रोम को अपने पड़ोसी वंशों से बहुत से युद्ध करने पड़े। सर्वसाधारण को न केवल अवैतनिक रूप से सेना में भरती ही होना पड़ता था वरन् कर भी देने पड़ते थे। इससे किसानों की भूमि नष्ट हो गई। उनके ऋण बढ़ गये। ऋण का क़ानून प्राचीनकाल में बहुत कड़ा था। ऋणदाता अपने ऋणियों को दास बनाकर बेच सकता था। धनिकों के घरों के साथ कारावास होते थे। वहाँ ऋणियों को क़ैद रक्खा जाता था। सर्वसाधारण धनिकों के इस अत्याचार से बहुत तंग आ गये थे, अतएव अधिक कष्ट सहन न करके सन् ४९४ ईसा पूर्व में उन्होंने नगर छोड़ देने का संकल्प कर लिया। वे एक दूसरी पहाड़ी पर जाकर बस गये। तब धनियों को सब काम अपने ही हाथ से करने पड़े। उनकी विपत्ति इतनी बढ़ गई कि उन्होंने अग्रिप्पा नामक एक व्यक्ति को उन लोगों को लौटा लाने के लिए भेजा। उसने उन लोगों को 'पेट और शेष अवयवों' की कहानी सुनाई, कि जिस प्रकार हाथों और पैरों ने पेट के साथ द्वेष करके काम करना छोड़ दिया था, परन्तु जब पेट को कोई भोजन न मिला, तब हाथ-पैर भी सूखने लग गये। उस कहानी का पूर्ण प्रभाव हुआ। सर्वसाधारण ने इस शर्त पर वापस आना स्वीकार कर लिया कि उनको अपनी रक्षा के लिए विशेष मजिस्ट्रेट दिये जायँ। इन मजिस्ट्रेटों को "ट्रीब्यून" कहते थे। ट्रीब्यून के घर के द्वार दिन-रात खुले रहते थे। उनके शरीर

सर्वसाधारण के कष्ट

पवित्र समझे जाते थे। वे किसी भी व्यक्ति को अभियोग से बचा सकते थे। इस प्रकार रोम में एक राज्य की जगह दो राज्य हो गये। सन् ५०० ई० पू० से सन् ३०० ई० पू० तक इन दोनों दलों में आपस में प्रतिद्वन्द्विता होती रही।

धनियों के दल के वृद्ध 'वृद्ध-सभा' में जाया करते थे। वे "पॅट-रीशियन" कहलाते थे। सर्वसाधारण दल का नाम "प्लेब" था। उनका आन्दोलन सन् ४९४ ई० पू० से आरम्भ होकर दो सौ वर्ष तक रहा। पहले पचास वर्ष में "प्लेब" अर्थात् सर्वसाधारण ने अपने दुःखों को बहुत कुछ दूर किया और दूसरे डेढ़ सौ वर्ष के अन्दर उन्होंने शासन में पूर्ण भाग प्राप्त कर लिया।

दोनों दलों की धौड़-धूप

यह दौड़-धूप बड़े संयम के साथ होती रही। दोनों दल एक दूसरे को सह-नागरिक समझते थे। उनके बीच कभी रक्तपात या गृह-विद्रोह नहीं हुआ। जब दूसरों से सामना पड़ता था तब वे अपने झगड़े बंद कर देते थे। सर्वसाधारण धनिकों का सम्मान करते थे। वे समझते थे कि राज्य के कल्याण के लिए वे जितना अधिक प्रयत्न करेंगे, उतने ही अधिक वे अधिकारों के पात्र बनेंगे। धनी लोग भी जब उनका अधिक मुक़ाबिला न कर सकते थे, तब मान जाते थे। रोम की यह दौड़-धूप अद्वितीय रही। इससे रोमवालों ने नियम और न्याय के अनुसार चलना सीखा। प्रत्येक जन-समूह और व्यक्ति के अन्दर अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्व को समझने

की क्षमता उत्पन्न हुई। उन्होंने अपने राज्य की ओर एक-सा प्रेम रखते हुए उसके प्रति अपना कर्तव्य-पालन करना सीखा। इससे उन्हें आज्ञाकारिता, आत्म-संयम और दीर्घोद्योग की शिक्षा मिली। इससे उन्हें सामाजिक और सामूहिक बुद्धिसत्ता प्राप्त हुई। इस राजनैतिक बुद्धिमत्ता ने उन्हें यह भी सिखलाया कि किस अवसर पर और किस प्रकार पुरानी संस्थाओं में परिवर्तन करना चाहिए जिससे सामाजिक जीवन में विघ्न उपस्थित न हो। इन्हीं सब गुणों को प्राप्त करते हुए उनके अन्दर वह योग्यता उत्पन्न हुई जिससे रोमवाले सारे संसार को विजय करने में समर्थ हुए।

भूमि का नया क़ानून

सन् ४८६ ई० पू० में 'केसीअस' ने, जो कि कौंसल रह चुका था यह प्रस्ताव किया कि सार्वजनिक भूमि निर्धनों में बाँट दी जाय। सार्वजनिक भूमि वह भूमि थी जो युद्ध-काल में प्राप्त की जाती थी। इसका कुछ भाग नागरिकों को दिया जाता था और कुछ मन्दिरों को, शेष भूमि राज्य की हो जाती थी अर्थात् धनी लोग इसका उपयोग करते थे। केसीअस का प्रस्ताव था कि यह भूमि सर्वसाधारण को दी जाय जिससे वे उस पर अपने पशु चरा सकें। यह क़ानून पास हो गया परन्तु इसको कार्यरूप में न लाया जा सका। धनिक लोग इसके घोर विरोधी थे। उन्होंने केसीअस पर यह दोष लगाया कि वह 'टायरेण्ट' बनना चाहता है और उसकी हत्या करा दी गई।

निर्धनों का कष्ट बढ़ता गया पर ट्रीब्यून का सम्मान अधिक हो गया। वे अपने-अपने वंशों को एकत्र करके सब मामलों पर विचार किया करते थे परन्तु उनके प्रस्ताव का कुछ मूल्य न था। धनी लोग उनके उत्सवों को बिगाड़ना चाहते थे। इधर उनके "कौंसल" (वकील) सेनेट में अपना अधिवेशन किया करते और क़ानून पास करते थे। दूसरी ओर ट्रीब्यून उन लोगों को बचाते थे जो इन क़ानूनों को तोड़ते थे। इस प्रकार रोम में दो स्टेट या राज्य साथ-साथ चलने लगे।

सर्वसाधारण का पग आगे

सन् ४५१ से सन् ३६१ ई० पू० तक सर्वसाधारण यह यत्न करते रहे कि कौंसल और ट्रीब्यून दोनों को हटा कर उनकी जगह ऐसे नये अधिकारी नियत करने चाहिए जो सबकी ओर से सामान्य हों। उनका काम यह हो कि वे क़ानून को मालूम करके 'फ़ोरम' में लटका दें। दस वर्ष पीछे यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया और दस अधिकारी नियत किये गये। इससे ग़रीबों को बड़ी प्रसन्नता हुई। परन्तु इन अधिकारियों में क्लाडियस नामक एक मनुष्य बड़ा अभिमानी था। उसने एक पुराने सिपाही की लड़की को अपनी नौकरी में लेना चाहा। लड़की के पिता ने लड़की को अलग ले जाकर यह कहते हुए कि तुमको बचाने का यही एक उपाय है—उसके हृदय में कटार भोंक दी। इससे लोगों में इतना जोश फैला कि उन्होंने

इन्हों अधिकारियों को हटा कर फिर से कौंसल और ट्रीब्यून चुन लिये।

निर्धनों को क़ानून का पता लग गया। इसलिए अब वे सभी पदों को ले लेने का संकल्प करने लगे। उनकी सबसे बड़ी लालसा 'कौंसल' पद प्राप्त करने की थी। धनी लोग इसके विरोधी थे। परन्तु जब उन्होंने देखा कि हम रोक नहीं सकते तब उन्होंने एक नया पद सेंसर (मनुष्य-गणना का अधिकारी) नियत करके कौंसल का पद भी सर्वसाधारण के लिए खोल दिया। इस नये अधिकारी का काम लोगों के चाल-चलन की देख-रेख करना था। इसका उद्देश्य कौंसल के अधिकार को कम करना था।

सर्वसाधारण की सफलता

रोम को उन दिनों बहुत से युद्ध करने पड़े। सर्वसाधारण इन लड़ाइयों में बड़ी वीरता से लड़ा करते थे जिससे घर में उनकी शक्ति बढ़ती जाय और वे अपने अभीष्ट को सिद्ध कर सकें। सन् ३७६ ई० पू० में लीसीनीअस नामक एक मनुष्य ने कौंसल का पद सर्वसाधारण के लिए लेने का संकल्प किया। उसने निम्न लिखित तीन क़ानून उपस्थित किये, जो निर्धनों के लिए उपयोगी थे:—

(१) निर्धनों को ऋण चुकाने में सहायता करनी चाहिए,

(२) ऋण-मुक्त हो जाने पर उनको सार्वजनिक भूमि दी जानी चाहिए। भूमि का केवल कुछ भाग ही धनियों के पशु चराने के लिए अलग रखना चाहिए।

(३) एक कौंसल सदैव 'प्लेब' (सर्वसाधारण) में से हो।

दस वर्ष तक आन्दोलन होता रहा। प्रति वर्ष लीसीनियस और उसका एक साथी ट्रीब्यून नियत होते रहे। पाँच वर्ष तक उन्होंने कौंसल और मजिस्ट्रेट का चुनाव रोक रक्खा। वे यह कहते रहे कि हम प्रत्येक व्यक्ति को मजिस्ट्रेट की आज्ञा से बचा लेंगे। अन्त में सन् ३६६ ई० पू० में सर्वसाधारण में से एक कौंसल चुना गया। इसे सर्वसाधारण की विजय समझनी चाहिए। इसके पश्चात् वे इन क़ानूनों पर आचरण कराने का यत्न करने लगे। यहाँ तक कि सन् ३०० ई० पू० में रोम के सब मनुष्य समान अधिकारवाले हो गये। यह आन्दोलन इस दृष्टि से बड़ा विचित्र था कि दोनों दल एक ही नगर में रहते थे, गलियों में एक दूसरे से मिलते थे और कभी कोई दंगा नहीं हुआ। सर्वसाधारण क़ानून को बदलना चाहते थे परन्तु साथ ही वे उसको मानते भी थे। संसार में कोई एक दल ऐसा संयमी और चतुर नहीं हुआ जिसने अपने झगड़े इस प्रकार निपटाये हों।

रोम कैसे इटली का स्वामी बन गया

जिस समय रोम में यह आन्दोलन हो रहा था उस समय रोम को अपने पड़ोसी वंशों से भी लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। इन लड़ाइयों की दशा कतिपय कहानियों से विदित होती है।

रोमन लोगों की पड़ोसियों से लड़ाइयाँ

वालशियन-वंश के विरुद्ध लड़ाई करने में मार्सियस की वीरता से रोमवालों ने केरोली उपनगर पर अधिकार प्राप्त किया। इससे उसका नाम केरियोलेनस पड़ गया। एक बार रोम में दुर्भिक्ष पड़ा। उस समय केरियोलेनस ने कहा कि जब तक दरिद्र लोग धनवानों की आज्ञा मानने पर उद्यत न हो जायँ तब तक उनको अन्न मत दो। उसके विरुद्ध ट्रीब्यून के पास अभियोग चलाया गया। इससे वह वालशियनों के यहाँ भाग गया और उनकी सेना की सहायता से उसने रोम पर आक्रमण किया। रोम की दशा बड़ी भयावह थी। रोमवालों ने पहले तो सभा के वृद्ध सदस्य उसके पास भेजे, परन्तु जब उसने उनकी कुछ न सुनी, तब फिर पुजारियों को भेजा। फिर उसकी माता और स्त्री उसके पास भेजी गईं तब वह उठ कर उनसे मिलने के लिए आया। माता ने उससे पूछा—पहले यह बताओ कि तुम हमारे मित्र हो या शत्रु? उनके कहने पर वह रोम को छोड़ने को तैयार हो गया। उसने केवल इतना कहा कि तुमने अपने नगर को तो बचाया है परन्तु अपने पुत्र के अपमान की परवाह नहीं की।

एक्यूयन नामक एक दूसरे वंश के साथ युद्ध करने में रोमन कौंसल और उसकी सारी सेना एक स्थान में घिर गई। सेनेट ने लूसियस नामक एक व्यक्ति को डिक्टेटर (एकाधिपति) नियत किया। जब सेनेट के दूत उसके पास संदेश लेकर गये तब वह बिना लबादा के हल जोत रहा था। अपनी

स्त्री से लबादा मँगा कर उसने दूतों से सेनेट का आदेश लिया और लड़ने के योग्य जितने मनुष्य थे उन सबको इकट्ठा करके प्रत्येक के हाथ में बारह-बारह छड़ियाँ दीं, फिर अपने शत्रु की सेना को जाकर घेर लिया। वे इतने ही से डर गये और अधीन हो गये। एट्रस्कन के विरुद्ध लड़ाई लड़ते हुए उनके सेनापति केलियस ने वेआई नामक नगर पर दस वर्ष के घेरे के पश्चात् विजय प्राप्त की। जब उसने फ्लेराई नामक एक दूसरे नगर का घेरा डाला, तब एक अध्यापक अपने लड़कों को लेकर उसके पास आया और कहने लगा कि आप इन लड़कों को अपने अधिकार में करके इनके माता-पिता को अधीनता स्वीकार करने पर बाध्य कर सकते हैं। रोमन-सेनापति इस अध्यापक पर बहुत क्रोधित हुआ। उसने उसके हाथ पीठ के पीछे बँधवा कर लड़कों से कहा कि इसे कोड़े लगाते हुए वापस ले जाओ। इससे नगर के लोग इतने प्रसन्न हुए कि वे स्वयमेव उसके अधीन हो गये।

सन् ३०८ ई० पू० में गॉल-वंश ने रोम पर चढ़ाई कर दी। सब लोग भाग गये। कतिपय बूढ़े सदस्य सेनेट-भवन में बैठे रहे। एक गॉल ने एक बूढ़े सदस्य की डाढ़ी पकड़ कर हिलाई। इस पर उसने अपने डण्डे से उसे मारा। तब गॉल सिपाहियों ने सबका वध कर डाला और नगर में आग लगा दी। रोम के जो कुछ वृत्तान्त पुजारियों ने लिख कर मन्दिरों में रक्खे थे वे सब नष्ट हो गये। उनके चले जाने के पश्चात्

रोमवाले फिर आये। उन्होंने नगर को दुबारा बसाया। इससे दरिद्रों पर बड़ा बोझ पड़ा। और उनका ऋण बहुत बढ़ गया।

छोटे छोटे पड़ोसी वंशों को जीत चुकने पर रोम को एक प्रबल वंश से मुक़ाबला करना पड़ा। उस वंश को सेमनाइट कहते थे। उसके साथ पचास वर्ष तक युद्ध होता रहा और तीन बड़ी लड़ाइयाँ हुईं। वे लोग बड़े वीर और कड़े थे। उन्होंने यूनानी

सेमनाइट-वंश से युद्ध

बस्तियों को बहुत तंग कर रक्खा था। एक नगर ने रोमवालों से सहायता माँगी। रोम लड़ाई पर उद्यत हो गया। परन्तु दोनों ओर संधि की इच्छा थी इसलिए लड़ाई शीघ्र ही समाप्त हो गई। तत्पश्चात् रोमवालों को लैटिन-वंश से लड़ाई लड़नी पड़ी, क्योंकि वे समान-अधिकार माँगते थे। एक लड़ाई में रोमन सेनापति को यह बतलाया गया कि जीत उस पक्ष की होगी जिसका सेनापति मारा जायगा। इस पर सेनापति डीसीअस लबादा पहनकर रण में घुस गया और वहाँ मारा गया। लड़ाई समाप्त होने के बाद रोमवालों ने उनको कुछ अधिकार दे दिये और उनके साथ प्रतिज्ञा की कि राज-भक्त बने रहने पर और भी अधिकार दिये जायँगे। साथ ही उनका पारस्परिक व्यापार बंद करके उनको केवल रोम के ही साथ व्यापार करने की आज्ञा दी, जिससे वे रोम ही को अपना बड़ा समझें। सन् ३२५ ई० पू० में (सन् ३२७ ई० पू० से सन् ३०५ ई० पू० तक) दूसरा सेमनाइट युद्ध आरम्भ हुआ। इसमें

सेमनाइट सेनापति पोयँटियस ने पीछे हटते-हटते रोमन-सेना को एक जगह घेर लिया और अधीनता स्वीकार करने पर उसे छोड़ा। रोम के अधिवासियों ने इस संधि को अस्वीकृत कर दिया और उन कौंसलों को, जिन्होंने संधि की थी; पोयँटियस के पास भेज दिया। पोयँटियस ने कहा कि यदि संधि स्वीकार नहीं है तो आपकी सारी सेना को उसी प्रकार दर्रे में वापस जाना चाहिए। परन्तु सेनेट ने ऐसा करने से इनकार कर दिया और यह कहा कि जिन कौंसलों ने भूल की थी वे वापस भेज दिये गये। तब संधि हो गई। फिर चार वर्ष पश्चात्, सन् ३०० ई० पू० में, कई अन्य वंशों ने सेमनाइट के साथ मिलकर रोम पर आक्रमण किया। रोम ने सबको हरा दिया और पोयँटियस को पकड़ कर उसका वध कर डाला।

सेमनाइट-युद्ध के पश्चात् यह निश्चित हो गया कि इटली में रोम सबसे प्रबल शक्ति है। केवल इटली के दक्षिण में कतिपय

यूनानी उपनिवेशों के साथ लड़ाई

शक्तिशाली नगर थे। उनमें एक टरेंटम था। वह रोम की बढ़ती हुई शक्ति से द्वेष करता था। एक नाट्यशाला में से वहाँवालों ने कुछ रोमन-जहाज़ देखे और उन पर आक्रमण कर दिया। अतएव सन् २८२ ई० पू० में रोम का उनके साथ भी युद्ध आरम्भ हुआ। उन्होंने एपिरस के राजा पिरस को सहायतार्थ बुलाया। एक लड़ाई में पिरस को हाथियों की सहायता से

विजय प्राप्त हुई। किन्तु उसने कहा कि यदि मुझे और थोड़ी सी ऐसी ही विजय प्राप्त हों, तो मेरा सर्वनाश हो जायगा। उसने संधि की इच्छा प्रकट की। परन्तु एक अंधा सेनेटर सभा में गया। उसने भाषण देते हुए कहा कि जब तक शत्रु इटली की भूमि में मौजूद है उसके साथ संधि नहीं होनी चाहिए। इस पर पिरस ने कहा कि ऐसे नगर के विरुद्ध लड़ना व्यर्थ है जिसकी राजसभा इतने राजाओं से बनी हो। दो वर्ष तक वह और भी लड़ता रहा पर हार खाकर लौट आया। इससे रोम का दक्षिण पर भी अधिकार हो गया।

इटली की शासन-पद्धति

रोम के अधिवासी सब नगरों पर शासन करते थे, इसलिए भिन्न-भिन्न नगरों के लोग नागरिक अधिकार प्राप्त करने की लालसा रखते थे। केवल लैटिन-वंश ही ऐसा था जिसको कुछ अधिकार मिले थे। इसके बाद इटालियन-वंश था जो अपने अपने नगरों पर शासन करता था। परन्तु उन नगरों को रोम की आज्ञा माननी पड़ती थी। रोमन लोगों का चरित्र उनकी वीरता और ईमानदारी थी। इसी से उन्होंने अपना राज्य स्थापित किया था। उनके सेनापति बड़े सीधे-सादे थे। उनके पास कुछ धन नहीं होता था। सेमनाइट-युद्ध के समय सेनापति मेलीनस के पास सोने का एक पदक भेजा गया। वह उस समय अपना खाना पका रहा था। खाने के नाम केवल शलजम थे। उसके पास काठ की एक रकाबी थी। उसने यह कह कर

उस पदक को लौटा दिया कि सोना रखने की अपेक्षा उन मनुष्यों पर शासन करना अधिक महत्तायुक्त है जो कि सोना रखते हैं।

रोम के अधिवासी एक तो उपनिवेशों और दूसरे सड़कों के द्वारा अपना शासन स्थिर रखते थे। रोमन दूसरे स्थानों पर अपनी बस्तियाँ या उपनिवेश बसाते थे। भूमि के कुछ भाग पर वे अधिकार कर लेते थे और अपने नागरिकों को वहाँ आबाद होने के लिए भेज देते थे। ये लोग शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने में एक सेना का काम देते थे और साथ ही साथ खेती का काम भी करते थे। इनके अपने राज्य होते थे। इस प्रकार इटली में मानों जगह-जगह छोटे-छोटे रोम स्थापित हो गये।

शासन का दूसरा साधन रोम की सड़कें थीं। रोम से इटली में सभी दिशाओं की ओर सड़कें जाती थीं जिससे सुगमता से

सड़कें

रोम अपनी सेना सब जगह भेज सकता था। ये सड़कें मानो एक प्रकार की ज़ञ्जीरें थीं जो दूसरे नगरों को रोम से बाँधे हुई थीं। ये सड़कें अभी तक पाई जाती हैं।

फीनीसियन जाति के लोगों ने व्यापार के प्रयोजन से, अपनी जन्म-भूमि टायर और सेडान से निकल कर, स्थान-स्थान

कार्थेज के साथ युद्ध

पर अपनी बस्तियाँ बसाई थीं। उत्तरी अफ्रीका का पश्चिमी प्रान्त जीत करके रोम से सौ वर्ष पहले उन्होंने कार्थेज की नींव रक्खी थी। कार्थेजवाले और यूनानी बस्तियों के रहनेवाले

सिस्ली में एक दूसरे के साथ लड़ते रहते थे। कुछ इटैलियन लुटेरे वहाँ जाकर मसीना में बस गये। तब दोनों ने मिल कर उनको निकाल देना चाहा। उन्होंने रोम से सहायता माँगी। इससे उस युद्ध का आरम्भ हुआ जो प्यूनिक युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। रोमन लोगों के पास जहाज़ न थे। युद्ध में उन्हें जहाज़ बनाने की आवश्यकता का अनुभव हुआ। नमूने के लिए एक टूटा हुआ जहाज़ लेकर उन्होंने एक लड़ाकू बेड़ा तैयार किया। कार्थेजवाले वेतनभोगी सैनिकों की सेना पर भरोसा रखते थे, इसलिए वे हारने लगे। एक रोमन कौंसल आवेश में आकर अफ्रीका जा पहुँचा। उन्होंने सेना एकत्र करके उसको हरा दिया और क़ैद कर लिया। इतने में रोमन-सिपाहियों ने सिस्ली में कुछ कार्थेजवाले क़ैद कर लिये। कार्थेजवालों ने रेगूलस कौंसल को रोम भेजा जिससे उसके साथ उनके क़ैदियों का विनिमय हो जाय। किन्तु उसने सेनेट से कहा कि उन्हें विनिमय न करना चाहिए और वह स्वयं अपने घर को छोड़ कार्थेज के कारावास में मरने के लिए चला गया। सन् २४० ई० पू० में बीस वर्ष के उपरान्त यह पहला युद्ध समाप्त हुआ।

कार्थेज में हेमलकार नामक एक सेनापति था। उसने रोमन लोगों के साथ मुक़ाबला करने के लिए एक सेना तैयार करने का निश्चय किया। इसलिए उसने सिस्ली छोड़ दी, और कुछ रुपया देकर रोम से संधि कर ली। इस प्रकार रोम-राज्य इटाली के बाहर फैलना आरम्भ

हेनाबाल

हुआ। बाहर के लोग सर्वथा प्रजा के रूप में समझे जाते थे। उनको राजकर देना पड़ता था। हेमलकार ने रोम पर आक्रमण करने के लिए पहले स्पेन पर धावा किया जिससे वहाँ अपने सैनिकों को लड़ाई करना सिखाये। उसने मरते समय अपने पुत्र हेनाबाल को सौगन्द खिलाई कि वह कभी रोमवालों के साथ मैत्री न करेगा। सन् २१९ ई० पू० में हेनाबाल ने रोम के साथ युद्ध आरम्भ किया। यह युद्ध सत्रह वर्ष तक चला। स्पेन के पूर्व में एक यूनानी उपनिवेश ने रोम के साथ मैत्री कर ली थी, इसलिए उसने उस पर भी आक्रमण किया। रोम ने अपना एक दूत कार्थेज भेजा। उसने लबादा उठा कर राज-सभा से कहा कि मैं तुम्हारे लिए युद्ध और संधि दोनों लाया हूँ। तुम जो चाहते हो सो चुन लो। उन्होंने कहा जो तुम्हारी इच्छा हो वह हमें दे दो। उसने कहा, अच्छा! मैं तुम्हें युद्ध देता हूँ। लोग पुकार उठे, बहुत अच्छा! हेनाबाल इटली में जाकर रोम के साथ लड़ना चाहता था। परन्तु उसके मार्ग में कई कठिनाइयाँ थीं। पहले पेरेनीज़ की पहाड़ियाँ, दूसरे गॉलवंश और तीसरे एल्पस पर्वत। हेनाबाल ऐसे वेग से मार्ग की कठिनाइयों को काटता हुआ आगे बढ़ा कि गॉल लोग डर कर उसके साथ मिल गये, किन्तु उनहत्तर सहस्र में से उसकी सेना चौबीस सहस्र रह गई। उसने देश को लूटना आरम्भ कर दिया। रोमवालों ने एक स्थान पर घोर युद्ध किया। इसमें उनकी पराजय हुई और उनके लगभग सत्तर हज़ार मनुष्य

मारे गये। उन्होंने फेबीअस को डिक्टेटर नियत किया। उसकी नीति केवल समय टालने की थी। कुछ इटालियन-वंश भी हेनाबाल के साथ मिल गये। परन्तु कोई जाति केवल लड़ाई हार जाने ही से पराजित नहीं हो जाती। रोमवालों में जीवनी-शक्ति विद्यमान थी इसलिए वे युद्ध से बच निकले। उन्होंने हेनाबाल के भाई के विरुद्ध स्पेन में सेना भेजी। वह सेना लिये हुए उसकी सहायता के लिए आ रहा था। ज्यों-ज्यों वर्ष बीतते गये, हेनाबाल की सेना कम होती गई। कार्थेजवाले उसको कुछ भी सहायता न भेजते थे। रोमन-सेनापति ने हेनाबाल के भाई हेड्रोबाल को हरा दिया और उसका सिर काट कर हेनाबाल की सेना में फेंक दिया। इसके साथ ही सीपियो नामक एक जनरल कार्थेज पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया। इससे कार्थेजवालों ने हेनाबाल को इटली से वापस बुला लिया। जमा के स्थान पर एक लड़ाई में हेनाबाल की सारी सेना मारी गई। वह स्वयं एक स्थान से दूसरे स्थान में भागता हुआ सन् १८३ ई० पू० में विष खाकर मर गया। यद्यपि हेनाबाल की सेना सोलह वर्ष तक इटली में रही, परन्तु वह इटली पर विजय न प्राप्त कर सकी।

इस युद्ध से रोम रूमसागर, स्पेन और कार्थेज का स्वामी बन गया। उसके पास एक प्रबल बेड़ा भी हो गया, जिससे पश्चिम में वह सबसे प्रबल शक्ति बन गया। परन्तु इसके पचास वर्ष पीछे

रोम की शक्ति पूर्व में

पूर्व में भी रोम की शक्ति फैल गई। सिकन्दर ने पूर्वी देशों को जीत लिया था। एथन्ज़वालों ने मकदूनिया के राजा के विरुद्ध रोम से सहायता माँगी थी। सन् १९७ ई० पू० में रोम की सेना वहां गई और यूनान को अपने साथ मिला लिया। सन् १९० ई० पू० में सीरिया-नरेश एण्टी आकस के स्थान में एशिया-कोचक में अनेक छोटे-छोटे राजा बना दिये गये। ये सब रोम को अपना अधिराज समझते थे। सन् १४८ ई० पू० में मकदूनिया भी रोम के अधीन होगया।

कार्थेज को प्रान्त बनाना

सन् १४९ ई० पू० में कार्थेज का न्यूमेडिया के राजा के साथ झगड़ा हो गया। यह राजा रोम का मित्र था। रोमवालों ने कार्थेज पर चढ़ाई कर दी। कार्थेजवाले डर गये और उनकी सारी शर्तें मानने को तैयार होगये। उन्होंने अपने शस्त्र तक रोम की सेना के सुपुर्द कर दिये। परन्तु जब उनसे यह कहा गया कि कार्थेज गिराकर समुद्र से दस मील परे बनाया जाय, तब कार्थेजवालों ने नये सिरे से शस्त्र बनाये। स्त्रियों ने अपने सिर के केश तक दे दिये कि उनसे धनुष की डोरियाँ बनाई जायँ। तीन वर्ष तक घेरा डालनेवालों का मुक़ाबला किया गया। इसके पश्चात् नगर में घोर संग्राम हुआ। रोमन-सैनिकों को एक-एक घर में लड़ाई करके अधिकार प्राप्त करना पड़ा। जब केवल दशांश मनुष्य शेष रह गये, तब कार्थेज में आग लगा दी गई और उसकी भूमि अफ्रीका के नाम से एक रोमन-प्रान्त

बना दी गई। रूमसागर के इर्द-गिर्द सब देशों पर रोम का राज्य हो गया। यही देश उस समय में सभ्य समझे जाते थे। इस प्रकार मानों रोम सभ्य संसार का मुकुट बन गया। इसके पश्चात् रोमवालों ने और जितने युद्ध किये वे असभ्य वंशों के साथ हुए। उन वंशों को रोम ने जीत करके इकट्ठा रहना और क़ानून पर चलना सिखाया। उन वंशों का इतिहास रोम की विजय से आरम्भ होता है।

इन विजयों का रोम पर यह प्रभाव हुआ कि उनके बड़े आदमी सीधे-सादे किसान न रह गये जो हल छोड़ कर लड़ने जाते थे।

रोमन-चरित्र में परिवर्तन

अब वे रुपयावाले हो गये थे, जो अपना समय युद्ध में या सरकारी काम में व्यय करते थे। अब उन्हें केवल अपने ही देश का ध्यान न था। वे अभिमानी हो गये। वे अपने लिए सम्मान और धन चाहते थे। उपहारों से इनकार न करते थे, वरन् जहाँ जाते थे, उपहार माँगते थे। यूनान की विजय के पश्चात् उन्होंने बहुत सी नई बातें सीखीं। खाना-पीना और अच्छे मकान बनाना सीखा। यूनानियों की उत्तम पुस्तकें और प्राचीन जगत् के चित्र देखे। रोमवालों ने यह सब कुछ यूनानियों से सीखा। सीपियो, जिसने हेनाबाल को हराया था, यूनानी रीतियों को बहुत पसन्द करता था। उसके विरुद्ध अनेक मनुष्य थे। उनमें से एक केटो भी था। केटो बड़ा सादी चाल से रहता था, नये स्वभावों और नई बातों को पसन्द

न करता था। वह सेनेटर नियत हुआ। उसने बहुत से मनुष्यों को इसलिए दण्डित किया कि वे यूनान की नक़ल करते थे। यद्यपि रोमवाले उसकी बातों को पसन्द करते थे, तथापि उनका आचरण उसके विपरीत था। रोम में धनिकों का एक दल बढ़ चला। वे सब अपने को अमीर कहने लगे। उन्हीं में से अब सेनेट के सदस्य होते थे और मजिस्ट्रेट चुने जाते थे। युद्ध के अनन्तर प्रत्येक मनुष्य धनाढ्य बनना चाहता था। सेनेटवाले भी रुपया इकट्ठा करना चाहते थे। केटो ने सशंकित स्वर से कहा कि 'रोम का न जाने क्या होगा जब यहाँ न सेनेट होगी और न उसका भय होगा। मजिस्ट्रेट लोग प्रान्तों से अन्न भेजा करते थे। वह जनता में मुफ़्त बाँटा जाता था। प्रत्येक मनुष्य मजिस्ट्रेट बनने से पहले लोगों को खेल-तमाशे दिखलाया करता था, जैसे घोड़-दौड़, सिंहों की लड़ाइयाँ, और क्रीतदासों की पारस्परिक लड़ाई के तमाशे। इस प्रकार दरिद्रों की श्रेणी रोम में बड़ी निकम्मी और व्यर्थ सी बन गई। ग्रामों के लोग खेतों को छोड़ नगरों में चले आये। यहाँ उन्हें भोग-विलास की सामग्री मिलती थी। खेती करने के लिए केवल क्रीत-दास रह गये। लड़ाइयों में दास बनाये जाते थे। इसलिए दासों के दल के दल ज़ञ्जीरों में बँधे हुए काम करते थे।

प्रान्तों की दशा बहुत दयनीय थी। उन पर बड़ा अत्याचार होता था। उनका रुपया लूटा जाता था। उनके लिए

इसलिए रोम में मजिस्ट्रेट चुने जाते थे। उनको तीन बड़ी आवश्यकताओं के लिए धन एकत्र करना होता था। एक तो उस ऋण को चुकाने के लिए जो वे तमाशे दिखलाने में व्यय रहते थे। दूसरे अपने निर्वाह के लिए, और तीसरे भविष्य में, यदि उन पर कोई अभियोग चल जाय, तो घूँस देने के लिए।

रोम में कुशासन

रोमवालों की इन बढ़ती हुई बुराइयों को देख कर दो भाइयों ने उनको रोकने का प्रयत्न किया। यह रोम के लिए बड़ा दुर्भाग्य का विषय है कि इन दोनों भाइयों को जातीय-सेवा में अपने प्राण देने पड़े।

सुधार का प्रयत्न

उनकी माता को अपने बच्चों पर बड़ा अभिमान था। एक बार एक रोमन स्त्री उसे अपने आभूषण दिखला रही थी। उस अपने दोनों बच्चों को बुलाया, और उनकी गर्दन में हाथ डालकर कहा कि मेरे ये आभूषण हैं। बड़ा भाई टायबरस स्पेन के युद्ध में मौजूद था। उसने अपनी सेना की त्रुटियों और लोगों के प्रति उसके बुरे बर्ताव का भली भाँति अनुभव किया था। उसने भूमि का एक क़ानून उपस्थित किया। उसके अनुसार वह सारी भूमि, जिस पर धनिकों ने अधिकार कर लिया था, छोटे-छोटे टुकड़ों में दरिद्रों को दे देने का प्रस्ताव था। धनी

लोग उसके विरोधी हो गये, और एक बलवे में उसके तीन सौ साथी मारे गये। सन् १३३ ई० पू० से रोम में यह नवीन परिवर्तन आरम्भ हुआ। इसका यह अर्थ था कि अब लहू से लोग अपना प्रयोजन सिद्ध करना चाहते थे। उसका छोटा भाई भी उसी विचार का था। वह भी जनता की इच्छा से ऐसा क़ानून बनाना चाहता था, जिससे अमीरों की गवर्नमेण्ट परिवर्तित होकर जनता की गवर्नमेण्ट बन जाय। उसने भी भूमि का एक क़ानून उपस्थित किया कि इटली में और इटली से बाहर दरिद्रों के लिए बहुत से उपनिवेश स्थापित किये जायँ। इससे लोग बहुत प्रसन्न हुए। परन्तु अगले वर्ष उसने यह प्रस्ताव किया कि लैटिन-वंश को रोमन का दर्जा दिया जाय, और इटालियन को लैटिन का। यद्यपि यह रोम के लिए बहुत ही अच्छी बात थी कि वह लैटिन-वंश को अपने साथ सम्मिलित कर लेता, अन्यथा अकेला एक नगर कब तक जगत् पर बल से शासन कर सकता था; तथापि इसे लोगों ने पसन्द न किया और सन् १२२ ई० पू० में केअस ट्रोब्यून न चुना गया। वह सुखपूर्वक कालयापन करना चाहता था। परन्तु एक बलवा हुआ जिसमें वह और उसके साथी मारे गये।

अब रोम में क़ानून की परवाह कम होने लगी। धनाढ्य लोग जो चाहते थे वही करते थे। दासों की संख्या इतनी बढ़ गई कि उनको व्यवस्था में रखना कठिन हो गया। यहाँ तक कि सिस्ली से भागे

दिन पर दिन बिगाड़

हुए दासों ने इकट्ठे होकर रोम के विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर दिया। सर्वसाधारण को रोम की प्रतिष्ठा की कुछ परवा न थी। वे केवल धन लेना चाहते थे। इसका उदाहरण न्यूमेडिया की दशा में मिलता है। न्यूमीडिया के राजा ने अपना राज्य मरते समय एक दत्तक और दो पुत्रों के सुपुर्द कर दिया। दत्तक का नाम जगरथा था। उसने पुत्रों का वध कर डाला। रोम में इसकी शिकायत हुई। वहाँ आकर उसने एक और राजकुमार की हत्या कर दी, और घूँस देकर अपनी सब कठिनाई दूर कर लीं। वापस जाते हुए उसने रोम की ओर देखा और कहा—"हे नगर! तुममें प्रत्येक वस्तु बेची जा सकती है, तुम अपने आपको भी बेच दोगे, यदि तुमको कोई खरीदनेवाला मिल जाय।" उसके विरुद्ध युद्ध किया गया किन्तु वह घूँस देकर बचता रहा। सन् १०६ ई० पू० में मेरियस सेना की कमान के साथ उसके विरुद्ध भेजा गया। यह व्यक्ति एक साधारण मनुष्य था। वह अपनी योग्यता से मजिस्ट्रेट और कौंसल रह चुका था। वह सफलता-पूर्वक युद्ध समाप्त करके जगरथा को क़ैद कर लाया। मेरियस इसलिए रोम में बड़ा शक्तिशाली हो गया। वह सेना का जनरल था। सेना में भी उस समय एक परिवर्तन हो गया था। नागरिक लोग सेना में भरती न होते थे। क्योंकि युद्ध दूरस्थ विदेशों में हुआ करते थे, इसलिए सेना में ऐसे मनुष्य भरती हो गये जिनका व्यवसाय ही सैनिक जीवन था। जब

वापसी पर मेरियस कौंसल बना दिया गया तब इसका यह अर्थ हुआ कि रोम का शासन सेना के हाथ में चला जाय। इसी बीच में रोम को कतिपय बर्बर वंशों के साथ युद्ध करने की आवश्यकता पड़ी। ये लोग अपने लिए नये घर तलाश करते हुए इटली में प्रविष्ट हुए और रोन नदी के इर्द-गिर्द वाले प्रान्त पर इन्होंने अधिकार जमा लिया। पाँच वर्ष तक मेरियस इनके विरुद्ध युद्ध करता रहा जिससे उसकी शक्ति बढ़ती गई। सर्वसाधारण उसके कृतज्ञ थे किन्तु धनाढ्य उससे डरते थे। इसी बीच में लैटिन और इटालियन वंशों में कुछ अशान्ति सी हो गई। ड्रूसस नामक एक व्यक्ति ने उनके लिए क़ानून का प्रस्ताव किया। परन्तु उसका वध कर दिया गया। इस पर इटालियन युद्ध के लिए उद्यत हो गये। इस लड़ाई में एक और सेनानायक प्रकट हुआ। उसका नाम सुला था। तब रोम ने उनको अधिकार देने का वचन दिया जिन्होंने विद्रोह न किया हो, या जो दो मास के अन्दर हथियार डाल दें। इससे बहुत से वंशों के लोग उसके साथ रहने पर उद्यत होगये।

गृह-विद्रोह

इस कुशासन का स्वाभाविक परिणाम गृह-विद्रोह होना था। जिस देश में सेना का सम्मान बढ़ जाय वहाँ नागरिक क़ानून का बल आपसे आप घट जाता है।

मेरियस और सुला

रोम में सेना के जनरल मजिस्ट्रेटों से अधिक शक्ति रखते थे और यह साफ़ देख पड़ता था कि अब गवर्नमेण्ट का निर्णय वाद-विवाद से नहीं वरन् युद्ध से होगा। इसलिए रोम में अगले पचास वर्ष गृह-कलह में बीते। एशिया-कोचक में आरमीनिया के निकट कथराडीअस नामक एक व्यक्ति बल पकड़ता और देश को जीतता जाता था। रोम ने उसके विरुद्ध युद्ध किया। सुला को सेनापति नियत किया। मेरियस यद्यपि वृद्ध था, तथापि वह स्वयं सेनापति नियुक्त होना चाहता था। एक ट्रीब्यून (पंच) ने यह प्रस्ताव किया कि मेरियस को कमान दी जाय। जब सुला की सेना ने यह सुना, तब उन्होंने रोम पर कूच किया तथा उस ट्रीब्यून का वध कर डाला, और मेरियस को वहाँ से भगा दिया। सुला ने सेनेट की शक्ति को दृढ़ करके एशिया-कोचक की ओर प्रस्थान किया। वहाँ मिथरीडिटस ने लगभग डेढ़ लाख इटालियनों का वध करवाया था। मिथरीडिटस की दशा बिगड़ने लगी। उसने सन् ८४ ई० पू० में सुला से संधि की प्रार्थना की। सुला ने स्वीकार कर लिया, क्योंकि उसे वापस आना आवश्यक था।

उसकी अनुपस्थिति में मेरियस, जो निर्वासन में बहुत कष्ट उठाता हुआ अफ्रीका जा पहुँचा था, वहाँ से बुला लिया गया। उसने 'सिना' नामक कौंसल की सहायता से उन सब मनुष्यों का वध करवा डाला जो उसके विरुद्ध थे, मेरियस सिपाहियों को लेकर गलियों में जाता था और वे वध करते जाते थे। सुला के आने के पहले ही मेरियस मर गया। जब सुला आया तब कौंसल सिना की भी हत्या कर दी गई। सुला अभी रोम तक न पहुँचा था कि उसने सेमनाइटों को, जो रोम के विरुद्ध उठ खड़े हुए थे, परास्त किया। तत्पश्चात् रोम में प्रवेश करके वह अपने शत्रुओं का वध करने लगा। लगभग ४० सहस्र रोमन भद्र पुरुष इस प्रकार मारे गये। इसके पश्चात् वह 'डिक्टेटर' बना दिया गया। सन् ८० ई० पू० में वह एक गाँव में रहने के लिए गया और वहाँ एक दो वर्ष के पश्चात् मर गया।

क्रेसस और पाम्पियस

इस समय रोम के लिए तीन स्थानों पर कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं। एक तो स्पेन में मेरियस के एक अफ़सर ने विद्रोह कर दिया। रोमन-सेना उसको दबा न सकी। जनरल पाम्पियस भी उसके विरुद्ध सफल न हुआ। और उसी के एक अफ़सर ने सन् ७२ ई० पू० में उसकी हत्या कर डाली। पूर्व में मिथरीडिटस बहुत बढ़ता गया। रोमन-सेना उसको रोक न सकी। इधर घर में एक कारागार से भागे हुए कुछ

दासों ने विद्रोह कर दिया। उनकी संख्या चालीस सहस्र के लगभग हो गई। इससे रोम को बड़ी आशङ्का हुई। अन्ततः उनकी आपस की फूट ने उनको इतना दुर्बल कर दिया कि क्रेसस ने उनको पराजित किया। दोनों जनरल, क्रेसस और पाम्पियस, रोम में प्रविष्ट हुए और कौंसल बना दिये गये।

इसके बाद पाम्पियस एशिया-कोचक भेजा गया। वहाँ उसने मिथरीडिटस को भगा दिया। सीरिया और जूडिया पर विजय प्राप्त की और अन्य अनेक स्थानों को रोम के अधीन करके वह सन् ६१ ई० पू० में रोम में लौट आया। उस समय रोम में व्याख्यान-वाचस्पति सिसरो था। उसके भाषणों से उस समय की अवस्था का पता लगता है। वह शासन का सुधार तो चाहता था, परन्तु उसे पलटना नहीं चाहता था।

जनता के दल का नेता उस समय सीज़र था। उसने सेना की लड़की से विवाह किया था। लोग उसे बहुत चाहते थे। वह शक्ति प्राप्त करने के लिए सेना का अधिकार आवश्यक समझता था। जब पाम्पियस वापस आया, तब सेनेट के साथ उसका मतभेद आरम्भ हो गया। सीज़र ने इससे लाभ उठा कर पाम्पियस और क्रेसस के साथ एकता कर ली। सन् ५९ ई० पू० में सीज़र को कौंसल बना दिया गया। इसके बाद पाँच वर्ष के लिए वह गॉल का शासक नियुक्त हुआ।

सीज़र

सीज़र ने सात वर्ष के भीतर पेरेनीज़ और राइन के बीच के प्रदेश को जीत लिया। सन् ५४ ई० पू० में उसने ब्रिटन पर धावा किया। वह बड़ा जनरल था और साथ ही बड़ा लेखक भी। उसने अपनी लड़ाइयों का वृत्तान्त आप ही लिखा है। उसने गॉलवालों को रोमन-रीतियाँ और विचार सिखलाये। गॉलवाले रोम से प्रेम करने लगे। रोम के इतिहास में यह पहला उदाहरण है जब कि उसने विजित जाति को अपने साथ बाँध लिया। जब बाद में रोम का अधःपात हुआ तब रोम के अनेक बड़े आदमी गॉल में से निकले। सीज़र ने इन विजयों में बहुत से दास बना लिये और बहुत सा धन इकट्ठा किया। रोम में प्रति वर्ष चुनाव के अवसर पर झगड़े और बलवे होते थे। सन् ५६ ई० पू० में पाम्पियस और क्रेसस जाकर सीज़र से मिले। और उन्होंने एक दूसरे की सहायता की प्रतिज्ञा की। अगले वर्ष सीज़र की सहायता से पाम्पियस और क्रेसस दोनों कौंसल चुने गये। कौंसल बन कर उन्होंने यह प्रस्ताव किया कि सीज़र को पाँच वर्ष के लिए और गॉल में रक्खा जाय। इस प्रकार सारी शक्ति तीन मनुष्यों के हाथ में हो गई। पुराने प्रजातंत्र शासन के गिरते ही धनाढ्यों की शक्ति भी गिर गई।

सन् ५३ ई० पू० में क्रेसस एक लड़ाई में मारा गया। पाम्पियस अभी तक रोम में था। अकेला रह जाने के कारण

.उ अब सीज़र से द्वेष करने लगा। उसने अपना सूबा सेनेट से पाँच वर्ष के लिए और बढ़ा लिया। उसका उद्देश यह था कि जब सीज़र निजी मनुष्य के रूप में रहेगा तब उसके पास मजिस्ट्रेट होने के कारण सेना रहेगी। सीज़र के मित्र यह चाल समझते थे

सीज़र और पाम्पियस

और उसे पसन्द न करते थे। इसलिए अब दो दल बन गये, पाम्पियस धनियों का पक्षपाती था और सीज़र निर्धनों का। यह स्पष्ट था कि निर्णय युद्ध से होगा। सीज़र ने सेनेट से कहा कि वे दोनों एक ही समय मजिस्ट्रेटी का पद छोड़ दें। सेनेट ने इसकी परवाह न की और उसके ट्रीब्यूनों को निकालने की धमकी दी। वे भाग कर सीज़र के पास पहुँचे। सीज़र को युद्ध का बहाना मिल गया। सन् ४९ ई० पू० में युद्ध आरम्भ हो गया। सीज़र सेना लिये अकस्मात् आ पहुँचा और पाम्पियस सेनेट को साथ लेकर जहाज़-द्वारा यूनान को चला गया। दो मास के भीतर सीज़र समस्त इटली का स्वामी बन गया। उसने अगले वर्ष स्पेन में पाम्पियस के सेनानायकों को भी पराजित किया।

इसके पश्चात् यूनान में पाम्पियस की सेना को पराजय मिली। पाम्पियस मिस्र को भाग गया और वहाँ नाव में उसका वध कर दिया गया। जब सीज़र मिस्र में पहुँचा तब बारहवें टालमी, जो चौदह वर्ष का लड़का था, और जिसका अपनी बहिन क्लियोपेटरा के साथ झगड़ा चल रहा था एक

लड़ाई में मारा गया। सीज़र ने क्लियोपेटरा को मिस्र की महारानी बना दिया। वापस आकर सीज़र को पाम्पियस के दल को दबाने के लिए अफ्रीका और स्पेन जाना पड़ा। अब सीज़र रोमन जगत् का स्वामी बन कर लौटा। सेनेट ने उसे जन्म भर के लिए डिक्टेटर नियत कर दिया। सीज़र की इच्छा अब यह हुई कि वह जनसत्तात्मक शासन को साम्राज्य में परिवर्तित कर दे। उसके कई और प्रस्ताव थे जिनसे वह अन्य प्रान्तों को रोमन अधिकार देना चाहता था। उसकी हत्या करने का एक षड्यन्त्र रचा गया, और १५ मार्च सन् ६६ ई० पू० में सेनेट हाउस (राज-सभा-भवन) में उसका वध कर दिया गया। सीज़र को शारीरिक और बौद्धिक योग्यता की दृष्टि से सबसे बड़ा आदमी समझना चाहिए। वह एक बड़ा सेनापति, ग्रन्थकार, और राजनीतिज्ञ था। उसका वध करनेवाले केसियस और ब्रूटस थे, जिन पर वह बड़ी कृपा और अनुग्रह करता था। उसके जनरल एण्टोनियस ने ब्रूटस आदि के विरुद्ध लोगों को भड़काया। वे रोम से भाग गये। सीज़र का उत्तराधिकारी उसकी बहन की लड़की का पुत्र आक्टेवियस था। जब एण्टोनियस और सेनेट के बीच युद्ध आरम्भ हुआ तब वह सेनेट की ओर हो गया। एण्टोनियस की पराजय हुई। सेनेट ने उसे कौंसल निर्वाचित किया। तब उसने स्पेन के शासक लेपीडस और एण्टोनियस के साथ मित्रता उत्पन्न की। पहले-पहल उनको

ब्रूटस और केसियस की सेना के साथ मुक़ाबला करना पड़ा। एण्टोनियस उनकी सेनाओं को हरा कर मिस्र की ओर गया और वहाँ क्लियोपेटरा के साथ ही रहने लगा।

रोमन-साम्राज्य का आरम्भ

एण्टोनियस मिस्र की महारानी के प्रेम में फँसा कर वहीं रहने लग गया। उसने पूर्वी स्वभाव और रीतियाँ ग्रहण कर लीं। रोम के लोग उसे बड़ा बुरा समझने लगे। आक्टेवियस की लोक-प्रियता दिन पर दिन बढ़ने लगी। अन्त को दोनों में आक्टीन के स्थान पर लड़ाई हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि क्लियोपेटरा ने अपने आपको साँप से कटवा लिया। इस पर एण्टोनियस ने भी आत्महत्या कर ली। इसके पहले आक्टेवियस लेपीडस को भी पराजित कर चुका था। अब वह अकेला शक्तिशाली रह गया था। रोम में वापस आने पर उसने देखा कि गत पचास वर्ष के उपद्रवों से लोग बहुत दुःखी हो गये हैं, और एक ऐसे शासन के लिए तरसते थे जो उन्हें शान्ति और सुख दे सके। बहुतेरे लोगों को तो मालूम ही न था कि शान्तिमय शासन क्या होता है। आक्टेवियस ने अपने पूर्वज सीज़र के सदृश खुले तौर पर राजा बनने

आगस्टस

का विचार ठीक न समझा। उसने शनैः शनैः सब पद अपने हाथ में ले लिये। ये पद राजा को दूर करने के पश्चात् बनाये गये थे। सेना पर अधिकार रखने से उसने 'एम्पेरेटर' की उपाधि ली और यही पीछे से संक्षिप्त होकर एम्परर (सम्राट्) बन गई।

इसके पश्चात् वह सेनेट में विशेष मनुष्य अर्थात् प्रिंस्पस बना। प्रत्येक प्रश्न पर वह स्वयं बोला करता था। कौंसल, ट्रीब्यून, और सेंसर के अधिकार उसको जन्म भर के लिए दें दिये गये। वह पान्टिफस बन कर धर्म्म में भी बड़ा बन गया। इसके बाद उसने आगस्टस की उपाधि धारण की। इसी नाम से वह प्रसिद्ध है। यद्यपि सारे सेनेट का काम वह स्वयं करता था, तथापि उसका जीवन बहुत सादा था।

कभी कभी धमकी के तौर पर वह त्याग-पत्र भी दे देता था। परन्तु लोगों को उसकी आज्ञा सुनने का स्वभाव हो गया, और उसका कोई विरोधी भी उत्पन्न नहीं हुआ। इसका विशेष कारण यह था कि वह प्रत्येक काम पुराने नामों की ओट में करता था। वह इस बात को भली भाँति समझता था कि संसार केवल नामों पर मुग्ध होता है। वह यह भी जानता था कि यदि लोगों को पुराने नामों के रखने की स्वतन्त्रता प्राप्त रहे तो सेनेट और जनता सहर्ष उसका आधिपत्य स्वीकार कर लेंगे। इसके साथ ही लोगों में दासत्व का स्वभाव इतना अधिक होगया था कि सेनेटर और मजिस्ट्रेट अपने आप इसके नाम से राजभक्ति की सौगन्द उठाते थे।

सामाजिक युद्ध के दिनों में सभी इटली-निवासियों को रोमन अधिकार मिल गये थे। परन्तु वे इन अधिकारों का उपयोग बहुत कम किया करते थे। बाहर के प्रान्तों को इस प्रकार का कोई अधिकार नहीं थे और वहाँ बहुत अत्याचार होता था।

इटली और प्रान्त

आगस्टस के एम्परर (सम्राट्) बन जाने पर उसने प्रान्तों को भी धीरे धीरे रोमन-अधिकार दे दिये। परन्तु इन अधिकारों से उनको कोई लाभ न हुआ, क्योंकि सारी शक्ति एम्परर के हाथ में चली गई थी। परन्तु इतना लाभ अवश्य था कि सब प्रान्तों को रोमन-क़ानून का अधिकार मिल गया और प्रान्तों का शासन बात की बात में अच्छा हो गया।

एक अवसर पर वह नाव में सैर करने जा रहा था। एक यूनानी जहाज़ पास से गुज़रा। माँझी जहाज़ छोड़ कर उसके पास चले आये और कहने लगे—"तुमने हमें प्रसन्नता प्रदान की है। तुमने हमारी सम्पत्ति और प्राणों की रक्षा की है।" उसके राजत्वकाल में रोमन-साम्राज्य की सीमा एक ओर डेन्यूब तथा राइन नदी तक और दूसरी ओर प्रशान्त महासागर और इँगलिश जल-प्रणाली तक थी। पूर्व में आर्मेनिया के पर्वतों, एक दजला नदी और अरब की मरुस्थली तक, और दक्षिण में अफ्रीका के सहारा तक फैली हुई थी। यह साम्राज्य तीन सहस्र मील लम्बा और दो सहस्र मील चौड़ा था।

इटली और प्रान्तों की अवस्था में भेद यह था कि इटा-

लियन लोगों की सम्पत्तियों पर कर नहीं लगाया जा सकता था और इनको गवर्नर अपनी इच्छा से पकड़ नहीं सकते थे। इनकी म्यूनिसिपलटियाँ रोम के नमूने पर बनाई गई थीं। सारी इटली भाषा और संस्था की दृष्टि से एक संयुक्त-जाति बन चुकी थी। परन्तु प्रान्तों में लोकमत का कुछ मूल्य न था। सब शासन-पद्धति सेनेट के हाथ में थी। प्रान्तों में प्रत्येक स्थान पर रोम के नमूने पर रोमन-बस्तियाँ बनाई गई थीं। जहाँ कहीं रोमन लोग जाते थे, वहाँ अपनी भाषा का फैलाना आवश्यक समझते थे। पहले तो इटली की समस्त भाषायें हटा कर लेटिन (Latin) भाषा जारी की गई थी। फिर अफ़्रीक़ा, गॉल, स्पेन और ब्रिटन में जिनको रोमनों ने जीत लिया था, ये लोग अपनी भाषा और शिक्षा के द्वारा वहाँ के लोगों को रोमन-फ़ैशन और रोमन-क़ानून सिखलाने लगे। केवल यूनानी लोगों ने अपनी भाषा को छोड़कर विदेशी भाषा न सीखी; वरन् इसके विपरीत विजेता रोमनों को यूनानी सभ्यता ने अपने वश में कर लिया। यूनानी भाषा सर्वविद्याओं की भाषा थी, यद्यपि सरकारी कारोबार में लैटिन भाषा का व्यवहार किया जाता था।

रोमन-अधिकार रखनेवालों की संख्या सत्तर लाख के लगभग थी। इनके बच्चे और स्त्रियाँ मिलाकर कोई दो करोड़ होंगे। इनसे दुगने प्रान्तों के रहनेवाले थे और लगभग इतने ही क्रीत दास होंगे।

विजित जातियों ने स्वतन्त्रता की इच्छा और आशा छोड़ दी और अपने अस्तित्व को रोम में मिला दिया। सम्राट् का शासन टेम्ज़ और नील नदी पर वैसा ही था जैसा कि टायबर नदी पर। यद्यपि सेना प्रस्तुत रहती थी परन्तु मजिस्ट्रेट को उसकी सहायता की कभी आवश्यकता न पड़ती थी।

आगस्टस ने विशेष अपवाद के रूप में इस बात की आज्ञा भी प्राप्त कर ली कि वह शान्ति के समय में सैनिकों का एक संरक्षक दल रख सके। वह जानता था कि क़ानून केवल उसकी शक्ति को रंग दे सकता है, परन्तु उसे क़ायम सेना ही रख सकती है। इसलिए सिपाहियों की तीन कम्पनियों को वह दुगना वेतन और कुछ रियायतें देता था। यह थोड़ी सी सेना ही राजाओं के लिए घातक सिद्ध हुई। यह प्रीटोरियन गार्ड कहलाती थी।

सन् १४ ई० में ७६ वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गई। उसके स्थान में उसकी दूसरी स्त्री के पहले विवाह का टाईबेरियस नामक पुत्र उत्तराधिकारी हुआ। उसे आगस्टस के जीते जी सब पद और अधिकार मिल गये। कुछ वर्ष उसने अच्छी तरह शासन किया। परन्तु पीछे से उसे यह सन्देह हो गया कि लोग उसे पसन्द नहीं करते। वह अपने भतीजे से द्वेष करने लगा और उसने बहुत अत्याचार करना आरम्भ कर दिया। गार्ड को रोम में लाकर एक दुर्ग

टाईबेरियस

में रख दिया। गार्ड को राजप्रासाद में प्रविष्ट करके उसने उनको अपनी दुर्बलता और उनकी शक्ति का बोध करा दिया। सबसे अधिक शक्तिशाली राजा ने उनकी खुशामद करना और उनको पारितोषिक देना आवश्यक समझा। उनके अपराधों पर आँख मीचना और राज्याभिषेक पर उनको बड़े बड़े उपहार देना आवश्यक हो गया।

प्रश्न हो सकता है कि अब रोम के नागरिक कहाँ गये? रोम-निवासी अब आवारा और निकम्मे हो गये थे। गार्ड में इटली के सबसे चतुर और चुने हुए युवक भरती होते थे। उनसे बढ़ कर अधिकारों को समझनेवाला और कौन हो सकता था। उनकी युक्तियों का पलड़ा तलवार का बोझ डालने से बहुत भारी हो जाता था। पुराने अमीर मर चुके थे। जो बचे थे वे विलासी और प्रमादी हो गये थे। राजा के साथ अमीरों की एक नवीन श्रेणी उत्पन्न हो गई, जो रोम से कोई विशेष प्रेम नहीं रखती थी।

नीची श्रेणी में किसान नहीं थे। वरन् बाहर से आकर एकत्र होनेवाले अनेक स्वतन्त्रता-प्राप्त दास थे, जो केवल अपनी रोटी और तमाशों की परवा करते थे। सेनेट के पास कुछ शक्ति न थी। उसके सदस्य केवल भाषण करना जानते थे। उन्होंने एक दूसरे पर दोषारोपण करना आरम्भ कर दिया था। उसके साथ गुप्तचरों की भी एक श्रेणी उत्पन्न हो गई जो इन दोषारोपणों के सम्बन्ध में समाचार ढूँढ़ा करती थी। एक

व्यक्ति पर यह दोष लगाया गया कि उसने राजा की चाँदी की मूर्ति गला कर मेज़ के लिए प्लेट (थाली) बना ली है। ऐसे लोग दूसरों की सम्पत्ति लेकर धनवान् बन गये। टाइबेरियस डर के मारे बाहर चला गया। परन्तु रोम में वही शासन-कर्त्ता समझा जाता था। शासन एक मनुष्य का हो गया। प्रीटोरियन गार्ड का कप्तान उसकी अनुपस्थिति में शासन करता था। उसने राजा के सब सम्बन्धियों की हत्या करा दी। अन्त में राजा ने सेनेट को चिट्ठी लिखी कि उसे पकड़ कर क़ैद कर लिया जाय। इस पर कारावास में उसका वध कर दिया गया।

सन् ५४ से सन् ६८ तक, टाइबेरियस की मृत्यु के पश्चात्, थोड़ी देर तक दो राजा राज्य करते रहे। यद्यपि दूसरे क्लाडियस के समय में ब्रिटन पर विजय प्राप्त की गई थी, तथापि वे दोनों पागल से समझे जाते थे। क्लाडियस की स्त्री ने, जो कि एक विधवा थी, अपने पुत्र नीरो को दायाद बनवाया, और फिर उसे विष दे दिया। यह नीरो अत्याचार का नमूना समझा जाता है। यह जिसको चाहता उसकी हत्या करा देता। उसने अपनी माता को भी समुद्र में डुबाने का यत्न किया। जब वह बच गई तब सिपाही भेज कर उसका वध करा दिया। सन् ६४ में नगर में आग लग गई। वह पहाड़ की चोटी पर चढ़ कर सारङ्गी बजाता रहा। उसने ईसाइयों पर आग लगाने का दोष लगा कर उनका वध कराना

प्रजापीड़क नीरो।

आरम्भ किया। हज़रत मसीह आगस्टस और टाइबेरियस के समय में हुए। ईसाई-धर्म्म धीरे धीरे दरिद्रों में फैलना आरम्भ हुआ। इटली में ईसाई लोगों के विरुद्ध घृणा का हेतु सामाजिक कारण थे। वे खेलों, पर्वों, और देवताओं की पूजा में सम्मिलित न होते थे और राजा का पूजन भी नहीं करते थे।

साम्राज्य के स्थापित होते ही सभी पुराने धर्म्मों का लोप हो गया, क्योंकि लोगों ने अपनी जातीयता खो दी थी और वे साम्राज्य का अंग बन गये थे। सब प्राचीन मत स्थानीय अवस्थाओं के आधार पर प्रतिष्ठित थे। सबकी एक सर्व सामान्य बात राजा की पूजा करना था। उसकी मूर्ति के सामने बलिदान करना बड़ा पर्व समझा जाता था। ईसाई लोग इसमें सम्मिलित नहीं होते थे।

नीरो के विरुद्ध लोगों की इतनी घृणा हो गई कि उसने आत्महत्या कर ली। उसकी मृत्यु पर सेनेट ने स्पेन के जनरल गलबा को राजा बनाया। गार्ड ने उसका वध करके ओथो को राजा नियत किया। जर्मन सीमा की सेना ने वाईटेलस को अपना जनरल चुन लिया। ओथो की पराजय हुई। उसने भी आत्महत्या कर ली। वाईटेलस केवल खाने के लिए प्रसिद्ध है। उसे जो कुछ मिलता था वह उसे खाने-पीने में व्यय कर देता था। सीरिया की सेना ने उसे पसन्द न किया और अपने जनरल फ़्लेवीअस वॅसपूसीअस को राजा बना लिया। लड़ाई में वाईटेलस मारा गया।

इस वंश के राजा सौ वर्ष तक राज्य करते रहे। यह रोम के इतिहास में सबसे अधिक सुख और ऐश्वर्य-पूर्ण हुई है। प्रत्येक राजा अपने बाद सबसे योग्य मनुष्य को अपना उत्तराधिकारी नियत करता था। पहले राजा वेसपूसीअस ने बड़ी बुद्धिमत्ता से देश में शान्ति और सेना में प्रबन्ध स्थिर रक्खा। उसका कोई वंश न था। उसने वह दावा परे फेंक दिया और प्राचीन रोमन-पद्धति अर्थात् सेनेट के सहारे से शासन करना आरम्भ किया। उसने अपने आपको क़ानून के अधीन रक्खा और अपनी ओर से शासन को उत्तम बनाने का बड़ा यत्न किया। उसका उदाहरण देख कर सब लोग क़ानून के अनुसार चलने लगे। वह स्वयं सीधा-सादा था। इसलिए सेनेट के सदस्य भी सीधे-सादे बन गये। परन्तु उसने लोगों को मज़बूत, चतुर या अधिक बलवान् न बनाया। इसलिए उसके पश्चात् फिर वही अव्यवस्था और विपत्ति आरम्भ हो गई।

...त ०९ ...वि वंश का राजा सन् ६९ से सन् १९२ तक

उसके पुत्र टाइटस ने यहूदियों का विद्रोह शान्त किया। उनका नगर और मन्दिर जला कर उन्हें इधर-उधर बखेर दिया। इसके राजत्वकाल में सन् ८० के लगभग 'वसूवियस' ज्वालामुखी फटा। इसमें पम्पी नगरी दब गई। यह नगरी अब खोद कर निकाली गई है।

दूसरा राजा सेनेट का एक वृद्ध सदस्य था। उसने

बड़ी योग्यता से बुराइयाँ दूर कीं और गार्ड की शक्ति को कम करने के लिए राइन-सेना के जनरल ट्राजन को दायाद बनाया।

दूसरा राजा

यह व्यक्ति न इटालियन था, और न रोमन; वरन् स्पेन् का अधिवासी था। साम्राज्य के अन्तर्गत समता का भाव अपने आप फैल गया था। वह और उसकी स्त्री अकेले गलियों में फिरते थे। जब उसकी स्त्री ने राजप्रासाद में प्रवेश किया, तब उसने कहा कि मैंने जिस प्रसन्नता से इसमें प्रवेश किया है उसी प्रसन्नता से मैं इसे छोड़ने पर तैयार रहूँगी। उन्होंने न्यायालयों और पुस्तकालयों के लिए बड़े बड़े मकान बनवाये। उसने सन् १०१ में डेल्यूब को पार करके डेशियन-वंश को जीत लिया। यह वंश सदा रोम को दुःख दिया करता था। उसका उत्तराधिकारी हेडरियान हुआ। वह युद्ध को पसन्द न करता था। यह पहला सम्राट् था जो सम्राट् होकर प्रान्तों का दौरा करता था। उसने गॉल-निवासी लाईटस नामक एक व्यक्ति को उत्तराधिकारी बनाया। यह लोगों से इतना प्रेम करता था कि यह सबका पिता कहलाने लगा। उसने मार्कस और वेरियस को अपना उत्तराधिकारी बनाया और मार्कस के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। मार्कस छोटी अवस्था में "स्टोइक" बन गया था। स्टोइक लोग पुण्य को अच्छा और पाप को बुरा समझते थे। उनका सिद्धान्त अपने आप पर कठोरता करना और

दूसरों के दोषों को न देखना है। उसे जर्मन-वंश के विरुद्ध युद्ध करने के लिए विवश होना पड़ा। उनको उधर से रूस के रहनेवाले स्लाव लोग दबा रहे थे। एक युद्ध में वह मारा गया। रोम के अच्छे दिनों की उसके साथ ही समाप्ति हो गई।

रोमन-साम्राज्य का अपकर्ष

पिछले वंश के अन्तिम राजाओं के समय में बर्बर-वंश रोमन-साम्राज्य के भिन्न भिन्न भागों में बल पकड़ने लगा और रोम की शक्ति शिथिल होकर स्वयं रोम में सरकारी सिपाहियों के हाथ में जाने लगी। इसके पश्चात् साम्राज्य को प्रान्तों के शासन की नहीं, वरन् केवल अपने अस्तित्व की रक्षा की चिन्ता रह गई। क्योंकि रोमन-साम्राज्य में ईसाई लोग रहते थे और आक्रमणकारी बर्बर-जातियाँ अभी मूर्तिपूजक थीं। रोम उन बर्बर-वंशों के साथ लड़ता हुआ स्वयं ईसाई हो गया था। मार्कस का पुत्र किसी काम का न था। उसे केवल खेल प्यारे थे। वह तमाशों के लिए दूसरे मनुष्यों के साथ लड़ा करता था। एक नाट्यशाला में उसने सौ सिंहों को भालों से मारा। उसके समय में शक्ति उसके मंत्री के हाथ में थी। यह ऐसा बुरा सिद्ध हुआ कि बर्तानिया के पन्द्रह सौ सिपाही रोम में आये और उसका वध कर दिया। स्वयं राजा को भी उसकी एक रखेल स्त्री ने विष का प्याला पिला दिया और नौकर ने गला घोंट कर मार डाला।

सिपाहियों के राजा

उसकी मृत्यु के पश्चात् सेनेट का एक पुराना सदस्य पर्टिनेक्स राजा बनाया गया। जब दूत उसे बुलाने गया तब उसने उसे अपनी मृत्यु का वारण्ट समझा। उस समय तो उसे सिंहासन मिल गया परन्तु गार्ड उसकी कठोर प्रकृति से बहुत तंग आई और उसने उसकी हत्या कर दी। उसके वध के पश्चात् शक्ति सेना के हाथ में आ गई। रोम में प्रीटोरियन सेना ने सबसे बढ़ कर मूल्य देनेवाले के हाथ राजपद बेचने की घोषणा कर दी। उधर ब्रितानिया, सीरिया और पेम्बरोनिया के जनरल अपने आपको सिंहासन पर बिठलाना चाहते थे। इधर रोम में दो अर्थी थे—एक पिछले राजा का श्वसुर और दूसरा डेडियस नाम का सेनेट का एक धनाढ्य सदस्य। सौदा करनेवाले मूल्य बढ़वाने के लिए एक से दूसरे के पास जाते थे। पहले अर्थी ने प्रत्येक सिपाही को डेढ़ सौ पौंड देने का वचन दिया। दूसरे ने दो सौ पौंड कर दिये। उन्होंने चटपट उसे राजा विघोषित कर दिया।

डेडियस ने पिछले राजा का शरीर राजप्रासाद में देखा तो रात भर उसे निद्रा न आई। यद्यपि उसे संसार का राज्य मिल गया था तथापि उसे कोई साथी या सहायक दृष्टिगोचर न होता था। सिपाही स्वयं अपने किये पर लज्जित थे। पेमोनिया का जनरल पास ही था। वह चटपट पहुँच गया। उसका नाम सेवेरस था। डेडियस के मृत्यु की व्यवस्था होने लगी और तीन मास के पश्चात् उसकी हत्या कर दी गई।

सेवेरस ने मकदूनिया और स्पेन आदि के सिपाही गार्ड में भरती करके उनकी संख्या पचास सहस्र तक पहुँचाई, और उन्हें कई रियायतें दीं जिससे वे उस पर प्रसन्न होकर उसके साथ रहें, और उसके परिवार की सहायता करें। उसके समय में सेनेट की रही-सही प्रतिष्ठा भी जाती रही। उसे अपने और अपनी सेना के बीच कोई शक्ति पसन्द न आती थी। वह सेनेट को सदा आज्ञाएँ लिखा करता था। उसने क़ानून बनाने और उस पर आचरण करने की शक्ति अपने हाथ में ले ली। सेनेट का काम समाप्त हो गया और वह अखिल साम्राज्य का एकाधिपति बन गया। गार्ड का कप्तान प्रीफेक्ट कहलाता था। वह सेना और अर्थ-विभाग में राजा का प्रतिनिधि समझा जाने लगा। यह व्यक्ति रोमन-साम्राज्य के ह्रास का विशेष कारण बना।

इसके दो बड़े अयोग्य पुत्र थे। ब्रितानिया से विद्रोह का समाचार आने पर वह बड़ा प्रसन्न हुआ, और अपने पुत्रों को युद्ध का अनुभव कराने के लिए वहाँ गया किन्तु अबैरयार्क में उसकी मृत्यु होगई। मरते समय उसने पुत्रों को एकता का उपदेश किया। उन्होंने उस पर

रकला सन् २११ ई० से सन् २१७ ई० तक

निक भी ध्यान न दिया। सेना ने दोनों को राजा बना दिया। ोनों ने लौट कर एक साथ शासन करना आरम्भ कर या।

करकला के कनिष्ठ भ्राता का नाम गेटा था। एक समय वे दोनों बातें कर रहे थे कि एक सिपाही ने आकर गेटा पर आक्रमण कर दिया। मा छुड़ाने के लिए दौड़ी। वह भी घायल होगई। करकला सिपाहियों को बढ़ावा देता रहा। उसके भाई का वध हो गया। इस दुर्घटना की स्मृति उसे व्याकुल कर दिया करती थी। उसने उन सब मनुष्यों की हत्या कर देने का निश्चय किया जिनको देख कर उसे अपने भाई की याद आती। इस प्रकार कोई बीस सहस्र पुरुषों और स्त्रियों का वध कर दिया गया। इन हत व्यक्तियों में क़ानून के मूलतत्त्वों पर पुस्तक लिखनेवाला पेसीनियस नामक एक व्यक्ति भी था। राजा ने उसे आज्ञा दी कि वह अपनी योग्यता से इस वध के लिए युक्तियाँ निकाले। पेसीनियस का उत्तर बड़ा वीरोचित था—"भाई का वध कर डालना इस वध को न्यायसंगत सिद्ध कर देने की अपेक्षा अधिक सुगम है।" गार्द को साथ लेकर वह प्रान्तों में दौरा करने गया। सिकन्दरिया में लोगों के मखौलों से क्रुद्ध होकर उसने उनको नगर से बाहर बुलाया और सिपाहियों को उनकी हत्या की आज्ञा दी। सहस्रों मनुष्यों का वध कर दिया गया।

जब कभी वह कोई ऐसी बात करता था जिससे सेना अप्रसन्न होती थी तब उसे सेना को अधिक धन देकर प्रसन्न करना पड़ता था। इस कारण उसे बहुत से टेक्स लगाने पड़े। इसका एक अच्छा परिणाम यह हुआ कि करकला ने सब प्रान्तों को

रोमन-अधिकार दे दिये जिससे वह पाँच प्रतिशत का टेक्स सबसे वसूल कर सके। यह टेक्स आगस्टस ने रोमन लोगों पर लगाया था। साम्राज्य के सब लोग अपने आप को रोमन कहने लगे। विजित डेशियनों का ग्रहण किया हुआ रोमेनिया नाम प्रकट करता है कि वे इस नाम पर कैसा गर्व करते थे। मकरीनस नाम के करकला के एक मंत्री को एक गणक ने बताया था कि वह राजा होगा। वह दैवज्ञ गिरफ़्तार करके रोम में लाया गया। मजिस्ट्रेट के सामने भी उसने अपना विश्वास प्रकट किया। मजिस्ट्रेट ने वह बयान राजा को भेज दिया। करकला रथों की दौड़ में निरत था। उसने वह डाक मकरीनस को दे दी कि खोल कर यदि कोई आवश्यक बात निकले तो रिपोर्ट करे। मकरीनस ने उस डाक में अपनी मृत्यु देखी। इसलिए उसने एक सिपाही को उकसा कर राजा का वध करा दिया, और गार्ड ने उसको राजा बना दिया। परन्तु राजकोष रिक्त होने के कारण उसने मित-व्यय करना आरम्भ किया। इससे सिपाही अप्रसन्न होकर अपना अवसर देखने लगे।

सेवेरस राजा की स्त्री ने आत्महत्या कर ली थी। उसकी बहन की दो लड़कियाँ थीं। उनके एक एक पुत्र था। उस स्त्री ने अपने एक दोहते को एक मन्दिर के अर्पण कर दिया था। उसका रूप और वेश सिपाहियों को बहुत पसन्द आया। उसका वदन करकला से मिलता था। उसकी नानी ने

अपनी पुत्री की प्रतिष्ठा की परवा न करके यह कह दिया कि वह करकला का पुत्र है। सीरिया की सारी सेना उसके गिर्द एकत्र हो गई। लड़ाई में मेक्रीनस भाग गया और वह राजा बन गया। सीरिया से वह बड़ी धूम-धाम के साथ इटली आया और उसने देवता के नाम पर अपना नाम अलगबालुस (सूर्य) रक्खा। किन्तु वह इतना दुराचारी निकला कि उसके दुराचार की कोई सीमा न रही। उसकी नानी ने जब देखा कि वह मारा जायगा तब उसने उसे विवश किया कि वह उसके दूसरे दोहते अलेग्ज़ेंडर को उत्तराधिकारी बना ले। योंही किंवदन्ती फैल गई कि अलेग्ज़ेंडर मार डाला गया है। कुछ सिपाहियों ने उसे देखना चाहा। राजा ने उनको दण्ड दिया। इस पर गार्ड ने उसे मार करके उसकी लाश को गलियों में घसीटते हुए टाइबर नदी में फेंकवा दिया और अलेग्ज़ेंडर को राजा बना दिया।

अलेग्ज़ेंडर सन् २२२ से २३५ तक

यह व्यक्ति बड़ा पुण्यात्मा और विद्याव्यसनी था। तत्त्व-ज्ञान और कविता का अध्ययन किया करता था। उसके मन्दिर में महापुरुषों के चित्र थे। उसका नियमित कार्यक्रम था। सबेरे भगवान् की उपासना करता था, व्यायाम करता था, और खाना खाता था, तत्पश्चात् आवेदन-पत्र सुनता और उनका निर्णय करता था। कौंसिल में सार्वजनिक बातों पर वाद-विवाद किया करता था। उसका द्वार प्रतिदिन नियत समय पर खुलता

था। जो उससे मिलना चाहते थे, मिल सकते थे। एक पुकारनेवाला द्वार पर यह कहा करता था—"उस मनुष्य को इस द्वार में प्रवेश न करना चाहिए जिसके मन में किसी प्रकार का पाप हो।"

उसके राजत्वकाल में पूर्व में एक भारी क्रान्ति हुई। ईरान के अर्दशीर नामक एक राजा ने पार्थियन के राज्य को नष्ट करके ईरानी-साम्राज्य की नींव रक्खी। उसके विरुद्ध रोमन-सेना भेजी गई। परन्तु उसको कुछ सफलता न हुई। सीमा पर भी जर्मन ज़ोर पकड़ने लगे। उनमें फ्रैङ्क उपजाति भी थी। एक सिपाही मॅक्सीमस सेना का अफ़सर बनाया गया था। उसने सिपाहियों को बहकाया कि एशियावासी राजा डरपोक है। सिपाहियों ने उसे प्राणदान के लिए विलाप करते रहने पर भी मार डाला और मकसीमस को राजा बना लिया।

मॅकसीमस जाति का गॉथ था। जब राजा सेवेरस यूनान से गुज़र रहा था और अपने छोटे पुत्र का जन्म-दिन मना रहा था तब एक व्यक्ति मल्लयुद्ध के लिए आया था और उसने सोलह मनुष्यों को मल्लयुद्ध में पछाड़ दिया था। दूसरे दिन फिर आकर गँवारों के सदृश नाचने लगा और राजा को देख कर उसके घोड़े के पीछे दौड़ने लगा। बहुत देर तक दौड़ चुकने के पश्चात् राजा ने पूछा, क्या अब कुश्ती पर तैयार हो? उस अनथक युवक ने उत्तर दिया—प्रसन्नता से। फिर थोड़ी ही देर में उसने सात सिपा-

मॅकसीमस

हियों को दे मारा। राजा ने उसे चटपट गार्द में ले लिया और शीघ्र ही पदाधिकारी बना दिया था।

करकला की मृत्यु पर उसने नौकरी छोड़ दी थी। अलेग-ज़ेंडर के समय में फिर आ गया और राजा बन गया। वह विद्वानों और धनियों से बहुत घृणा करता था, उन्हें पास तक न आने देता था। तनिक से सन्देह पर देशनिकाला और मृत्यु-दण्ड देता था। उसने कई एक को तो पशुओं की खालों में बंद करके ऊपर से सी दिया, गाँव में रक्खे हुए ख़ज़ाने को एक ही आज्ञा से ज़ब्त कर लिया। उसने देवताओं की मूर्तियाँ गला कर सिक्के बनवाये। लोग उसके अत्याचार से तंग आ गये।

अफ़्रीका में भी कतिपय नवयुवकों की सम्पत्ति ज़ब्त की गई। उन्होंने विद्रोह का झंडा खड़ा किया और अपना एक राजा चुन लिया। कार्थेज से एक प्रतिनिधि-समूह इसी उद्देश के लिए आया। सेनेट राजा से बहुत तंग आ गई थी। उन्होंने इस चुनाव को मान लिया और मेक्सीमस को देश का शत्रु ठहराया। वह रोम में आ रहा था कि सेनेट ने अपने दो पुराने सदस्यों—मॅकसीअस और बलबीनस—को राजा की उपाधि दे दी। उसके आने के मार्ग से खाद्य-सामग्री नष्ट कर दी गई। उसकी सारी सेना ने विद्रोह कर दिया और एक सिपाही ने उसका वध कर डाला। वह आठ फुट का लम्बा जवान था और अत्यधिक खाया करता था।

दोनों सेनेटर राजाओं ने अच्छे क़ानून बनाये और नागरिक शासन (सिविल गवर्नमेण्ट) को पुनः स्थापित करने का यत्न किया, परन्तु उनके मन में सेना का डर सदा लगा रहता था। मॅकसीमस ने पूछा—हमें रोम को एक दुराचारी से छुड़ाने के लिए क्या पारितोषिक मिलना चाहिए ?

सेनेट के राजा

बलबीनस ने फ़ौरन उत्तर दिया—सेनेट, प्रजा तथा मनुष्यमात्र का प्रेम। इस पर उसने कहा—शोक ! मैं सिपाहियों की घृणा से अधिक डरता हूँ।

सेना को सेनेट के बनाये हुए राजा पसन्द न थे। वे उनके विरुद्ध शिकायतें करने लगे। एक दिन जब नगर खेलों में लीन था तब कुछ घातक राजभवन में घुस गये और उन्होंने असंख्य घावों से दोनों का वध कर डाला तथा गोर्डिनस नामक एक उन्नीस वर्ष के लड़के को राजा बना लिया। उसने मेसियस नामक एक विद्वान् की कन्या से विवाह किया और उसे गार्ड का कप्तान बना लिया। उसके राजत्वकाल में ईरानियों ने मेसोपोटेमिया पर आक्रमण किया। राजा स्वयं सेना लेकर पहुँचा और विजय प्राप्त की। इसका सुसर मारा गया। उसके स्थान पर उसने फिलिप नामक एक अरब-वंशीय मनुष्य को नियुक्त किया। यह व्यक्ति युवावस्था में बड़ा डाकू था। अब उसने एक षड्यन्त्र रच कर राजा का वध करवा डाला और आप सिंहासन पर बैठ गया। पाँच वर्ष के बाद

सन् २४९ ई० में सेना में एक विद्रोह सा हुआ। उसने डेसीअस नामक एक सेनेटर सेना के विरुद्ध भेजा। डेसीअस सेना के साथ मिल गया। उसने लड़ाई करके फिलिप और उसके पुत्र की हत्या कर दी। डेसीअस राजा बन गया। उसके राजत्व-काल में पहली बार गॉथ-वंश ने डेन्यूब पर आक्रमण किया। उसके पुत्र ने उनको कर देना स्वीकार कर लिया। फ्रेङ्क-वंश ने गॉल और स्पेन को जीत लिया। इन लोगों का आरम्भ सिकण्डीनेविया से कहा जाता है। इस समय उनका नेता एटिला था, जिसकी दसवीं पीढ़ी में थ्यूडोरिक हुआ। उनके तीन बड़े वंश थे—वॅस्टरो गोथ, ईस्टरो गोथ, और जैपिडी। जब ये नदी से पार हुए और इन्होंने नगरों को लूटना आरम्भ किया, तब राजा उनके मुक़ाबले के लिए गया। परन्तु लड़ाई में मारा गया। उसका पुत्र राजा बना। उसने बर्बर-वंशों से संधि कर ली। सिपाही उससे अप्रसन्न हो गये और उन्होंने एक और व्यक्ति को राजा बना लिया। उसने गेलस का वध कर दिया। गेलस के एक जनरल वलेरियन ने गॉल से वापस आकर उस गवर्नर की हत्या कर दी और आप राजा बन बैठा।

अर्दशीर के पुत्र साईपर ने आर्मेनिया पर चढ़ाई की। आर्मेनियावालों ने रोमन-सम्राट् से सहायता के लिए याचना की। सम्राट् वृद्ध होते हुए भी लड़ाई पर गया। परन्तु ईरानियों ने उसे क़ैद कर लिया, और ज़ञ्जीरें डाल कर उसे

वलेरियन सन् २५७ से सन् २६० तक

क स्थान से दूसरे स्थान को ले गये। ईरानी राजा घोड़े पर चढ़ते समय स्टूल की तरह उसका उपयोग करता था। उसके मरने के पश्चात् उसके चमड़े में भूसा भर कर एक ईरानी मन्दिर में भेज दिया गया। उसके राजत्वकाल में गॉथ लोगों ने बड़ी तैयारी करके यूनानी लोगों को लूटना आरम्भ किया। उन्होंने तीन बार एथन्ज़ पर अधिकार किया। लोग दासता की शान्ति में ऐसे क्लीब हो गये थे कि उनमें मुक़ाबले का कोई साहस न रह गया था।

इसका पुत्र गेलिनियस अच्छा राजा था। वह एक अच्छा माली और कवि था। सब कलाओं में निपुण था। केवल शासन का प्रबन्ध न कर सकता था। उसे आक्रमणों और पराजयों की कुछ परवा न थी। मिस्र के हाथ से निकल जाने पर उसे अलसी का बुना हुआ कपड़ा दिखलाया गया जो मिस्र से आया था। उसने तत्काल कहा—यदि मिस्र से कपड़ा न आयगा तो क्या रोम का नाश हो जायगा? उसके राजत्वकाल में बहुत से जनरल राजपद के अभियोक्ता हो गये। इनको यूनानी प्रजापीड़कों के मुक़ाबले में 'टायरेण्ट' कहा जाता है। इस कुशासन के समय में बहुत से भूकम्प और तूफ़ान आये, दुर्भिक्ष और रोग फैले। सन् २५० से सन् २६५ तक प्रत्येक नगर और प्रत्येक घर में प्लेग था। एक समय अकेले रोम में प्रति दिन पाँच सहस्र मौतें होती थीं। सिकन्दरिया की आधी प्रजा मर गई। बहुत से उपनगर नष्ट हो गये।

अन्त को क्लाडियस नामक सिरिया का एक वीर सिपाही उठा। उसने आक्रमणकारी गॉथों को पीछे हटाया, इस पर डेन्यूब की सेना ने एरियस को अपना राजा बना लिया। जब कभी जनरल आपस में मिलते थे, तब बर्बर-वंशों को प्रान्तों के लूटने का अवसर मिलता था। इससे रोमन दुर्बल और अयोग्य होते गये। एरियस ने रोम पर आक्रमण किया। राजा ने लज्जा के मारे इसका मुक़ाबला किया परन्तु मीलान नगर में वह धोखे से मार डाला गया। मरते हुए गेलिनियस ने क्लाडियस को अपना उत्तराधिकारी नियत किया। एरियस ने क्लाडियस से मैत्री करनी चाही। क्लाडियस ने उसे लिख भेजा कि तुम्हें ऐसे प्रस्ताव गेलिनियस से करने चाहिए थे। वह शायद इन नीच प्रस्तावों को सुन लेता। क्लाडियस ने गॉथ बर्बरों को, जो रोम की ओर बढ़ रहे थे, दबाना चाहा। उसने एक बड़ी सेना लेकर मकदूनिया पर आक्रमण किया। उसके पचास सहस्र मनुष्य लड़ाई में मारे गये। दो वर्ष पीछे राजा भी संक्रामक रोग से मर गया। उसके उत्तराधिकारी आरीलीनस ने पाँच वर्ष के अन्दर गाँथों के युद्ध की समाप्ति करके गॉल, स्पेन और ब्रिटेन को प्रजापीड़कों के हाथ से मुक्ति दिलाई।

शासन में परिवर्तन

यह बात स्पष्ट थी कि यदि रोम के शासन में फेर-फार न किया जाता तो उसका चिरकाल तक स्थिर रहना कठिन था। यह परिवर्तन सम्राट् डायोक्लीशियन ने किया।

डायोक्लीशियन

उसके माता-पिता दास थे। सिपाहियों ने उसे राजा चुन लिया। उसने अपने को भय से सुरक्षित रखने का निश्चय कर लिया। उसके सामने दो बड़े काम थे—एक तो अपने को सिपाहियों से सुरक्षित रखना और दूसरे सीमाओं की बर्बरों से रक्षा करना। इनका उपाय उसने यह सोचा कि राजा की शक्ति को बाँट दिया जाय। उसने मक्सिमिस नामक एक सेनापति को अपना हिस्सेदार बनाकर उसे आगस्टस की उपाधि दे दी। तत्पश्चात् ग्लेरियस और काँस्टेण्टियस नामक दो जनरलों को सीज़र की उपाधि देकर अपने साथ सम्मिलित किया। इस प्रकार रोमन-साम्राज्य चार प्रान्तों में विभक्त होकर चार व्यक्तियों के शासनाधीन होगया। थ्रेस, मिस्र और एशिया डायोक्लीशियन के अधीन रहे। इटली और अफ्रीका पर मॅक्सिमिस शासन था। गॉल, स्पेन, और ब्रिटेन पर काँस्टेण्टियस का राज्य था और डन्यूब के प्रान्त ग्लेरियस के शासन में थे। इन्होंने सब कहीं विद्रोह को दबा कर सिपाहियों को दीवारें बनाने में लगा दिया। सीमा-प्रदेश में छावनियाँ और दुर्ग बनाये गये। कुछ

काल के लिए बिलकुल शान्ति हो गई। परन्तु यह युक्ति तभी तक सफल थी जब तक चारों की आपस में एकता थी और सिपाही यह समझते थे कि एक को मार डालने से उनकी अभीष्ट-सिद्धि नहीं हो सकेगी, उनको दण्ड मिल जायगा और वे अपना राजा न बना सकेंगे। इससे रोम में ऐसा शासन स्थापित हो गया जो सिपाहियों पर निर्भर नहीं था।

शासन में एक परिवर्तन यह भी हुआ कि रोम के अतिरिक्त तीन और स्थान राज्य के केन्द्र बन गये। सेनेट तो रोम में थी। सेना सीमा के निकट रहा करती थी जिससे सुगमता से युद्ध कर सकें। साम्राज्य का केन्द्र रोम न रहा, वरन् साम्राज्य के सब भाग समान पद के हो गये। राजाओं में भी परिवर्तन हो गया। पहले राजा रोमन नागरिकों के सदृश सादा रहा करते थे। नये राजा, बाहर रहने के कारण, ठाठ-बाट से रहने लगे। वे एक विशेष प्रकार का बढ़िया वेश रखते थे। कई नौकर रखते थे। बिना दिखलावा के कोई काम नहीं करते थे। लोगों को कम दिखाई देते थे। प्रजा उनके सामने ऐसा विनयभाव धारण करती थी, इस प्रकार नम्रता से बोलती और झुकती थी, मानों वे नये और विलक्षण प्रकार के मनुष्य हैं। उनके नौकर भी विशेष स्थान पाने लगे।

इस ठाठ-बाट के द्वारा डायोक्लीशियन ने राजा की सिपाहियों से भेद रखनेवाली नीति की नींव डाली। डायोक्लीशियन इसलिए भी प्रसिद्ध है कि उसने स्वेच्छानुसार इतना बड़ा पद

छोड़ कर विविक्त जीवन ग्रहण किया। इक्कीस वर्ष के परिश्रम के अनन्तर उसका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। सन् ३०५ ई० में उसने नीला लबादा उतार कर रख दिया और एक निर्जन भवन में रहने के लिए चला गया। वहाँ वह नौ वर्ष तक जीवित रह कर मर गया।

सन् ३२३ तक गृहविद्रोह चलता रहा। कान्स्टेण्टाइन सन् ३०६ ई० में अपने पिता की मृत्यु पर ब्रिटेन का सीज़र बनाया गया। उसने सन् ३२३ में रोमन-साम्राज्य को एक शक्ति के अधीन कर लिया। अपनी योग्यता और वीरता से उसने इतनी शक्ति बढ़ाई कि शनैः शनैः सब पर प्रभुता जमा कर स्वयं सम्राट् बन गया। कॉन्स्टेण्टाइन ने रोमन-साम्राज्य को स्वायत्त शासन में बदल कर सेनेट और अमीरों से अपना पीछा छुड़ा लिया। प्रत्येक जनरल के अधीन रहनेवाले सिपाहियों की संख्या कम करके उसकी शक्ति को भी घटा दिया। उसने सेना के दो भाग किये। एक भाग नगर में रहता था और दूसरा सीमा पर। वे कभी इकट्ठे नहीं हो थे, और न विद्रोह कर सकते थे। उसने प्रान्तों को ज़िलों बाँट कर प्रत्येक ज़िले पर मजिस्ट्रेट नियुक्त किये। इन पर चार कमिश्नर रक्खे और इन सबका अफ़सर स्वयं आप बना।

बड़ा कान्स्टेण्टाइन, सन् ३२३ ई० से सन् ३४७ तक

उसने रोमन-साम्राज्य का धर्म्म ईसाई-धर्म्म, बना लिया।

ईसाई-धर्म्म रोमन-साम्राज्य में धीरे धीरे फैलता जाता था। गिरजों की संख्या सब कहीं बढ़ती गई। पहले-पहल ईसाई लोग आज्ञाकारी और राजभक्त न होने से बुरे समझे जाते थे। उनके पादरी सेनेट की बातों में कोई भाग न लेते थे। रोमन लोग उनकी उपासनाओं को किसी प्रकार रोकते न थे, वरन् केवल इतना चाहते थे कि वे पर्वों और बलिदानों में भी भाग लें। किन्तु ईसाई ऐसा करने के लिए तैयार न थे। इसलिए उनको कष्ट दिया जाता था। तदनन्तर जब ईसाई-धर्म्म की शक्ति बढ़ती गई और रोमन लोगों ने देखा कि ईसाई होकर भी लोग सूर्य की पूजा के त्योहार को बराबर मनाते रहते हैं, तब उन्होंने इस त्योहार का सम्बन्ध ईसा मसीह के जन्म के साथ जोड़ कर उसे अपना सबसे बड़ा पर्व क्रिस्मस बना लिया। इससे दूसरे लोग भी उस पर्व के वास्तविक मूल को भूल गये। क्योंकि वे पर्वों में भाग लेना आवश्यक समझते थे। अतः वे ईसाई-धर्म्म में ही सम्मिलित होते गये।

ट्राजन, डेसियस, वेलेरीन आदि जितने अच्छे राजा हुए हैं उन्होंने ईसाइयों को बहुत यातनायें दी हैं। डायोक्लीशियन के राजत्वकाल में ईसाइयों को सबसे अधिक कष्ट हुआ। प्रत्येक प्रान्त में ईसाइयों का वध किया जाता था। राजा ने और सबको तो अपने नीचे दबा लिया था परन्तु ईसाइयों के धर्म्म-बलिदान ने उनको इतना दृढ़ बना दिया था कि अकेले ईसाई लोग ही स्वतन्त्रता के लिए देश में खड़े हुए। इसका परिणाम यह

हुआ कि प्रत्येक स्वतन्त्रता-प्रिय मनुष्य ईसाई-धर्म्म को पसन्द करने लगा। उनकी वीरता से रोमन-प्रजा उनकी प्रशंसक बन गई। जितना उनको दुःख दिया गया उतने ही वे शक्तिशाली बन गये।

सभी पुराने धर्म्म मर चुके थे। साम्राज्य गिर रहा था। साम्राज्य में न कोई स्नेह रहा और न कोई प्रतिष्ठा। इस गिरी हुई इमारत के अन्दर ईसाई-धर्म्म ने अपना कमरा बना लिया और साम्राज्य में एक नवीन जीवन और नवीन शक्ति का संचार करने का यत्न किया।

कान्स्टेण्टाइन एक युद्ध में जा रहा था। एक अवसर पर उसने देखा कि उसके बहुत से सिपाही ईसाई-धर्म्म के ढंग से ईश्वरोपासना कर रहे हैं। कहते हैं कि उसने अपने सिपाहियों से प्रतिज्ञा की कि यदि इस लड़ाई में मेरी विजय हो गई, तो मैं भी ईसाई-धर्म्म ग्रहण कर लूँगा। ईसाइयों की वीरता और साहस से उसकी विजय हुई और वह भी ईसाई हो गया।

उसने देखा कि रोम में पुराने विचार बल न पकड़ सकेंगे। इसलिए उसने योरुप के किनारे पर थ्रेस में एक नवीन रोम बसाया। उसका नाम उसने कान्स्टेण्टीनोपल अर्थात् कान्स्टेण्टाइन की नगरी रक्खा। यूनानी लोगों को एक मनुष्य के शासन का स्वभाव हो गया था। उसने वहाँ के सैनिक और नागरिक शासन में परिवर्तन किये। इन

सब ख़र्चों, ठाठबाट और अधिकारियों के वेतनादि के लिए उसे धन की आवश्यकता हुई। इस प्रकार यह बात प्रसिद्ध हो गई कि आक्रमणों की लूट के पश्चात् जो कुछ लोगों के पास बच रहता है वह टेक्स एकत्र करनेवाला ले जाता है।

उसका वंश सन् ३६३ ई० तक राज्य करता रहा। उसका भतीजा जूलियन बड़ा प्रसिद्ध राजा हुआ। उसने गॉल से जर्मन लोगों को निकाल दिया। वह बड़ा दार्शनिक भी था। यद्यपि उसकी शिक्षा ईसाई धर्म्म के अनुसार हुई थी तथापि वह अपने प्राचीन धर्म्म की बड़ी प्रशंसा करता था। उसने ईसाइयों को उच्च पदों से निकाल कर पुराने धर्म्म को लाने का भी यत्न किया नगरों के लोग ईसाई हो चुके थे। गाँवों के लोग पुराने धर्म्म को मानते थे। इसीलिए उन्हें 'पैगन' (गाँव में रहनेवाला) कहा जाता है। प्राचीन धर्म्म को माननेवाला यह अन्तिम राजा था। इसने ईरानियों को पराजित किया किन्तु उधर लौटते समय यह मारा गया।

बर्बर-वंश

डेढ़ सौ वर्ष से सीमाओं पर जर्मन-वंश बढ़ते चले आते थे। प्रति वर्ष लड़ाइयाँ करते थे। उनकी संख्या बढ़ती जाती थी। रोमन नगरों को लूटकर वे धनाढ्य बनते गये और उन्होंने रोमन स्वभाव भी सीख लिये। रोमन लोग उनको सिपाही बना लेते थे। इसका प्रभाव भी उन पर पड़ा। डेशिया के चले जाने के बाद उनकी एक शक्ति बन

गई और सन् ३७६ ई० में उन्होंने रोम के साथ नियम-पूर्वक झगड़ा किया।

ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तरी एशिया के क्षेत्र में भी इस समय क्रान्तियाँ हो रही थीं। वहाँ के हूण नामक एक वंश ने गॉथ लोगों पर आक्रमण किया। उनसे हार खाकर गॉथ डेन्यूब से होते हुए रोमन-साम्राज्य में प्रविष्ट हुए। राजा वेलिया इस बात का निर्णय न कर सका कि उनको अपना शत्रु समझे या मित्र। पहले उसने उनको शरण में ले लिया किन्तु फिर उन्हें भोजन न दिया। सन् ३७८ में वह एक युद्ध में मारा गया और गॉथ रोमन-साम्राज्य के स्वामी बन गये।

दूसरा राजा थियोडोसियस जिसने सन् ३७५ ई० से सन् ३६५ ई० तक राज्य किया, स्पेन का रहनेवाला था। उसने गॉथों के भिन्न भिन्न वंशों में फूट डालने में बड़ी चतुराई दिखाई। उसने उनको अलग अलग करके अपने अधीन कर लिया या बाहर निकाल दिया। परन्तु डेन्यूब के नीचे बस जाने से रोमन-साम्राज्य में उनकी संख्या बढ़ती ही गई। रोमन-साम्राज्य ने जङ्गली जातियों को अपने भीतर लेकर अपने आपको परिवर्त्तित कर लिया था।

थियोडोसियस उन राजाओं में अन्तिम था जिनका सारे साम्राज्य पर शासन था। उसने अपने राजत्वकाल में मूर्ति-पूजा और मन्दिरों को बंद करके पैगन-धर्म्म की समाप्ति कर दी। मन्दिरों की धन-सम्पत्ति राजा या गिर्जे के लिए वक्फ़ कर दी गई। सन् ३६० ई० में एक आज्ञा निकाल कर उसने बलिदान करना

और पशुओं की अँतड़ियाँ निकालना घोर अपराध ठहराया और बुरी रस्मों का आचरण करनेवालों की सम्पत्ति ज़ब्त करना आरम्भ कर दिया। उसकी मृत्यु के पश्चात् साम्राज्य के दो भाग होगये। उसका एक पुत्र, ओर्काडस, पूर्व में राज्य करने लगा और दूसरा, हनोरियस पश्चिम में। हनोरियस केवल ग्यारह वर्ष का लड़का था। उसका अभिभावक स्टिलीको नाम का एक जनरल था। जब तक वह जनरल जीता रहा, गॉथ लोगों को वह दबाये रहा। जब हनोरियस पच्चीस वर्ष का हुआ, तब उसे ओलिम्पियस नामक एक व्यक्ति ने बहका दिया कि जनरल अपने पुत्र को सिंहासन पर बैठाना चाहता है। नवयुवक राजा ने सिपाहियों को बुला कर एक वक्तृता दी और संकेत मिलने पर उन्होंने राज्य के उच्च पदाधिकारियों का, जो जनरल के परम मित्र थे, मार डाला। स्टिलीको भाग कर एक गिर्जे में जा छिपा। यदि वह हिम्मत बाँधता तो ओलिम्पियस को दण्ड भी दे सकता था और राज्य भी प्राप्त कर सकता था, परन्तु वह अपनी इच्छा को मज़बूत न बना सका। ओलिम्पियस ने पहले उसे गिर्जे से बाहर निकलवाया और फिर वध का वारण्ट दिखा कर सन् ४०८ में उसकी हत्या कर डाली।

उसकी सेना ही ने अभी तक गॉथ लोगों को रोक रक्खा था। उसके मर जाने पर और कोई जनरल न रहा। गॉथों के

एलेरिक की लूट

राजा एलेरिक ने सन् ४१० में रोम का घेरा डाल दिया। जब उसने पूर्वी साम्राज्य

पर आक्रमण करके उसे जीत लिया था तब गॉथों ने उसे राजा बना लिया था। उसने होनोरियस पर भी आक्रमण किया। वह रेवेना के दुर्ग में भाग गया। रोम के लोग पतितावस्था में होने के कारण कुछ तैयारी न कर सके। एलेरिक इटली के नगरों को लूटता-पाटता आ रहा था। अब उसने सब मार्ग बंद कर दिये और नदी भी रोक दी। सहस्रों मनुष्य घरों और गलियों में मर गये। बहुत से रोग फैलने लगे। सेनेट ने दो दूत एलेरिक के पास भेजे। वे उलटे बड़े घमण्ड से बातें करने लगे कि 'तुम्हें संधि कर लेनी चाहिए, नहीं तो रोमवाले लड़ाई की तैयारियाँ कर रहे हैं।'

बर्बर राजा विलासिता में फँसे हुए लोगों की अवस्था को भली भाँति समझता था। वह हँस पड़ा और कहने लगा कि घास जितनी अधिक घनी होगी उतनी ही सुगमता से काटी जायगी। सुनो, नगर में जितना सोना, चाँदी और बहुमूल्य रत्न हैं वे सब मेरे सिपुर्द कर दो। दूतों ने कहा—"राजन्! यदि आपकी यही शर्तें हैं तो आप हमारे लिए क्या छोड़ते हैं?" राजा ने कहा—"तुम्हारा जीवन।" वे दोनों काँपते हुए लौट गये। रोमवालों ने शर्तें मान लीं और एलेरिक एक बार रोम से पीछे हट गया। जब शर्तें पूरी न हुईं तब उसने फिर रोम को घेर लिया, और राजा को गद्दी से उतार दिया। २४ अगस्त सन् ४१० ई० को अप्रसन्न होकर उसने नगर की लूट-मार आरम्भ

कर दी। जिस नगर ने ११६३ वर्ष संसार को सभ्यता सिखलाई वही अब बर्बरों के हाथ में पड़ गया। नगर में क़त्ल-ए-आम हुआ। गलियाँ लोथों से पट गईं। सब महलों और मकानों की सामग्री उतार ली गई। उनकी कारीगरी नष्ट कर दी गई। रोमन अमीरों के पुत्र और पुत्रियों को दास बना कर वह छठे दिन रोम से प्रस्थान कर गया। इसके बाद उसने इटली के नगरों को लूटना आरम्भ कर दिया।

किन्तु उसकी मृत्यु ने बर्बरों का सब क़ाम बिगाड़ दिया। उसके उत्तराधिकारी अथोल्फ ने रोमन-सम्राट् से संधि करके सेनापति के रूप में उसके साम्राज्य की रक्षा करना आरम्भ कर दिया। इसका कारण यह था कि हनोरियस की एक बहन थी। उसका नाम प्लेसिडिया था। उसे एलेरिक अपने साथ पकड़ ले गया था। अब वह अथोल्फ के पास रहने लगी। अथोल्फ ने स्पेन और गॉल से जर्मनों को निकाल कर एक गॉथिक राज्य बना लिया। ब्रितानिया के लोग भी इस समय रोमन-शासन से स्वतन्त्र हो गये। सम्राट् ने उनकी स्वतंत्रता भी स्वीकार कर ली। सन् ४२३ ई० में हनोरियस मर गया। उसके राजत्वकाल की एक और स्मरणीय घटना यह है कि जब वह पहले आक्रमण के पश्चात् रेविना से लौट आया तब रोम में एक तमाशा किया गया। उसमें ग्लेडियेटरों (लड़नेवाले क्रीतदासों) की लड़ाई का कौतुक देखने के लिए सहस्रों मनुष्य एक

नाट्यशाला में एकत्रित हुए। कटारें हाथ में लिये जब दो ग्लेडियेटर रङ्गमंच पर आये, तब सफ़ेद दाढ़ीवाला टेलीमेकस नामक एक व्यक्ति उनके बीच में घुस गया। लोग चिल्लाने लगे—हट जाओ, हट जाओ। वह पीछे नहीं हटा और कटारों के प्रहारों से लहूलुहान होकर नीचे गिर पड़ा। बूढ़े टेलीमेकस की जान तो चली गई, परन्तु लोगों के हृदय में उस खेल के प्रति ऐसी घृणा उत्पन्न हो गई कि सन् ४०४ ई० से यह प्रथा सर्वथा बन्द हो गई।

अल्थोफ के मर जाने के बाद प्लेसिडिया ने गॉल के सेनापति कान्स्टेण्टीन से विवाह कर लिया। उससे इसके दो पुत्र हुए। एक मर गया। दूसरे का नाम वेलीनेशियन था। अपने पति के मर जाने पर वह

हूण जर्नैल एटिला

कुस्तुनतुनिया चली गई और सेना की सहायता से उसने अपने छः वर्ष के बच्चे को राजा स्वीकार करा लिया। पचीस वर्ष तक उसने स्वयं राज्य किया। दो व्यक्ति इसके बड़े कृपापात्र थे। उनमें से एक का नाम बोनाफेस था जो अफ्रीका का गवर्नर था। दूसरा एकटियस था। यह रानी के पास ही रहा करता था। उसने रानी को समझाया कि बोनाफेस को वापस बुला लिया जाय और उधर बोनाफेस को उकसाया कि आज्ञा मानने से इन्कार कर दे। बोनाफेस ने वेण्डाल के राजा जनसरिक से मैत्री करके उसे अपनी सहायता के लिए बुला भेजा। प्लेसिडिया अफ्रीका गई, तो साक्षात्कार-

होने पर उसे सारा भेद खुल गया। वह बोनाफेस को साथ लेकर चली आई। उनके आने पर एकटियस ने विद्रोह कर दिया। यद्यपि उसकी पराजय हुई, तथापि बोनाफेस लड़ाई में घायल हो कर मर गया और वेण्डाल के राजा ने अफ्रीका पर अधिकार कर लिया।

इसी समय एटिला के हूण योरुप पर टूट पड़े। हूण जहाँ जाते थे वहाँ सब कुछ नष्ट कर डालते थे। उनसे भयभीत होकर लोग उन्हें जङ्गली हूण कहा करते थे। एटिला को इतिहास में "ईश्वर की फटकार" कहा जाता है। बाल्यावस्था में उसे एक देवता की तलवार मिल गई थी। उससे वह यह समझ गया कि यह उसे जगत् को विजय करने के लिए मिली है। एटिला का आकार बड़ा विलक्षण सा था। बड़ा सर, काला बदन, अन्दर धँसी हुई आँखें, चिपटी नाक, छोटा डील, बहुत मोटा शरीर और डाढ़ी के स्थान पर थोड़े से बाल। जब वह किसी पर क्रोध प्रकट करता था तब उसके नेत्र जल्दी जल्दी हिलते थे। वह सीदिया (तातार) का स्वामी था। सन् ४४१ से सन् ४५० ई० तक वह बराबर पूर्वी साम्राज्य को लूटता रहा। तीन बड़ी लड़ाइयों में उसने रोमन-सेना को परास्त कर दिया। राजा ने बहुत सा राजस्व और देश देकर उससे संधि कर ली। पूर्वी साम्राज्य पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् उसके हृदय में रोम पर आक्रमण करने का विचार उत्पन्न हुआ। इसके अनेक कारण थे। एक तो

यह कि प्लेसिडिया की लड़की हनोरिया अपने नौकर के साथ षड्यन्त्र करती हुई पकड़ी गई इसलिए उसे कुस्तुनतुनिया में निर्वासित कर दिया गया। वहाँ उसे दस-बारह वर्ष तक अविवाहित रह कर दुःख उठाना पड़ा। उसने वहाँ अपने आप को एटिला के हाथ समर्पण कर देने का निश्चय किया। इस कारण वह रोम को लौटा दी गई।

एटिला न केवल उस लड़की को चाहता था, वरन् उसके साथ बहुत सा दहेज भी माँगता था। एक और कारण यह हुआ कि बोनाफेस के मर जाने पर रोम में एकटियस का बड़ा प्राबल्य हो गया। प्लेसिडिया और उसका पुत्र उसके अधिकार में थे। एकटियस ने हूण लोगों का गॉल के विरुद्ध उपयोग किया। गॉल में एलेरिक का पुत्र थियेडोरिक शासन करता था। उसकी एक पुत्री वेण्डाल के राजा जनसरिक के लड़के से ब्याही थी। राजा को सन्देह हो गया कि लड़की उसको विष देने का षड्यन्त्र कर रही है। इसलिए उसकी नाक और कान काट कर उसे लौटा दिया। थियेडोरिक ने लड़की के अपमान का बदला लेना चाहा। उसने एटिला को उपहार भेजकर अपनी सहायता के लिए बुलाया। इसके साथ ही उत्तरी गॉल में फ्रेङ्क-वंश के मेरी-विञ्जियन परिवार के दो भाइयों ने राज्य पर दावा किया। एक भाई ने रोम से सहायता माँगी। दूसरे ने एटिला को सहायता के लिए बुला भेजा। जब एटिला हूण-सेना लेकर

आरलेनस में प्रविष्ट हुआ, तब उधर से थियोडोरिक की सेनायें गॉल की सहायता के लिए आगईं। एटिला पीछे हट गया, और सीन नदी पार करके निकल आया। चीलान के मैदान पर एक बड़ा भारी और निर्णायक संग्राम हुआ। उसमें लगभग दो-तीन लाख मनुष्य मारे गये। यद्यपि थियोडोरिक मारा गया तो भी गॉथ की वीरता से विजय रोमन लोगों के हाथ लगी। केवल रात पड़ जाने से एटिला का नाश बच गया। गॉथ उसका पीछा करना चाहते थे। परन्तु एकटियस ने समझा कि ये लोग बहुत शक्तिशाली हो जायेंगे। इसलिए वह स्वयं पीछे लौट आया और उसने उन्हें वापस कर दिया।

रोमवालों की यह अन्तिम विजय थी। सन् ४५२ ई० में एटिला ने फिर हनोरिया के हाथ और दहेज का दावा किया। और एल्पस को लाँघ कर कई नगर नष्ट कर दिये। रोमवाले घबरा गये। राजा ने पोपलियो और एक और व्यक्ति को एटिला के पास भेजा। उन्होंने बहुत सा रुपया और राजकुमारी को देना स्वीकार कर लिया। इधर एटिला को लोगों ने डराया कि एलेरिक रोम की विजय के बाद शीघ्र ही मर गया था। इसलिए उसे रोम पर आक्रमण न करना चाहिए। एटिला ने दूतों को आज्ञा दी कि राजकुमारी एक और स्त्री के साथ उसके पास भेज दी जाय।

एटिला और राजकुमारी का विवाह हो गया, परन्तु रात को उसकी एक नाड़ी फूट गई और सवेरे वह मरा हुआ पाया गया। उसकी मृत्यु पर हूण सेना के टुकड़े टुकड़े हो गये। राजा वेलशियन ने द्वेष से एकटियस का वध करा दिया। परन्तु अगले वर्ष मक्सीअस नामक एक व्यक्ति ने राजा की हत्या करा दी। राजा ने मक्सीअस की स्त्री का अपमान किया था। इससे उसने मक्सीअस के दो नौकरों को उकसा कर उसका वध करा दिया। इस प्रकार मक्सीअस राजा बन बैठा और वेलशियन की स्त्री को अपने साथ विवाह करने के लिए विवश करने लगा। उसने जनसरिक को सहायता के लिए बुला भेजा। वेण्डाल के राजा को रोम लूटने का अच्छा अवसर मिल गया। उसने पहले एक बेड़ा बना कर सिसली को लूटा था। अब उसने रोम पर धावा किया। मक्सीअस डर कर भाग गया। लोगों ने उसका वध करके उसे नदी में फेंक दिया। रोम ने मुकाबिले के लिए केवल बिशप लोगों का एक जुलूस निकाला। सन् ४५५ ई० में रोम में १४ दिन तक रात-दिन लूट-मार होती रही। ४५ वर्ष में जो धन संचित किया गया था, वह सब लूट लिया गया। जनसरिक वेलशियन की स्त्री एण्डोकेसन और उसकी दो लड़कियों को भी अपने साथ ले गया।

जनसरिक के आक्रमण

इस समय जर्मन-वंश रोमन-साम्राज्य को विजय कर रहे थे। स्पेन और दक्षिणी गॉल गॉथ लोगों के अधिकार में था,

मध्यवर्ती गॉल बर्गण्डियन के हाथ में, उत्तरी गॉल फ्रेङ्क-वंश के हाथ में, ब्रिटेन एङ्गलो सेक्सन के हाथ में, और अफ्रीका वेण्डाल के अधिकार में था। जर्मन-सेना इटली में मौजूद थी। यद्यपि वे अपने आपको राजा के अधीन कहते थे, परन्तु वे जो चाहते सो करते थे।

रोमन-साम्राज्य की समाप्ति

सन् ४७६ ई० में उडेकर नामक जर्मन-सेनापति रोम-नरेश आगस्टस रामूलस को सिंहासन से उतार कर रोम का राजा बन गया और उसने रोम की सेनेट की ओर से पूर्व के सम्राट् ज़ेनो को लिख भेजा कि दोनों साम्राज्यों के लिए एक ही सम्राट् पर्याप्त होगा और उडेकर उसके प्रतिनिधि के रूप में इटली में काम करेगा। वास्तव में उडेकर सम्राट् था और सिक्का भी उसके नाम का था। गस्टूलस रोमन-वंश की सन्तान था। उडेकर की दशा में बड़ा परिवर्तन यह हुआ कि रोमन-साम्राज्य रोमन के स्थान में ट्योटानिक हो गया। यद्यपि नाममात्र के लिए रोमन-साम्राज्य सन् ८०६ ई० तक बना रहा, तथापि यह एक प्रकार से पश्चिमी साम्राज्य का अन्त ही था। उस समय आस्ट्रिया के सम्राट् द्वितीय फ्रांसस ने राजकीय पद भी हटा लिया। पूर्वी साम्राज्य अब तक सुदृढ़ और शान्तिमय था। वह साम्राज्य यूनानी था। यूनानी रीति-नीति और स्वभाव रोम लोगों से भिन्न थे। वे वाणिज्य में निरत रहते थे और वाद-विवाद पर उनका बहुत अनुराग था। वे कौंसलों में ईसाई-धर्म्म के सिद्धान्तों पर

विवाद किया करते थे और बहु सम्मति से निर्णय करते थे। इससे ईसाई-ब्रह्मविद्या का जन्म हुआ। उन्होंने अपने ईरानी और हूण शत्रुओं को भी पीछे हटाये रक्खा।

पश्चिम में जर्मन और इटालियन बोलनेवाले लोग इकट्ठे रहने लगे। केवल एक इँग्लेण्ड से एङ्गलो सेक्सन लोगों ने रोमन लोगों को बिलकुल निकाल दिया और उनसे कुछ सीखना न चाहा। जिस समय एङ्गलो सेक्सन-वंशों ने स्वजन्म-भूमि सकण्डीनेविया से चल कर ब्रिटन लोगों को लूटना आरम्भ किया उस समय ब्रितानियावाले चार सौ वर्ष के रोमन-शासन के कारण पुरुषत्वहीन हो चुके थे। रोमन लोगों ने उनसे शस्त्र ले लिये थे और इन शताब्दियों के विदेशी शासन के नीचे वे अपनी रक्षा करना भी भूल गये थे। जब इन सागर-दस्युओं ने ब्रितानिया के लोगों पर आक्रमण आरम्भ किये तब वे उत्तर की ओर भागे। उधर से पिकट और स्काट लोगों ने इनको लूटना और मारना आरम्भ किया। इस पर ब्रितानियावालों ने रोम को प्रार्थना-पत्र लिखा। उसे ब्रिटनवालों का विलाप कहा जाता है। उसमें उन्होंने लिखा कि यदि हम समुद्र की ओर जाते हैं, तो समुद्र खाने दौड़ता है। तुमने हमारी रक्षा की है, इसलिए हमें आकर बचाओ। उधर रोम की दशा हम भली भाँति देख चुके हैं। उनको अपने घर की सुध लेना कठिन हो रहा था। उन्होंने किसी प्रकार की सहायता न भेजी। एङ्गलो सेक्सन लोगों ने पुराने

पूर्वी और पश्चिमी साम्राज्य

ब्रिटन लोगों का सर्वनाश कर दिया और उनकी स्त्रियाँ छीन लीं। इधर स्पेन, गॉल और इटली में जर्मन लोग लैटिन भाषा बोलने और बिलकुल रोमनों के सदृश रहने-सहने लगे। इसलिए इन भाषाओं को रोमानस भाषायें कहते हैं।

पश्चिमी साम्राज्य का तो इस प्रकार अन्त होगया। परन्तु पूर्वी साम्राज्य पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य तक जारी रहा। सम्राट् जस्टिनियन (सन् ५२७ से सन् ५६५ तक) के राजत्व-काल में उसके जनरल वेलेसेरियस ने शत्रुओं से 'प्रान्त' वापस लेने का यत्न किया। वह बड़ा वीर पुरुष था। सिपाही उससे प्रेम करते थे। उसने वेण्डाल से अफ्रीका को जीत करके अपना प्रान्त बना लिया और ईरानियों को हरा दिया। सिसली को भी जीत कर गॉथ लोगों को इटली से निकाल दिया। इस प्रकार जस्टिनियन नौ साम्राज्यों का सम्राट् बन गया चाहे ये साम्राज्य चिरकाल तक न रहें। क्योंकि सन् ५६८ ई० में लम्बार्ड नामक एक और जर्मन-वंश ने उत्तरी इटली पर विजय कर ली। दूसरा वंश आवार डेन्यूब नदी के पास बस गया।

हेराक्लीस (सन् ६१० से ६४१ तक) नामक एक और सम्राट् बड़ा वीर सेनापति था। वह ईरानियों को चार वर्ष तक परास्त करता रहा। उसने अवार-वंश को भी क्षीणबल कर दिया। उसके समय में अरब में इस्लाम का जन्म हुआ। इस धर्म्म के झण्डे के नीचे अरब लोग एकमत होकर विजय-मार्ग

पर अग्रसर हुए। उन्होंने शाम, मिस्र और अफ़्रीका पर विजय प्राप्त की। यूनानी लोग अपने साम्प्रदायिक भेदों के कारण एक दूसरे को नास्तिक समझते थे। उन्होंने अपने सहधर्म्मी ईसाइयों से एकता न की और अरबों की अधीनता स्वीकार कर ली। स्पेन में भी इस्लाम की पताका लहराने लगी। किन्तु फ़्रांस और योरुप को चार्ल्स मार्टल की वीरता ने बचा लिया।

इटली साम्राज्य से फिर अलग हो गई, क्योंकि मूर्ति-पूजा के विषय में रोम का बिशप अर्थात् पोप लियो यूनानी सम्राट् से अप्रसन्न था। रोम में पोप बड़े मजिस्ट्रेट बन गये थे। पोप ने फ़्रेङ्क लोगों के राजा की ओर रुख़ किया जिससे वह लम्बार्ड-वंश के विरुद्ध उसकी सहायता करे।

सन् ६८० ई० में फ़्रांस-नरेश शार्लिमेन पोप की ओर से रोम में सम्राट् बना दिया गया। उस समय से पश्चिमी साम्राज्य का नाम बदल कर रोमन-साम्राज्य हो गया। किसी भाग में जर्मन-वंशों का अंश अधिक था और किसी जगह रोमन-वंशों का। इसलिए कालान्तर में उन जातियों में भिन्नता उत्पन्न होती गई। नई जातियाँ बन जाने से साम्राज्य के टुकड़े टुकड़े हो गये। पूर्वी साम्राज्य तुर्कों की शक्ति का मुक़ाबला करता रहा। इन तुर्कों ने अरबों के साम्राज्य पर अधिकार कर लिया था। अन्त को यह साम्राज्य कम होते-होते केवल यूनानी राज्य रह गया। सन् १४५३ ई० में तुर्कों ने क़ुस्तुन-

दुनिया पर अधिकार कर लिया और पूर्वी साम्राज्य की समाप्ति हो गई।

आधुनिक योरुप की समस्त जातियाँ रोमन-साम्राज्य के विध्वंस से बनीं। समस्त योरुप पर रोमन क़ानून और रोमन धर्म्म का प्रभाव पाया जाता है। लैटिन जातियों पर यह प्रभाव अधिक और ट्यूटानिक पर कम हुआ। सम्भवतः इसी कारण से धार्मिक-सुधार के नियम ट्यूटानिक जातियों में अधिक प्रचण्डता से फैले।

—:o:—

दूसरा भाग—मध्य युग

सामान्य भूमिका

योरुपीय सभ्यता के मुख्य अवयव

मध्य युग के दो भाग हैं—(१) अन्धकार-काल तथा (२) पुनरुज्जीवन-काल। मध्य युग के पश्चात् वर्तमान युग भी दो भागों में बाँटा जा सकता है—(१) धार्मिक सुधार तथा (२) राजनैतिक विप्लव।

१ विषय-विभाग

(१) अन्धकार-काल (पाँचवीं शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक) में असभ्य क़बीलों के आक्रमणों के कारण योरुप की प्राचीन सभ्यता तथा साहित्य दब गये। इस काल में भिन्न भिन्न जातियों की भाषाओं तथा संस्थाओं का आरम्भ हुआ। दो बड़ी शक्तियें—'पवित्र रोमन-साम्राज्य' और 'पोप का प्रभुत्व' बड़े ज़ोरों पर थीं।

२ चारों विभागों की विशेषतायें

(२) पुनरुज्जीवन-काल (ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ से कोलम्बस द्वारा अमरीका की खोज, सन् १४९२ तक) में सभ्यता धीरे धीरे उन्नति करती रही, सामाजिक शासन ने भी अराजकता पर विजय पाई और राज्य नियमानुसार बनने लगे। इसकी अन्तिम शताब्दी में विद्याओं का पुनरुज्जीवन हुआ। इस काल का आरम्भ उन आविष्कारों और शोधों से हुआ था, जिन्होंने लोगों को इस तरह हिलाया था मानों वे नींद से उठे हों।

धार्मिक युद्ध, जो योरप की ईसाई जातियों ने यरोशलम को अपने अधिकार में लाने के लिए किये, इस काल के विशेष युद्ध थे।

(३) धार्मिक सुधार-काल (सन् १४९२ में अमरीका की खोज से १६४८ में वेस्ट फ़ेलिया की सन्धि तक) में बहुत से धार्मिक सुधार हुए और रोमन कैथॉलिक तथा प्रोटेस्टेंट सम्प्रदायों में परस्पर आन्दोलन होता रहा। सभी युद्ध मज़हबी थे। अन्तिम युद्ध जर्मनी में तीस वर्ष तक होता रहा, जो वेस्ट-फ़ालिया की सन्धि के अनुसार सन् १६४८ में समाप्त हुआ। इसके पश्चात् जो युद्ध हुए उनका कारण कोई खानगी झगड़ा था या राजनैतिक।

(४) राजनैतिक विप्लव-काल (वेस्टफ़ेलिया की सन्धि से बीसवीं शताब्दी तक) में भिन्न भिन्न घटनाओं तथा सिद्धान्तों के विस्तार के साथ साथ एकतन्त्र तथा स्वतन्त्र सिद्धान्तों में परस्पर आन्दोलन होने से जनतन्त्र विचारों की विजय होती रही। सभी देशों में एक या कई मनुष्यों के सम्मिलित राज्य की जगह प्रजातन्त्र ने ले ली। इस काल की केन्द्रस्थ घटना फ़्रांस की राज्यक्रान्ति थी।

अर्थात् अन्तिम काल के बौद्धिक, धार्मिक तथा राज-नैतिक विप्लवों से, जिनको पुनर्जागृति (रेनेसाँस), सुधार और राज्य क्रान्ति कहा जाता है, नई सभ्यता का नया दौर शुरू होता है। 'नया' शब्द का प्रयोग तो कर दिया है लेकिन बात सर्वथा ऐसी न थी। वास्तव में जो कुछ

३ संसार के इतिहास का रोम के पतन से सम्बन्ध

रोमन सभ्यता में मूल्यवान् था वह बिलकुल बच गया और आनेवाले ज़माने का इस पर क़ब्ज़ा हो गया। इस तूफ़ान का प्रभाव केवल यह हुआ कि सभ्यता का केन्द्र दक्षिण से उठ कर उत्तरीय योरुप में चला गया, पहले तात्कालिक राजनैतिक शक्ति, बाद में सामाजिक तथा बौद्धिक भी, रोमन के अधिकार से ट्यूटन लोगों के हाथों में चली गई।

यह तूफ़ान उठा तो बड़े ज़ोरों से, परन्तु अपने साथ बहुत कुछ बहा कर नहीं ले गया, बल्कि नील नदी के समान अपने किनारों पर नई मिट्टी की एक तह बैठा दी, जिस पर सभ्यता नये सिरे से बढ़नी शुरू हुई; या यों समझना चाहिए कि पुरानी सभ्यता की बुझती हुई अग्नि पर ताज़ी लकड़ियाँ डाल दी गईं, जो बुझने को ही थी कि एक-दम नई लकड़ियों में से चिनगारियाँ निकलने लगीं और आग ज़्यादा तेज़ी से भड़कने लगी।

मध्य युग में रोमन-प्रभुत्व के कारण रोमन और यूनानी सभ्यता के बीज भिन्न भिन्न स्थानों में फेंके गये थे। इसके साथ लोगों में ईसाई-मज़हब भी फैल गया। यह बीज उगने का समय था। इन शताब्दियों में कलाओं, विद्याओं, साहित्य तथा संस्थाओं ने वे रूप धारण किये, जो भविष्यत् में परिपक्व होने वाले थे। इनसे योरुप के भावी रूप का ढाँचा

४ मध्य युग का वर्तमान युग से सम्बन्ध

तैयार हो गया। एक शब्द में, मध्य युग का वर्तमान युग से वही सम्बन्ध है जो बचपन का यौवन से होता है।

५ रोम-द्वारा सभ्यता के तत्वों का संक्रमण

उत्तरीय या ट्यूटन जातियों ने रोम के द्वारा प्राचीन संसार से जो चीज़ें प्राप्त कीं, वे थीं (१) यूनानी-रोमन-सभ्यता, (२) ईसाई-मज़हब।

६ यूनानी रोमन-सभ्यता

इस यूनानी-रोमन-सभ्यता में कलायें, विद्यायें, दर्शन, साहित्य, क़ानून, रीति-रिवाज, भाव, सामाजिक प्रबन्ध म्युनिसिपल तथा साम्राज्य-शासन आदि सभी बातें सम्मिलित हैं। यह भारी उत्तरदान कॉनस्टेंटीनोपिल-साम्राज्य के द्वारा वर्तमान योरुप को मिला था। रोमन-साम्राज्य के भावों ने योरुप के भविष्य पर बड़ा प्रभाव डाला है। बहुत सी जातियाँ सदा इसी बात के लिए प्रयत्न करती रहीं कि किसी प्रकार फिर वही जगद्व्यापी साम्राज्य, जिसकी स्मृति तथा परम्परा पर लोग मोहित थे, स्थापित हो जाय। जिस प्रकार वे अपने व्यक्तिगत जीवन में ईसाई-मज़हब का आदर्श लाना चाहते थे उसी प्रकार शासन-सम्बन्धी मामलों को वे रोमन-साँचे में ढालना चाहते थे। महान् चार्लस का साम्राज्य तथा उसके बाद के जर्मन-राजों का 'पवित्र रोमन-साम्राज्य' पुराने रोमन-साम्राज्य का केवल पुनरुज्जीवन था, जिसका नमूना बॉसफ़रस के नये रोम में मौजूद था।

रोमन-क़ानून के क्रम ने अपने सुसिद्धान्तों तथा क्रियात्मक भावों के कारण बर्बर लोगों पर आरम्भ से ही अपना प्रभाव डाला है। जिस प्रकार उन्होंने यहूदी नैतिक नियम ग्रहण किये उसी प्रकार रोमन सिविल क़ानून भी। समस्त योरुपीय व्यवस्थापन तथा नियम-शास्त्र (लेजिसलेशन) की नींव रोमन-क़ानून—जैसा कि जस्टिनियन-संहिता में दिया है—है। राजनीतिज्ञों और क़ानूनी आदमियों पर उसका बड़ा प्रभाव था। विशेष कर मध्ययुग में जब कि सारा योरुप गड़बड़ में पड़ा था यह क़ानून समाज को सङ्गठित करने और न्याय करने के काम आता था। ऐसा कोई योरुपीय क़ानूनदाँ नहीं था जिसने रोम की बुद्धिमत्ता से लाभ न उठाया हो।

रोम के विनाश के बाद जो कुछ श्रेष्ठ कलायें तथा साहित्य बच निकला वह नई सभ्यता का एक बड़ा भाग बन गया। आरम्भ में बर्बर आक्रमणकारी इनसे सर्वथा उदासीन थे; यूनानी मूर्त्तिकारों की सर्वोत्तम कृतियाँ गिरे हुए मकानों एवं नगरों के नीचे दबी रहीं तथा प्राचीन सन्तों और कवियों की हस्तलिखित पुस्तकें गिरजाघरों आदि जैसे स्थानों में सड़ती रहीं, क्योंकि वे ईसाई-मज़हब के विरुद्ध समझी जाती थीं। फिर भी मध्य-युग के वास्तु-कला-विशारद एवं दार्शनिक पुराने यूनान तथा रोम के ही शिष्य थे। इस काल के अन्त में पश्चिमीय विद्वानों के हृदय में उनके प्रति प्रशंसा तथा प्रेम उत्पन्न

हो गया, जिसने एक बौद्धिक आन्दोलन—पुनर्जागृति ('रेनेसाँस') की उत्पत्ति में बड़ी साहयता मिली।

रोम ने योरुपीय जातियों को ईसाई-मज़हब प्रदान किया। इसने उनके भविष्यत् पर एक भारी प्रभाव डाला। उनके विचार, साहित्य, वास्तु-कला, चित्र-विद्या तथा मूर्त्तियाँ इसी का परिणाम हैं। योरुप में इसने गिरजे, मठ तथा स्कूल बनाये। इसने दासत्व (सर्फ़डम) को दूर करने में मदद दी। इसी के कारण धार्मिक युद्ध हुए, युद्धों के कारण शौर्य (शिवलरी) का जन्म हुआ। मध्य इतिहास में इसने 'पोप का प्रभुत्व' का एक अध्याय बढ़ाया और वर्त्तमान युग में 'सुधार' का। इससे कई युद्ध भी हुए। इसने उनके ज़ीवन को बड़ा प्रभावान्वित किया। इसी के द्वारा उनकी संस्थायें बनीं। उनका इतिहास ईसाई-मज़हब का इतिहास है। ईश्वर की एकता, मनुष्य का भ्रातृभाव तथा आत्मा का अमरत्व इसी ने उन्हें सिखलाये।

७ ईसाई-मज़हब

ट्यूटन जातियों के अन्दर, जिन्हें ये वस्तुएँ प्राप्त हुई थीं, अपनी भी कुछ विशेषतायें थीं। यद्यपि उनके पास विज्ञान, दर्शन और कलायें न थीं किन्तु फिर भी एक वस्तु इनसे बढ़कर थी—वह है धर्म तथा मनुष्यत्व का विशेष गुण। इन व्यक्तिगत गुणों के अनुसार ही उनका भविष्यत् का निर्माण हुआ। उनके चरित्र के चार बड़े अङ्ग थे—सभ्यता की इच्छा और क्षमता-योग्यता, वैयक्तिकमत

८ ट्यूटन जातियाँ

स्वतन्त्रता का प्रेम, व्यक्तिगत भक्ति और अनुराग, तथा स्त्री-जाति का सम्मान।

तुर्कों के साथ तुलना करने से उनकी विशेषता मालूम हो जाती है। कई सदियों तक तुर्क योरपवासियों के साथ रहे लेकिन फिर भी उनमें वह सभ्यता न आई। ट्यूटन एक अच्छी नस्ल से थे। उनके अन्दर जीवन तथा चरित्र पाया जाता था। उनमें सभ्यता को अपनाने की शक्ति थी। उसे बढ़ाने और फैलाने की भी उनमें असीम योग्यता थी।

९ सभ्यता के लिए उनकी योग्यता

वे खुले हुए स्थानों में रहते थे। दीवार से घिरे हुए नगरों को वे पसन्द न करते थे। इसी कारण आठवीं शताब्दी तक जर्मनी में कोई नगर नहीं बसा था। अपने सेना-नायक के साथ रहते हुए भी उनमें पूर्ण पारस्परिक स्वतन्त्रता होती थी। उनकी सभाओं में, जहाँ पर सभी मामलों पर विचार होता और सम्मति ली जाती थी, स्वतन्त्रता से काम लिया जाता था।

१० उनका वैयक्तिकगत स्वतन्त्रता का प्रेम

इस गुण का रोमन-रीति-रिवाज के साथ सम्मिलन होने से योरुपीय देशों में जागीरदारी प्रथा शुरू हुई। इसीमें प्रतिनिधि-शासन का बीज मौजूद था, जिससे कालान्तर में वर्तमान पार्लमेण्ट सभाएँ बनीं। इसी कारण इनका झुकाव प्रॉटेस्टेंटिज़्म की ओर था।

उस जाति की भक्ति एवं अनुराग थियोडोरिक की एक प्रसिद्ध

घटना से प्रकट होता है। इस सरदार के सात आदमी इसके शत्रु एरमेनरिच ने कैद कर लिये थे। वह रोता था, उनके बिना वह जीना नहीं चाहता था। एरमेनरिच को इसने, बदले में, आठ सौ कैदी तथा उसका लड़का देने का प्रयत्न किया। किन्तु वह इसका समस्त राज्य माँगता था। इसने कहा:—'यदि मुझे समस्त संसार का राज्य देना पड़े तो दे दूँगा लेकिन अपने साथियों को कभी न छोड़ूँगा।' थिओ-डोरिक ने अपना वचन पूरा किया और स्वयं वन में चला गया। जागीरदारी के अन्दर इस गुण ने एक भारी ज़ंजीर का काम किया और उसे मज़बूत बनाये रक्खा।

११ उनकी व्यक्तिगत भक्ति तथा अनुराग

प्रसिद्ध ऐतिहासिक गिब्बन ने योरुपीय इतिहास में श्रेष्ठ साहित्य के तत्त्व को बहुत ऊँचा स्थान दिया है और ईसाई-मज़हब का वह इसे अवनति की ओर ले जानेवाला तत्त्व कहता है। धार्मिक ऐतिहासिक मज़हब को ही सब कुछ समझते हैं। अन्य कई ट्यूटॉनिक चरित्र को सबसे बढ़कर मानते हैं और जर्मन साहस स्वतन्त्रता तथा उन्नति को अपना आधार मानते हैं। वास्तव में योरुप के इतिहास में सभी ने थोड़ा बहुत काम किया है। वर्तमान सभ्यता एक मिश्रित उपज है, जो सभी तत्त्वों के मिलने तथा उनके पारस्परिक आदान-प्रदान से पैदा हुई है।

१२ योरुपीय इतिहास में श्रेष्ठ साहित्य, ईसाई-मज़हब तथा ट्यूटन-तत्त्व का सापेक्ष महत्त्व

योरुप के पश्चिमीय किनारे पर ट्यूटन लोगों के साथ केल्टों का युद्ध चल रहा था। इधर स्लव लोग ट्यूटनों को दबा रहे थे। उधर मुसलमानों के उत्कर्ष से पूर्व ईरान के राजा कुस्तुनतुनिया-सम्राटों के प्रतिद्वन्द्वी थे। अरब पहले मरुभूमि में पड़े थे। हजरत मुहम्मद ने उनमें नया जीवन डाला था। जब ग्यारहवीं शताब्दी में अरबों की ताकत कमजोर पड़ने लगी तब तुर्कों ने इस्लाम को सजीव बनाया। ये तुर्क ही हैं जो पन्द्रहवीं शताब्दी में कुस्तुनतुनिया पर इस्लाम का झण्डा फहराते दिखाई देते हैं।

१३ केल्ट, स्लव तथा दूसरे लोग

अन्धकार-काल

पहला अध्याय

ट्यूटन क़बीलों का प्रवसन तथा बस्तियाँ

सन् ३७६ में आक्रमणकारियों ने पश्चिमी रोमन-साम्राज्य को आ दबाया। ४७६ में बर्बर ओडवेकर ने रोमन-सम्राट् को सिंहासन से उतार दिया। एक जगह से दूसरी जगह जाने का यह समय 'महा प्रवसन' कहलाता है। ४७६ में समस्त रोमन-राज्य ट्यूटन लोगों के हाथ में चला गया। सौ बरस तक जर्मन क़बीले चलते रहे। जर्मनी के मध्य से नई जातियाँ आगे बढ़ती रहीं और या तो अपना राज्य आगे बढ़ाती रहीं या अपना स्थान पीछे आने वाले क़बीलों के हवाले करती गईं।

१४ प्रवसन का समय

इटेलियन अमीरों की भूमि पर अधिकार करके ओडवेकर ने उसे अपने सरदारों में बाँट दिया था। यह सत्रह वर्ष तक राज्य करता रहा। ऑस्ट्रो-गॉथिक नेता थियॉडोरिक ने इस पर आक्रमण करके इसे अपने वश में कर लिया। ये लोग कुस्तुनतुनिया-सम्राट् के मित्र थे और दक्षिणी डेनयूब से आये थे। उन्होंने थ्रेस

१५ ऑस्ट्रोगॉथ्स का राज्य

तथा मेसेडोनिया को खूब लूटा। जब थियॉडोरिक ने इटली पर आक्रमण करने की आज्ञा माँगी तब सम्राट् ने सहर्ष आज्ञा प्रदान की। लगभग दो लाख ऑस्ट्रोगॉथिक मनुष्य, स्त्रियाँ तथा बच्चे इटली को रवाना हुए। बीस हज़ार लदे हुए छकड़े और पशु—भेड़, बकरी तथा गौएँ—भी उनके साथ थे। वे इटली पर अपना स्वत्व जमाना चाहते थे। सात सौ मील का सफ़र था। राह में बरफ़ पड़ रही थी। अन्य क़बीलों ने उनको रोका। फिर भी थियॉडोरिक ने साहस न छोड़ा, आशायें दिला कर अपने साथियों को वह आगे बढ़ाता गया। ४८६ में इटली-वासियों के लिए एक नया दल और आ पहुँचा। तीन बरस तक ओडवेकर लड़ता रहा; अन्त में शत्रु ने उसे क़ैद कर लिया और थियॉडोरिक ने सहभोज के लिए बुला कर उसका वध कर डाला। विजेता ने तिहाई भूमि अपने सरदारों में बाँट दी। सन् ५२६ में वह मर गया। उसका तेंतीस साल का राज्य शान्ति और समृद्धि का राज्य था।

थियॉडोरिक का प्रधान सचिव केसियाडोरस था। यह एक बड़ा राजनीतिज्ञ तथा लेखक था। उसकी इच्छा थी और उसके लिए वह प्रयत्न करता था कि किसी तरह विजेता और विजित लोग परस्पर मिल कर एक रोमन-गॉथिक जाति बन जायँ। यदि ऐसा हो जाता तो इटली उन सब विपत्तियों से बच जाती जो उसे पूर्व के सम्राटों और जर्मन-सम्राटों के साथ सम्बन्ध रखने के कारण उठानी पड़ीं।

थियॉडोरिक के राज्य की सीमायें इटली, सिसली, दक्षिणी गॉल, डेनयूब तथा एड्रियाटक का मध्यवर्ती प्रदेश तक थीं। उसकी बुद्धिमत्ता तथा न्यायशीलता इतनी प्रसिद्ध थी कि पड़ोस की ट्यूटन-जातियों के झगड़े निर्णयार्थ उसके पास आते थे। अपने अन्तिम समय में उसने बोथियस और सिम्मेचस पर बेवफ़ाई का दोषारोपण करके उनका वध करवा डाला। बोथियस ने जेल में 'फ़ासफ़ी कँनसोलेशियों' या 'दर्शन की सान्त्वना' नामक एक पुस्तक लिखी थी।

उत्तरी गॉल तथा स्पेन में विसीगॉथ क़बीले थे। इनमें यूरिक नामक एक बड़ा राजा हुआ, जिसने सन् ४६६ से ४८३ तक राज्य किया। फ्रेंक राजाओं ने जब इन्हें पाईरीनीस-पर्वत से दूर हटा दिया था तब इन्होंने केवल स्पेन पर ही अपना स्वत्व जमा रक्खा। ७११ में रॉडेरिक, अन्तिम गॉथ राजा, मारा गया और स्पेन में मुसलमानों का राज्य प्रारम्भ हो गया।

१६ विसीगाथ क़बीलों का राज्य

पाँचवीं शताब्दी के मध्य में बरगण्डियन क़बीले वर्तमान सेवाए में जाकर आबाद हो गये; और धीरे-धीरे दक्षिण-पूर्वी फ़्रांस तथा पश्चिमी स्विट्ज़रलैण्ड को अपने अधिकार में लाने लगे। इस राज्य के एक भाग का नाम अभी तक बरगण्डी है। इन्होंने गॉल में पैर ही जमाये थे कि उत्तरी फ़्रांस के क्लॉविस राजवंश ने इन्हें अपने अधीन कर लिया।

१७ बरगण्डियन क़बीलों का राज्य

उत्तरी अफ्रीका जीत कर वेण्डाल कबीलों ने कारथेज को अपनी राजधानी बनाया। ये जहाज़ों में घोड़े भर ले जाते थे और किनारों पर उतर कर, घोड़ों पर सवार हो शहर को लूट लिया करते थे। अफ्रीका के अतिरिक्त उन्होंने कॉरसिका और सारडिनिया भी जीत लिये थे। स्वयं 'एरियन' ईसाई होने के कारण वे दूसरे ईसाइयों को बहुत कष्ट पहुँचाते थे। इतने में सम्राट् जसटीनियन का सेनानायक वेलीसेरियस अफ्रीका को अपने स्वामी के राज्य में सम्मिलित करने के लिए वहाँ पहुँचा। वेलीसेरियस के सफल हो जाने पर बहुत से लोग उसकी सेना में भरती हो गये और कुछ दूसरे कामों में लग गये। इस प्रकार वेण्डाल कबीले का अस्तित्व ही मिट गया, केवल नाम-मात्र शेष रह गया।

१८ वेण्डाल कबीलों का राज्य

फ्रेङ्क कबीले, जिनके नाम से गॉल का नाम बदल गया तथा जिन्होंने नई फ्रेञ्च जाति की नींव रक्खी, रोम के पतन से लगभग सौ साल पहले राईन नदी के किनारे आबाद हुए थे। उनका मेरोविनजियन नाम मेरोविग से निकला है। मेरोविग उनका एक पूर्व-पुरुष था। उनका एक राजा क्लोविस भी था, जो बड़ा निर्दयी और कपटी था। रोम के पतन के समय उसने अपना स्वतन्त्र राज्य बनाने का निश्चय किया। सन् ४८६ में उसने गॉल के रोमन-अधिकारी पर

१९ मेरोविनजियन, केरोलिञ्जियन कबीले

आक्रमण करके उसे पराजित कर दिया। इस प्रकार पाँच सौ वर्ष फ्रांस में स्थापित रोमन-राज्य समाप्त हो गया। इसके पश्चात् उसने दूसरे ट्यूटन क़बीलों को जीतना आरम्भ किया। 'चर्च' का 'विशप' उसका सहायक था। क़ुस्तुनतुनिया के सम्राट् ने ख़िलअत भेजकर उसे अपने अधीन कर लिया था। इससे प्रजा पर उसका बहुत प्रभाव पड़ा।

क्लोविस ने पेरिस को अपनी राजधानी बनाया। पेरिस शब्द 'पेरिसी' से निकला है, जो एक केल्टिक क़बीले का नाम था। उसकी मृत्यु (सन् ५११) पर उसके चार लड़कों में उसका राज्य बँट गया। डेढ़ सौ बरस तक लड़ाई-झगड़े होते रहे। उसके बाद मेरोविनजियन राजा बिलकुल कठपुतली से बन गये। उस समय फ्रेङ्क राज्य के दो हिस्से थे— आस्ट्रेलिया या वर्तमान जर्मनी और नियूस्ट्रिया या वर्तमान फ्रांस। पूर्वी भाग—आस्ट्रेलिया अधिकतर ट्यूटॉनिक था और पश्चिमी रोमन। हर एक भाग का बड़ा अफ़सर ड्योढ़ीवान (मेजर डे मस) था। कुछ समय के बाद पूर्वी ड्योढ़ीवान की शक्ति कम हो गई और फिर केरोलिञ्जियन नाम से उनका वंश चला।

एक आस्ट्रेसियन परिवार के तीन मनुष्यों—पिपिन द्वितीय, चारलेस-मारटल और पिपिन तृतीय—पिता, पुत्र और पौत्र—ने नियूस्ट्रिया पर विजय प्राप्त कर सब राजकाज अपने हाथ में कर लिया। चारलेस ने सन् ७३२ में मुसलमानों पर भी एक भारी विजय पाई थी।

या तो इस कबीले के लोगों की लम्बी दाढ़ियों (लाँङ्ग बीयर्ड) या लम्बे कुल्हाड़ों (हेंडल-एक्स) के कारण इसका नाम लॅम्बार्ड पड़ा था। वे पहले पूर्वी सम्राट् के अधीन रहते थे। बाद में उन्होंने इटली को जीतने का निश्चय किया। वे अपने नेता अल्बॉयन की अध्यक्षता में एल्प्स-पर्वतों को पार करके नदी की तराई में आ उतरे। यहाँ पर उन्होंने तबाही फैला दी। कई वर्ष तक लड़ाइयाँ करने के पश्चात् उन्होंने अपना एक राज्य बना लिया।

२० लॅम्बार्ड कबीले का राज्य

ईसाई-मज़हब की शरण में जाने पर उनकी आदतें ठीक हो गईं। पहले वे एरियन थे, बाद में रोमन कैथॉलिक हो गये। सन् ७७४ में महान् चारलेस या शारलेमन ने इटली को जीत लिया और लमबार्डों का राज्य समाप्त कर दिया। परिणामस्वरूप देश की राजनैतिक एकता छिन्न-भिन्न हो गई और उसमें छोटे छोटे अनेक राज्य बन गये जो मध्य-युग के अन्त तक बने रहे।

पाँचवीं शताब्दी में रोम ने ब्रिटेन से अपनी फ़ौजें बुला ली थीं। इसलिए अरक्षित होने के कारण पिक्ट तथा स्कॉट लोगों ने उत्तर से और एङ्गलो-सेक्सन लुटेरों ने पूर्वी समुद्र से ब्रिटेन पर आक्रमण करने शुरू कर दिये।

२१ एङ्गलो-सेक्सन लोगों की ब्रिटेन-विजय

रोमन लोग उस समय अपने शत्रुओं से युद्ध कर रहे थे। इसलिए वे ब्रिटेनवासियों की सहायता न कर सके। इस पर ब्रिटेन ने एक और भी भारी भूल की। लुटेरों के एक दल के साथ मैत्री करके उन्होंने उसे अपनी सहायता के लिए बुला भेजा, जिसके बदले में उन्होंने उसे कुछ धन तथा भूमि भी दी। इस प्रकार ४४६ में दो जूट-सरदार, हेनगेस्ट और हॉर्सा, ब्रिटेन में आये और उन्होंने पिक्ट लोगों को भगा दिया। दोनों ने अपने अन्य मित्रों को भी बुला भेजा। ये लोग एङ्गल और सेक्सन थे।

बहुत से जहाज़ों तथा लुटेरों के दलों को देख कर ब्रिटेनवासी घबरा उठे। वे अब समझे कि उन्होंने भूल की है। लेकिन अब क्या हो सकता था? नवागत लुटेरों को भूमि देने का वचन वे पूरा न कर सके, इसलिए अभ्यागतों ने बलपूर्वक उनसे भूमि छीननी चाही और युद्ध करके ब्रिटेन को पराजित कर दिया। पद पद पर उन्हें रोका गया। सौ बरस तक यह आन्दोलन जारी रहा। छठी शताब्दी के अन्त तक ब्रिटेनवासी या तो भाग गये या नष्ट हो गये या दास बना लिये गये। इसके साथ ही ईसान-मज़हब का, जो रोमन-राज्य-काल में बहुत फैला था, अन्त हो गया। लोगों को जिस प्रकार वेल्ज़ के पर्वतों में भगाया गया था, वह कथा बड़ी ही करुणाजनक है। ब्रिटेन के प्रसिद्ध राजा आरथर ने बड़ी वीरता से लुटेरों का सामना किया था।

एङ्गल, सेक्सन तथा जूट, ये तीनों क़बीले, ब्रिटेनवासियों ने जिन्हें सेक्सन का नाम दे रक्खा था, अपने आपको एङ्गल कहते थे। इसी से ब्रिटेन का नाम एङ्गललेण्ड अर्थात्, इँगलेण्ड पड़ा। एङ्गल लोगों के आठ-नौ राज्य थे। उनमें नॉर्थम्ब्रिया, मरशिया तथा वेसेक्स बड़े थे। दो सौ साल तक उनमें आन्दोलन होता रहा। कभी एक राजा बाज़ी ले जाता और कभी दूसरा। अन्त में एग्बर्ट (सन् ८०२ से ८३६ तक) समस्त इँग्लेण्ड का पहला राजा बना।

दूसरा अध्याय

ईसाई-मत का प्रसार

जिन क़बीलों ने पश्चिम में रोमन-साम्राज्य पर अपना स्वत्व जमाया था उनके इतिहास की सबसे महत्त्व-पूर्ण घटना उनका ईसाई बनना है। इसके दो कारण थे। पहला यह कि यह धर्म जो उनके सम्मुख आया था बहुत ऊँचा था और दूसरे उनके पहले मज़हब का उन पर कोई प्रभाव न था।

२२ विषय-प्रवेश

मॉनटेस्क्यू का कहना है:—'जिनका अपना कोई घर नहीं है वे कभी मन्दिर नहीं बनाते। जिनका अपना मन्दिर नहीं है उनको अपने मज़हब से कभी प्रेम नहीं हो सकता।' उन लोगों के मन्दिर जङ्गल तथा वृक्षों के झुण्ड थे। जिस प्रकार वे अपने पुराने निवास-स्थान को छोड़कर नये स्थान ढूँढ़ते थे उसी प्रकार उन्होंने अपने पुराने विचार त्याग कर नया मज़हब ग्रहण कर लिया। उनकी कोई मज़हबी किताब न थी। जिस मज़हब की कोई आधार-स्वरूप पुस्तक नहीं होती वह गाथाओं पर ही निर्भर रहता है। इसलिए उसको तिलाञ्जलि दे देना कठिन नहीं होता। ईसाई-मज़हब की विजय एक प्रकार से राज्य-सम्बन्धी विजयों से बढ़ कर थी।

सन् ३१३ में कॉन्स्टेंटाइन ने ईसाई-मज़हब को राजधर्म बनाया था। धीरे धीरे प्रचारकों के उत्साह से वह साम्राज्य की सीमाओं से बाहर फैलने लगा। उन्होंने आयर्लैण्ड, स्कॉटलैण्ड तथा जर्मनी के जङ्गलों में उसका प्रचार किया।

२३ रोम के पतन से पहले ईसाई-मज़हब की उन्नति

पाँचवीं शताब्दी के अन्त होने के पहले ही ईसाई-मज़हब का साम्राज्य रोमन-साम्राज्य से बहुत आगे बढ़ गया था। जिन असभ्य क़बीलों ने रोम पर आक्रमण किया था, वे ईसा की शरण में आने से स्वयं कुछ नरम पड़ गये थे। इलेरिक ने, जो ईसाई न था, चर्च की सम्पत्ति तक को नहीं छोड़ा और वेण्डाल राजा जीसेरिक ने पोप ल्यू की प्रार्थना पर रोम-निवासियों को प्राणदान दे दिया। इसी प्रकार इँग्लेण्ड पर जिन असभ्य क़बीलों ने आक्रमण किया था वे ईसाई नहीं हुए थे। इसलिए उन्होंने रोम के आक्रमणकारियों की अपेक्षा अधिक निर्दयता से काम लिया।

ईसाई-मज़हब सबसे पहले गॉथों में फैला। लेकिन फैला क़ैदियों के द्वारा। गॉथों ने डेन्यूब पर आक्रमण करके वहाँ के बहुत से आदमी पकड़ लिये थे। उनमें से कुछ क़ैदी ईसाई थे। उलफ़िलास नामक एक क़ैदी ने गॉथिक भाषा में बाइबिल का ऐसा अनुवाद किया जिससे गॉथों को युद्ध के लिए उत्तेजना मिलती थी। इसी प्रकार वेण्डाल,

२४ गॉथ, वेण्डाल तथा अन्य क़बीलों का ईसाई-मज़हब में प्रवेश

सुएवी तथा वरगण्डियन भी ईसाई होगये। सन् ३२५ में निज़े-सम्मेलन ने एरियन लोगों का बहिष्कार कर दिया था। क्योंकि ये क़बीले एरियन थे इसलिए उन्हें दोबारा ईसाइत की दीक्षा की आवश्यकता थी।

फ़्रेङ्को का ईसाई होना

एक किंवदन्ती है कि एक बार फ़्रैङ्कों का राजा क्लोविस एक क़बीले के साथ युद्ध कर रहा था। उसकी हालत नाज़ुक थी। इसलिए उसने ईसाई-ईश्वर से सहायता की याचना की। वह जीत गया। इस घटना के पश्चात् उसने अपनी रानी क्लाटिल्डा की प्रेरणा से ईसाई-मज़हब ग्रहण कर लिया। कथा से यह बात स्पष्ट है कि यह केवल अन्धविश्वास था। वे शकुनों में विश्वास रखते थे। यदि उनके देवता युद्ध में उनकी सहायता न करते तो वे उन्हें तिलाञ्जलि देकर दूसरों को ग्रहण कर लेते थे। बलगारियन लोगों में प्लेग फैल गई। उन्होंने सहायतार्थ ईसाई-मज़हब की शरण ली। वरगण्डियन लोगों ने शत्रुओं से तङ्ग आकर अपने देवताओं से मदद माँगी। इच्छा पूर्ण न होने पर उन्होंने अपने देवतों को अशक्त समझा और ईसाई हो गये। उस समय धर्म-परिवर्तन एक जातीय कार्य था न कि वैयक्तिक। रोमन कैथॉलिक हो जाने से फ्रेङ्कों की शक्ति बढ़ने लगी। एक छोटे से राज्य के शासक से फ्रेङ्क-राजा पश्चिमी योरुप का सम्राट् बन गया।

डेढ़ सौ वर्ष तक एङ्गल तथा रोमन ईसाई नहीं बने। किन्तु जिन केल्ट लोगों को उन्होंने वेल्ज़ की पहाड़ियों में भगाया था, वे ईसाई ही रहे और आक्रमण-कारी शत्रुओं को अपने मज़हब में लाने के लिए उन्होंने कभी इच्छा नहीं की।

२६ इङ्गलेण्ड में ईसाई-प्रचार

एङ्गल तथा सैक्सन लोगों को रोमन और आयरिश-प्रचारकों ने ईसाई बनाया। ५९६ में पोप ग्रेगरी प्रथम ने आगस्टाइन को चालीस मनुष्यों के साथ इँग्लेण्ड में प्रचारार्थ भेजा। ग्रेगरी का ध्यान इँग्लेण्ड की ओर एक विशेष घटना से गया था। पोप होने से कुछ वर्ष पहले एक बार वह रोम की मण्डी में से गुज़र रहा था। वहाँ पर उसने कुछ अँगरेज़ बन्दी बिकते देखे। उनकी सुन्दरता से प्रभावित होकर उसने पूछाः— 'ये कौन हैं ?' उत्तर मिला 'एङ्गल हैं !' तब बड़े आश्चर्य से पोप ने कहा, 'एङ्गल ! नहीं, ये तो 'एञ्जल' (स्वर्गदूत) हैं; इन्हें स्वर्ग में रहना चाहिए।'

आगस्टाईन और उसके साथी केण्ट के राजा एथलबर्ट के पास गये। उसकी रानी बेर्था फ्रांस की राजकुमारी थी। वह पहले से ही ईसाई थी। उसी की प्रेरणा से राजा ने आग-स्टाईन की बातें सुनीं और बाद में सकुटुम्ब ईसाई होगया। इस प्रकार इँग्लेण्ड में केण्ट की राजधानी केण्टरबरी ईसाई-मत का केन्द्र बन गई।

केण्ट से ईसाई-प्रचारक नार्थम्बरिया के शासक एडविन

के पास गये। उसने अपने मंत्रियों की एक सभा की और उसमें नये मज़हब को ग्रहण करने का प्रश्न उपस्थित किया। एक वृद्ध पुरुष ने खड़े होकर कहा:—"राजन्, मनुष्य का जीवन उस पत्नी का सा है जो अँधेरी रात में आँधी से दुःखित होकर किसी घर में एक द्वार से प्रविष्ट होता है और थोड़ी देर तक वहाँ गरमी तथा प्रकाश का आनन्द लेकर दूसरे द्वार से निकल जाता है। वह पत्नी कहाँ से आता है? और कहाँ चला जाता है?—यह कोई नहीं बता सकता। यदि हमारे अतिथि इस रहस्य को बता सकें तो हमें उनके मज़हब को ग्रहण कर लेना चाहिए।" परिणाम-स्वरूप ६२७ में अपने प्राचीन देवपूजन को त्याग कर राजा और उस सभा के सभ्य ईसाई होगये।

सन् ६२७ में इँग्लेण्ड के छोटे छोटे राज्य आपस में लड़ रहे थे। एड्विन मरशिया के पेगन राजा के साथ युद्ध करता हुआ मारा गया। इसलिए नार्थम्बरिया फिर पेगन होगया। इसको दोबारा ईसाई बनाना आयरिश-प्रचारकों का काम था। आयर्लेण्ड-वासियों को सेण्टपेट्रिक ने ईसाई बनाया था। पाँचवीं शताब्दी के पूर्व ही इस टापू का एक बड़ा भाग ईसाई होगया था।

२७ केल्टिक चर्च सम्प्रदाय

आयरिश लोगों में मज़हब के प्रति बड़ा जोश था। आयरिश-चर्च (सम्प्रदाय) ने अपने प्रचारक सभी दिशाओं में भेजने शुरू किये थे। कुछ समय के लिए तो ऐसा प्रतीत होने

लगा मानों पश्चिम में रोमन-चर्च के स्थान में केल्टिक-चर्च फैलेगा। इसका एक मठ ५६३ में आईयोना में स्थापित हुआ था।

एक बार नार्थम्बरिया के राजा ओस्वाल्ड ने भागते समय आईयोना के मठ में आश्रय पाया। इस कारण उसके कहने से ६३५ में आईयोना के कुछ प्रचारक नार्थम्बरिया गये और उन्होंने उस प्रदेश को दोबारा ईसाई बनाया। रोमन तथा केल्टिक सम्प्रदायों में परस्पर बहुत द्वेष था; उनकी रीतियों, जैसे ईस्टर रखने का समय और बाल कटाना आदि में अन्तर था।

२८ केल्टिक मिशन नार्थम्बरिया को

दोनों दलों का झगड़ा निबटाने के लिए ओस्वाल्ड ने ६६४ में एक सम्मेलन किया, जिसमें दोनों ओर से खूब वाद-विवाद हुआ। अन्त को रोमन पादरी विल्फ्रिड ने कहा, 'ईसा ने स्वर्ग की कुञ्जियाँ पीटर को दी हैं; पीटर ही रोमन-चर्च का स्वामी है।' इस पर राजा ने कहा:—'यदि स्वर्ग की कुञ्जियाँ पीटर के पास हैं तो हम उसी के सम्प्रदाय में प्रवेश करते हैं।'

२९ ह्विटबी-सम्मेलन और इँग्लेण्ड पर उसका प्रभाव

सम्मेलन की समाप्ति के बाद इँग्लेण्ड में केल्टिक-सम्प्रदाय की जगह फिर रोमन-चर्च का प्रचार होने लगा। इसका सबसे बड़ा परिणाम यह हुआ कि इँग्लेण्ड पर रोमन-सभ्यता, रोमन-क़ानून और रोमन-सङ्गठन का भी प्रभाव पड़ता रहा

और इँग्लेण्ड भी योरप के धार्मिक एवं सामाजिक जीवन का एक भाग बन गया। रोमन-चर्च का सङ्गठन होजाने से इँग्लेंण्ड में जातीय एकता की नींव पड़ी और इसी के द्वारा इँग्लेण्ड की राजनैतिक एकता स्थिर भी हुई।

चर्च में कई लेखक भी हुए, जिनके विचारों का प्रभाव लोगों पर बहुत पड़ा। बेड ने 'हिस्टोरिया एक्सेस्टिकाबेन्टिस एङ्गलोरम' (अँगरेज़-जाति का धार्मिक इतिहास) नामक पुस्तक लिखी। केडमॉन ने 'पेराफ्रेज़' नामक पुस्तक में वीर-रस-प्रधान अनेक गीत लिखे। इन गीतों से प्रभावित होकर लोगों का मन इस लोक से हटकर परलोक की ओर झुक गया। कहते हैं, लगभग तीस राजा और रानियाँ राजपाट छोड़कर मठों में चली गई, इससे इँग्लेण्ड का सैनिक भाव कम होने लगा और उस पर उत्तर की ओर से आक्रमण होने आरम्भ हुए।

३० एङ्गलो-सेक्सन साहित्य

जर्मनी को केल्टिक, एङ्गलो-सेक्सन प्रचारकों और शार्लेमन की तलवार ने ईसाई बनाया। बिन्फ़र्ड या सेण्ट जानिफ़ेस ने (जिसका जन्म इँग्लेण्ड में ६८८ में हुआ) अपने जीवन में अनेक पाठशालायें स्थापित कीं और लोगों में अपने मत का प्रचार करने लगा। उसके सम्बन्ध में एक

३१ जर्मनी का धर्म-परिवर्तन

कथा बड़ी प्रसिद्ध है। एक बार विन्फ्रेड ने सीता-वृक्ष को, जिसे जर्मन बड़ा पवित्र समझते थे, काट डाला। लोगों ने जब देखा कि वृक्ष काटनेवाले का कुछ भी अहित नहीं हुआ तब वे सब के सब ईसाई होगये।

सेक्सन क़बीलों पर शार्लेमन ने अनेक बार आक्रमण किये थे। उनका नेता ह्विटकिण्ट शार्लेमन के साथ बराबर लड़ता रहा। क्रोध में आकर शार्लेमन ने बहुत से सेक्सन बन्दियों का वध कर डाला। तङ्ग आकर ह्विटकिण्ड ने हार स्वीकार कर ली और ईसाई होगया। कुछ जर्मन लोग स्कोण्डडेनेविया भाग गये और वहाँ से उन्होंने शार्लेमन के राज्य को लूटना आरम्भ किया। इसी दुःख से उसकी मृत्यु होगई।

३२ रूस का मत-परिवर्तन

रूस के राजा वाल्डियर ने विभिन्न मतों तथा सम्प्रदायों— जैसे इस्लाम, यहूदी, लेटिन, रोमन आदि के गुणों की खोज करने के लिए अपने दूत बाहर भेजे। उन्होंने अपनी सम्मति कुस्तुनतुनिया के पक्ष में दी। इस पर राजा सप्रजा ईसाई हो गया और अपने देवता की काष्ठ-मूर्त्ति नदी को भेंट कर दी। रोमन-चर्च के स्थान में रूस में कुस्तुनतुनिया-चर्च का प्रचार होने से रूस में रोमन-सभ्यता का प्रवेश न हो सका। साथ ही रूस ने रोमन-चर्च की सहानुभूति, जो भविष्य में उसके काम आती, सदा के लिए खो दी।

उत्तर में ईसाई-मत के प्रचार की उन्नति बड़ी धीमी थी। परन्तु नवीं, दसवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दी में सब स्केण्डनेवियानिवासी शनैः शनैः ईसाई हो गये। नॉरवे से कुछ प्रचारक आईसलेण्ड में भी जा पहुँचे। सन् १००० के लग-भग वहाँ की जातीय सभा ने सबको बप्तिस्मा लेने और पुरानी मूर्त्तियों को तोड़ने की आज्ञा दी। उत्तरीय योरुप के लोग सदा से लूट-मार करते चले आये थे। उनके ईसाई हो जाने से लूट-मार बहुत कुछ बन्द हो गई।

२३ उत्तर में ईसाई-मत

पेगन क़बीलों ने रोमन-साम्राज्य को विजय किया। पर ईसाई-मत ने अपने विजेताओं पर विजय पाई। किन्तु बहुत दिनों तक उसका रङ्ग उन पर पूर्णरूप से न चढ़ सका, बहुत समय तक वे अपने पुराने स्वभाव के अनुसार चलते रहे। नाम से तो वे ईसाई थे किन्तु उनकी अन्तरात्मा पेगन ही रही। इतनी ही नहीं, ईसाई-मत के वास्तविक भाव को न समझ कर उन्होंने उसे अपने विचारों के अनुसार ढाल लिया।

२४ ईसाई-मत पर पेगनिज़्म का प्रत्याघात

ट्यूटन-क़बीलों के ईसाई हो जाने का फल यह हुआ कि रोम की प्राचीन सभ्यता नष्ट होने से बच गई। यद्यपि वे नगरों को लूटते और मनुष्यों का वध करते थे तथापि ईसाई होने से गिरजों तथा मठों की कुछ भी हानि नहीं करते थे। दूसरे, ईसाई-मत-द्वारा एक

२५ परिणाम

तरह से इन क़बीलों का सामाजिक सङ्गठन होने लग गया। तीसरे, इससे रोम की प्राचीन सभ्यता तथा कलाओं का प्रचार होने लगा। चौथे, पहले-पहल इटेलियन तथा नये ट्यूटन लोगों को इसी ने मिलाया। पाँचवें इसके द्वारा योरुप में मनुष्य-मात्र से प्रेम करने का भाव फैला। अन्त में इसने विभिन्न जातियों को मज़हब की दृष्टि से एक बना दिया। इसका फल यह हुआ कि जब इस्लाम ने योरुप पर आक्रमण किया तब सभी जातियों ने, पारस्परिक मतभेद भुला कर, इसका सामना किया।

तीसरा अध्याय

ईसाई-मत में तपस्विता

तीसरी और छठी शताब्दियों के बीच के काल में चर्च में मठों का प्रचार हुआ। अगणित स्त्री-पुरुषों ने सांसारिक जीवन छोड़कर मठों में एकान्तवास आरम्भ किया। कुछ समय के पश्चात् ये लोग दो दलों में बँट गये, एक वह जिसमें एकान्तवासी (हरमिट) थे, दूसरा वह जिसमें तपस्वी (मॉंक) मण्डलियाँ बना कर रहते थे।

३६ तपस्विता और उसका आरम्भ

इस संस्था का आरम्भ पूर्व से, विशेष कर भारतवर्ष से, हुआ था। भारतीय ब्राह्मणों में वानप्रस्थ और संन्यास की प्रथा चिरकाल से चली आ रही थी। बुद्ध ने उसकी जगह पुरुषों तथा स्त्रियों—दोनों को भिक्षु तथा भिक्षुणियाँ बनाना आरम्भ किया था। आज भी बौद्ध देश इन लोगों से भरे हुए हैं। बौद्ध-धर्म के प्रभाव से सीरिया के यहूदियों में एक ज्ञान-वादी सम्प्रदाय उत्पन्न हुआ था। ईसाई-मत में पहले-पहल नास्तिक नामक एक सम्प्रदाय पैदा हुआ, जिसने यह प्रचार करना शुरू किया कि संसार की उत्पत्ति एक ऐसी पाप-शक्ति से हुई है, जो आत्मिक-उन्नति के विरुद्ध है। उसका कहना

था कि शरीर तथा इच्छाओं के दमन करने से आत्मा उन्नत हो सकती है।

रोम-साम्राज्य जब उन्नति के शिखर पर था तभी लोगों में एक विचित्र प्रकार की आचार-भ्रष्टता आने लगी थी। चर्च भी उस पतन में सम्मिलित होकर सांसारिकता का अनुगामी बन गया। जिन लोगों का झुकाव आत्मिक उन्नति की ओर था वे चर्च से घृणा करने लग गये। इसलिए तपस्वियों ने चर्च के दोषों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। उन्होंने सांसारिक ऐश्वर्य को तुच्छ सिद्ध करने के लिए निर्धनता को उच्च स्थान दिया और व्यसन-पूर्ण जीवन की निन्दा करके एकान्तवास की प्रशंसा की। सर्वसाधारण अपने शरीरों को दिन भर नहाने धोने, उसे सुगन्धित बनाने में और जिह्वा-स्वाद को तृप्त करने में लगे रहते थे। तपस्वियों ने इसके विरुद्ध मोटी रोटी खाना और खाकी वस्त्र पहनना आरम्भ किया।

किन्तु तीसरी शताब्दी के अन्त में उनका यह आवेश पागलपन में परिणत हो गया। मिसर-देश का एक तपस्वी सेण्ट एण्टनी, जो २५१ में उत्पन्न हुआ था, 'एकान्तवासियों का पिता' कहा जाता है। उसका जीवन-चरित्र पढ़कर सहस्रों मनुष्य समाज छोड़ कर वन में रहने लगे। यहां तक कि चौथी शताब्दी के अन्त में मिसर के जङ्गलों की जन-संख्या नगरों के बराबर हो गई। तपस्वी-दल में सबसे प्रसिद्ध सेण्ट साईमियन था।

२७ पूर्व के ईसाई-साधु

वह तीन फुट व्यासवाले तथा पचास फुट ऊँचे स्तूप के ऊपर छत्तीस वर्ष व्यतीत करके ४५९ में मरा था।

यह बात योरुप में भी फैल गई। किन्तु वहाँ पर वन के एकान्तवास के बजाय तपस्वियों ने मठ बनाये। उनमें वे लोग रहने लगे जो असभ्य बर्बरों के आक्रमणों से डरते थे। प्रत्येक मठवासी को तीन प्रतिज्ञायें करनी पड़ती थीं—निर्धनता, ब्रह्मचर्य्य और आज्ञापालन। इनके अतिरिक्त उन्हें और भी कई नियम पालन करने पड़ते थे।

३८ पश्चिम में तपस्विता

उपर्युक्त नियमों का निर्माणकर्त्ता या व्यवस्थापक नरसिया-वासी सेण्ट बेनीडिक्ट (सन् ४८०-५४३) था। इसने मॉण्टे-कासेनों के प्रसिद्ध मठ की नींव रक्खी। उसका व्यवस्थापन मज़हबी संसार के लिए वैसा ही आवश्यक था जैसा योरुप के समाज के लिए जस्टिनियन का 'कॉरपस जूरिस सिविलिस' (सिविल क़ानून संङ्ग्रह)। बेनीडिक्ट के नियमों के अनुसार प्रतिदिन कुछ समय के लिए हाथ से काम करना तथा स्वाध्याय करना मनुष्य के बड़े कर्त्तव्य थे। इसके अनुयायी वेनीडिक्टाइन कहलाते थे। एक समय इस सम्प्रदाय के अधीन चालीस हज़ार मठ हो गये और इसमें चौबीस पाप बने।

३९ व्यवस्थापक सेण्ट बेनीडिक्ट

इन मठों का इतिहास बड़ा संघर्ष-पूर्ण है। ज्योंही कोई मठ बनता था त्योंही उसमें धन आने लगता था। धन के साथ ही सब प्रकार के दोष—आलस्य, विलास-इच्छा तथा नियम-शैथिल्य (डिसिप्लिन)—आने लगे। परन्तु हर समय कोई न कोई मनुष्य उनके विरुद्ध खड़ा होकर संस्था को नष्ट होने से बचा लेता। इस प्रकार के सुधार-आन्दोलनों के कारण बरगण्डी में क्लूनी का मठ ८१० में (प्रकरण १२३), कार्थूशियन तथा सिस्टर-शियन-सम्प्रदाय ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में और फ्रेंसि-स्कन तथा डामेनीकन तेरहवीं शताब्दी में स्थापित हुए।

४० मठ-सुधार

मध्ययुग के महापुरुष, बौद्धिक तथा नैतिक दृष्टि से, इन मठों में पाये जाते हैं। भारतवर्ष के ऋषियों की भाँति इन तपस्वियों ने वनों को बसा कर एक तरह से योरुप को सभ्य बनाने में सबसे बड़ी सेवा की। इनके प्रचारकों ने सभ्यता को ले जानेवाले मार्गों से काँटों को दूर किया। इन मठों में सब प्रकार का ज्ञान एवं पुण्य-शीलता बीज-रूप से सुरक्षित रही। इनमें ऐसे विद्यालय विद्यमान थे जिनसे तात्कालिक योरुप की बड़ी मानसिक उन्नति हुई। ये विद्यालय ही इस समय के विद्यापीठ थे। इन मठवासियों ने हस्त-लिखित पुस्तकों-द्वारा प्राचीनदर्शन तथा साहित्य को जीवित रक्खा। ये लोग अपने समय की ऐतिहासिक घटनाओं को भी

४१ मानव-सभ्यता के लिए तपस्वियों की सेवायें

लेखबद्ध करते थे, जिससे बाद के ऐतिहासिकों को बड़ी सहायता मिली है।

मठों ने समाज की भी बहुत सेवा की। धनी लोग इन्हें धन देते थे। उस धन को ये लोग दरिद्रों को दान देने, रोगियों के लिए औषधालय खोलने और पथिकों के लिए पथिकाश्रम बनाने में खर्च करते थे। उस काल में इन लोगों ने दुराचार को भी कम किया है।

किन्तु हमें यह न भूलना चाहिए कि इन मठों में दोष भी आ गये थे। धन के अधिक मात्रा में एकत्र हो जाने से इन लोगों की निर्धनता की प्रतिज्ञा व्यर्थ सी हो गई थी। सबसे बड़ा दोष आचारहीनता था। अविवाहित स्त्री-पुरुष के लिए एक साथ जीवन बिताना प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध प्रतीत होता है। इसी कारण उनमें वे दोष भी आ गये, जिसके कारण अन्त को उन्हें कलङ्कित होना पड़ा। कुछ समय के पश्चात् इन मठों को तोड़ देना पड़ा।

४२ संस्था के दोष

—:o:—

चौथा अध्याय

योरुपीय जन-संख्या में लेटिन तथा ट्यूटॉनिक अंश

पिछले अध्यायों में हम देख चुके हैं कि ईसाई-मत के द्वारा किस प्रकार यहूदी विचार तथा रीति-रिवाज लेटिन एवं ट्यूटन लोगों में फैले। अब यह देखना बाक़ी है कि किस प्रकार इन दो भिन्न जातियों की कथाओं क़ानून तथा रीति-रिवाज के संमिश्रण से नई भाषायें तथा नई रीति-नीति का जन्म हुआ।

४३ विषय-प्रवेश

भिन्न भिन्न योरुपीय संस्थाओं पर दृष्टिपात करने से पता लगता है कि किसी में लेटिन-अंश अधिक है और किसी में ट्यूटानिक। उसका आन्तरिक रूप एक प्रकार का होता है और बाह्य रूप दूसरी प्रकार का। इसका कारण यह है कि जब असभ्य ट्यूटन कबीलों ने रोमन-साम्राज्य को पराजित किया तब विजित लोगों के साथ उनका व्यवहार विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकार का हुआ। कहीं पुरानी जन-संख्या पूर्णतः नष्ट होगई, कहीं वह दासत्व को प्राप्त हुई और कहीं उससे

४४ ट्यूटॉनिक तथा लेटिन अंशों का संमिश्रण

केवल पशु-धन छीन कर वह स्वतन्त्र रहने दी गई। उदाहरण के लिए इटली तथा फ्रांस में तो उन लोगों ने सिर्फ़ थोड़ी सी ज़मीन ले ली। परन्तु इँगलेण्ड में उन्होंने मूलवासियों को जङ्गलों में भगा दिया। कई देशों में पुरानी जन-संख्या तथा विजेताओं को सदियों तक एक दूसरे से बड़ी घृणा रही। परन्तु इटली, स्पेन और फ्रांस में दोनों जातियाँ जल्दी ही आपस में हिल-मिल गईं। यहाँ तक कि चौथी शताब्दी के ही अन्त में देशों में भाषा, रीति-रिवाज, क़ानून तथा नगर सब रोमन-ढङ्ग पर बन गये। गलियों, बाज़ारों तथा थियेटरों में जन-संख्या के दोनों भागों में कोई भेद न दीखता था। नवीं शताब्दी के अन्त में तो द्वैत सर्वथा दूर हो गया। सौ साल के बाद इटली में इटेलियन, फ्रांस में फ्रांसीसी और स्पेन में स्पेनियर्ड दिखाई पड़ने लगे।

४९ रोमन-भाषायें

पाँच सौ वर्ष तक रोमन-साम्राज्य के अधीन रहने से स्पेन तथा गाल-निवासियों ने अपनी अपनी भाषायें छोड़ कर विकृत लेटिन भाषा सीख ली थी। बाद की शताब्दियों में इसी प्रकार ट्यूटन क़बीले भी अपनी अपनी भाषायें भूल कर लेटिन भाषा बोलने लगे, अर्थात् रोमन-भाषा ने इन असभ्य जातियों की भाषाओं पर विजय प्राप्त कर ली। इसी कारण इन तीन भाषाओं को 'रोमांश' कहा जाता है।

रोमन-साम्राज्य में प्रवेश करने के पहले ट्यूटन क़बीलों के पास कोई लिखित क़ानून नहीं था। रोमवासियों का अनुकरण करके उन्होंने भी अपने रस्म-रिवाज तथा नियमों को संहिता का रूप दिया। उनके नियम अधिकतर अपने ही क़बीलों से सम्बन्ध रखते थे। क़ानून का प्रयोग मनुष्य की सामाजिक स्थिति पर अवलम्बित रहता था; उदाहरणार्थ, एक गुलाम किसी छोटे से अपराध के कारण मारा जा सकता था और एक स्वतन्त्र मनुष्य क़त्ल की क़ीमत देकर छूट सकता था। साधारण मनुष्य के वध का निष्क्रय तीन सौ सालिडाई, जो आज-कल के तीस या चालीस फ्रैङ्कों के बराबर होता है, था और राजा के गुलाम के वध का निष्क्रय छः सौ।

४६ ट्यूटन क़ानून

प्रारम्भिक समाज में प्रत्येक मनुष्य स्वयं ही दूसरों को दण्ड देने या बदला लेनेवाला होता है। जब समाज कुछ उन्नति करता है तब समाज अपने अन्तर्गत मनुष्यों को दण्डित करना अपने हाथ में ले लेता है। जिन ट्यूटन क़बीलों का हम वर्णन कर रहे हैं उनमें किसी मनुष्य को अपराधी ठहराने के लिए 'आरडील' से काम लिया जाता था अर्थात् अपराध का निश्चय प्राकृतिक नियमों पर छोड़ दिया जाता था एक 'अपराध-परीक्षा' अग्नि-द्वारा होती थी। अभियुक्त को तपा हुआ लोहा हाथ में

४७ अपराध-परीक्षायें (आर्डीलज़)

लेना पड़ता था, या नङ्गे पाँव तप्त लोहे पर चलना पड़ता था। यदि उसे कुछ कष्ट होता तो वह अपराधी समझा जाता था, नहीं तो छोड़ दिया जाता था। दूसरी 'अपराध-परीक्षा' जल के द्वारा होती थी। अपराधी का हाथ गरम पानी में डाल दिया जाता था, वह ठंडे पानी में डुबो दिया जाता था। तीसरी परीक्षा दोनों प्रतिद्वन्द्वियों की पारस्परिक लड़ाई थी। इसमें जीतनेवाला अपराधी समझा जाता था। बाद में एक और तरीक़ा निकाला गया कि अपराधी कुछ साक्षियों को उपस्थित करके अपनी सफ़ाई पेश करे। धीरे धीरे इस तरीक़े का रिवाज बढ़ता गया, क्योंकि अपराध-परीक्षाओं में धोखा और चालाकी से काम लिया जाता था।

योरुप में ट्यूटन क़ानूनों के फैल जाने से योरुपवासी रोमन-क़ानून भूलने लगे। योरुप पर अन्धकार छा गया। कुछ काल तक उसकी अवस्था ऐसी ही रही। समाज में परिवर्तन होने से लोगों के भाव तथा सिद्धान्त भी बदलते गये। ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में रोमन-क़ानून का अध्ययन फिर नये सिरे से शुरू हुआ। कुछ वर्षों में सभी योरुपीय देशों में क़ानून की नींव रोमन-क़ानून पर रक्खी जाने लगी। यहाँ तक कि इँग्लेण्ड में भी, जहाँ पर ट्यूटन रस्म-रिवाज चलते थे, चर्च के द्वारा रोमन-क़ानून का बड़ा प्रभाव पड़ा।

४८ रोमन क़ानून का पुनःस्थापन

पाँचवाँ अध्याय

पूर्वी रोमन-साम्राज्य

(सन् ५२७-५६५) रोम के पतन के बाद से पचास वर्षों तक पूर्वी सम्राट् (कुस्तुनतुनिया के शासक) बरबरों के आक्रमणों से बचने के लिए आन्दोलन करते रहे। वह कुस्तुनतुनिया, जो आगामी एक हज़ार वर्ष तक यूनानी-रोमन-ज्ञान, संस्कृति तथा क़ानून का रक्षक रहा, रोम की तरह यदि कहीं यह बाह्य आक्रमणों में दब जाता तो रोमन-सभ्यता का कोष नष्टप्राय हो जाता।

४१ जस्टिनियन का राज्य

सौभाग्य से सन् ५२७ में कुस्तुनतुनिया के सिंहासन पर एक योग्य तथा वीर राजकुमार था। उसका नाम जस्टिनियन था। उसका बहुत सा समय बरबर क़बीलों के साथ युद्ध करने में गुज़रा। युद्धों का प्रबन्ध उसने अपने प्रसिद्ध सेनानायक बेलिसेरियस के सुपुर्द किया था।

बेलिसेरियस ने अपना मुँह सबसे पहले अफ़्रीका की ओर किया। वहाँ के क़बीले जो एरियस के अनुयायी थे, अन्य ईसाइयों को बड़ा कष्ट पहुँचाते थे। बेलिसेरियस, जो केवल छब्बीस वर्ष का था परन्तु जिसने चार वर्ष तक ईरानियों के साथ युद्ध करके अपने आपको एक महान् सेनानायक सिद्ध

किया था, अफ्रीका से बहुत से वेण्डाल बन्दी तथा लूट का माल लेकर वापस आया।

सन् ५३५ में बेलिसेरियस इटली भेजा गया। सिसली होता हुआ सेनासहित वह रोम में प्रविष्ट हुआ। अवसर पाकर गॉथक राजा ह्विटिगेस ने रोम को चारों ओर से घेर लिया। एक लाख मनुष्यों के साथ उसने एक बरस तक घेरा जारी रक्खा। कई बार प्रयत्न करने पर भी वे सफल न हुए। बल्कि उनकी आधी सेना वहीं पर मारी गई। घिरे हुए पक्ष का भी कुछ कम नुक़सान नहीं हुआ। रोम की जनसंख्या का एक बड़ा भाग भूख, बीमारी तथा अन्य मुसीबतों से नष्ट हो गया। नगर की कई पुरानी इमारतें तोड़ दी गई। रोमन तथा यूनानी मूर्त्तिकला की कई 'उत्कृष्ट कृतियाँ' तोड़-फोड़ कर दीवार के बाहर के सैनिकों पर फेंकी गई। अन्त में घेरा छोड़ कर ह्विटिगेस भाग निकला। ५४० में वह क़ैद करके क़ुस्तुनतुनिया भेज दिया गया। किन्तु ईर्ष्या के कारण बेलिसेरियस भी वापस बुला लिया गया। इसलिए गॉथ लोग रोम को दोबारा चालीस दिन तक लूटते रहे। बेलिसेरियस दोबारा इटली को रवाना किया गया। किन्तु वह नगर को सुरक्षित करने का प्रबन्ध कर ही रहा था कि राजा ने फिर उसे लौटने को लिखा। इटली गॉथों की दया पर छोड़ दिया गया। लोगों की प्रार्थना पर जस्टिनियन ने नारसेस नामक एक दूसरे सेनानायक को सेना-समेत इटली को रवाना

किया। रोम पर कब्ज़ा करके और गॉथों को इटली से निकाल कर उसने उसे रोमन-साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। जस्टिनियन ने बेलिसेरियस की शिकायतें सुनकर उस पर राजद्रोह का अपराध लगाया। तत्पश्चात् राजा ने उसकी जायदाद ज़ब्त कर ली। इस दुःख से ५६५ में सेनानायक की मृत्यु होगई।

जस्टिनियन का राज्य यद्यपि कई तरह से अच्छा था तथापि लोगों के लिए वह दुःखों का ही युग था। युद्धों तथा उनके ख़र्च के बोझ के अतिरिक्त उसके राजत्व-काल में दुर्भिक्ष तथा प्लेग भी बड़े ज़ोर से फैले। दुर्भिक्ष के कारण लोग भूख से मर रहे थे कि मिस्र से प्लेग आई और जो जन-संख्या के एक-तिहाई हिस्से को चट कर गई। यह बीमारी पचास बरस तक देश से दूर न हुई। इसके उजाड़े हुए स्थान अभी तक दीख पड़ते हैं।

सन् ५३२ में एक उपद्रव हुआ, जो 'निका' कहलाता है। इस अवसर पर नगर के दो राजद्रोही दल—नीला तथा हरा, जो पहले आपस में लड़ते रहते थे, परस्पर शासन के विरुद्ध मिल गये। उन्होंने नगर में आग लगा दी। कुस्तुन्तुनिया पाँच दिन तक जलता रहा। सब मकानात राख हो गये। राजा ने उपद्रवियों को एक मकान में इकट्ठा करके उस में आग लगवा दी और पच्चीस हज़ार आदमियों का एक साथ वध हो गया।

जस्टिनियन को मकान बनाने का बड़ा शौक़ था। सेण्ट सोफ़िया के गिरजे को उसने दोबारा बनवाया। इसके अतिरिक्त उसने रेशम की कारीगरी भी, जो उस समय तक केवल चीन में ही थी, योरुप में जारी करवाई। चीनी रेशम के कीड़ों को अपने देश से बाहर नहीं निकलने देते थे। यह काम दो ईरानी तपस्वियों ने किया था। वे एक खोखले बेत के अन्दर रेशम के कीड़ों के अण्डे छिपा कर अपने साथ क़ुस्तुनतुनिया ले आये। वास्तव में यह छोटी सी चोरी रोमन-सेना-नायकों की लूटों से बढ़ कर थी। जस्टिनियन का सबसे बड़ा काम रोमन-क़ानून को एक संहिता (कोड) का रूप देना था। इसी संहिता से आगे चल कर योरुपीय राज्य के अन्य क़ानून बने। इसी कारण वह 'सभ्यता का नियम-निर्माणकर्त्ता' भी कहलाता है।

(६१०-६४०) जस्टिनियन की मृत्यु (५६६) के पचास बरस के बाद तक बाईज़ेंनटाईन-साम्राज्य में कोई महत्त्वपूर्ण घटना नहीं हुई। हेरक्लियस के राज्य-काल में ईरान के राजा ख़ुसरो द्वितीय ने रोमन-प्रदेशों के कई नगरों तथा एशिया-माइनर पर आक्रमण किये। इस दुःख को बढ़ाने के लिए आबाद क़बीलों ने बलकान के प्रान्तों को वीरान करना शुरू कर दिया। हेरक्लियस आक्रमणकारियों को बालकान में देख कर इतना घबराया कि उसने कारथेज छोड़ने का निश्चय कर लिया।

४० हेरक्लियस का राज्य

लेकिन बड़े पादरी के समझाने पर वह कुस्तुन्तुनिया में ही रह गया। साथ ही पाँच हज़ार सेना अपने साथ लेकर हेरक्लियस ने ईरान पर आक्रमण कर दिया कि खुसरो को पीछे लौटना पड़े। वह एक नगर के बाद दूसरे नगर पर कब्ज़ा करता और अग्नि-पूजकों के मन्दिरों को गिराता जाता था। यहाँ तक कि खुसरो ने सचमुच अपने मज़हब तथा देश की रक्षा के लिए वापस जाना उचित समझा। ईरानी योरुपीय सेना का मुक़ाबला न कर सके। अपनी सेना लेकर खुसरो वहाँ से भागा। लौटते समय उसने कुस्तुनतुनिया पर धावा किया। किन्तु कुछ देर के बाद उसे घेरा उठाना पड़ा। अन्त में दोनों सेनाओं में (६२७) निनेवह के समीप एक निर्णायक युद्ध हुआ, जिसमें सारी ईरानी सेना नष्ट हो गई। खुसरो भाग गया। उसके बेटे ने उसके विरुद्ध बग़ावत करके उसे क़ैद कर लिया।

खुसरो के साथ द्वितीय ईरानी साम्राज्य का भी अन्त हो गया। किन्तु इसी समय अरब में एक अन्य नई शक्ति का जन्म हुआ, जिसने ईरानी साम्राज्य का स्थान ले लिया।

—:o:—

छठा अध्याय

इस्लाम

अब हम इतिहास के उस काल में आ पहुँचे हैं जब कि अरब में एक ऐसे मज़हब का जन्म हुआ, जिसने एक बार ज़मीन के तख़्ते को हिला दिया। हमारे लिए इस्लाम और उसकी उन्नति तथा विस्तार का अध्ययन करना आवश्यक है क्योंकि उसके द्वारा योरुप तथा संसार के इतिहास में कई प्रकार के विप्लव हुए। बौद्ध और ईसाई-मज़हब के बाद यह तीसरा मज़हब था जिसने संसार की कई जातियों के इतिहास पर अपना गहरा प्रभाव डाला है। यदि इस्लाम न होता तो योरुप के इतिहास में न वे मज़हबी युद्ध होते जो दो-तीन शताब्दियों तक होते रहे, न स्पेन में मुसलमानी राज्य होता, न योरुप के देशों पर मुसलमानी आक्रमण होते, न पूर्वी साम्राज्य के स्थान में तुर्कों का राज्य होता और न एशिया तथा अफ़्रीका में कई महान् परिवर्तन होते।

५१ विषय-प्रवेश

अरब की संस्कृति पुरानी थी। अरबों में साहित्य भी था, यद्यपि वे पतितावस्था में थे। परम्परागत कथाओं के अनुसार अरबवासी इज़राईल के पुत्र इब्राहीम की सन्तान में से हैं। अरब में दो तरह के मनुष्य रहते थे, एक नगरों में वास करनेवाले और दूसरे तम्बुओं में रहनेवाले।

५२ हज़रत मुहम्मद से पूर्व के अरब की अवस्था

अरबी लोग शक्ल-सूरत में सुन्दर, बड़े स्वतन्त्रता-प्रिय और बड़े झगड़ालू थे।

अरबों का तीर्थ-स्थान मक्का था। इसी में काबा का मन्दिर था, जिसमें काला पत्थर (सङ्ग-अस्वद) पड़ा था। कहा जाता है कि एक देवदूत ने यह पत्थर इब्राहीम को दिया था। सब तरफ़ से लोग इसके दर्शन करने आते थे। प्रत्येक मनुष्य कपड़े उतार कर सात बार पत्थर का चुम्बन करता, प्रदक्षिणा देता और सात बार पास के पर्वत का पूजन करता। वर्तमान समय में जो मुसलमान वहाँ पर जाता है वह अपने शरीर के बाल तथा नाख़ून गाड़ कर भेड़ या ऊँट की क़ुरबानी करता है।

क़ाबा के साथ और भी तीन-चार सौ मूर्त्तियाँ थीं, ईसाई, यहूदी एवं ईरानी भी वहाँ पर जाकर रहते थे। उन्हें अपने ढङ्ग की पूजा करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। इनके संसर्ग से अरबों में कुछ मज़हबी अशान्ति सी आने लगी। मूर्त्ति-पूजा से उन्हें असन्तोष होने लगा। वे किसी अन्य मज़हब की खोज में थे।

मक्का में क़ाबा का रक्षक एक क़ुरेश-नामक वंश था। इसमें हाशम एक प्रसिद्ध उदार मनुष्य हुआ। उसके बेटे अब्दुलमतालब के तेरह लड़कों में एक अब्दुल्ला भी था। इसी अब्दुल्ला के यहाँ सन् ५७० में मुहम्मद का जन्म हुआ।

४२ हज़रत मुहम्मद और उनकी शिक्षा

बचपन में ही मुहम्मद के माता-पिता का देहान्त हो जाने से उसके चचा ने उसका पालन-पोषण किया। छोटी आयु में वह भेड़ों की रखवाली किया करता था। बाद में उसने व्यापार करना शुरू कर दिया।

पचीस बरस की उम्र में मुहम्मद ने एक अमीर विधवा ख़देजा की जायदाद का प्रबन्ध करना आरम्भ किया। हज़रत के शारीरिक सौन्दर्य तथा योग्यता पर मोहित होकर ख़देजा ने उनसे विवाह कर लिया। इससे उनका सांसारिक पद बहुत ऊँचा होगया। उनका स्वाभाविक झुकाव मज़हब की ओर था। रमज़ान के महीने में वे कन्दराओं में जाकर ईश्वर-आराधना किया करते थे। इसी एकान्तवास के कारण उन्होंने कहा कि देवदूत जिबराईल उनके पास आता है और ईश्वर का सन्देश सुनाता है।

चालीस वर्ष की आयु में हज़रत ने अपनी पैग़म्बरी की घोषणा की। हज़रत का मुख बड़ा उज्ज्वल तथा तेजस्वी था। वे एक अच्छे वक्ता थे। दर्शक उनसे प्रेम करते और उनके मुख तथा दाढ़ी की प्रशंसा किया करते थे। बोलते समय वे कुछ देर के लिए चुप हो जाया करते थे। अपने मज़हब की नींव उन्होंने इस कलमा पर रक्खी कि "अल्लाह के सिवा और कोई ईश्वर नहीं है और मुहम्मद उसका पैग़म्बर है।" ईश्वर की ओर से उसका सन्देश उसका देवदूत जिबराईल नीचे लाया और उसे हज़रत मुहम्मद ने समय समय पर लोगों को

बताया। उनका कहना था—ईश्वर ने अपना अस्तित्व ऱ
क़ानून प्रकृति के सभी कार्यों तथा मनुष्य के मन में लि॰
है। पहले का ज्ञान देना और दूसरे पर आचरण करा
पैग़म्बरों का काम रहा है। आदम, नूह, इब्राहीम, मूसा त॰
ईसा पहले पैग़म्बर हुए हैं। मुहम्मद छठे पैग़म्बर हैं। :
कोई उन्हें न माने वह क़ाफ़िर है। यहूदियों ने ईसा को पैग़म्
न मान कर भारी भूल की है। और ईसाइयों ने भारी :
की है जो उन्होंने ईसा को ईश्वर का पुत्र माना है।

ईश्वर तथा पैग़म्बर का कथन—कुरान खजूर के पत्तों औ
बकरे के कन्धे की हड्डी पर लिखकर हज़रत की पत्नी को
दिया गया। दो साल बाद उनके मित्र अबुबकर ने उसे प्र॰
शित किया। सन् ६५४ में वह दूसरी बार पढ़ा गया। प्रत्
मनुष्य को चार बड़े मज़हबी कर्त्तव्यों का पालन करना हे
था—हज या तीर्थगमन, नमाज़ या ईश्वर-प्रार्थना, रोज़ा
अनशन-व्रत और ज़कात या दान।

सबसे पहले ख़देजा ने अपने पति हज़रत मुहम्मद
पैग़म्बर स्वीकार किया। उनका ग़ुलाम ज़ैद उनका दूसरा अनुय

२४ इस्लाम का प्रचार

था। पत्पश्चात् अली, अबुबकर और उसने
इस्लाम ग्रहण किया। अबुबकर ने तीन :
के अन्दर दस और आदमियों को इस्लाम
दीक्षा दी। हज़रत ने हारूम-वंश के चालीस मनुष्यों को अ॰
यहाँ भोज के लिए बुलाकर उनसे कहा, "ईश्वर ने मुझे आ

है कि मैं तुमसे पूछूँ कि तुममें से कौन मेरा मन्त्री बनेगा, सके मैं उसके हाथ में इस लोक तथा परलोक का राज्य ।" अली, जिसकी आयु चौदह वर्ष की थी, खड़ा होकर ने लगा, "मैं आपका सहायक हूँगा । जो आपके थ शत्रुता करेगा मैं उसके दाँत उखाड़ डालूँगा; आँखें काल डालूँगा ।" उनके चचा अब्दुलमतालब ने उन्हें मझाया कि वे नया मज़हब न बनायें । इस पर हज़रत उत्तर दिया, "यदि मेरे दायें हाथ पर सूर्य और बायें चाँद रख दिया जाय तो भी मैं अपने निश्चय से नहीं ूँगा ।"

अब्दुलमतालब की मृत्यु के पश्चात् अबुसफ़यान काबे का क बना । वह हज़रत का बड़ा बैरी था । उसने कुरेश ों को एक जगह एकत्र करके निश्चय किया कि मुहम्मद वध कर दिया जाय । अबुबकर को साथ लेकर हज़रत ा से भाग निकले, तीन दिन कन्दरा में छिपे रहे और मदीना चले गये । सन् ६२२ की इस घटना से इस्लाम 'हिजरी' (दौड़) सन् शुरू होता है । मदीनावासी परस्पर ते-झगड़ते रहते थे । हज़रत उनके पञ्च बन बैठे । वहाँ पर होंने ऐसा राज्य-विधान (कॅनस्टीट्यूशन) बनाया, कि उसके रण वह भविष्य के अरब-साम्राज्य का केन्द्र बना । वहाँ पर म्मद केवल पैग़म्बर ही न रहे बल्कि उन्होंने क़ानूनदाता राजा पद ले लिया । इस्लाम का विधान आग की वह भट्टी थी,

जिसमें भिन्न-भिन्न क़बीलों के पुराने बैर-भाव जल गये और उनसे एक नई जाति उत्पन्न हुई।

पहले पहल हज़रत एक साधारण मस्जिद में खजूर के वृक्ष का सहारा लेकर उपदेश किया करते थे। लेकिन थोड़े दिनों बाद जब अबुसुफ़यान ने मदीना पर आक्रमण करना आरम्भ किया तब हज़रत ने भी यह निर्णय किया कि मज़हब के लिए युद्ध करना आवश्यक है। उस समय उन्होंने यह सिद्धान्त बनाया कि मुसल-मान के लिए रणक्षेत्र में ख़ून का बिन्दु गिराना व्रत तथा दान से बढ़कर है। 'जो युद्ध में मरेगा उसे स्वर्गलाभ होगा, उसके अपराध क्षमा किये जायँगे और क़यामत (प्रलय) के दिन उसके ज़ख्मों से प्रभा तथा सुगंधि उत्पन्न होगी।'

सन् ६२४ में मक्कावासियों के साथ बद्र का युद्ध हुआ, इसमें मुसलमानों ने विजय प्राप्त की। इससे योरुप के मज़-हबी युद्धों का आरम्भ होता है। हज़रत ने पहले योरूशलम को तीर्थस्थान बताकर उसकी ओर मुख करके नमाज़ पढ़ने की आज्ञा दी थी। किन्तु जब देखा कि यहूदी उसके ख़िलाफ़ हैं तब योरूशलम को छोड़ मक्का की ओर मुँह करने के लिए कहा। यहूदी अरब से निकाल कर सीरिया को भगाये गये जिससे अरब में एक ही मज़हब के लोग रह सकें। सन् ६३२ में उन्होंने मक्का पर अपना स्वत्व जमाया। बड़े-बड़े सरदार तथा उमर उनकी तरफ़ हो गये। अबुसुफ़यान ने भी इस्लाम

ग्रहण कर लिया। काबा की सब मूर्तियाँ तोड़ दी गईं। काबा के विजित हो जाने पर अरब के सब कबीले मुसलमान बन गये। इतनी शीघ्रता से इस मज़हब का इतना ज़ोर पकड़ना एक अचम्भा समझा जाता है।

मक्का की विजय के पश्चात् हज़रत ने एक इस्लामिक साम्राज्य बनाने का निश्चय किया। ईरान के राजा ख़ुसरो और कुस्तुनतुनिया के सम्राट् हेरक्लियस के पास उन्होंने अपने राजदूत भेजे कि वे उन्हें ईश्वर का पैग़म्बर स्वीकार करें।

२१ इस्लाम तथा ख़िलाफ़त

कहा जाता है कि ख़ुसरो ने हज़रत के पत्र को फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला। इस बात को सुनकर मुहम्मद ने कहा:— 'ईश्वर इसी प्रकार उसके साम्राज्य के टुकड़े करेगा।' रोमन-सम्राट् के साथ युद्ध करने के लिए उन्होंने अपनी सेनायें उधर भेजीं। किन्तु तेरह दिन के बाद उनका देहावसान होगया।

हज़रत मुहम्मद की बारह स्त्रियाँ थीं। उनमें से अबुबकर को छोड़ कर शेष सब विधवायें थीं। ख़देजा का दर्जा सबसे ऊँचा था। ख़देजा के विषय में हज़रत से किसी ने पूछा:— "क्या वह वृद्धा न थी? क्या आपको उससे अच्छी स्त्री नहीं मिल सकती थी?" हज़रत ने उत्तर दिया:—"नहीं! ईश्वर जानता है कि उससे बढ़कर कोई स्त्री नहीं हो सकती। उसने मुझ पर उस समय विश्वास किया था जब लोग मुझसे घृणा करते थे।"

ख़देजा के लड़के-लड़कियों में से सिर्फ़ एक लड़की फ़ातिमा जीवित रही, जिसका विवाह अली के साथ हुआ था। हज़रत के मरने पर गद्दी के लिए झगड़ा शुरू हो गया।

२६ मुहम्मद का उत्तराधिकारी

वास्तव में अधिकार तो अली का था किन्तु वह कुछ बे-परवा सा था। उमर ने अबुबकर को ख़लीफ़ा स्वीकार करके झगड़ा मिटा दिया। दो बरस बाद अबुबकर मर गया और उमर उसके स्थान में ख़लीफ़ा बना। दस वर्ष बीत जाने पर एक वधिक ने उमर का वध कर दिया। तब उसमान ख़लीफ़ा बनाया गया।

उसमान एक निर्बल मनुष्य था। उसके समय में झगड़े बढ़ गये। राजद्रोहियों ने मदीना में एकत्र होकर उसे पत्र लिखा कि या तो गद्दी छोड़ दो या झगड़े मिटाओ। इसके पश्चात् हमला करके उसका वध कर दिया गया। अब ख़िलाफ़त के सम्बन्ध में दो दलों में लड़ाई शुरू हुई। एक दल अली का सहायक था, दूसरी ओर अबुसुफ़यान के बेटे मोआविया ने उमर के सेना-नायक अमरू की सहायता से अपने आपको ख़लीफ़ा प्रसिद्ध कर दिया। अरबों के ये दल शिया और सुन्नी नाम से मशहूर हुए। उन्हीं दिनों एक बार तीन भागे हुए सैनिक काबे के अन्दर इकट्ठे हुए। मज़हब तथा ख़िलाफ़त पर वाद-विवाद करने के पश्चात् उन्होंने निश्चय किया कि मोआविया, अली तथा उमर का वध करना चाहिए जिससे सारा फ़साद ही मिट जाय। तीनों एक-एक को मारने के लिए निकले। अली

क़त्ल कर दिया गया, मोआविया को सख्त चोट आई और उमर की जगह एक अन्य मनुष्य मारा गया। तत्पश्चात् अली के पुत्र हसन को राज़ी करके मोआविया ने राज्य की बागडोर अपने हाथ में ली। दमश्क नगर में उसने उमिया नामक अपना वंश चलाया, जिसने एक सौ वर्ष तक राज्य किया।

मोआविया के बाद उसका लड़का यज़ीद ख़लीफ़ा बना। उसने अली के दूसरे पुत्र हुसेन के साथ करबला के रणक्षेत्र में युद्ध किया। युद्ध में हसन और हुसेन दोनों मारे गये। इसी युद्ध को शिया लोग स्थान-स्थान पर मुहर्रम के त्योहार के रूप में मनाते हैं।

रोमन-सम्राटों के यहाँ नीति थी कि एक समय में एक ही शत्रु के साथ युद्ध किया जाय। इस्लामी राजाओं ने इस नीति को नहीं अपनाया। उन्होंने एक ही साथ में दो सबसे बड़े राज्यों—ईरानी तथा रोमन—पर चढ़ाई कर दी। और सौ वर्ष के भीतर ईरान, सीरिया या अराक़, मिसर, अफ़रीक़ा तथा स्पेन पाँच बड़े-बड़े प्रदेशों को अपने अधीन कर लिया। पहले ख़लीफ़ा अबुबकर को आरम्भ में कई क़बीलों को युद्ध के द्वारा अपने अधीन करना पड़ा थे। क्योंकि हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के बाद वे (क़बीले) राजद्रोही हो गये थे और फिर राजस्व देने से इनकार कर दिया था। इसके अतिरिक्त हज़रत की नक़ल करके बहुत से

२३ इस्लाम की विजय

लोगों ने पैग़म्बरी के दावे शुरू कर दिये। इनमें से मुसलिम नामक एक मनुष्य के साथ हज़ारों आदमी जमा भी हो गये। अबुबकर के सेनानायक ख़ालिद ने उन सबको ऐसी सख़्ती से मार डाला कि उसका नाम ही 'ईश्वर की खड्ग' पड़ गया।

अबुबकर के पहले वर्ष में ईरान के सिंहासन पर ख़ुसरो की सन्तान में से एक यज़दीगर्द बैठा। टाइग्रिसनदी के किनारे सन् ६३६ में इस्लामी फ़ौजों ने उसके साथ युद्ध किया। विलास-प्रियता के कारण ईरान पतित हो चुका था; ईरानी निकम्मे हो गये थे, इसलिए इस्लाम के नये जोश का वे मुक़ाबला न कर सके और ईरान-साम्राज्य पर मुसलमानी पताका फहराने लगी। अगले बरस मुसलमानों ने असफ़हान नगर पर क़ब्ज़ा कर लिया। किन्तु जल-वायु पसन्द न आने के कारण वे वहाँ से वापस लौटे। यज़दीगर्द जो पहले भागा फिरता था, अब सेना लेकर फिर आया। किन्तु उसके सैनिक अपने सेनानायक के विरुद्ध हो गये और उसकी तुर्क-सेना ने उसका वध कर डाला।

४८ ईरान की विजय

दूसरी तरफ़ इस्लामी सेनाओं ने सीरिया या अराक़ पर आक्रमण कर दिया। हरक्लियस ने उसको रोकने के लिए अपनी सेना भेजी किन्तु उसकी दो बार हार हुई। सन् ६३५ में मुसलमानों ने दमश्क जीत लिया और ६३७ में योरूशलम को अपने अधीन करने के लिए स्वयं ख़लीफ़ा उमर वहाँ गया। उसे जीतने

४९ सीरिया की विजय

के बाद खलीफा ने ईसाइयों पर कई शर्तें लगाईं:—उन्हें प्रत्येक मुसलमान के सामने खड़ा हो जाना चाहिए, अपने गिरजों के घण्टे बजाना बन्द कर देना चाहिए। एनटियाक नगर से तीन लाख रुपया वसूल किया गया। इस प्रकार सीरिया, जिसे सात सौ वर्ष पूर्व पॉम्पो ने जीता था, मुसलमानों के अधीन हो गया।

खलीफा उमर के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि जब उसे मालूम हुआ कि अबुबकर मृत्युशय्या पर पड़ा है और उसे अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता है तब वह उसके पास गया और कहा:—"मुझे इस पद की आवश्यकता नहीं है। अन्य किसी को खलीफा नियत कर लो।" तिस पर अबुबकर ने उत्तर दिया:—"तुमको पद की आवश्यकता नहीं किन्तु इस पद को तुम्हारी आवश्यकता है।"

६० मिसर की विजय

ईरान अभी पूरी तरह से अधीन न हुआ था कि उमर ने अमरू को मिसर पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। ईसा के ३० वर्ष पूर्व से मिसर रोमन राज्य के अधीन चला आता था। इस समय (६४०)—हेरक्लियस की उसकी रक्षा सेनायें कर रही थीं। कुछ देर के बाद खलीफा घबरा उठा और उसने अमरू को एक पत्र लिखा कि यदि अभी तक तुमने मिसर में प्रवेश नहीं किया हो तो लौट आओ; किन्तु यदि तुम मिसर में हो तो 'ईश्वर तथा उसकी खड्ग पर भरोसा रक्खो।'

अमरू ने अटकल से पत्र का आशय समझ लिया और उसे तब खोला जब मिसर की सीमा में प्रवेश कर लिया। एक मास के घेरे के पश्चात् उसने पहले क़िले को जीत लिया। तत्पश्चात् मुसलमानी फ़ौजें नील-नदी के किनारे पर जा पहुँचीं। मिसर में उस समय कॉपटिक-सम्प्रदाय के ईसाई थे, इनको कष्ट देकर क़ुस्तुनतुनिया के राजा ने अपना शत्रु बना लिया था। जन-संख्या के नौ हिस्से तो कॉपटिक थे, और दसवाँ भाग शासक जाति के समान वहाँ पर रहता था।

मिसरी ईसाइयों ने अरब-आक्रमणकारी को अपना बचाने वाला समझा। उन्होंने उन्हें कर देना स्वीकार कर ख़लीफ़ा की आज्ञा पालन करने की प्रतिज्ञा की। सड़कें तथा पुल बनाने में उन्होंने उनकी सहायता की। उन्हें भोजन-सामग्री भी वे पहुँचाते थे। मुसलमानी फ़ौजें देखकर न्यायाधीश अपने न्यायालय और पादरी अपने गिरजे छोड़कर भाग गये। इस्लाम को ख़ाली मैदान मिल गया। उसने वहां अपना राज्य शुरू कर दिया।

इस आक्रमण की एक प्रसिद्ध घटना सिकन्दरिया का मुहासरा है। व्यापार की दृष्टि से सिकन्दरिया उस समय सबसे बड़ा नगर था। वहाँ के निवासी अपने जान-माल की रक्षार्थ जी तोड़कर लड़े। चौदह मास के घेरे के बाद, जिसमें तेईस हज़ार आदमी मारे गये, सिकन्दरिया सन् ६४१

में विजित होगया। रोमन लोग वहाँ से भाग निकले। हेरक्लियस ने यह समाचार सुना कर अपने प्राण त्याग दिये।

सिकन्दरिया के एक दार्शनिक जानफलॉयाँस ने, जो दर्शन तथा व्याकरण का बड़ा पण्डित था, अमरू से प्रार्थना की कि वह सिकन्दरिया के पुस्तकालय की रक्षा करे। उमर ने उसका यह उत्तर दिया:—"अगर उन पुस्तकों में वही है जो क़ुरान में है तो वे व्यर्थ हैं और यदि वे क़ुरान से भिन्न हैं तो वे अहितकर हैं, इसलिए हर सूरत में उन्हें जला देना चाहिए।" इन पुस्तकों से चार हज़ार हमाम छः मास तक गरम होते रहे। यह बात एक कथा सी है जिस पर पूर्ण विश्वास नहीं किया जा सकता। कहा जाता है कि अपने सिर से इसका दोष उतार कर ईसाइयों ने मुसलमानों पर आरोपित कर दिया है।

६१ उत्तरी अफ़रीक़ा की विजय

मिसर से अमरू निपूबिया को गया तो सही लेकिन गृह-कलह के कारण उसे जल्दी ही लौटना पड़ा। मोआविया ने दमश्क में अपने आपको ख़लीफ़ा प्रसिद्ध करके (६४३-६८६)—उमिया-वंश की नींव रक्खी। गृह-कलह के होते हुए भी उत्तरी अफ़्रीक़ा विजित होता गया। मुसलमान फ़ौजों को न सिर्फ़ किनारे पर रहनेवाले ईसाइयों का मुक़ाबला करना पड़ा बल्कि मूर भी उनके कट्टर शत्रु थे।

सातवीं शताब्दी के अन्त में अरब-सेनायें अन्ध-महा-सागर से होती हुई कारथेज को पहुँची। समुद्र को देखकर मुसलमान सेनानायक अकबर ने कहा:—"हे प्रभो, यदि मेरे घोड़े के सामने यह समुद्र न होता तो समस्त पश्चिम में मैं तुम्हारा नाम फैलाता और उन लोगों का वध करता हुआ चला जाता जो तुम्हें छोड़ किसी अन्य का पूजन करते हैं।" कारथेज में उसकी सहायता के लिए कुस्तुनतुनिया से रोमन तथा गॉथक सैनिक आये थे। किन्तु मुसलमानों ने कारथेज के साथ वैसा ही व्यवहार किया जैसा एक हज़ार बरस पूर्व रोमन लोगों ने किया था। उन्होंने नगर में आग लगा दी। कुछ झोपड़ियाँ और एक मस्जिद को छोड़ वहाँ पर कुछ न रहा। जो लोग मुसलमानों की तलवार से बच निकले वे मुसलमान बनाये गये। अरबी भाषा सिखा कर उन्हें अरबी नाम दिये गये। उनमें से तीस हज़ार युवक सेना में भरती कर लिये गये। नये सैनिकों को साथ लेकर जिबराल्टर को पार करके मुसलमान स्पेन में प्रविष्ट हुए। जिबराल्टर शब्द अब्दुलतारक से है, जो मुसलमानों का सेनानायक था।

सन् ६७३ में अरबों ने पहली बार बासफ़रस पर अधिकार करके कुस्तुनतुनिया लेने का प्रयत्न किया। किन्तु बहुत हानि होने के कारण उन्हें वापस होना पड़ा।

६२ स्पेन की विजय

(७११)—अभी पचास बरस नहीं गुज़रे थे कि ७१७ में उन्होंने कुस्तुनतुनिया को फिर आ घेरा। एक नगरवासी

रोमन-अग्नि बनाने की विधि जानता था। उसने उनकी इतनी हानि की कि वे घबरा कर वापस भागे। यह आग गन्धक, कोयला आदि से बनाई जाती थी। इसकी ज्वाला पर पानी डालने से आग और बढ़ती थी।

पूर्व में तो मुसलमानों को इस प्रकार रोक दिया गया किन्तु पश्चिम में स्पेन के एक सूबादार ने अपनी राजद्रोहिता के कारण योरुप का द्वार खोल दिया। स्पेन में गॉथ राजा राज्य करते थे। सूटा-नगर (उत्तरी अफ्रीका) का शासक स्पेन के राजा रॉडरक से अप्रसन्न था क्योंकि राजा ने एक बार उसकी लड़की का अनादर किया था। इसलिए उस शासक ने अब्दुलतारक को सेना-सहित स्पेन पर उतर जाने दिया। केडिज़ के नज़दीक एक लड़ाई में रॉडरक पराजित होगया और राजा का मृतक-शरीर समुद्र को समर्पित कर दिया गया। तारक ने टोलेडो पर विजय प्राप्त की और सेनानायक मूसा ने कई अन्य नगरों पर अपना स्वत्व जमाया। परिणाम-स्वरूप सेविल, कॉरडोवा, टोलेडो तथा ग्रेनाडा प्रदेश के भाषा, वेष-भूषा तथा मज़हब की दृष्टि से अरब बन गये। इससे पहले ही स्पेन की जन-संख्या में आईबेरियन, केल्टिक, प्यूनिक, रोमन तथा गॉथिक अंश थे, अब अरबों का एक और अंश उसमें सम्मिलित हो गया। उमिया ख़लीफ़ा को साठ लाख पौण्ड वार्षिक राजस्व मिलने लगा। पश्चिम से पूर्व तक, पेरीनीज़-पर्वत (स्पेन में) से सिन्ध तक अरबों का राज्य,

भाषा तथा क़ानून फैल गया। अरब स्वयं अपनी इस सफलता पर हैरान थे।

सन् ७१८ में सेनानायक अब्दुलरहमान ने पेरीवीज़-पर्वत पार कर दक्षिणी फ्रांस पर अधिकार कर लिया। इससे समस्त योरुप में आतङ्क छा गया। ७३२ में टूर-नगर के युद्धक्षेत्र में फ्रेङ्क सेनानायक चार्लेस मारटल इस्लामी फ़ौज के सामने आया। दोनों ओर के सैनिकों ने बड़ी वीरता दिखाई। लगभग तीन लाख मनुष्य मारे गये। अब्दुलरहमान मारा गया। चार्लेस मारटल ने फ्रांस तथा योरुप को बचा लिया। इस युद्ध पर टिप्पणी करते हुए प्रसिद्ध ऐतिहासिक गिब्बन लिखता है:—

६३ फ्रांस पर आक्रमण (७३२)

'इस युद्ध में यदि इस्लाम की जीत हो जाती तो योरुप तथा इँग्लेण्ड मुसलमान होते और आज ऑक्सफर्ड के विश्व-विद्यालयों में क़ुरान की व्याख्या पर व्याख्यान होते।'

इस्लाम में इस समय गृह-युद्ध हो रहे थे। हाशम के वंश में से अबास की सन्तानें अबासिया कहलाती थीं। इसके एक सेनानायक अबुमुसलम ने उत्तरी ईरान—खुरासान—पर क़ब्ज़ा करके उमिया ख़लीफ़ों के साथ लड़ाई शुरू कर दी, क्योंकि यह वंश घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। सन् ७५० में सारा राजबल अबासियों के हाथ में आ गया। उन्होंने बग़दाद को अपनी राजधानी बनाया।

६४ अबासिया-वंश

उमिया-वंश के विनाश के पश्चात् एक नवयुवक अब्दुल-रहमान, जिसका वर्णन पीछे किया गया है, मिसर भाग गया और वहाँ से स्पेन पहुँचा। कारडोवा-प्रदेश में उसने अपने वंश की खिलाफ़त जारी की। इसी प्रकार दसवीं शताब्दी में मिसर को पृथक् करके कायरो-नगर में एक तीसरी खिलाफ़त बनाई गई। हज़रत मुहम्मद की लड़की फ़ातिमा के नाम पर उसका नाम फ़ातिमाइत रक्खा गया। कई बार ये खिलाफ़तें परस्पर-विरोधी 'फ़तवे' (व्यवस्थायें) दे दिया करती थीं।

६५ तीन-खिलाफ़तें

अबासिया-वंश पाँच सौ वर्ष पर्य्यन्त बग़दाद में शासन करता रहा। युद्ध के अतिरिक्त वह साहित्य तथा शिल्प की उन्नति में भी लगा। अरबी भाषा में बहुत सा साहित्य पैदा करके उसने अपने अधीन जातियों को भी अरबी बनाना शुरू किया। यूनानियों तथा हिन्दुओं से उसने ज्योतिष, व्यक्तगणित, रेखागणित, अङ्कगणित, औषध-शास्त्र, वनस्पति-विज्ञान तथा अन्य विज्ञानों को बीजरूप में सीखा। आरिस्टॉटल, यूक्लिद तथा गेलिन की वैज्ञानिक पुस्तकों और हिन्दू-ग्रन्थों का यूनानी तथा संस्कृत से अरबी में अनुवाद किया गया। आयुर्वेद-क्षेत्र में अबुसीनिया और अबुलराज़ी के नाम प्रसिद्ध हैं। अकेले बग़दाद-नगर में ८६० वैद्य वैद्यक करने का लाईसेंस रखते थे। रसायन तथा आयुर्वेद इन्हीं से योरुप में फैले। खिलाफ़त

६६ इसलामी सभ्यता

का स्वर्ण-युग अलमंसूर (७५४-७७५) तथा हारूनउलरशीद (७८४-८०६) का राज्यकाल था। इसी काल में उपर्युक्त विद्याओं की उन्नति हुई।

हारूनउलरशीद के पुत्र के समय में इस्लामी सेना (८११) अफ़्रीका से सिसली में पहुँची। वहाँ से मुसलमान टाईबर-नदी में, जिस पर रोम स्थित है, आये। पर एक तूफ़ान के कारण रोम बच गया।

सातवाँ अध्याय

पश्चिमी साम्राज्य का पुनःस्थापन

योरुप के इतिहास में सबसे पहले हमारे सामने वह क़बीला आता है जिसने उसे इस्लामी सङ्कट से बचाया था।

६७ विषय-प्रवेश

फ़्रैंक लोगों में से एक राजा पैदा हुआ, उसी के गिर्द उस समय की सारी घटनायें घूमती हुई दिखाई पड़ती हैं। वही मनुष्य उस समय की घटनाओं को बनाता है। उसी के समय से पश्चिमी योरुप के भविष्यत् के इतिहास की नींव पड़ती है।

चार्लेस मारटल, (प्रकरण १८) जिसने टूर के युद्ध-क्षेत्र में इस्लामी सेना को पराजित किया था, एक ड्योढ़ी-

६८ फ़्रेङ्क राजा पिप्पिन

वान था और मेरोविंजियन-वंश के नाम पर राज्य करता था। राज-वंश इतना निर्बल हो गया था कि उसके राजा कठपुतली से बन गये थे। चार्लेस मारटल, जिसे चाहता सिंहासन पर बैठा देता और जिसे चाहता उतार देता। उसके मन में स्वयं स्पेन का राजा बनने की इच्छा उत्पन्न हुई। इसके लिए उसने चर्च की सहायता की और रोम में पोप ज़केरियस के पास अपने दूत भेजे। उन्होंने पोप से कहा कि 'फ़्रेङ्क लोग मेरोविंजियन राजा

को हटा कर चार्लेस मार्टल के लड़के को सिंहासन पर बैठाना चाहते हैं।'

पोप को लम्बार्ड-कबीले के विरुद्ध, जो इटली में आकर आबाद हो गये थे, सहायता की आवश्यकता थी। उसने स्पेन को भी अपनी ओर कर लेना उचित समझा और यह निर्णय किया कि राजा बनने का अधिकार उसे है जिसके पास बल हो। मेरोविंजियन-वंश का अन्तिम राजा चिलडेरिक गद्दी से उतार दिया गया। उसके लम्बे बाल तथा डाढ़ी, जो कि मेरोविंजियन राज-वंश के चिह्न थे, काटकर उसे एक मन्दिर में भेज दिये गये। पोप के आज्ञानुसार सन् ७५१ में पिपिन को फ्रैङ्कों का राजा बना दिया गया। इस घटना से राज्य के मामलों में पोप के अधिकार होने लगे।

६९ पोप का राज्य

सन् ७५३ में पोप स्टीफ़न द्वितीय पिपिन के दरबार में लम्बार्ड के ख़िलाफ़ मदद लेने के लिए आया। पिपिन तुरन्त सेना लेकर इटली पहुँचा। लम्बार्ड के राजा ईसटल्फ़ ने पोप को उसका प्रदेश वापस लौटाने का वचन दिया। किन्तु जब पिपिन फ्रांस को चला गया तब प्रदेश लौटाने के बजाय ईसटल्फ़ ने उल्टा रोम को घेर लिया। पोप की प्रार्थना पर पिपिन दुबारा आया और ७५६ में लम्बार्ड-प्रदेश को विजित करके पोप के अर्पण कर दिया। इससे इटली में पोप का एक

पृथक् राज्य बन गया। इससे देश की बहुत हानि हुई। कारण, वह इटली को एक राजा के अधीन एक संयुक्त राज्य बनने से रोकता रहा। ऐसा हो जाने से उसका सांसारिक बल खो जाने का भय था।

७६८ में पिपिन की मृत्यु हो गई। उसका लड़का महान् चार्लेस उसका उत्तराधिकारी बना। उसने छियालीस वर्ष राज्य किया। इस काल में उसने पश्चिमी योरुप के एक बड़े भाग को अपने अधीन कर लिया। उसकी लड़ाइयाँ मुसलमानों, सेक्सन के जर्मन क़बीले, लम्बार्ड तथा आवारा के विरुद्ध हुईं। लम्बार्ड के साथ युद्ध करने का कारण यह था कि वहाँ के राजा ने पोप का प्रदेश छीन लेने की धमकी दी। पोप की प्रार्थना पर चार्लेस इटली पहुँचा और लम्बार्ड राजा से समस्त प्रदेश छीन कर उसे एक मन्दिर में नज़रबन्द कर दिया। सन् ७७८ में चार्लेस ने पेरीनीज़ पार करके स्पेन के मुसलमान-राजा पर आक्रमण किया और उससे उत्तर-पूर्वी कोना जीत कर उसका नाम स्पेनिशमार्श रक्खा।

सेक्सन लोगों के ख़िलाफ़ भी उसने कई बार युद्ध किये। कारण, सेक्सन ईसाई न थे, चार्लेस उन्हें बलपूर्वक ईसाई बनाना चाहता था। वे अपने मज़हब के लिए जान तोड़ कर लड़ते थे। कई बार वे हार भी गये किन्तु फिर उठ खड़े होते थे। उनका वीर ह्विटीकिण्ड मरते दम तक अपने सैनिकों को मुक़ाबला करने का उपदेश देता रहा। अन्ततः

क्रोध में आकर चार्लेस ने साढ़े-चार हज़ार क़ैदियों का वध करवा डाला। इन कष्टों के कारण कुछ सेक्सन स्केण्डेनेविया में चले गये, जहाँ से उनकी सन्तानों ने जहाज़ों पर चढ़कर फ़्रांस को लूटना शुरू कर दिया। सन् ७९० से लेकर कई वर्ष चार्लेस ने आवार-क़बीलों को अधीन करने में ख़र्च किये।

सन् ८०० में पोप लियू तृतीय ने रोम के एक शत्रु-दल के विरुद्ध चार्लेस की सहायता माँगी। चार्लेस शीघ्र ही वहाँ पहुँचा और झगड़ा करनेवालों को पर्याप्त दण्ड दिया। जिस समय चार्लेस सेण्टपीटर के गिर्जे में सिर झुका कर बैठा हुआ था, उस समय उसकी सेवा के बदले में पोप ने उसके सिर पर एक स्वर्ण-मुकुट रक्खा और साथ ही उसे सम्राट् तथा 'आगस्टस' नामक उपाधि दी। इसके कई कारण थे। पहला तो यह कि कुछ समय से बाईज़ेनटाईनस (कुस्तुनतुनिया) तथा लेटिन (रोम) चर्च में मतभेद चला आता था। रोम का पोप अपना प्राधान्य चाहता था। दूसरे यह कि कुस्तुनतुनिया की रानी ने स्वयं राज्य करने के उद्देश्य से अपने लड़के को तख़्त से उतार कर उसकी आँखें निकलवा डाली थीं। इटलीवासी रोम-साम्राज्य का मुकुट किसी स्त्री के सिर पर नहीं रखना चाहते थे। अतः पोप लियू की इच्छा के अनुसार वह मुकुट, जिसे काँस्टेंटाईन कुस्तुनतुनिया से

पश्चिमी साम्राज्य का पुनःस्थापन

गया था, फिर रोम में लाया गया। इस प्रकार तीन सौ चालीस वर्ष के बाद रोम-साम्राज्य का, ओडवेकर ने जिसका अन्त कर दिया था, पुनः स्थापन हुआ।

७१ चार्लेस शासक के रूप में

चार्लेस एक महान् विजेता था; लगभग समस्त इटली, वर्तमान फ्रांस, हालेण्ड, स्विट्ज़रलेण्ड, वर्तमान जर्मनी तथा वह प्रदेश जिसे आज-कल आस्ट्रिया-हङ्गरी कहते हैं चार्लेस के राज्य में सम्मिलित थे। इसके अतिरिक्त क़ानून बनानेवाला तथा शासन की व्यवस्था करनेवाला भी वही था राज्यकार्य में परामर्श लेने के लिए वह साधारण सभायें किया करता था, जिनसे उसने देश-सम्बन्धी, धार्मिक, घरेलू एवं सार्वजनिक मामलों से सम्बन्ध रखनेवाले बहुत से क़ानून इकट्ठे किये। वह पादरियों की सभाएँ भी किया करता था। उसे शिक्षा से भी बड़ा प्रेम था। वह जर्मन, लेटिन तथा ग्रीक-भाषायें समझ सकता था। वृद्ध होने पर उसने लिखना सीखने का प्रयत्न किया। शिक्षा के प्रचारार्थ उसने पाठशालायें खोलीं और पुस्तकें नक़ल करवाकर लोगों में बाँटीं।

७२ चार्लेस के राज्य का फल

सन् ८१४ में चार्लेस का देहावसान हुआ। उसके राज्य-काल में योरुप में ट्यूटन तथा रोमन आबादियाँ एक दूसरे के साथ मिलजुल गई थीं। यद्यपि उसके राज्य के भिन्न-भिन्न भाग मिल कर एक जाति न बन गये थे तथापि उसने

लोगों के अन्दर ऐसे मज़हबी और सामाजिक विचार भर दिये थे, जिनके कारण वे एक तरह के बन गये थे। संक्षेप में भावी योरुप के सामने उसने एक राजनैतिक आदर्श खड़ा कर दिया था।

चार्ल्स की मृत्यु के पश्चात् उसका लड़का लेविस उसका उत्तराधिकारी बना। अपने साथ उसने अपने चारों बेटों लोथेयर, पिपिन, लेविस तथा चार्ल्स को भी शासन में सम्मिलित कर लिया। इससे उसके शासन में चिरकालीन झगड़े पैदा हो गये। पिता के मर जाने पर पुत्रों में एक बड़ा युद्ध हुआ। वेरडेन्न की सन्धि में लेविस के राज्य के तीन हिस्से हो गये। लेविस को जर्मनी, चार्ल्स को फ्रांस और लोथेयर को इटली तथा रोम-प्रदेश मिले। अन्तिम को सम्राट् की उपाधि भी दी गई।

३ साम्राज्य का विभाजन (८१४-८४०)

लगभग सौ साल तक चार्ल्स के वंशज राज्य करते रहे। इस काल में फ्रांस में लेटिन-वंश ज़ोर पकड़ता रहा, जिससे वह रोमन-नमूने का देश बन गया। जर्मनी में ट्यूटन या जर्मन-अंश प्रबल हो जाने से जर्मनी ट्यूटन जाति का देश बन गया। फ्रांस में चार्ल्स के वंश—केरोलिञ्जियन-वंश—का सन् ८८७ में अन्त हो गया। तब ह्यूकेप्ट-नामक एक मनुष्य ने सिंहासन पर अधिकार करके ह्यूकेप्टियन-वंश चलाया।

सन् ९३६ में ऑटो प्रथम जर्मनी के राजसिंहासन

पर बैठा। इटली के मामलों में दख़ल देने के कारण वह उस देश का भी राजा बन गया। इसके अतिरिक्त उसने

७४ महान् ऑटो (६६२)

डेन, पोल तथा हङ्गेरियन कृबीलों पर भी अपना प्रभुत्व जमा लिया। अपना बढ़ता हुआ बल देखकर उसके मन में रोमन-साम्राज्य को फिर जीवित करने का विचार उत्पन्न हुआ। ६६२ में पोप ने उसके सिर पर महान् चार्लेसवाला मुकुट रक्खा। तत्पश्चात् यह एक नियम ही बन गया कि वह जो राजा चुना जाता था सम्राट् कहलाता था। और तभी से साम्राज्य का नाम 'पवित्र रोमन-साम्राज्य' हुआ। यद्यपि वास्तव में, जैसा कि प्रसिद्ध दार्शनिक वॉल्टेयर ने कहा है, 'न तो वह पवित्र था, न रोमन और न कोई साम्राज्य'। नेपोलियन ने उस साम्राज्य का अन्त कर दिया।

आठवाँ अध्याय

पोप की शक्ति का उत्थान

आरम्भिक ईसाई-चर्च के संगठन के सम्बन्ध में दो मत हैं। पहला यह कि चर्च का शासन आरम्भ से ही ऐसा चला आता है जैसा कि आज-कल रोमन-कैथालिक चर्च का है। दूसरा यह कि आरम्भ में चर्च छोटी-छोटी समितियों के सम्मिलन से बना था। उनके ऊपर कोई एक मनुष्य नहीं था और न उनकी कोई एक सङ्गठित समिति थी। किन्तु इस बात पर सभी सहमत हैं कि चौथी शताब्दी के अन्त में चर्च में एक प्रकार का शासन था, जिसके अध्यक्ष 'बिशप', 'डीकन' तथा 'प्रीस्ट' कहलाते थे। बिशप कई तरह के होते थे; गाँव के, नगर के, राजधानी के और प्रान्त के। राजधानी के बिशपों के ऊपर 'पेट्रियार्क' होते थे। इनके केन्द्र रोम, कुस्तुनतुनिया, सिकन्दरिया, एण्टिऑक तथा येरोशलम में थे।

७५ आरम्भिक चर्च का संगठन

रोमन-कैथालिक विद्वानों का मत है कि आरम्भ से ही पेट्रियार्क रोम के बिशप को माननीय मानते आये हैं। प्रॉटेस्टेण्ट लोगों का कहना है कि पहले सब पेट्रियार्क बराबर थे, कोई किसी से बड़ा नहीं था। कुछ भी हो, रोम के पेट्रियार्क का यह

७६ पोप और उसकी शक्ति

कहना तो ठीक ही है कि रोम के चर्च की नींव सेण्टपीटर ने रक्खी थी । वही वहाँ का पहला बिशप था। ईसा ने उसी को स्वर्ग-राज्य की कुञ्जियाँ दी थीं। यह अधिकार पीटर से ही उसके उत्तराधिकारियों को प्राप्त हुआ था। अस्तु। एक बिशेष अधिकार के लिए जब लगातार उत्तराधिकारी उत्पन्न होते गये तब कुछ समय के पश्चात् उसको माननेवाले भी पैदा हो गये। इसी कारण छठी शताब्दी के अन्त में रोम का बिशप साधारणत: सबसे बड़ा माना जाने लगा और पोप का ख़िताब जो पहले सब बिशपों के लिए प्रयुक्त होता था केवल रोम के बिशप के ही नाम के साथ रह गया। साथ ही सेण्टपीटर की गद्दी पर बैठनेवाले ल्यू, ग्रेगरी और निकलसन प्रथम ऐसे महापुरुष थे कि उनके समय में पोप का प्रभुत्व समस्त योरुप पर बैठ गया।

इसके अतिरिक्त रोमन-केथॉलिक लोग यह भी कहते हैं कि पहली तीन शताब्दियों में दो को छोड़ कर रोम के शेष सभी बिशप मज़हब के लिए हुतात्मा हुए हैं। रोम के सांसारिक मान ने भी रोम के मज़हबी नेताओं का मान बढ़ाने में बड़ी सहायता की। रोम संसार में राजनैतिक-शक्ति का केन्द्र था। लोग इसे मज़हबी शक्ति का केन्द्र भी मानने लग गये और जब से सम्राट् कॉन्स्टेन्टाईन ने कुस्तुनतुनिया को अपनी राजधानी बना लिया तब से पोप की शक्ति बजाय कम होने के

और भी बढ़ने लगी। क्योंकि सम्राट् के चले जाने से रोम में अकेला पोप ही शक्तिमान् बन गया। जब असभ्य बर्बरों ने रोम पर आक्रमण करने शुरू किये तब वह पोप ही था जिसके पास लोग अपनी रक्षार्थ आते थे। जब पश्चिमी साम्राज्य का एक तरह से अन्त हो गया तब राजा के स्थान में पोप ही राजशक्ति का प्रयोग करने लग गये। ग्रेगरी (५९०-६०४) बिल्कुल राजा के समान राज्य के मामलों का निर्णय करता था अर्थात् वही राजा था।

१७ रोम के मिशन

रोम के मिशनरियों ने जब इँग्लेण्ड, फ्रांस आदि देशों में ईसाई-मज़हब का प्रचार किया, तब स्वभावतः सब जातियाँ रोम का बड़ा आदर करने लगीं। जो लोग ईसाई बन जाते, वे रोम के गिरजों की यात्रा करना अपना कर्त्तव्य समझते थे। सन् ७४२ में गॉल तथा जर्मनी के बिशपों ने फ्रेङ्कफोर्ट में एक सम्मेलन किया, जिसमें यह बात निर्णीत हुई कि सभी बिशप तथा आर्च-बिशप अपना नियुक्ति-चिह्न पोप के हाथ से लिया करें, क्योंकि उन्हें सदा रोमन-चर्च की आज्ञापालन करनी होगी। सातवीं शताब्दी के अंत में सब मज़हबी शहर—सिकन्दरिया, येरोशलम और एण्टियाक मुसलमानों के हाथ में चले गये। इसलिए अकेला कुस्तुनतुनिया ही रोम के पोप की शक्ति का मुक़ाबला करनेवाला रह गया।

आठवीं शताब्दी में यूनानी तथा रोमन-चर्च में परस्पर प्रतिमा-भङ्ग के सम्बन्ध में वाद-विवाद शुरू हुआ। पूर्व में ईसाई-मज़हब के अन्दर यद्यपि एक विशेष परिवर्तन आ चुका था, तथापि फिर भी पेगन-विचारों से प्रभावित होकर ईसाइयों ने अपने गिरजों में स्थान-स्थान पर चित्र और प्रतिमायें रक्खी थीं। इसके कारण कई लोगों में मूढ़ विश्वास उत्पन्न हो गया था। मुसलमानों ने जब इन गिरजों तथा मूर्तियों को तोड़ना शुरू किया तब ईसाइयों में एक प्रतिमा-भङ्गी दल पैदा हुआ। उसने अपनी एक सभा में यह निर्णय किया कि 'गिरजे में प्रतिमा रखना ईसाई-मज़हब के विरुद्ध है। अतः सब गिरजों से मूर्त्तियाँ हटा देनी चाहिए।' कुस्तुनतुनिया के सम्राट् ने यह आज्ञा रोम के गिरजों में भी जारी करवानी चाही।

७८ प्रतिमा-भङ्ग-सम्बन्धी वाद-विवाद

किन्तु रोम के पोप ग्रेगरी द्वितीय ने प्रतिमा-भङ्गी दल के निर्णय के विरुद्ध फ़ैसला दिया और उन गिरजों को नियम-विरुद्ध घोषित किया जिन्होंने मूर्त्तियों को तोड़ डाला था। कुस्तुनतुनिया-सम्राट् के साथ इस झगड़े में रोम के पोप को किसी राजा की सहायता की ज़रूरत पड़ी। यह हम देख चुके हैं कि उसने किस प्रकार पिपिन की सन्तान को 'पश्चिमी सम्राट्' की उपाधि दी थी। इससे पोप की शक्ति राजाओं से भी ऊपर

७९ पोप राजा के रूप में

समझी जाने लगी। इस बात को पुष्ट करने के लिए धोखे से काम लिया गया। महान् कॉनस्टेंटाइन को कोढ़ था, उसका रोग चर्च की प्रार्थनाओं के कारण दूर हुआ और उसके बदले में उसने पोप को रोम का पूर्ण अधिकार दे दिया—ये बातें सिद्ध करने के लिए एक कृत्रिम पत्र बनाया गया। यही नहीं, बल्कि बिशपों ने विवाह, दान, झूठ तथा अनाथ-सम्बन्धी झगड़ों का निर्णय अपने हाथ में लेकर अपने मज़हबी न्यायालय स्थापित कर लिये। अभियोगों की अपीलें पोप के पास रोम में जाया करती थीं। इस प्रकार मज़हबी शासन के साथ उन्होंने सांसारिक शासन की भी नींव डाल दी।

नवाँ अध्याय

नॉर्थमन (उत्तरी मनुष्य)

सीज़र के गॉल पर आक्रमण करने (ई० पू० ५४) से बहुत पहले ट्यूटन क़बीलों के कुछ समूह योरुप के उत्तर—डेनमार्क, नारवे तथा स्वीडन—में जाकर आबाद हो गये थे। ये लोग अभी तक शिकारी दर्जे से आगे नहीं बढ़े थे।

८० उत्तरी देश और वहाँ के निवासी

स्कैण्डेनेविया का प्रायद्वीप तो मछलियों के शिकार के लिए योरुप में आज तक मशहूर चला आता है। शिकार के अतिरिक्त इस देश में लोहा बहुत पाया जाता है, जिसका ये लोग शस्त्र बनाने में उपयोग करने लगे। कई सदियों तक ये लोग अज्ञात रहे। किन्तु इनकी जन-संख्या बढ़ती गई। डेनमार्क तथा नॉरवे में राज्य स्थापित हो गये। वहाँ के राजाओं से तङ्ग आकर इन लोगों को इधर-उधर भागना पड़ा।

आठवीं शताब्दी के अन्त में ये 'उत्तरी मनुष्य' अपनी अपनी किश्तियाँ लिये हुए इँग्लेण्ड, आयर्लेण्ड तथा फ्रांस के तटों पर आक्रमण करने लगे। प्रतिवर्ष ग्रीष्म-ऋतु में वे आक्रमण करते और लूट-मार के पश्चात् बरसात आने पर अपने-अपने स्थान को लौट जाते थे।

८१ नॉर्थमन समुद्री लुटेरों तथा उपनिवेशकारों के रूप में

धीरे-धीरे इन्होंने अपनी बस्तियाँ बना लीं। सबसे पहले ये लोग फ्रांस—नॉरमण्डी—में बसे। नॉरमण्डी से बहुत से लोगों ने दक्षिण इटली, सिसली तथा इँग्लेण्ड में उपनिवेश बनाये। इसी प्रकार आठवीं शताब्दी में इन्होंने समुद्र के रास्ते से योरुपीय देशों के तटों पर आबाद होना शुरू किया। जहाँ-कहीं ये बसते थे उसी देश का शिष्टाचार, वेश-भूषा, विचार तथा रीति-रिवाज ग्रहण कर लेते थे। वहाँ के निवासियों में बिलकुल मिल जाते थे। इँग्लेण्ड में अँगरेज़ों के समान रहने लगे। फ्रांस में फ्रांसीसियों की तरह इनके उपनिवेश स्कॉटलेण्ड, आयर्लेण्ड, रूस, इटली, कुस्तुनतुनिया, ग्रीनलेण्ड तथा आईसलेण्ड तक फैल गये।

८२ इँग्लेण्ड में 'उत्तरी मनुष्यों' के उपद्रव

हमने पीछे (प्रकरण २०) देखा है कि किस प्रकार एङ्गलोसेक्सन कबीलों ने ब्रिटेन-निवासियों को विनष्ट करके उनके देश पर अपना स्वत्व जमा लिया था। तत्पश्चात् उनके कई राज्य बने, जो सप्त-राज्य 'हेपटार्की' कहलाते हैं। इन राज्यों में, जिनमें से मरशिया, ईस्टएङ्गलिया तथा वेसेक्स बड़े थे, दो सौ वर्ष तक आपस में लड़ते रहे। अन्त में वेसेक्स ने सब पर विजय पाई और उसका राजा एगबर्ट (८०२–८३९) सबसे पहले समस्त इँग्लेण्ड का राजा बना।

एगबर्ट के लड़के एथलवुल्फ़ का सबसे छोटा पुत्र एल्फ्रेड था। वह ८४९ में पैदा हुआ था। अभी वह बालक ही था कि उसका पिता उसे रोम ले गया और पोप ने उसे अपना धर्मपुत्र बना लिया। चर्च का प्रभाव उस पर जीवन-पर्यन्त रहा।

८३ राजा एल्फ्रेड और डेन लोग

चर्च के अतिरिक्त उसकी माता ने भी उसके अन्दर पढ़ने का शौक़ पैदा कर दिया था। उसके भाई डेन लोगों (नॉर्थमन) के साथ लड़ते हुए मारे गये। बाईस बरस की आयु में (८७१) राजसिंहासन पर बैठने से उसके सिर पर देश की रक्षा का भार आ पड़ा। छः साल तक वह अपने शत्रुओं के साथ युद्ध करता रहा। किन्तु प्रतिवर्ष डेनों की शक्ति बढ़ती गई। अन्त में एल्फ्रेड तथा उसके साथियों को जङ्गलों का आश्रय लेना पड़ा। कुछ समय के पश्चात् उसके दिन फिरे और डेनों के राजा गूथरूम के साथ उसने ८७८ में वेडमोर की सन्धि कर ली, जिससे उत्तर-पूर्वी प्रदेश डेनराज को दे दिया गया।

गूथरूम के एक ज़गह टिक जाने से एल्फ्रेड को भी शान्ति प्राप्त हुई। दस-पन्द्रह वर्ष उसने आराम से व्यतीत किये। इस बीच में उसने जहाज़ों का एक बेड़ा बनाया और शासन का सुधार किया। एङ्गलो सेक्सन लोगों के पुराने क़ानून इकट्ठे करके, ईसाई-मज़हब के सिद्धान्तों के अनुसार उनको घटा-बढ़ाकर एल्फ्रेड ने क़ानून की एक संहिता तैयार

८४ व्यवस्थापक तथा लेखक एल्फ्रेड

की। इससे भी बड़ी बात जो उसने की वह अपने देश में शिक्षा-प्रचार करना था। स्वयं एल्फ्रेड हमें बताता है कि टेम्स-नदी के दक्षिण में एक भी पादरी ऐसा नहीं था जो उसकी लेटिन की प्रार्थना-पुस्तक का अँगरेज़ी में अनुवाद कर सकता। उसने अनुभव किया कि जब तक कि सभी पुस्तकें विदेशी-भाषा में लिखी हुई हैं तब तक प्रजा में किसी प्रकार की शिक्षा नहीं फैल सकती। इसलिए लेटिन-पुस्तकों का अनुवाद करने में उसने अपने आपको लगा दिया। अँगरेज़ी-गद्य का आरम्भ एल्फ्रेड की अनुवादित पुस्तकों से ही होता है।

सन् ९०१ में एल्फ्रेड की मृत्यु हुई। अँगरेज़ ऐतिहासिकों का मत है कि इससे पहले किसी राजा ने अपना जीवन इस प्रकार प्रजाहितार्थ नहीं व्यतीत किया था। एल्फ्रेड ने स्वयं लिखा है "मैं यह कह सकता हूँ कि जब तक मैं जीवित रहा हूँ, योग्यतया रहा हूँ। अपनी स्मृति मैं अपने कार्य्यों में छोड़ रहा हूँ।"

एल्फ्रेड के राजा बनने के समय आधा इँग्लेण्ड डेनों के हाथ में आ चुका था। उसकी मृत्यु के पश्चात् लगभग सौ साल तक इँग्लेण्ड के राजा उनका मुक़ाबला करते रहे। एक राजा

८९ इँग्लेण्ड में डेन-राज्य

एथलरेड द्वितीय (९८९-१०१६) ने उन्हें घूस देकर अपने राज्य से निकालने का प्रयत्न किया। यह एक ऐसी भयंकर

भूल थी, इससे प्रतिवर्ष उसकी प्रजा पर कर बढ़ता गया और डेन धन ले जाते रहे। धन खर्च हो जाने पर वे फिर वापस आ जाते और आग तथा तलवार का भय देकर धन ले जाते।

सन् ९९४ में डेनमार्क तथा नॉरवे के राजा स्वेजन और ओलाफ़ ने अपनी सेनायें इकट्ठी करके इँग्लेण्ड को जीतने का निश्चय किया। तब वहाँ न किसी का शासन था और न एकता। इस पर एथलरेड ने एक और भूल की, इँग्लेण्ड में रहनेवाले डेनों का वध कर दिया। इनमें स्वेजन की एक बहन भी थी। बहन का बदला लेने के लिए उसने दस बरस तक इँग्लेण्ड में तबाही मचा दी। नगरों को लूट लिया। मठों तथा गिरजों को लूट कर जला दिया। अन्त में, १०१३ में एथलरेड के भाग जाने पर स्वेजन इँग्लेण्ड का राजा चुना गया।

स्वेजन की मृत्यु पर उसका लड़का केनयूट राजा बना। वह अभी उन्नीस वर्ष का ही था कि एथलरेड फिर वापस आ गया। दोनों में परस्पर बहुत समय तक युद्ध होता रहा, जिसमें एथलरेड मारा गया। किन्तु उसके बेटे एडमण्ड ने लड़ाई जारी रक्खी। यद्यपि कई बार समस्त इँग्लेण्ड केनयूट के विरुद्ध हो गया तथापि उसी की विजय हुई। इँग्लेण्ड दो भागों में बट गया, एक एडमण्ड के लिए, दूसरा केनयूट के लिए।

८६ केनयूट राज्य (१०१६–१०३५)

किन्तु एडमण्ड के शीघ्र ही मर जाने पर केनयूट समस्त इँग्लेण्ड का स्वामी बन गया।

राजा बनते ही केनयूट में एक परिवर्तन हुआ, उसने इँग्लेण्डवासियों के हितार्थ काम करना शुरू कर दिया। केनयूट का राज्य-काल शान्ति का समय था। १०३५ में उसकी मृत्यु पर उसके लड़कों में झगड़ा शुरू हो गया। १०४२ में उसकी सन्तान की समाप्ति पर एथलरेड का पुत्र एडवर्ड इँग्लेण्ड के सिंहासन पर बैठा।

सन् १०६६ में एडवर्ड मर गया और हेरल्ड उसका उत्तराधिकारी नियत हुआ। हेरल्ड एक बार नारमण्डी गया था। वहाँ उसने विलियम से प्रतिज्ञा की थी कि वह उसे इँग्लेण्ड का राज्य प्राप्त करने में सहायता देगा।

८७ हेरल्ड; इँग्लेण्ड में नारमन-राज्य

एडवर्ड अपनी माता की ओर से विलियम का सम्बन्धी था। इस सम्बन्ध के कारण विलियम ने इँग्लेण्ड के राज्य का दावा किया और हेरल्ड को अपना वचन पूरा करने के लिए लिख भेजा। इसके उत्तर में हेरण्ड ने सब नारमनों को इँग्लेण्ड से निकाल दिया और अपने देश की रक्षार्थ सेना इकट्ठी करनी शुरू की। उधर विलियम भी आक्रमण करने के लिए तैयार हो गया। उसने पोप को भी इस बात पर राज़ी कर लिया।

उस समय इँग्लेण्ड के उत्तर में हेरल्ड का निज भाई टॉस्टिग उसका शत्रु सिद्ध हुआ। उसने स्केण्डनेविया से बेड़ा

इकट्ठा करके उत्तरी इँग्लेण्ड को लूटना आरम्भ किया और यॉर्क-नगर पर क़ब्ज़ा कर लिया। यह समाचार सुन कर हेरल्ड को उत्तर में जाना पड़ा, जहाँ उसने टॉस्टिग को पराजित किया और वह युद्धक्षेत्र में मारा गया।

अभी इस विजय पर ख़ुशियाँ ही मनाई जा रही थीं कि दूत यह समाचार लाया कि सेना-सहित विलियम हेस्टिंग्ज़-बन्दर पर आ उतरा है। तेज़ी से कूच कर के हेरल्ड वहाँ पहुँचा। दूसरे दिन वह मारा गया और विलियम इँग्लेण्ड का अधिपति बन गया। वहाँ से विलियम लंदन पहुँचा, जहाँ उसके सिर पर मुकुट रक्खा गया।

विलियम का सबसे पहला काम उत्तरी इँग्लेण्ड के उन लोगों को अपने अधीन करना था, जो उसके विरुद्ध खड़े हो गये थे। वहाँ उसने ऐसा उखाड़-पखाड़ किया कि लगभग एक लाख मनुष्य भूख तथा सरदी से मारे गये। जो शेष रहे, उनको देश छोड़ कर भागना पड़ा।

८८ विलियम (१०६७–१०८७)

उत्तर से वापस आकर विलियम ने इँग्लेण्ड की सारी भूमि अपने सरदारों में बाँट दी। किन्तु इस विचार से कि कहीं उनकी शक्ति बढ़ न जाय उसने उनको एक ही प्रदेश देने के बजाय भिन्न-भिन्न स्थानों के टुकड़े दिये। ऐसा करने से पहले १०८६ में उसने हर एक सरदार से आज्ञा-पालन की प्रतिज्ञा ली। जिन लोगों की जायदादें छिन गई थीं,

उनको भयभीत रखने के लिए विलियम ने स्थान-स्थान पर दुर्ग बनवाये। उसका अनुकरण करके सरदारों ने भी ऐसा ही किया। इस प्रकार इन दुर्गों के द्वारा नारमनों की थोड़ी सी संख्या ने इँग्लेण्ड को अपने अधीन कर लिया।

विलियम ने समस्त इँग्लेण्ड की पैमायश कराई और पशुओं की गिनती करवाई जिससे प्रत्येक मनुष्य की आय मालूम हो सके। ये सब बातें 'डूम्ज़डे'-नामक पुस्तक में लिखी गई। उसे तथा उसके सरदारों को शिकार का बड़ा शौक़ था। तदर्थ उसने एक बड़े प्रदेश को वीरान करके जङ्गल बना दिया। उसके अन्तिम वर्ष बड़े कष्ट में व्यतीत हुए। उसके पुत्र उसके विरुद्ध हो गये। सन् १०८७ में वह घोड़े से गिर कर मर गया।

८९ विलियम के काम

विलियम के शासन से इँग्लेण्ड को एक बड़ा लाभ यह हुआ कि उससे देश में एक केन्द्रस्थ शासन स्थापित हो गया। इसके साथ नॉरमन सरदारों की एक श्रेणी बढ़ा दी गई। नॉरमण्डी तथा इँग्लेण्ड के एक राजा के अधीन होने से योरुप के साथ इँग्लेण्ड का सम्बन्ध अत्यधिक बढ़ गया। इसी कारण इँग्लेण्ड तथा फ्रांस में परस्पर ईर्ष्या उत्पन्न होगई, और उसका परिणाम 'शतवर्षीय युद्ध' हुआ।

९० नॉरमन विजय के फल

विलियम की मृत्यु से लेकर बारहवीं शताब्दी के मध्य तक इँग्लेण्ड पर उसकी सन्तानें—विलियम द्वितीय, हेनरी प्रथम तथा स्टीफ़ेन, राज्य करती रहीं।

९१ विलियम के नॉरमन उत्तराधिकारी १०८७–११५४

विलियम द्वितीय तथा हेनरी प्रथम के राज्यकाल में इँग्लेण्ड के व्यापार तथा उद्योगों ने बड़ी उन्नति की। अँगरेज़ तथा नॉरमन परस्पर हिल-मिल गये। किन्तु हेनरी के मर जाने पर उसकी लड़की मेटिल्डा तथा विलियम प्रथम के पौत्र स्टीफ़न में राजगद्दी के लिए झगड़ा शुरू होगया। कई बरस तक यह गृह-युद्ध जारी रहा। अन्त में चर्च ने यह निर्णय किया कि जब तक जीता रहे तब तक स्टीफ़न राज्य करे तत्पश्चात् मेटिल्डा के पुत्र एन्जुआ का हेनरी सिंहासन पर बैठाया जाय।

अगले वर्ष स्टीफ़न मर गया और एन्जुआ का हेनरी राजा बना, जिससे इँग्लेण्ड में एन्जुविन या प्लैण्टैजेनट-वंश का आरम्भ हुआ।

जिस प्रकार नॉर्थमन इँग्लेण्ड में आबाद हो रहे थे उसी प्रकार ७९९ में वे गाल के तट पर उतरे थे। महान् चार्लेस ने जब इन

९२ रोलो तथा सरल चार्लेस

लुटेरों के कुछ जहाज़ भूमध्यसागर में देखे, तब, कहा जाता है, उसकी आँखें अश्रुपूर्ण होगईं। उसके चित्त पर आनेवाले कष्ट से बड़ी चोट लगी। चार्लेस की मृत्यु को अभी तीस वर्ष ही हुए थे कि इन्होंने सीन-नदी के द्वारा फ्रांस को लूटा। फ्रांसी-

सियों की लूट-मार की कथा वैसी ही हृदयविदारक थी जैसी इँग्लेण्ड की। फ्रांस के राजा पहले इन्हें रिश्वत देकर लौटाते रहे। अन्त में सन् ९१२ में सरल चार्लस ने इनके नेता रोलो को उत्तरी गाल का एक बड़ा प्रदेश देकर इनसे सन्धि कर ली।

रोलो और उसके साथी नॉर्थमनों या डेनों ने जल्दी ही अपने नये देश की भाषा तथा रीति-नीति को ग्रहण कर लिया। फ्रांस की आबादी में एक नया अंश नॉर्थमन या नार्मन मिल जाने से फ्रांसवासियों में कई ऐसे गुण उत्पन्न हो गये जो फ्रांस के भविष्य के इतिहास के लिए बड़े महत्त्व-पूर्ण सिद्ध हुए। ईसाई हो जाने के बाद भी नार्मनों के भाव तथा जोश पूर्ववत् बने रहे। यहाँ से चलकर उन्होंने मज़हबी युद्धों में भाग लिया और इँग्लेण्ड आदि देशों पर आक्रमण करना जारी रक्खा। रोलो के उत्तराधिकारियों के समय में नॉरमण्डी की शक्ति बहुत बढ़ गई।

३ गॉल के नार्थमन का रूप-परिवर्तन

एक सौ वर्ष शान्ति में व्यतीत करने के पश्चात् उनके पुराने भाव फिर जाग उठे। ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में वे दक्षिण-इटली में प्रविष्ट हुए। वहाँ के ईसाई-शासकों को मुसलमानों के विरुद्ध लगातार युद्ध करने के लिए सहायता की आवश्यकता रहती थी। उस समय मुसलमान सिसली पर अपना स्वत्व जमा चुके थे। दक्षिण-इटली के शासकों

४ इटली तथा सिसली में नॉर्थमन

तथा सिसली के मुसलमानों को दबाकर उन्होंने वहाँ पर अपना राज्य स्थापित किया। नेपल्ज़ को उन्होंने अपनी राजधानी बनाया और अपने नेता रॉबर्ट गिएकार्ड के अधीन उन्होंने जहाज़ों का एक बेड़ा तैयार किया। इसकी सहायता से भूमध्यसागर में से मुसलमानों को निकाल कर उन्होंने मज़हबी युद्ध करनेवालों के लिए एक समुद्री रास्ता ही बना दिया।

पुनरुज्जीवन-काल

दसवाँ अध्याय

जागीरदारी तथा शौर्य (फ्यूडलिज़्म और शिवलरी)

१—जागीरदारी

मध्ययुग के इतिहास के दूसरे भाग में दसवीं शताब्दी के अंत में अन्धकार-काल समाप्तप्राय हो जाता है और योरुप पर प्रकाश पड़ने लगता है। इस समय हमें योरुपीय देशों में एक विशेष प्रकार का समाज दिखाई देता है, जो जागीरदारी या 'फ्यूडलिज़्म' पर आश्रित है।

६९ जागीरदारी की परिभाषा

जागीरदारी ज़मीन के लगान का एक तरीक़ा था जिसके अनुसार जागीरदार अपनी ज़मीन दूसरे मनुष्य को इस शर्त पर देता था कि वह उसे अपना स्वामी (लार्ड) समझे और उसकी आज्ञा-पालन करने की प्रतिज्ञा करे। ज़मीन देनेवाला जागीरदार कहलाता था और लेनेवाला असामी। इस प्रकार से दी गई ज़मीन, चाहे वह दो तीन एकड़ हो या कोई बड़ा प्रदेश, 'फ़्यूड' कहलाती थी। इसी से फ़्यूड-लिज़्म शब्द निकला और जारी हुआ। ज़मीन का लेनेवाला

असामी अपनी ज़मीन को और कई असामियों में बाँट सकता था। ये असामी उसे अपना जागीरदार समझते और उसकी आज्ञा-पालन की प्रतिज्ञा करते थे।

वास्तव में, सिद्धान्त यह था कि सब सम्राट् के असामी हैं। पहले प्रत्येक देश में सरदार या जागीरदार राजा के असामी बनते थे और वह उनका स्वामी (लार्ड) होता था। इसी प्रकार सरदार या अमीर फिर अपने असामियों के, जिनमें वह ज़मीन बाँटते थे जागीरदार कहलाते थे। प्रत्येक जागीरदार उन सब मनुष्यों का, जो उसकी ज़मीन पर रहते थे, न्यायाधीश, क़ानून बनानेवाला और फ़ौजी अफ़सर होता था अर्थात् वे लोग पूर्णत: उसकी मिलकियत थे।

९६ आदर्श पद्धति

जब कभी राजा को सेना की आवश्यकता होती वह अपने हर एक अमीर या जागीरदार को सहायता के लिए आज्ञा लिख भेजता था। तब जागीरदार अपने असामियों को आदमी लाने की आज्ञा देते थे। इस प्रकार छोटे बड़े असामी तथा अमीर अपने-अपने आदमी लिये हुए अपने-अपने स्वामियों के नीचे जा इकट्ठे होते, जिनसे वे प्रतिज्ञा कर चुकते थे।

समाज तथा शासन की यह पद्धति रोमन तथा जर्मन

अंशों के मिश्रण से बनी थी। इसका भाव जर्मन था और रूप रोमन। नवीं तथा दसवीं शताब्दियों में, जब योरुप में स्थान-स्थान पर दङ्गा फ़साद हो रहे थे, जागीरदारों के लिए यह ज़रूरी था कि वे इस पद्धति के अनुसार चलें।

९७ पद्धति में रोमन तथा ट्यूटन-अंश

जब कोई मनुष्य असामी के रूप में किसी जागीरदार या अमीर से ज़मीन लेता था तब एक ख़ास रस्म की जाती थी। असामी नङ्गे सिर घुटनों के बल बैठकर अपने हाथ अपने जागीरदार के हाथों में डाल देता था और प्रतिज्ञा करता था कि 'मैं तुम्हारा होकर सदा तुम्हारी आज्ञा का पालन करूँगा।' फिर वह जागीरदार के हाथों का चुम्बन करता। तत्पश्चात् जागीरदार असामी के हाथ पर मिट्टी का एक ढेला और वृक्ष की एक टहनी रखता था, जिसका अर्थ यह था कि ज़मीन उसके सुपुर्द की गई है।

९८ ज़मीन लेने की रस्म

असामी का काम आज्ञा-पालन तथा सेवा करना होता था और जागीरदार का काम असामियों की हर तरह से रक्षा करना। यह सेवा प्रायः लड़ाई के समय सहायता के रूप में की जाती थी और वर्ष में चालीस दिन से अधिक न होती थी। युद्ध में यदि जागीरदार

९९ जागीरदार तथा असामी का सम्बन्ध

या अमीर को शत्रु पकड़ लेता तो असामी उसकी जगह अपने आपको पेश करते थे।

देश में जागीरदार तथा असामी ही स्वतन्त्र होते थे। उनकी जन-संख्या पाँच प्रतिशत के क़रीब थी। शेष सब एक एक तरह से कृषकदास (सर्फ़) होते थे।

१०० कृषकदास तथा दासता

इनका काम ज़मीन की काश्त करना होता था। ज़मीन के साथ उनका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध था कि उसकी तब्दीली के साथ वे भी तब्दील हो जाते थे। इन दासों को ज़मीन का लगान देना पड़ता था और एक सप्ताह में दो-तीन दिन तक अपने जागीरदार की निजी ज़मीन पर काम भी करना पड़ता था।

यद्यपि पाँचवीं तथा छठी शताब्दी में समाज में इस पद्धति का अंकुर उग आया था, तथापि चार्लेस मारटल पहला मनुष्य था, जिसने टूर के युद्ध में इस बात का अनुभव किया था कि घुड़सवार अरबों के मुक़ाबले में पियादा-फ़ौज कुछ नहीं कर सकती थी।

१०१ जागीरदारी-पद्धति का विकास

इसलिए चर्च की ज़मीन देकर उसने एक रसाला बनाया। इसी घटना से शौर्य ('शिवलूरी') की संस्था का आरम्भ हुआ।

महान् चार्लेस की मृत्यु के बाद उसके राज्य में ऐसी गड़बड़ी मची कि समाज के पुराने सम्बन्ध टूट गये। स्कैण्डेनेविया के लुटेरों ने आक्रमण करना शुरू कर दिया। लोगों पर उनका ऐसा डर छागया कि वे प्रार्थना करने लगे—

'प्रभो ! हमें इन नारमनों से बचाओ !' इसके अतिरिक्त मुसलमानों ने भी इटली तथा सिसली पर स्वत्व जमा करके भूमध्य-सागर के भिन्न-भिन्न भागों के ईसाई-देशों के तटवर्ती नगरों पर आक्रमण करना तथा लूटना आरम्भ कर दिया। पूर्व की ओर से हङ्गेरियन लोगों ने हमले शुरू किये। ऐसी अवस्था में हर एक छोटे-बड़े को लूटे जाने का भय रहने लगा। इसलिए सबने जागीरदारी-पद्धति की शरण ली। जो लोग भूमिपति थे उन्होंने भी अपनी ज़मीनें जागीरदारों या अमीरों को देकर फिर उनका असामी बनना उचित समझा। इसी कारण गिरजे तथा मठ भी इसी पद्धति पर चलने लगे। हर एक संस्था पर जागीरदारी की छाप लग गई।

१०२ क्षय और उसके कारण

तेरहवीं शताब्दी की समाप्ति से पूर्व ही जागीरदारी-पद्धति का क्षय का आरम्भ होगया। राजा तथा जन-साधारण आरम्भ से ही इस पद्धति को नापसन्द करते थे। राजा तो इसलिए कि उनकी शक्ति नाम-मात्र रह गई थी, और जनसाधारण इसलिए कि उनके जान-माल का कोई मूल्य न समझा जाता था। बाद में जब मुसलमानों के विरुद्ध मज़हबी युद्ध हुए तब बड़े बड़े जागीरदारों ने युद्ध में सम्मिलित होने के लिए अपनी ज़मीनों को बेचना या रहन रखना शुरू कर दिया। उनमें बहुत से अमीर तो युद्ध में मारे गये और उनकी ज़मीनें व्यापारियों के हाथ में चली गईं। व्यापार के बढ़ने

से प्रत्येक देश में बड़े-बड़े तिजारती और दौलतमन्द शहर खड़े होगये, जिनके रहनेवालों ने जागीरदारों को धन देकर ज़मीनें ख़रीद लीं।

लेकिन सबसे बड़ा कारण जिसने जागीरदारी-पद्धति तथा 'शौर्य' को धक्का दिया वह योरुप में बारूद तथा बारूद-वाले हथियारों का रिवाज था। बारूद के प्रयोग ने बलवान् तथा निर्बल को एक समान बना दिया। बन्दूक़वाले मनुष्य के लिए अमीर का दुर्ग व्यर्थ था।

जब तक जागीरदारी-पद्धति रही तब तक प्रत्येक देश छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्यों में बँटा रहा; एक शक्तिशाली शासन की स्थापना असम्भव थी। दसवीं शताब्दी में फ़्रांस में एक सौ पचास जागीरदार या अमीर राज्य करते थे।

१०१ जागीरदारी-पद्धति के दोष तथा सुफल

उनमें से कई एक के पास तो फ़्रांस के राजा से अधिक धन तथा अधिकार था और वे जब चाहते तब राजा के आज्ञा-पालन से जवाब दे देते थे। राजा का समय इन राजद्रोही अमीरों के दबाने में ही व्यतीत होता था। इस पद्धति ने समाज को कई श्रेणियों में बाँट दिया था। जागीरदार तथा कृषकदास में आकाश-पाताल का अन्तर था।

किन्तु इस पद्धति से सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि इसने समाज को लुटेरे आक्रमणकारियों से बचाया। अमीरों ने स्वतन्त्र रहने के लिए बड़ा प्रयत्न किया। पहले-पहल यही

अमीर थे, जिन्होंने जाहन जैसे राजा से स्वतन्त्रता के अधिकार-पत्र प्राप्त किये थे। इस पद्धति ने सभा-साहित्य को भी कुछ प्रोत्साहन दिया था।

२—शौर्य तथा योद्धा ('नाईट')

जागीरदारी-पद्धति का एक बड़ा फल शिवलरी-संस्था थी। यह संस्था एक सैनिक सम्प्रदाय था, जिसका काम चर्च तथा निर्बलों की रक्षा करना था। दक्षिणी फ्रांस में पैदा होकर यह सम्प्रदाय धीरे धीरे समस्त योरुप में फैल गया। इसके सदस्यों की विशेषता घोड़े की सवारी थी। इसके साथ उनमें मज़हबी जोश भी आगया और वे एक तरह से जन-साधारण के मज़हबी गुरु बन गये। इनके द्वारा ही योरुप मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए तैयार हो सका। इस काल का सारा साहित्य शौर्य-भाव तथा वीररस से भरा हुआ है।

१०४ शौर्य ('शिवलरी')

अमीरों के लड़कों को ख़ास तौर पर सवारी आदि सिखाई जाती थी। सात वर्ष की आयु में ही उसकी शिक्षा आरम्भ हो जाती थी। चौदह बरस की उम्र में वह बालक योधानुचर बनता, और तब उसे सैनिक शिक्षा दी जाती थी। इक्कीस वर्ष में एक ख़ास रस्म करने के पश्चात् वह योधा बनाया जाता था। तब उसे मज़हब तथा स्त्री-रक्षा की

१०५ योधा बनने की रस्म; टूरनामेंट

प्रतिज्ञा करनी होती थी। एतदर्थ उसे एक विशेष तलवार दी जाती थी। योधाओं के परस्पर 'टूरनामेंट' हुआ करते थे। इन खेलों को देखने के लिए बहुत से दर्शक इकट्ठे होते थे। जो योधा अपने विपक्षी को घोड़े से उतार देता था उसे जय-पुरस्कार दिया जाता था।

जिन कारणों से जागीरदारी-पद्धति का क्षय हुआ उन्होंने 'शौर्य-संस्था' को भी नष्ट कर दिया।

ग्यारहवाँ अध्याय

पोप और सम्राट्

जागीरदारी का प्रभाव साम्राज्य तथा चर्च दोनों पर पड़ा और उसका परिणाम यह हुआ कि सम्राट् तथा पोप दोनों में परस्पर आन्दोलन होने लग गया। इस आन्दोलन को समझने के लिए हमारे लिए यह जानना ज़रूरी है कि जब शारलेमन के समय पश्चिमी साम्राज्य योरप में पुनः स्थापित किया गया तब उसके सम्बन्ध में कई प्रकार के विचार पाये जाते थे। एक यह था कि जिस प्रकार पोप लोगों की आत्माओं का स्वामी है उसी प्रकार सम्राट् लोगों के शरीरों पर राज्य कर सकता है। पोप तथा सम्राट् दोनों एक समान हैं, यद्यपि सम्राट् का यह कर्त्तव्य है कि वह चर्च की रक्षा करे और शान्ति भङ्ग करनेवालों का विरोध करते हुए चर्च की आज्ञा का पालन करे।

१०६ पोप और सम्राट् का सम्बन्ध

दूसरी कल्पना यह थी कि सांसारिक मामलों में सम्राट् पोप से उच्चतर है। इसे सिद्ध करने के लिए बाइबिल से भी उद्धरण दिये गये थे। ईसा ने कहा है—'हमें सम्राट् को अधिकार देना चाहिए।' यह बात इसलिए भी ठीक होना

चाहिए क्योंकि पिपिन और शार्लेमन ने पेप को कुछ भूमि प्रदान करके उसकी राजनैतिक शक्ति बनाई थी।

तीसरी कल्पना यह थी कि पेप सब राजाओं के ऊपर है क्योंकि ईसा ने सेण्टपीटर को ही सांसारिक तथा मज़-हबी दोनों शक्तियाँ प्रदान की थीं। जिस प्रकार आत्मा शरीर पर राज्य करती है उसी प्रकार पेप को राजाओं पर शासन करने का अधिकार है। यह बात इस कारण भी ठीक है क्योंकि पेप ने ही शार्लेमन के सिर पर मुकुट रखकर उसे सम्राट् बनाया था।

शार्लेमन तथा ओटो के सम्राट् बन जाने के पश्चात् चर्च के विरुद्ध यह बात ज़रूर हुई कि दसवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दी में जितने पोप हुए, उनमें अधिकांश चरित्रवान् या बुद्धिमान् न थे। हर बार पोप के चुनाव पर रोम में पादरियों में परस्पर झगड़ा हुआ करता था और प्रायः वे लोग, जो हृष्ट-पुष्ट होते तथा घूस दे सकते थे, पोप चुने जाते थे। ऐसी अवस्था में हेनरी तृतीय ने चर्च को दुर्जनों से बचाने के लिए हस्तक्षेप किया और अपना दबाव डाल कर सज्जनों को पोप बनवाया।

१०७ पोपों में दोष और उनका निवारण

उन सज्जन पोपों में से एक ग्रेगरी सातवाँ था। सन् १०४९ में वह क्लूनी के प्रसिद्ध मठ से रोम में लाया गया, जहाँ वह पोप बनाया गया। उसका मत था कि सभी ईसाई-देशों को एक मज़हबी शासन के अधीन होना चाहिए,

१०८ पोप ग्रेगरी सातवाँ (१०७३–१०८५)

और उसका अग्रणी पोप हो। पोप होते ही उसने चर्च में दो सुधार किये, एक तो चर्च के अन्दर पादरियों को अविवाहित रहने की आज्ञा दी। उन्हें अपने घरों से पृथक् करके केवल चर्च से प्रेम करने तथा उसके लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने का आदेश दिया। दूसरे उस ने चर्च से घूस के दोष को दूर करने का प्रयत्न किया। इसके पहले कोई भी पादरी घूस देकर किसी पद या उपाधि को मोल ले सकता था। उसकी आज्ञा थी कि कोई पादरी किसी शासक से बिशप आदि किसी उपाधि को स्वीकार न करे। इसके द्वारा वह शासकों की शक्ति को कम करना चाहता था।

अपने प्रसाद को क़ायम रखने के लिए उसने इन दो बड़े हथियारों का प्रयोग किया। पहला, वह जिसे चाहता चर्च से निकाल देता था। बहिष्कृत मनुष्य से किसी प्रकार का सम्बन्ध रखना बड़ा भारी अपराध समझा जाता था।

१०६ बहिष्कार तथा प्रत्यादेश

दूसरे, पोप नगरों, प्रान्तों तथा राज्यों के विरुद्ध प्रत्यादेश का प्रयोग करता था। प्रत्यादेश के अनुसार गिरजे का घन्टा न बजता, विवाह न होते और मृतक शरीर को भूमि में न दबाया जाता था। उस काल में इन बातों का इतना डर था कि हम उसका अनुमान नहीं कर सकते।

जर्मनी में पोप का बड़ा विरोध हुआ। पोप ने जर्मन-सम्राट् हेनरी चौथे को बहिष्कार की धमकी दी।

११० सम्राट् हेनरी चौथे की मानहानि (१०७७)

सम्राट् ने १०७६ में पादरियों का एक सम्मेलन करके पोप को गद्दी से उतरने का आदेश दिया। इस पर ग्रेगरी ने सम्राट् को राज्य-च्युत तथा चर्च से बहिष्कृत कर दिया और इटली तथा जर्मनी के सब ईसाइयों को आदेश दिया कि कोई मनुष्य सम्राट् की सेवा न करे। हेनरी की प्रजा उससे घृणा करने लगी।

राज्य छिन जाने पर हेनरी के लिए एक ही मार्ग शेष था। वह यह कि पोप की सेवा में उपस्थित हो। १०७७ में वह कानोसा पहुँचा। शरदृऋतु थी। तीन दिन और रात वह बर्फ़ से ढके हुए क़िले के अन्दर खड़ा रहा। चौथे दिन पोप ने उसे अपने कमरे में बुलाया और क्षमा प्रदान की।

दुबारा सिंहासन पर बैठते ही हेनरी ने मानहानि का बदला लिया; एक सेना बनाकर रोम पर चढ़ाई करके उसे विनष्ट कर दिया। ग्रेगरी रोम से भाग गया और देश-निर्वासन में मर गया। किन्तु मामला यहीं समाप्त नहीं हुआ, वरन् बढ़ता गया। ग्रेगरी के उत्तराधिकारी ने हेनरी को फिर चर्च से बहिष्कृत कर दिया, उसके लड़के पिता के विद्रोही बना दिये गये और जब वह मरा तब पाँच वर्ष तक उसके शव को गिर्जे में दबाने की आज्ञा न दी गई।

हेनरी के उत्तराधिकारियों ने भी पोप के विरुद्ध आन्दोलन जारी रक्खा। अन्त में सन् ११२२ में वर्मूज़ में एक सन्धि हुई, जिसके अनुसार सभी विशप तथा पादरी अपनी नियुक्ति के समय पोप के हाथ से एक छड़ी और छल्ला (जो उनके पद के चिह्न थे) ग्रहण करते, जिसे राजा भी स्पर्श करता था। इस सन्धि का अर्थ यह था कि आत्मिक बल का उत्पत्ति-स्थान पोप है और सांसारिक बल का राजा। इस आन्दोलन से योरुप में पोप की शक्ति पहले से बढ़ गई।

१११ वर्मूज़ की सन्धि (११२२)

पोप की शक्ति बढ़ाने में ग्रेगरी और उसके उत्तराधिकारी एलग्ज़ेण्डर तृतीय (११५९-११८१) तथा इन्नोसेण्ट तृतीय (११९८-१२१६) ने बड़ा काम किया। किन्तु पोप के अधिकार तथा प्रभाव का बढ़ जाना अस्थायी सिद्ध हुआ। सभी देशों—जर्मनी, इँगलेण्ड तथा फ्रांस—के राजाओं के साथ पोप की कशमकश शुरू होगई। जिसका परिणाम यह हुआ कि राजाओं की शक्ति बढ़ने से पोपों का प्रभाव कम होता गया।

११२ पोप एलग्ज़ेण्डर तृतीय और सम्राट् फ्रेड्रिक बरबरोसा

वर्मूज़ की सन्धि के पश्चात् जर्मनी में हॉनस्टीफ़ेन नामक वंश राज्य करने लगा। इटली पर भी इसी वंश का राज्य था। पुरानी बातों पर पोप के साथ उनका झगड़ा फिर से शुरू हो

गया। इसके सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि हेनरी चौथे की तरह सम्राट् फ्रेड्रिक को भी पोप से सविनय क्षमा माँगनी पड़ी। ११९७ में वेनिस की सन्धि हुई, उस समय सेण्टमार्क के गिरजे में बहुत से दर्शकों के सामने फ्रेड्रिक अपना चोगा फेंककर पोप के चरणों में गिर पड़ा। पोप ने सम्राट् को उठाकर उसका चुम्बन किया। यह घटना एक तरह से इसका काम्मेला (प्रकरण १११) था, जो पूरे सौ साल के बाद हुआ।

इस समय फ्रांस के सिंहासन पर फ़िलिप आगस्टस (११८०-१८२३) विराजमान था। किसी कारण से उसने अपनी रानी को छोड़कर दूसरा विवाह कर लिया। किन्तु पोप इन्नोसेण्ट तृतीय ने उसे आज्ञा दी कि वह अपनी पहली स्त्री को दुबारा महलों में रक्खे। फ़िलिप ने जब इस बात को न माना तब पोप ने फ्रांस को चर्च से निकाल दिया। तङ्ग आकर फ़िलिप को पोप से क्षमा माँगनी पड़ी और अपनी पहली रानी को भी वापस बुला लेना पड़ा। ऐसे ज़बरदस्त राजा से आज्ञा का पालन करवाना पोप की बड़ी भारी विजय समझी जाती है।

११३ पोप इन्नोसेण्ट तृतीय और फ्रांस का राजा फ़िलिप आगस्टस

इसी प्रकार इँगलेण्ड में भी पोप इन्नोसेण्ट का जान (११९९-१२१६) से मुक़ाबला हुआ। केन्टरबरी के बिशप की जगह ख़ाली हुई। जान ने माँकों को आज्ञा दी कि बिशप के

पद के लिए वे उसके आदमी को चुनें। किन्तु पोप ने इस चुनाव को नियम-विरुद्ध बताकर अपने मनुष्य को आर्चबिशप नियत किया। जान ने आज्ञा दी कि पोप के आदमी इँग्लेण्ड की भूमि पर पाँव न धरें। इस पर पोप ने जान तथा इँग्लेण्ड दोनों को चर्च से बाहर करके फ़्रांस के राजा फ़िलिप आगस्टस को इँग्लेण्ड पर आक्रमण करने का आदेश दिया। फलतः जान को पोप के आगे दबना पड़ा, और उसने इँग्लेण्ड तथा आयरलेण्ड पोप को देकर फिर उससे वापस लिये। अब लङ्गटन पोप की ओर से इँग्लेण्ड का आर्चबिशप नियत हुआ।

११४ पोप इन्नोसेण्ट तृतीय और इँगलेण्ड का राजा जाह्न्

पोप की शक्ति को मज़बूत करनेवाले इस समय माँकों के दो नये भिक्षुक-सम्प्रदाय बने जो कि प्रवर्तकों के नामों के अनुसार डुमिनिकन तथा फ्रेंसिसकन कहलाते थे। इनमें तथा साधारण माँकों में बड़ा अन्तर था। ये लोग संसार को छोड़ते नहीं थे वरन् जीवनपर्यंत भिक्षा पर निर्वाह करते और अपना समय लोगों को मुक्ति दिलाने में व्यतीत करते थे। पुराने माँकों के मठों में बहुत सा धन एकत्र हो जाता था। इसी कारण यद्यपि वे निर्धनता का व्रत ले लेते थे फिर भी वे आलसी तथा अकर्मण्य ही होते थे। ये दोनों सम्प्रदाय पुराने माँकों की विलासप्रियता का विरोध करने के लिए उत्पन्न हुए थे और पोप के लिए सेना का कार्य करते थे।

११५ भिक्षुक सम्प्रदाय

इन दोनों सम्प्रदायों ने सम्राट् फ्रेड्रिक द्वितीय (१२१८-१२५०) के विरुद्ध पोप के आन्दोलन में बड़ी सहायता की। फ्रेड्रिक एक बड़ा योग्य और प्रबल मनुष्य था। महान् चार्लेस के बाद इसी ने सम्राट्-पद को चमकाया था। पोप ने इसे भी चर्च से निकाल दिया। इसलिए चिरकाल तक वह पोप से लड़ता रहा। मरते समय उसे मालूम हुआ कि मैं अपने काम में सफल नहीं हुआ हूँ।

११६ जातियों का विरोध

यद्यपि सम्राटों के विरुद्ध आन्दोलनों में पोपों ने विजय पाई थी तथापि चौदहवीं शताब्दी में एक और ऐसी नई शक्ति उत्पन्न हुई थी जिसने पोप की शक्ति का उन्मूलन कर दिया था। यह नई शक्ति योरुप की भिन्न-भिन्न जातियों की उत्पत्ति में पाई जाती है। फ्रांस, जर्मनी और इँग्लेण्ड में नई जातीयता का भाव पैदा हुआ। जो राज्य के मामलों में पोप के हस्तक्षेप को बिलकुल सहन न करता था। किन्तु वे मज़हबी मामलों में उसका आदर करते थे।

११७ पोप बोनिफ़ेस आठवाँ और फ़िलिप

सन् १२९६ में पोप बोनिफ़ेस आठवें ने एक आज्ञा निकाली कि चर्च से सम्बन्ध रखनेवाला कोई मनुष्य बिना पोप की अनुमति के किसी राजा को कर न दे। फ्रांस के राजा फ़िलिप ने इसे अपने अधिकार में एक अनुचित हस्तक्षेप समझा। १३०२ में फ्रांस के क़बीलों, पादरियों तथा

जनसाधारण ने अपनी-अपनी सभाओं में यह प्रस्ताव पास किया कि पोप को राजनैतिक मामलों में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं। इस झगड़े का अन्त जल्दी ही हो गया। कुछ सैनिकों ने पोप बोनिफ़ेस को पकड़कर उसका खूब ही अनादर किया। यद्यपि तीन दिन के पश्चात् वह छोड़ दिया गया तथापि वह इस अपमान के दुःख से मर गया।

११८ पोप की राजधानी आवेनयोन (१३०९–१३७६); जर्मनी तथा इँग्लेण्ड का चर्च से निकलना

सन् १३०९ में पोप अपनी राजधानी रोम से आवेनयोन में, जो कि फ़्रांस के एक सीमा-प्रान्त में है, उठा ले गया। सत्तर वर्ष तक यही नगर राजधानी रहा और इस काल में जितने भी पोप हुए वे सब फ़्रांस के निवासी थे और राजा की आज्ञा पालन करते थे। इस लिए जर्मनी तथा इँग्लेण्ड के लोग पोप के विरुद्ध होते गये। १३३८ में जर्मन राजकुमारों ने यह निश्चय किया कि जर्मन-सम्राट् पोप तथा चर्च से सर्वथा स्वतन्त्र है। इसी प्रकार १३६६ में अँगरेज़ी पार्लेमेण्ट ने पोप को पुराना राजस्व देने से इनकार करके अपने आपको स्वतन्त्र कर लिया।

११९ मतभेद १३७८-१४१७

इतने ही में पोप की गद्दी के लिए एक ऐसा झगड़ा हुआ जिससे पोप का रहे-सहे मान का भी अन्त हो गया। पोप के रोम से चले जाने के बाद इटली में चर्च की बड़ी बुरी अवस्था हुई; रोम एक

विधवा नगरी समझी जाने लगी। रोम के बड़े-बड़े गिरजे नष्ट होने लगे। सेंटपीटर के गिरजे में पशु चरते थे। इटली में चर्च की रक्षा इसी में थी कि पोप फिर रोम में वापस आजाय। अन्त में ग्रेगरी ग्यारहवें ने रोम को १३७७ में फिर अपनी राजधानी बनाया। पर अगले बरस ही वह मर गया इसलिए उसके स्थान पर इटेलियन तथा पादरियों ने अपने-अपने पोप चुन लिये। इन दोनों में परस्पर खूब चलती थी। ये चर्च से एक दूसरे का बहिष्कार कर देते थे।

सन् १४०९ में पीज़ा (इटली) में चर्च की एक सभा बैठी, जिसने फ्रांसीसी तथा इटेलियन दोनों पोपों को पदच्युत करके एक तीसरे पोप को चुना। इससे मामला और भी ख़राब होगया; दो की जगह तीन पोप हो गये। अन्त में १४१४ में कॉनस्टेंस में एक और सभा की गई, जिसने तीनों पोपों को हटाकर एक चौथे को नियत किया। १४१७ में चर्च फिर एक पोप के अधीन हुआ। कुछ समय तक पोप तथा सभा में कशमकश होती रही। सभा अपने आपको पोप से बड़ा समझती थी और पोप ने गद्दी पर बैठते ही सभा के विरुद्ध आदेश दिया। इन झगड़ों का परिणाम यह निकला कि लोगों में पोप का मान कम हो जाने से राज्य के साथ उसका किसी प्रकार का सम्बन्ध न रहगया। वह अनुभव, जो पोपों ने चर्च को एक शक्तिशाली साम्राज्य बनाने के लिए शुरू में किया था, सर्वथा असफल हुआ।

१२० पीज़ा (१४०९) और कॅनस्टेंस (१४१४–१४१८) की चर्च सभाएं

बारहवाँ अध्याय

मज़हबी युद्ध (१०९६-१२७३)

१—मज़हबी युद्धों के लिए योरप की तैयारी

'क्रूसेडूज़' वे मज़हबी युद्ध थे, जो योरप के ईसाइयों ने पेलिस्टाईन के तीर्थों को मुसलमानों के हाथ से निकालने के लिए दो सौ वर्ष तक किये। यों तो ऐसे बहुत से युद्ध कई हुए किन्तु इनमें से केवल आठ वर्ण्य हैं। इनके अतिरिक्त बालकों ने भी एक युद्ध किया था।

१२१ परिभाषा

इन युद्धों के अन्तस्तल में उस समय के लोगों के मज़हबी विचार, प्रवृत्तियाँ, विशेषकर तीर्थों का मान काम करता था। समय का पश्चिमी ईसाई-जीवन बड़ा लम्बा और मनोरञ्जक है।

१२२ मज़हबी कारण; यात्रायें

सभी युगों के मनुष्यों के हृदय में उन स्थानों को देखने के लिए आदरपूर्ण उत्सुकता उत्पन्न हुआ करती है, जिनका सम्बन्ध विशेष घटनाओं से होता है, जैसे जहाँ पर युद्ध हुए हों, जहाँ किसी ने तपस्या की हो, जहाँ किसी साधु या सन्त का जन्म-स्थान या समाधि हो। हिन्दुओं के लिए जैसे काशी है, मुसलमानों के लिए जैसे मक्का है, वैसे ही ईसाइयों के लिए उन दिनों

योरोशलम था। आरम्भ में तीर्थ-यात्रा ईसाइयों में बड़ा पुण्य माना जाता था। ऐसे स्थानों में प्रार्थना करना बड़ा ही लाभकारी समझा जाता था।

जब से ईसाई मज़हब ने रोमन साम्राज्य के इस भाग पर अपना स्वत्व जमाया तब ही से पश्चिमी योरुप के ईसाई-यात्री योरोशलम में आने लगे। पहले-पहल तो यह यात्रा इतनी कठिन थी कि ख़ास ख़ास मनुष्य ही आते जाते थे। हङ्गरी के ईसाई होने के पूर्व ईसाई-यात्री को भूमध्यसागर के किसी बन्दर से किसी व्यापारिक जहाज़ पर चढ़कर योरोशलम जाना पड़ता था। यात्रा की तैयारी करना एक बड़ी बात समझी जाती थी। यात्री जब तीर्थस्थान के लिए प्रस्थान करता था तब बिरादरी के लोग और पादरी उसे गाँव से बाहर छोड़ने आते थे। तीर्थस्थान पर पहुँच कर वह ख़ूब रोता था। शरद्‌ऋतु में वापसी पर वह खजूर के वृक्ष की एक टहनी ले आता था।

क्लूनिक पुनरुज्जीवन ने ग्यारहवीं शताब्दी में लोगों में मज़हबी जोश उत्पन्न कर दिया। सभी लोग यात्रा करने लगे। यहाँ तक कि जहाँ पहले एक-आध जाता था वहाँ अब उन सड़कों पर, जो योरोशलम को जाती थीं, सहस्रों मनुष्य दिखाई देने लगे। हङ्गरी के ईसाई बन जाने से उसके बीच का मार्ग भी खुल गया।

किन्तु ठीक इसी समय एक विप्लवकारी घटना हुई। कॉनस्टेंटाईन के समय से लेकर अरबों की विजय तक ईसाइयों

के तीर्थस्थान उनके ही हाथों में रहे। जिन ख़लीफ़ों के अधीन पेलिस्टाईन था, वे चाहते थे कि यात्री अधिक संख्या में आवें जिससे उनकी आय बढ़े। यह आमदनी उन्हें बराबर चार शताब्दियों से हो रही थी।

सन् १७०६ में तातारवासी सेलजुक तुर्कों ने एशिया माइनर का बहुत सा भाग अपने अधीन कर लिया। ख़लीफ़ा के हाथ से योरोशलम छिन गया और उसका राज्य अरब पर गया। ईसाइयों को भी मालूम हो गया कि योरोशलम के राज्य की बाग-डोर अब दूसरे हाथों में चली गई है। यात्रियों को बड़े कष्ट दिये जाने लगे। इससे उन्हें बड़ा क्रोध आया और मज़हबी सैनिक बन गये। यदि तीर्थ-यात्रा करना एक पवित्र कार्य है तो उसकी रचा करना भी पवित्रता है—इसी विचार ने ईसाइयों को एशिया पर लगातार दो सौ साल तक आक्रमण करने के लिए उत्तेजित किया।

आरम्भ में ईसाइयों में शान्तिभाव काम करता था किन्तु ग्यारहवीं शताब्दी में सैनिक-भाव ने उन पर स्वत्व जमा लिया।

१२३ चर्च में सैनिक भाव की उत्पत्ति के कारण

इसके कई कारण थे। पहला, असभ्यों में ईसाई-मज़हब का प्रचार करते-करते ईसाई-प्रचारकों में भी असभ्यता या बर्बरता आगई थी। बर्बर बड़े युद्धप्रिय थे। उनके संसर्ग से ईसाइयों में भी सैनिक-भाव आ गया। दूसरा, बाईबिल में भी ईसाइयों का पेगनों के विरुद्ध लड़ने का वर्णन

' । तीसरे, इस्लाम के सैनिक-मत के आघात का ईसाइयों
ार से प्रत्याघात होना आवश्यक था । चर्च ने पोप के द्व
ज़हबी युद्ध करने के लिए सैनिकों के वास्ते अपील की
ागीरदार या अमीर इसके लिए तैयार हो गये । इनके अ
ख्त मज़हबी युद्धों में सम्मिलित होने के ये कारण भी थे
रिवर्तन-प्रेम, व्यापारिक तथा आर्थिक लाभ, काफ़िरों की भूमि
र स्वत्व करने की इच्छा, सैनिकों का ऋण से छुटकारा ।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त उस समय की परिस्थिति ने
ी युद्ध होने में बड़ी मदद की । पहले, हङ्गरी के ईसाई-
मज़हब की शरण में आ जाने से योरोशलम को जाने का सीधा रास्ता
न गया । दूसरे जेनवा, वेनिस तथा पीज़ा आदि व्यापारिक
ामुद्री नगरों में आने-जाने से लोगों का समुद्र-भय जाता
हा । तीसरे, पहला मज़हबी युद्ध होने से कुछ वर्ष पहले तुर्कों
ा राज्य छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट गया था । चौथे, अरबों
ाथा तुर्कों की पारस्परिक मुठ-भेड़ ने ईसाइयों के लिए ख़ाली
ैदान छोड़ दिया । पाँचवें, पोप की बढ़ती हुई शक्ति थी ।

२४ अनुकूल परिस्थिति

पूर्व में तुर्क दिन-प्रति-दिन आगे बढ़ रहे थे । यहाँ
ाक कि वे कुस्तुनतुनिया को भी लेने की तैयारी करने लगे ।
तब सम्राट् की प्रार्थना पर पोप अरबन ने पियसेंज़ा में (१०९५) पादरियों की एक सभा की । किन्तु वहाँ कुछ

१२९ पियसेंज़ा तथा क्लेरमॉण्ट की सभायें (१०९६)

न हुआ। इसी साल क्लेरमॉण्ट (फ़्रांस) में दुबारा सभा की गई, जिसमें यह निर्णय हुआ कि मुक्ति-प्राप्ति के लिए प्रत्येक बालक, वृद्ध, स्त्री तथा पुरुष को मज़हबी युद्ध में सम्मिलित होना चाहिए। युद्ध के लिए अगले वर्ष की ग्रीष्म-ऋतु नियत हुई।

—— ——

२—पहला मज़हबी युद्ध (१०९६–'९९)

फ़्रांस तथा इटली ने पोप के नाद को कान लगाकर सुना। ग़रीब-अमीर, छोटे-बड़े सभी इकट्ठे होने लगे। वे लोग जो पीटर के गिर्द इकट्ठे हुए थे सेनाओं के ठीक तरह चलने के पहले ही से बड़े अधीर हो रहे थे। लगभग अस्सी हज़ार पुरुष स्त्री, तथा बालक हङ्गरी के भूमि-मार्ग से चल पड़े। भूख तथा सरदी के कारण बहुत से राह में ही मर गये और जो बचे उनको तुर्कों ने हैरान कर डाला।

१२६ लोगों का इकट्ठा होना; प्रस्थान

इतने में पश्चिम में एक सेना तैयार हुई। फ़्रांस के राजा रोमाण्ड का भाई, नारमण्डी का ड्यूक रॉबर्ट, बौलन का गोल्डफ्रे आदि शासक उस सेना के नेता थे। सेना में तीन लाख मनुष्य होने से उसके कई टुकड़े कर दिये गये, जो भिन्न-भिन्न मार्गों से कुस्तुनतुनिया पहुँचे। बॉस्फ़रस पार कर वे सीरिया को चल दिये। उनमें से भी बहुत से भूख के कारण मर गये।

पूरा एक वर्ष उत्तरी सीरिया में व्यतीत करने के बाद वे योरोशलेम की ओर बढ़े। पहली बार असफल होने पर दूसरी बार वे अपने आक्रमण में सफल हो गये और १०९९ में उन्होंने नगर पर अधिकार कर लिया। बहुत से मुसलमानों का उन्होंने वध कर डाला। ग़रीब से ग़रीब सैनिक भी अब अपने आपको किसी न किसी घर का स्वामी समझने लगा।

१२७ योरोशलेम पर अधिकार (१०९९)

अभी इन ईसाई सैनिकों ने योरोशलेम तथा उसके इर्द-गिर्द के कुछ विजित नगर अपने अधीन करके एक छोटा सा राज्य ही बनाया था कि मुसलमानों ने उन पर आक्रमण किया। लगभग बीस हज़ार ईसाइयों ने एस्केलन के रणक्षेत्र में इकट्ठे होकर मुसलमानों को भगा दिया।

१२८ एस्केलन का युद्ध (१०९९)

इस विजय से बहुत से सैनिकों ने अपने कार्य की समाप्ति समझ कर घर की राह ली। उनकी कथा सुनकर पोप के अधीन सहस्रों मनुष्य इकट्ठे होने शुरू हो गये। बिना किसी प्रबन्ध या पथप्रदर्शक के वे कुस्तुनतुनिया पहुँचे, जहाँ पर तुर्कों के साथ उनकी घोर लड़ाई हुई। उनमें से बहुत थोड़े बचे और उनकी संख्या तो बहुत ही थोड़ी थी जो योरुप वापस पहुँचे। पहले मज़हबी युद्ध का यह अन्त हुआ। कहा जाता है कि इसमें योरुप के लगभग दस लाख योधा मारे गये।

३—दूसरा मज़हबी युद्ध (११४७-,४९)

ईसाई-सैनिकों की अधिक संख्या के वापस चले जाने से गॉडफ्रे और उसके साथी दुर्दशा में पड़ गये। इस छोटे से ईसाई-राज्य पर सभी ओर से मुसलमानों के आक्रमण होने लगे। गॉडफ्रे तथा उसके दो उत्तराधिकारियों की मृत्यु के पश्चात् ईसाई-राज्य कमज़ोर होने लगा, क्योंकि सैनिक आपस में ही लड़ने लग गये थे। ११४४ में मुसलमानों ने एडेस्सा पर क़ब्ज़ा करके वहाँ की ईसाई-आबादी का वध कर डाला।

१२९ ईसाई-राज्य की दुर्दशा

उधर पश्चिमी-संसार में सेन्ट पीटर के समान सेन्ट पीटर ने लोगों में प्रचार करना शुरू किया। फ्रांस के राजा लूई सातवें और जर्मन-सम्राट् कॉनर्ड तृतीय अपनी-अपनी सेनायें लेकर चल पड़े। किन्तु अधिकांश लोगों के एशिया माइनर में विनष्ट हो जाने से पेलिस्टाईन में थोड़े ही से सैनिक पहुँचे। उन्होंने दमिस्क का घेरा डाला। किन्तु पराजित हुए और वापस घर को चल दिये।

१३० तैयारी और अन्त

४—तीसरा मज़हबी युद्ध (११८९-'९२)

येरोशलम के सलाहदीन के अधिकार में चले जाने से ईसाइयों को बड़ा क्रोध आया। योरुप के तीन बड़े राजाओं—

१२१ युद्ध की तैयारी और प्रस्थान

जर्मनी के फ़्रेड्रिक बरबरोसा, फ़्रांस के फ़िलिप आगस्टस तथा इँग्लेंड के रिचर्ड—ने इस काम को अपने हाथ में लिया। रिचर्ड ने लोगों से धन इकट्ठा किया किन्तु बहुत बुरी तरह से। इस सम्बन्ध में यदि कोई मनुष्य उससे प्रश्न करता तो वह उत्तर देता– 'यदि कोई लेनेवाला हो तो मैं लन्दन को भी बेच दूँ !'

जर्मन-सेना भूमि-मार्ग से चली। किन्तु एशिया-माइनर में उसे रुकना पड़ा। कारण, राह की तकलीफ़, फ्रेड्रिक का नदी में डूबना और तुर्कों की तलवार से तङ्ग आना। जो जर्मन सैनिक बचे वे वापस हो गये।

अँगरेज़ तथा फ़्रांसीसी सेनायें समुद्र से गईं। पहुँचते ही उन्होंने आकर-नगर को घेर लिया। फ़िलिप को रिचर्ड की

१३२ पारस्परिक ईर्ष्या सलाहदीन से सन्धि

उत्तम सेना देखकर ईर्ष्या होने लगी और वह फ़्रांस को वापस चला गया। रिचर्ड सलाहदीन से युद्ध करता रहा। कुछ समय के पश्चात् सलाहदीन ने उससे एक सन्धि कर ली, जो तीन वर्ष और आठ मास तक जारी रही। ईसाइयों को अब येरोशलेम के प्रत्येक स्थान में जाने की आज्ञा थी। अपने आप को छिपाये हुए रिचर्ड जर्मनी से गुज़र रहा था कि राजनैतिक कैदी बनाकर वह पकड़ लिया

गया। किन्तु अँगरेज़ों से एक ख़ास रक़म मिलने पर जर्मन-सम्राट् हेनरी छठे ने उसे छोड़ दिया।

५—चौथा मज़हबी युद्ध (१२०२,४)

यह निश्चित होने पर कि समुद्र के रास्ते से मिसर को जाना चाहिए वेनिसवासियों के साथ जहाज़ों का ठीका किया गया। किराये के बदले में सैनिकों ने एड्रियाटिक-सागर के पूर्वी तट पर के एक नगर ज़ारा को लूटा, क्योंकि वेनिसवासियों ने ऐसा ही कहा था। उसमें उन्हें कुछ लूट का माल भी मिल गया।

१२३ वेनिसवासियों के साथ ठीका

उधर कुस्तुनतुनिया में एक घटना हो जाने के कारण मज़हबी सैनिकों का मुँह मिसर से हटकर उसी की ओर होगया। वहाँ के राजा को सिंहासन से उतारकर एक राज्यापहारी स्वयं राजा बन बैठा। यूनानियों के साथ बहुत ख़ून-ख़राबी के बाद मज़हबी सैनिकों ने बाल्डविन को राजा बनाया। क्योंकि इस राजद्रोह को दबाने में वेनिसवासियों ने भी सहायता की थी। इसलिए राज्य के आठ में से तीन भाग उन्हें मिल गये और शेष फ्रेंक्क सैनिकों को।

१२४ कुस्तुनतुनिया पर यूनानियों का स्वत्व (१२०४)

६—बालक-युद्ध; छोटे युद्ध

चौथे और पाँचवें युद्ध के बीच के समय में बालकों के अन्दर भी मज़हबी जोश भर गया। जर्मन-बालक, जिनकी संख्या बीस सहस्र से ऊपर थी, सबसे पहले चले। एल्प्स-पर्वत पार करके वे इटली पहुँचे। कुछ राह में मर गये, शेष को पोप ने रोम से यह कहकर लौटा दिया—'जो प्रतिज्ञा तुमने ली है उसे बड़े होकर पूरा करना।'

१३५ बालक-युद्ध (१२१२)

स्टीफ़न के अधीन तीस सहस्र फ़्रांसीसी बालक घोड़ा-गाड़ियों पर चढ़कर मारसेल्ज़ के लिए रवाना हुए। छोटे बच्चों को दूरी का क्या पता था, इसलिए राह में जब कभी कोई नगर आता तब वे पूछते; 'क्या यह योरोशलम है ?' मारसेल्ज़ में पहुँच कर उनको बड़ी निराशा हुई, समुद्र ने उनको मार्ग न दिया, वह उनके लिए सूख न गया। कई घर लौटे, कई एक को कुछ व्यापारियों ने अपने जहाज़ों में भरकर मुसलमानों के हाथ दास बनाकर बेच दिया।

उपर्युक्त चार लड़ाइयों के पश्चात् पाँचवें, छठे, सातवें और आठवें युद्ध में वास्तविक उत्साह नहीं था। जिन्होंने उनमें योग दिया उनके अन्दर कई अन्य सांसारिक इच्छायें थीं। एशिया में ईसाइयों

१३६ छोटे युद्ध

के राज्य को मुसलमानों ने घेर रक्खा था। अन्त में ईसाइयों का अकेला नगर 'आकर' भी १२९१ में उनके हाथ से निकल गया। इस प्रकार पूर्व में मुसलमानों तथा ईसाइयों के युद्ध का अन्त हुआ।

१३७ सैनिक सम्प्रदायों की वापसी

बारहवीं शताब्दी के आरम्भ में, जब कि दूसरा युद्ध होनेवाला था, ईसाइयों के दो सैनिक सम्प्रदाय बने। उनके नाम थे 'हॉस्पिटलर्स' तथा 'टेम्पलर्स'। पहले नाम का अर्थ है अस्पताल या चिकित्सालय। इसका कारण यह था कि पहले-पहल योरोशलम में सेण्ट जॉन् के नाम पर उन्होंने अस्पताल खोला था। इसमें पादरी ही सम्मिलित थे। 'टेम्पलर्स' (इसका अर्थ है मन्दिर) में वे सैनिक थे जो योरोशलम में ईसाई-यात्रियों के ठहरने आदि का प्रबन्ध करते थे।

आकर को अधीन करते ही मुसलमानों ने इन सम्प्रदायों को भी सिरिया से निकाल दिया और तब ये साईपरस-टापू में चले गये। १५३० में यहाँ से भी निकाले जाने पर ये लोग माल्टा-टापू में गये, जहाँ ये फ्रांस की राज्य-क्रान्ति तक रहे। चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में (१३०७) फ़िलिप ने इनका अन्त कर दिया।

७—योरुप में युद्ध

यद्यपि योरुप के ईसाइयों ने परस्पर मिलकर मुसलमानों के विरुद्ध बहुत प्रयत्न किये किन्तु उनके वह सारे प्रयत्न विफल गये। वे अपनी सीमा को पूर्व में कुछ भी न बढ़ा सके। पर योरुप की दक्षिण-पश्चिम तथा उत्तर-पूर्व में ऐसी बात न थी। यहाँ पर तो युद्ध ने कुछ और ही काम कर दिखाया। यहाँ छोटी-छोटी प्रिंसपेलिटियाँ (राज्य) बन गईं, जो बाद में पुर्तगॉल, स्पेन तथा प्रशिया के राज्य या राष्ट्र* बने।

१३८ सामान्य कथन

पूर्व में मज़हबी युद्ध के आरम्भ होने से पहले सैनिकों का एक समूह, बरगण्डी का हेनरी जिसका नेता था, आईबेरिया-प्रायद्वीप के ईसाइयों की सहायता के लिए गया। इकट्ठे होते-होते सैनिकों ने वहाँ पर अपना एक छोटा सा राज्य बना लिया और ११४७ में मुसलमान शत्रु से लिज़बन-नगर भी छीन लिया, जिसे इन्होंने अपनी राजधानी बनाया। मूरों को, जिनकी पीठ पर अफ्रीका के मुसलमान

१३९ मूरों के विरुद्ध युद्ध

*योरुप में 'स्टेट' का अर्थ गवर्नमेंट (शासन) है, चाहे वह किसी प्रकार की हो। राज्य या राष्ट्र ('स्टेट') में एक नगर की गवर्नमेंट भी आ सकती है। उदाहरणार्थ, एथेंस एक नगर था किन्तु यह राज्य (स्टेट) भी कहलाता है।

थे, इन्होंने प्रायद्वीप के दक्षिणी भाग में ऐसा बन्द किया कि वे वहाँ पर पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक बन्द रहे।

युद्धों के समय बाल्टिक सागर के तट पर स्लव लोग (प्रकरण १४) रहते थे। ये ईसाई प्रचारकों का वध किया करते थे। इसलिए तेरहवीं शताब्दी के अन्त में (१२८३) कई सैनिकों ने इनका अन्त कर देने का निश्चय किया। यहाँ पर उन्होंने अपने दुर्ग बनाने शुरू कर दिये और स्लव-आबादी को नष्ट कर दिया। जो बचे उन्हें अपने अधीन करके एक राज्य बना लिया, जो बाद में प्रशिया का राष्ट्र कहलाया।

१४० स्लवों के विरुद्ध युद्ध (१२२६–१२८३)

एलबिजेनसीज़ ईसाई, चिरकाल से दक्षिणी फ्रांस में रहते थे। पोप इन्नोसेण्ट द्वितीय ने फ़िलिप से उनके विरुद्ध युद्ध करने के लिए कहा। फ़िलिप ने यह बात तो न सुनी किन्तु रेमॉण्ड छठे के विरुद्ध कुछ सैनिक अवश्य गये। उन्होंने उस सुन्दर प्रदेश को उजाड़ कर वहाँ के निवासियों का वध कर डाला। दूसरी बार १२२६ में फिर ऐसा ही किया गया। रेमॉण्ड सातवें ने अपने राज्य का एक बड़ा भाग फ्रांस के राजा लूई नवें को दे दिया और स्वयं चर्च में चला गया।

१४१ एलबिजेनसीज़ के विरुद्ध युद्ध (१२०९–१२२९)

८—मज़हबी युद्धों का अन्त; योरुपीय सभ्यता पर उनका प्रभाव

मज़हबी युद्ध होने का कारण तात्कालिक योरुपीय समाज का मज़हबी जोश था। उस आवेश के अन्त के साथ युद्धों का भी अन्त हो गया। युद्धों की समाप्ति से पहले योरुपीय समाज में बड़ा परिवर्तन हो गया था। इसके कई कारण थे।

१४२ युद्धों के अन्त के कारण

लोगों में शिक्षा, सभ्यता तथा सहिष्णुता की मात्रा पहले से अधिक थी, किन्तु उनके सैनिक-भाव का स्थान व्यापार तथा शिल्प ने ले लिया था।

इन युद्धों में पोपों ने इतना भाग लिया था कि सभी ईसाई उसे अपना नेता समझने लगे थे। उन्होंने अपनी सेनायें आदि सब कुछ पोप के हाथ में दे दी थीं। माँकों (पादरियों) के सैनिक सम्प्रदाय बन जाने से भी पोप की शक्ति बढ़ गई थी। लड़ाई में जानेवाले मनुष्य या तो अपनी जायदाद बेच डालते या चर्च को दान कर देते थे। इसलिए ईसाई-मठ तथा मन्दिर बड़े धनी हो गये थे। धन के आने से उनका पतन आरम्भ हुआ।

१४३ चर्च पर प्रभाव

पोप तथा चर्च की शक्ति बढ़ जाने से राजाओं और पोपों में ईर्ष्या बढ़ने लगी, जिसका परिणाम यह हुआ कि राजाओं ने

उनको कमज़ोर करने के लिए फिर से आन्दोलन करना शुरू कर दिया।

गाँवों तथा नगरों के धनाढ्यों ने युद्ध में जानेवाले सरदारों से धन देकर कई विशेष तथा महत्त्वपूर्ण अधिकार ख़रीद लिये थे। इससे 'म्युनिसिपल स्वतन्त्रता' में उन्नति हो गई। वेनिस, जेनवा आदि शहर जो सैनिकों के मार्ग पर थे व्यापार बढ़ जाने से धनवान् हो गये। कई प्रकार के शिल्प, कलायें तथा आविष्कार भी (जिनमें से एक पवनर चक्की थी) योरुप में जारी हो गये। योरुपीय सैनिकों-द्वारा योरुप ने कई सामाजिक तथा नैतिक बातें भी सीखीं।

१४४ नगरों पर प्रभाव

विदेशियों तथा विजातियों के संसर्ग से योरुप में बहुत सा औदार्य आया। पहले जिन्हें वे क़ाफ़िर समझते थे अब वे उन्हें आदर की दृष्टि से देखने लगे। पूर्वी विद्याओं तथा भूगोल के ज्ञान ने योरुप में उस नये आन्दोलन को उत्पन्न किया, जिसे पुनर्जागृति (रेनेसाँस) कहते हैं। इसके अतिरिक्त नये देशों की खोज के लिए लोगों में उत्साह और साहस का भाव उत्पन्न होने लगा, जिसके फल मार्कोपोलो, कोलम्बस और वासकोडेगामा थे।

मज़हबी युद्धों का एक बड़ा राजनैतिक परिणाम यह हुआ कि जागीरदारी के विनष्ट हो जाने के बाद, योरुप के विभिन्न राज्यों की शक्ति बढ़ जाने से योरुप में वे नई जातियाँ बनीं, जिन से योरुप का वर्तमान इतिहास आरम्भ होता है।

तेरहवाँ अध्याय

जातियों की उत्पत्ति तथा उन्नति

एक शासन-विधि की दृष्टि से जागीरदारी ('फ्यूडलिज़म') सर्वथा असफल सिद्ध हुई थी। जब सम्राट् ने अपनी शक्ति-द्वारा योरुप पर राज्य करने का प्रयत्न किया तब पोप ने उसके विरुद्ध खड़े होकर उसे निर्बल कर दिया। इसी प्रकार पोपों का प्रयत्न कि योरुप में चर्च का राज्य हो जाय, उनकी त्रुटियों तथा झगड़ों के कारण असफल हो गया। किन्तु योरुपीय देशों का मनुष्य-समाज अब एक नये सांचे में ढलने लगा। वह ढङ्ग 'स्वतन्त्र जातीय आदर्श' का था। इस स्वतन्त्र जातीय आदर्श को स्थिर करनेवाली भिन्न भिन्न देशों के राजाओं की शक्तियाँ थीं। सम्राट् तथा पोप से स्वतन्त्र हुए राजाओं ने अपने-अपने देशों में बलवान् केन्द्रीभूत शासन ('गवर्नमेण्ट') स्थापित कर भिन्न-भिन्न जातियों की नींव रक्खी।

१४९ जातीयता का भाव

इन जातियों की उत्पत्ति के साथ योरुप के इतिहास में 'वर्त-मान युग' की नींव पड़ी। इन देशों में अपनी-अपनी भाषायें, साहित्य तथा विशेष विचारों के उन्नत हो जाने से जातीयता का नया भाव उत्पन्न हो गया। इससे पहले योरुप में जागीर-

दार या अमीर लोग ही राजाओं के मुक़ाबले में कुछ राजनैतिक अधिकार रखते थे और मज़हबी युद्ध-काल में तो कई नगरों ने भी राजनैतिक अधिकार प्राप्त कर लिये थे। किन्तु अब राजाओं की शक्ति बढ़ जाने से अमीरों तथा नगरों के अधिकार छिन गये किन्तु उसके बदले में उनमें जातीयता का भाव उत्पन्न हुआ। इसी ने एकराजतन्त्रता का अन्त कर दिया जिसने पहले इस को उत्पन्न किया था।

इस काल में नगरों के समाज में व्यापारियों, वकीलों तथा श्रमियों की एक ऐसी मध्य-श्रेणी पैदा हो गई कि उसने राजनीति-क्षेत्र में पुराने जागीरदारों या अमीरों का स्थान ले लिया। कुछ समय के पश्चात् भिन्न-भिन्न देशों की मध्य-श्रेणियों ने अपने अपने राजाओं से स्वतन्त्रता प्राप्त करने का प्रयत्न किया और ज्यों-ज्यों समय गुज़रता गया त्यों-त्यों भिन्न-भिन्न देशों में एकराजतन्त्रता के स्थान पर प्रजा का एक नियमसंगत विधायक शासन बनते गये।

विभिन्न योरुपीय देशों में इन जातियों के स्वातन्त्र्य-आन्दोलन योरुप के इतिहास को मनोरञ्जक एवं शिक्षाप्रद बनाते हैं। स्वातन्त्र्य-आन्दोलन में प्रवेश करने से पूर्व इस अध्याय में हम भिन्न-भिन्न जातियों की उत्पत्ति का वर्णन करेंगे।

१—इँग्लैण्ड

प्लैण्टैजेनट-वंश (प्रकरण ६२) के चौदह राजाओं ने सन् ११५४ से १४८५ तक राज्य किया। इस काल में इँग्लेण्ड की गवर्नमेण्ट ने वर्तमान विधान (कॅनस्टीट्यूशन) का बहुत कुछ रूप ग्रहण कर लिया।

१४६ सामान्य कथन

इसी काल में वे क़ानून तथा अधिकारपत्र (चार्टर) बनाये गये, जिन पर अँगरेज़ी स्वतन्त्रता आश्रित है। इस काल को स्मरणीय बनाने में युद्धों ने भी बड़ी सहायता की है।

वे विशेष उल्लेखनीय घटनायें, जो इस काल में हुईं, इस प्रकार हैं। थॉमस बेकेट का वध, फ़्रांस की सीमा के भीतर के इँग्लेण्ड के प्रदेशों का खोया जाना, महान् अधिकार-पत्र, कॉमन-सभा का बनना, वेल्ज़ की विजय, स्कॉटलेण्ड के साथ युद्ध, फ़्रांस के साथ शतवर्षीय युद्ध तथा पुष्पों के युद्ध।

आरम्भ में थॉमस बेकेट प्लैण्टैजेनट-वंश के पहले राजा हेनरी द्वितीय का परामर्शदाता था। राजा ने पहले उसे 'चाँसलर'—प्रधान अधिकारी बनाया, बाद में केण्टरबरी का आर्चबिशप।

१४७ थॉमस बेकेट का वध (११७०)

बेकेट ने राजा से ऐसा न करने के लिए कई बार कहा और एक बार तो उसने यहाँ तक कह दिया कि 'यदि तुम मुझे इस पद पर नियत करोगे तो हमारी मैत्री का अन्त हो जायगा'। और हुआ भी ऐसा; आर्चबिशप होते ही दोनों में

कई बातों पर मतभेद होने लगा। उनमें सबसे बड़ी बात यह थी कि पादरियों के अभियोगों का निर्णय करने का अधिकार किसे है। इस समय चर्च के न्यायालयों ने बहुत से अधिकार अपने हाथ में कर लिये थे। पादरियों पर राजा को कोई अधिकार न था और चर्च के लोगों को क़त्ल जैसे महापराध के बदले में क़ैद के सिवा और कुछ दण्ड न मिलता था।

हेनरी को यह बात पसन्द न थी। ११६४ में उसने 'क्लेरेण्डॅन-कॅनस्टीट्यूशन्स' नामक एक क़ानूनी संहिता बनाई। उसमें यह भी एक क़ानून था कि जिस पादरी पर फ़ौजदारी जुर्म लगाया जाय उसका अभियोग राज्य-न्यायालय में पेश हो और उसकी 'अपील' या 'पुनर्विचारार्थ प्रार्थना' राजा की आज्ञा के बिना पोप के पास न की जावे। थॉमस ने पहले तो इस क़ानून को स्वीकार कर लिया किन्तु पीछे उसे शोक हुआ और प्रतिज्ञा को न पालन करने के कारण उसने पोप से क्षमा माँग ली। हेनरी ने क्रोध में एक ऐसा वाक्य कहा जिसे समझ कर उसके चार अफ़सर केण्टरबरी के गिरजे में पहुँचे और आर्चबिशप का वध कर डाला।

इँग्लेण्डवासी बेकेट को चर्च के अधिकारों के लिए 'हुतात्मा' समझने लगे। चर्च में उसकी समाधि का पूजन आरम्भ होने लगा। राजा को भी गिरजे में प्रायश्चित्त करना पड़ा और केण्टरबरी के माँकों ने उसे बेत लगाये। यह घटना ११६५ में हुई।

विलियम की इँग्लेण्ड-विजय के बाद नारमण्डी उसके उत्तराधिकारियों के राज्य में चली गई।

१४८ फ्रांस में के इँग्लेण्ड के प्रदेशों का खोया जाना (१२०२–१२७४)

किन्तु इस भाग के लिए उनको फ्रांस के राजा को अपना स्वामी मानना पड़ता था।

फ्रांस के राजा किसी ऐसे अवसर को देख रहे थे जब वे इँग्लेण्ड के राजा के इस प्रदेश को छीन लें। ११९९ में इँग्लेण्ड के सिंहासन पर जांन बैठा। पाँइटों के सरदारों ने उसके दुराचार की शिकायत फ्रांस के राजा फ़िलिप आगस्टस से की। फ़िलिप ने जान को फ्रांस बुलाया कि वह अपने आपको निर्दोष सिद्ध करे। जान के इनकार करने पर फ़िलिप ने नारमण्डी पर चढ़ाई कर दी और दक्षिण के एकिटेन को छोड़कर शेष प्रदेश छीन लिये। किन्तु इससे भी इँग्लेण्ड को एक लाभ हुआ कि अब उसे केवल अपनी ही फ़िक्र रह गई। इससे पूर्व इँग्लेण्ड के राजा इँग्लेण्ड को एन्जौ के अधीन समझते थे।

जान इँग्लेण्ड का सबसे ख़राब राजा था। किन्तु इसकी ख़राबी इँग्लेण्ड के लिए यह एक दैवी कृपा सिद्ध हुई। फ़िलिप और पोप के साथ झगड़े करके उसने अपना अपमान कराया।

१४९ महान् अधिकार-पत्र (१२१५)

इँग्लेण्ड के सभी 'बेरन' (सरदार) उससे इतने तङ्ग आ गये थे कि सबने इकट्ठे होकर उससे स्वतन्त्रता के अधिकार

स्वीकार कराने का निश्चय किया। जब जॉन् को और कोई उपाय नज़र न आया तब उसने रनिमीड के स्थान पर महान् अधिकार-पत्र के काग़ज़ पर उसने अपनी मुहर लगा दी।

यह अधिकार-पत्र हेनरी प्रथम के 'चार्टर' पर आश्रित था। इसमें तीन बातें थीं। पहली, प्रजा की स्वीकृति के बिना राजा किसी से धन नहीं ले सकता। दूसरी, बिना क़ानून राजा किसी को गिरफ़्तार या सज़ा नहीं दे सकता। और तीसरी, किसी को अधिकार या न्याय प्रदान करने में प्रतिबन्ध या विलम्ब न किया जायगा। राजा से इन बातों पर आचरण कराने के लिए लन्दन का क़िला और नगर सरदारों के पास में जमानत के रूप में रक्खे गये। चौबीस सरदारों तथा नगराध्यक्ष ('मेम्बर') की एक सभा बनाई गई, जिसको यदि राजा क़ानून का पालन न करे तो राजा के विरुद्ध युद्ध करने का अधिकार था। यद्यपि जान और उसके उत्तराधिकारी इस क़ानून को भङ्ग करते रहे तथापि अँगरेज़-जाति ने कभी इस क़ानून को विस्मृत न किया। इसलिए यही 'चार्टर' उनकी स्वतन्त्रता की नींव हुई।

जान के पुत्र हेनरी तृतीय के समय में इँग्लेण्ड ने अपने विधायक स्वतन्त्रता के क्षेत्र में एक दूसरा पद उठाया अर्थात् कॉमन-सभा ('हौस आव् कॉमन्स') स्थापित की। स्वतन्त्रता की उन्नति सदा ख़राब राजाओं के ही समय में हुई।

१९० कॉमन-सभा की उत्पत्ति (१२६९)

है, यद्यपि वे धन्यवाद के अधिकारी नहीं होते। हेनरी अपने पिता से कहीं बढ़कर अत्याचारी था। उसने सब बड़े-बड़े पद विदेशियों को दे दिये। इससे प्रजा और सभी सरदार उसके विरुद्ध खड़े हो गये। उनका नेता सिमन था जिसे विदेशी होने पर भी इँग्लेण्ड से बड़ा प्रेम था। इसी कारण वह इँग्लेण्ड के पुराने क़ानून तथा स्वतन्त्रता के लिए सब कुछ करने के लिए उद्यत रहता। स्वयं हेनरी ने एक बार कहा था कि संसार की सभी भयानक वस्तुओं से मुझे सिमन से सब अधिक भयंकर लगता है।

इस झगड़े ने थोड़े ही दिनों में युद्ध का रूप धारण कर लिया। १२४६ में लेवेस-स्थान पर एक लड़ाई हुई, जिसमें हेनरी को पराजय हुई और वह क़ैद कर लिया गया। इस अवसर पर सिमन ने जो काम किया उसके कारण अँगरेज़ उसे सदा स्मरण रक्खेंगे। उसने राजा के नाम पर सभी सरदारों तथा पादरियों से एक 'पार्लमेण्ट' (प्रतिनिधि-सभा) में एकत्र होने के लिए लिखा। इसके साथ ही उसने प्रत्येक ज़िले के ज़िला-अध्यक्ष और प्रत्येक नगर के नगराध्यक्ष को क्रमशः दो-दो सैनिक और नागरिक चुन कर पार्लमेण्ट में भेजने को लिख भेजा।

यह पहला अवसर था जब कि सीधे-सादे नागरिक जातीय-सभा—पार्लमेंट—में सरदारों तथा पादरियों के साथ बैठकर विचार करने के लिए बुलाये गये थे। १२६५ में 'हौस

आव् कॉमन्स' की नींव रक्खी गई। इसके तीस वर्ष बाद १२६५ में एडवर्ड ने इसी नमूने पर वह सभा बुलाई जो 'आदर्श पार्लमेण्ट' कहलाती है।

जब से ब्रिटेन में रोमन राज्य का अन्त हुआ, तब से वेल्ज़ के वासी सेक्सन तथा डेन आदि आक्रमणकारियों के साथ लड़ते हुए स्वतन्त्र चले आते थे। वेल्ज़ के भाट अपने गीतों के द्वारा लोगों में स्वतन्त्रता का सञ्चार किया करते थे और उसे ताज़ा रखते थे। सिंहासन पर बैठने के पश्चात् एडवर्ड प्रथम (१२७२-१२७७) ने वेल्ज़ पर आक्रमण करके उसे जीत लिया।

१२१ वेल्ज़ की विजय (१२७५-१२८२)

१२८२ में वेल्ज़वासियों ने एक बार राजद्रोह किया। तब एडवर्ड ने बड़ी निर्दयता के साथ उसे शान्त किया। वेल्ज़ को अपने अधीन रखने के लिए एडवर्ड ने वहाँ पर कई दुर्ग बनाये और लोगों को प्रसन्न करने के लिए एक चतुराई की। अपने शिशु एडवर्ड को, जो युद्ध-काल में वहीं पर उत्पन्न हुआ था, उनके सामने राजा की तरह उपस्थित किया। तब से इँग्लेण्ड के राजा के बड़े राजकुमार 'वेल्ज़ का राजकुमार' ('प्रिंस आव् वेल्ज़') कहलाता है।

कुछ समय तक तो वेल्ज़वासी इस बात पर राज़ी न हुए। किन्तु समय गुज़र जाने पर और ट्यूडर-वंश के सिंहासन पर बैठने से वेल्ज़वासी इँग्लेण्ड के राजा के पूर्ण

सहायक बन गये। कारण, इस वंश का प्रवर्तक 'हेनरी' वेल्ज़ के एक सैनिक 'ओवेन ट्यूडर' का पौत्र था।

१९२ स्कॉटलेण्ड के साथ युद्ध (१२९६-१३२८)

वेल्ज़ के पश्चात् एडवर्ड ने अपना मुँह स्कॉटलेण्ड की ओर फेरा। आरम्भ से ही उसका यह निश्चय था कि ब्रिटेन के समस्त द्वीप पर एक राज्य हो जाय। एल्फ्रिड के पुत्र एडवर्ड के समय से इँगलेण्ड का राजा अपने आपको स्कॉटलेण्ड के अधिपति कहलाने का अधिकार समझता था। १२८५ में स्कॉटलेण्ड का पुराना शासक-वंश समाप्त हो गया और सिंहासन के लिए कई उत्तराधिकारी खड़े हो गये, जिनमें से राबर्टब्रूस तथा जान बेलियल प्रसिद्ध थे। एडवर्ड पञ्च माना गया। उसने स्कॉटलेण्ड के सरदारों को इस बात पर बाध्य किया कि निर्णय से पूर्व वे उसे (एडवर्ड को) अपना अधिपति ('ओवलॉर्ड') स्वीकार करें। उसके साथ बहुत सी सेना होने के कारण उन्हें यह बात स्वीकार करनी पड़ी। १२९२ में बेलियल एडवर्ड को अपना अधिपति मानकर सिंहासन पर बैठा।

थोड़े ही समय के पश्चात् बेलियल ने अपनी राज-भक्ति की प्रतिज्ञा भङ्ग करके फ्रांस के राजा के साथ सन्धि कर ली। इस पर एडवर्ड ने स्कॉटलेण्ड पर आक्रमण किया, जिसमें स्कॉच लोगों की पराजय हुई और १२९६ में स्कॉटलेण्ड एडवर्ड के अधीन होगया। वह वहाँ से वह शिला

इँग्लेण्ड लेता आया, जिस पर बैठकर स्कॉटलेण्ड के राजाओं का अभिषेक हुआ करता था।

स्कॉटलेण्ड बहुत दिनों तक एडवर्ड के अधीन न रहा क्योंकि स्कॉच लोग स्वतन्त्रता-प्रिय थे। सर विलियवालेस को अपना नेता मानकर बहुत से लोग राजद्रोही बन गये। पहले-पहल वालेस को सफलता अवश्य हुई किन्तु एडवर्ड के एक धोखे में आकर वह पकड़ा गया। १३०५ में उसका वध करके उसका सिर लन्दन के पुल पर लटकाया गया। वालेस की देशभक्ति, वीरता तथा आत्मोत्सर्ग ने उसे स्कॉटलेण्ड का 'जातीय वीर' बना दिया।

वालेस के आन्दोलन को उपर्युक्त रॉबर्टब्रूस के पौत्र राबर्टब्रूस ने जारी रक्खा। १३१४ में उसने एडवर्ड द्वितीय को बेन्नॉकबर्न-नामक स्थल पर ऐसा हराया कि उसकी सारी सेना विनष्ट हो गई। स्कॉटलेण्ड फिर स्वतन्त्र हो गया, यद्यपि आगामी चौदह वर्ष तक युद्ध होता ही रहा। तीन सौ वर्ष तक स्कॉटलेण्ड स्वतन्त्र रहा। तत्पश्चात् १६०३ में स्कॉटलेण्ड तथा इँग्लेण्ड दोनों जेम्ज़ के अधीन हो गये।

इसके मुख्य कारण ये थे। इँग्लेण्ड तथा स्कॉटलेण्ड के युद्ध में फ्रांस का स्कॉटलेण्ड की सहायता करना, व्यापार के कारण इँग्लेण्ड तथा फ्रांस में ईर्ष्या, चार्लेस चतुर्थ के मर जाने पर (जिसके साथ ही फ्रांस

१९३ फ्रांस के साथ शतवर्षीय युद्ध (१३३८-१४५३)

के कैपेशियन-वंश का अन्त हुआ) एडवर्ड तृतीय का अपनी माता की ओर से (क्योंकि उसकी माता फ्रांस के राजा फ़िलिप की लड़की थी) फ्रांस के सिंहासन पर अधिकार करके फ्रांस का राजा बनने की कोशिश करना, फ्रांसीसी सरदारों का उसके अधिकार को अस्वीकार करके वालवा के फ़िलिप का अभिषेक करना।

एडवर्ड ने एक भारी फ़ौज लेकर फ्रांस पर आक्रमण कर दिया। बहुत दूर तक वह लूटता चला गया। अन्त में क्रेसे-नामक गाँव के निकट फ्रांसीसी सेना की पराजय हुई, जिसमें बारह सौ घुड़सवार तथा हज़ारों सैनिक मारे गये। यह युद्ध इस बात के लिए प्रसिद्ध है कि इससे फ्रांस की जागीरदारी का अन्त सा होगया। इँग्लेण्ड ने बांनिकबर्न के युद्ध से जो शिक्षा ग्रहण की थी उसका उन्होंने फ्रांस के विरुद्ध प्रयोग किया। वह शिक्षा यह थी कि हाथों-हाथ लड़ाई में साधारण पियादे घुड़सवारों से ज़बरदस्त होते हैं। तत्पश्चात् कवचधारी योधाओं की कोई आवश्यकता न रह गई और उनका स्थान धनुष तथा बन्दूक़ ने ले लिया।

क्रेसे से चलकर एडवर्ड ने एक बरस के घेरे के पश्चात् केले को जीता। इससे इँगलिश चेनल का सारा व्यापार अँगरेज़ों के हाथ में चला आया और केले के बन्दर में फ्रांसीसियों की जगह अँगरेज़ी आबादी हो गई।

इस समय योरुप में प्लेग, जिसे काली मृत्यु कहा जाता

था, फैल गई। इससे इँगलेण्ड के भी कई गाँव तथा नगर नष्ट हो गये। पके हुए खेतों को काटनेवाला कोई न रह गया। स्वामी न होने के कारण पशु इधर-उधर फिरते थे। योरुप की जन-संख्या का लगभग तीसरा भाग प्लेग के मुख में प्रविष्ट हो गया।

ज्योंही प्लेग बन्द हुई, त्योंही एडवर्ड ने (१३५६) युद्ध आरम्भ कर दिया। एक ओर से उसने स्वयं और दूसरी ओर से उसके लड़के ब्लैक प्रिंस ने फ्रांस पर आक्रमण किये। पाँइटर्ज़ के रणक्षेत्र में फ्रांस का राजा जॉन पचास सहस्र सेना लिये खड़ा था। यह युद्ध फ्रांस के लिए दूसरा 'क्रेसे' सिद्ध हुआ और राजा तथा उसका लड़का दोनों गिरफ़ार किये गये। तीन वर्ष तक वह इँग्लेण्ड में क़ैद रहा। तत्पश्चात् एकिटेन तथा कुछ और प्रदेश इँग्लेण्ड को देने पर वह मुक्त कर दिया गया।

पॉइटर्ज़ के पश्चात् बहुत समय तक दोनों देशों में सन्धि रही। इस समय की बड़ी घटना इँग्लेण्ड में कृषकों का राज-द्रोह है। बहुत से लोगों ने, जो पहले कृषक-दास थे, धन आदि देकर अपने आपको स्वतन्त्र करा लिया था। प्लेग के कारण आबादी इतनी कम होगई थी कि कृषक-दासों को स्वतन्त्र करके जागीरदार पछताने लगे और १३५१ में उन्होंने पार्लमेण्ट में एक क़ानून पास कराया, जिसके अनुसार श्रमियों के लिए प्लेग से पहले की उजरत पर काम न

करना अपराध हो गया। इससे मजदूरों में बड़ी बेचैनी फैली। स्थान-स्थान पर वे यही कहते चले जाते थे:—'हम किस बात में कम हैं ? क्या हम मनुष्य नहीं हैं ?' इस राजद्रोह का एक कारण एक कर भी था जो अमीर-ग़रीब सब पर लगाया गया था।

१३८१ में सब जगह खलबली मच गई। ग़रीबों ने क़िलों और गिरजों को लूटना आरम्भ कर दिया। यद्यपि यह अग्नि शान्त कर दी गई और राजद्रोही नेता का वध कर डाला गया किन्तु मज़दूरों का मतलब सिद्ध हो गया। इँग्लेण्ड से कृषक-दासता ('सर्फडम') दूर हो गई। अँगरेज़ों को एक करने की यह पहली सीढ़ी थी।

पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में फ़्रांस का राजा चार्लेस कुछ पागल सा था, इसलिए वहाँ गड़बड़ सी मची हुई थी। इँग्लेण्ड के राजा हेनरी पाँचवें ने इसे अच्छा अवसर देख फ़्रांस पर पुराने अधिकार के अनुसार आक्रमण कर दिया और १४१५ में आज़हेनकूर के स्थल पर फ़्रांसीसियों को पराजित किया। पाँच वर्ष बाद एक सन्धि हुई, जिसमें यह निश्चय हुआ कि चार्लेस की मृत्यु के पश्चात् फ़्रांस का मुकुट इँग्लेण्ड के राजा को दिया जाय। किन्तु फ़्रांस में काफ़ी देशभक्ति थी। बहुत से लोग फ़्रांस के राजकुमार चार्लेस को अपने अधिकार से वञ्चित करना देश का अपमान समझते थे।

चार्लेस छठे की मृत्यु के पश्चात् चार्लेस सातवें का

अभिषेक हुआ। इधर अँगरेज़ी सेना फ़्रांस में बराबर लूट मचाती रही। १४२८ में उसने ऑरलीन्ज़ को घेर लिया। इस समय फ़्रांस के सब ओर अन्धकार ही दीखता था कि इसी बीच में उसकी रक्षा करनेवाली एक शक्ति उत्पन्न हुई। युवती जोन-ऑव्-आर्क अपने देश के दुर्भाग्य का चिन्तन करती थी। उसे आवाज़ सुनाई दी, 'जाओ, देश को बचाओ !' राजा के पास पहुँच कर उसने अपना दिव्य सन्देश सुनाया। फ़्रांस-वासियों ने उसे देवदूत समझा। उसके साहस से उनको ऐसा प्रोत्साहन मिला कि अँगरेज़ों को घेरा उठाना पड़ा। किन्तु कुछ समय के पश्चात् जोन अँगरेज़ों के हाथों में पहुँच गई और उन्होंने उसे मायाविनी कहकर ज़िन्दा जला दिया। यद्यपि जोन रोननगर में जलाई गई थी तथापि उसके आत्मोत्सर्ग ने सारी फ्रेञ्च जाति को जीवित कर दिया। तत्पश्चात् उन्होंने अँगरेज़ों को धीरे-धीरे अपने देश से निकाल दिया। १४५३ में इँग्लेण्ड के पास केले को छोड़कर और कुछ न बचा।

शतवर्षीय युद्ध से फ़्रांस को बड़ी हानि हुई क्योंकि युद्ध फ़्रांस में हुआ। किन्तु लड़ाके सरदारों के बाहर चले जाने से इँग्लेण्ड में शान्ति रही। न केवल यही वरन् कॉमन्स-सभा की शक्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई। क्योंकि राजा को युद्ध के लिए धन तथा मनुष्यों की आवश्यकता होती थी, इसलिए प्रजा-प्रतिनिधि जब पार्लमेन्ट में धन देते थे तब इसके साथ वे अपने अधिकार बढ़ाते तथा अपनी शक्ति को सुदृढ़ करते

जाते थे। युद्ध-काल में क्रेसे, पॉइटर्ज़ तथा आजहेनकूर की विजयों के कारण समाज की सभी श्रेणियों के लोगों में देशाभिमान का भाव उत्पन्न होता गया और यही इँग्लेण्ड के जातीय जीवन के अन्तस्तल में काम करने लगा।

१५४ पुष्प-युद्ध (१४५५-१४८५)

शतवर्षीय युद्ध के समाप्त हो जाने पर इँग्लेण्ड के दो वंशों में गृह-युद्ध आरम्भ होगया। इन वंशों के चिह्न सफ़ेद तथा लाल पुष्प थे इसलिए ये युद्ध पुष्प-युद्ध कहलाते हैं। ये युद्ध लगभग बीस वर्ष तक तीन स्थलों—सेन्ट एल्बन्स (१४५५), टोटन फ़ील्ड (१४६१) तथा बॉस्वर्थ (१४८५)—पर होते रहे। इनमें यार्क-वंश का अन्तिम राजा रिचर्ड तृतीय मारा गया और उसके पश्चात् हेनरी ट्यूडर इँग्लेण्ड का राजा बना। इसने इँग्लेण्ड में ट्यूडर-वंश की नींव रक्खी।

इन युद्धों का एक परिणाम यह हुआ कि लगभग आधे अमीर या जागीरदार तो रणक्षेत्र में ही मारे गये और जो बचे उनकी जागीरें नष्ट होने या ज़ब्त होने के कारण वे भी नष्टप्राय होगये। किन्तु ये जागीरदार ही थे, जिन्होंने इँग्लेण्ड की स्वतन्त्रता को राजा के हाथों से बचा रक्खा था। अब इनके विनष्ट हो जाने पर इँग्लेण्ड के राजा के लिए कोई भय न रह गया और वह पार्लमेण्ट की कुछ भी परवा न करके क़ानून-विरुद्ध मनमाना अत्याचार करने लगा अर्थात् अमीरों के विनाश

से इँगलेण्ड में एकराजतन्त्रता का दौरा हुआ जो सौ बरस तक रहा।

१९९ अँगरेज़ी-भाषा तथा साहित्य की उत्पत्ति

जातीयता के नये भाव का प्रभाव अँगरेज़ी-भाषा पर भी पड़ा। नारमन-विजय से लेकर चौदहवीं शताब्दी के मध्य तक इँगलेण्ड में तीन भाषायें बोली जाती थीं। एक नारमन फ्रेञ्च, जो विजेताओं की भाषा थी और जिसमें उस समय का साहित्य लिखा जाता था, दूसरी सेक्सन या पुरानी अँगरेज़ी जिसे विजित लोग बोलते थे और तीसरी लेटिन जिसमें न्यायालयों तथा चर्च का काम होता था। चौदहवीं शताब्दी के मध्य में अँगरेज़ी को, जिसमें नारमन फ्रेंच तथा लेटिन के बहुत से शब्द मिल गये थे, न्यायालय की भाषा का पद मिल गया। उस समय अँगरेज़ी की कई शाखायें थीं किन्तु राज-भाषा वह कहलाती थी, जिसमें सरकारी काग़ज़ात लिखे जाते और जो न्याया-लयों में प्रचलित थी।

इसका परिणाम यह हुआ कि उस अँगरेज़ी-भाषा में, जो नारमन-विजय के पश्चात् मृतप्राय होगई थी, समाज में जिसका कोई आदर न था, जिसमें कोई पुस्तक न लिखी जाती थी, एक बार फिर जीवन के लक्षण दिखाई पड़ने लगे। चासर तथा विलियम लेङ्गलेण्ड जैसे कवि उत्पन्न हुए। जॉन विक्लिफ़ ने १३२४ में बाइबिल का अँगरेज़ी में

पहला अनुवाद किया और साथ ही चर्च की त्रुटियों तथा दोषों पर भी चोटें कीं। इस प्रकार उसने इँग्लेण्ड में मज़हबी सिद्धान्तों के सुधार की नींव रक्खी।

इँग्लेण्ड में विक्लिफ़ के अनुयायी लोलर्डस कहलाते थे। क्योंकि उनके सिद्धान्त चर्च के विरुद्ध होने से वे नास्तिक समझे जाते थे। इसलिए १४०१ में पार्लमेण्ट में यह क़ानून पास हुआ कि ऐसे नास्तिकों को जला दिया जाय। इसके अनुसार ऐसे कई मनुष्यों के प्राण हरण किये गये जिनका मत चर्च से भिन्न था।

इसी शताब्दी के अन्त में विलियम केक्सटन ने इँग्लेण्ड में मुद्रण जारी किया। १४७४ की सबसे पहली पुस्तक थी 'शतरञ्ज के खेल' और दूसरी चासर-विरचित 'केन्टरबरी-कहानियाँ।'

२—फ़्रांस

फ़्रांस का पृथक् इतिहास वेरडङ्ग की सन्धि (प्रकरण ६-६) से, जो ८४३ में हुई थी, आरम्भ होता है। सौ वर्ष तक केरोलिंजियन-वंश राज्य करता रहा। तत्पश्चात् केपेशियन-वंश का आरम्भ हुआ। इस वंश के चौदह राजा सन् १३२८ तक राज्य करते रहे। इसके बाद वालवा-वंश शुरू हुआ, जो १५८६ तक सिंहासन पर रहा। तब बोरबॉन-वंश का पहला राजा १५८६ में राजसिंहासन पर बैठा।

१५६ फ़्रेञ्च-राज्य का आरम्भ

फ्रैंसिया का ड्यूक ह्यू कापेट यद्यपि राजा कहलाता था तथापि उसकी शक्ति अन्य जागीरदारों से अधिक न थी।

१४७ केपेशियन-वंश के अधीन फ्रांस (८७–१३२८)

फ्रांस में इस समय कई जागीरदार या सरदार थे, जिनकी जागीरें एक-एक करके ज़ब्ती, विजय या विवाह-सम्बन्धों के द्वारा राजा ने अपने राज्य में मिला लीं, यहाँ तक कि फ्रांस योरुप में एक शक्तिशाली राज्य बन गया। इस वंश के राज्य-काल में फ्रांस के सौभाग्य की एक बात यह भी थी कि ३४१ वर्ष तक इस वंश के किसी राजा को बिना पुत्र के न रहना पड़ा। उत्तराधिकारियों के होने से राज्य में कोई अन्तर न आया, इसलिए राजा की शक्ति दिन-प्रति-दिन बढ़ती गई। इस वंश के राज्य-काल की निम्नलिखित घटनायें वर्णन करने के योग्य हैं। फ्रांस में के अँगरेज़ी प्रदेशों का फ्रांस के हाथ में चला जाना, जिसका वर्णन 'इँग्लेण्ड' में कर दिया गया है। मज़हबी-युद्ध जिसमें इस वंश के तीन राजा—लूई सातवाँ, फ़िलिप आगस्टस तथा लूई नवाँ—सम्मिलित हुए। तीसरी श्रेणी के लोगों का जातीय सभा में प्रवेश तथा टेम्पलर-सम्प्रदाय का उच्छेद।

इँगलेण्ड में सरदारों की एक श्रेणी थी जिन्होंने राजा के साथ आन्दोलन करते हुए सर्वसाधारण को अपने साथ मिलाया था। किन्तु फ्रांस में राजा वह था जिसने पोप के साथ झगड़ा करते हुए सर्वसाधारण को अपने साथ

१४८ तीसरी श्रेणी का जातीय सभा में प्रवेश (१३०२)

मिलाया। सुन्दर फ़िलिप का फ़्रांस के चर्च की आय तथा पदों के सम्बन्ध में पोप से झगड़ा हुआ था। १३२० में इसने जातीय सभा की एक बैठक की। उसमें गाँव के प्रतिनिधि भी बुलाये गये। इससे पूर्व इस सभा में केवल सरदार तथा पादरी सम्मिलित हुआ करते थे। फ़िलिप का सर्वसाधारण को इसमें शामिल करना एक प्रकार से उन्हें सशक्त बनाना था।

इँग्लेण्ड तथा फ़्रांस में एक बड़ा अन्तर यह है कि इँग्लेण्ड की कॉमन्स-सभा की शक्ति धीरे-धीरे बढ़ती चली गई किन्तु फ़्रांस को इसमें इतनी देर लगी कि इसके लिए राज्य-क्रान्ति हुई।

मज़हबी युद्ध-काल में टेम्पलर-सम्प्रदाय ने युद्ध में बड़ी सेवायें की थीं (प्रकरण १३८)। उसके बदले में उनको धन, अधिकार तथा भूमि दी गई। अकेले फ़्रांस में उनके क़िलों की संख्या दस हज़ार हो गई। धन इकत्र हो जाने पर उनके अन्दर कई गुप्त दोष आगये। सर्वसाधारण उनसे घृणा करने लगे। सुन्दर फ़िलिप उन्हें इसलिए भी पसन्द नहीं करता था कि वे अपने आपको पोप की प्रजा समझते थे, और फ़्रांस के राज्य के शक्तिशाली बनने में एक भारी प्रतिबन्ध थे। फ़िलिप को धन की आवश्यकता हुई। सम्प्रदाय से समाज में दुराचार फैल जायगा या नहीं—इससे बढ़कर उसे

१४६ टेम्पलर-सम्प्रदाय का उच्छेद (१३०७)

धन की चिन्ता थी। १३ ऑक्टोबर १३०७ के दिन एकाएक सभी टेम्पलर्स गिरफ़ार कर लिये गये। कई दोष लगाकर उनका वध कर डाला गया। तत्पश्चात् फ़िलिप ने उनके क़िलों तथा सम्पत्तियों पर क़ब्ज़ा कर लिया, जैसे इँग्लेण्ड के हेनरी आठवें ने मठों पर अपना स्वत्व प्राप्त किया था।

वालवा-वंश के राज्य-काल की सबसे बड़ी घटना शतवर्षीय युद्ध था, जो इँग्लेण्ड और फ्रांस के बीच हुआ।

१६० फ्रांस वालवा-वंश के अधीन (१३२८–१४९८)

फ्रांस पर उसका प्रभाव यह पड़ा कि जागीरदार-श्रेणी सर्वथा नष्ट होगई, राजा की शक्ति बढ़ गई और समस्त देश पर एक सङ्कट आने से लोगों में पारस्परिक सहानुभूति तथा देश-प्रेम का भाव बढ़ता गया जो आगे जातीयता के भाव में परिणत हो गया।

लूई ग्यारहवें (१४६१-१४८३) के राज्य-काल में राजा की शक्ति अत्यधिक बढ़ गई। यह मनुष्य बड़ा कपटी था।

१६१ लूई ग्यारहवाँ और साहसी चार्ल्स

इसने रहे-सहे सरदारों की जागीरें भी छीन कर अपने राज्य में मिला लीं। सरदारों में से बरगंडी का एक ड्यूक चार्ल्स बड़ा साहसी था।

चार्ल्स फ्रांस तथा जर्मनी के मध्य के छोटे-छोटे राज्यों को मिलाकर एक बड़ा राज्य बनाना चाहता था। अपने प्रदेश के एक भाग के लिए वह फ्रांस के राजा को अपना

अधिपति मानता था और दूसरे भाग के लिए 'पवित्र साम्राज्य' को। लूई भी इस बात को देखता रहा। इसलिए जब चार्लेस मरा तब लूई ने उसके समस्त प्रदेश पर अपना स्वत्व जमा लिया।

लूई का पुत्र चार्लेस आठवाँ (१४८३-१४९२) इस वंश का अन्तिम राजा था। इसने ब्रिटेनी की उत्तराधिकारिणी एन के साथ विवाह करके ब्रिटेनी को, जो अभी तक एक स्वतन्त्र राज्य था, अपने राज्य में मिला लिया। इसके राज्यकाल में फ्रांस की सीमायें वर्त्तमान फ्रांस के बराबर पहुँच गईं।

१६२ चार्लेस आठवें का इटली-आक्रमण

चार्लेस एक विचित्र युवक था। इसे एक अनोखी बात सूझी वह यह कि जर्मनी के स्थान में फ्रांस को साम्राज्य का केन्द्र बनाना चाहिए। इँग्लेण्ड के साथ बहुत दिनों तक युद्ध करने से उसके पास एक संगठित सेना इकट्ठी होगई थी। पचास हज़ार सैनिक लेकर उसने नेपल्ज़ के राज्य पर आक्रमण कर दिया। तत्पश्चात् अपने आपको नेपल्ज़, सिसली तथा येरोशलम का राजा प्रसिद्ध कर दिया। इतने में एरागान का राजा, वेनिशियन तथा अन्य कई उसके विरुद्ध खड़े हो गये। थोड़ी सी फौज नेपल्ज़ में छोड़ वह फ्रांस को चल पड़ा। शत्रु ने उसको रोका किन्तु चार्लेस उसे पराजित करके फ्रांस में पहुँच गया। पर उसकी नेपल्ज़ की सेना

वहाँ से निकाल दी गई। इस प्रकार उसके आक्रमण का अन्त हो गया।

३—जर्मनी

जर्मनी का आरम्भ नवीं शताब्दी के मध्य, महान् चार्ल्स के साम्राज्य की स्थापना से होता है। राईन-नदी का पूर्वी प्रदेश, जिसमें सेक्सन, सुएबियन, थुरिंजियन तथा बवेरियन लोग रहते थे 'पूर्वी फ्रेङ्क-राज्य' कहलाता था। ये क़बीले नस्ल, भाषा तथा रीति-रिवाज में परस्पर बहुत समता रखते थे। किन्तु दुर्भाग्य से कई ऐसी परिस्थितियाँ थीं, जिनके कारण ये जर्मन-क़बीले एक जाति न बन सके थे।

१६३ जर्मनी के राज्य का आरम्भ

दसवीं शताब्दी में एक अन्य तातारी नस्ल के लोग, जो माग्यॉर्ज़ या हङ्गेरियन कहलाते हैं जर्मनी में आये और उन्होंने पहले जर्मन लोगों से कुछ प्रदेश छीन कर हङ्ग्री-राज्य की नींव रक्खी।

१६४ हङ्ग्री-राज्य का निर्माण

इस शताब्दी के अन्त में महान् ऑटो ने शार्लेमन के साम्राज्य के स्थान में जर्मन-साम्राज्य स्थापित किया। तत्पश्चात् जर्मन-सम्राटों ने अपनी शक्ति संसार के सम्राट् बनने में लगा दी, पर वे जर्मनों को एक करके जर्मनी के भी राजा न बन सके।

१६५ महान् ऑटो द्वारा साम्राज्य का पुनःस्थापन; उसका परिणाम

जब इँग्लेण्ड तथा फ्रांस जातियाँ बन रही थीं तब जर्मन-सम्राट् के अधीन जर्मनी छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था। इन राज्यों या जागीरों के जागीरदारों ने पारस्परिक ईर्ष्या के कारण जर्मनी को एक न होने दिया।

'पवित्र रोमन-साम्राज्य' में जर्मनी तथा इटली के राज्य सम्मिलित थे। १०३२ में बरगन्डी का राज्य भी शामिल होगया। किन्तु कुछ समय के पश्चात् इटली पृथक् होगया। तत्पश्चात् बरगन्डी भी निकल गया और पवित्र रोमन-साम्राज्य में केवल जर्मन-राज्य रह गया और कुछ दिनों में यह जर्मन-राज्य ही पवित्र रोमन-साम्राज्य कहलाने लगा। जर्मन-साम्राज्य में कई छोटे राज्यों का संयोजन था तथापि सम्राट् भी नाम-मात्र का पद था।

१६६ जर्मन-राज्य तथा पवित्र रोमन-साम्राज्य

होएनस्टौफ़ेन या सुएवियन-वंश के सम्राटों में से फ्रेड्रिक बरबोसा जर्मनी में सर्वप्रिय राजा हुआ। केवल यही एक राजा था, पोप के साथ झगड़े में प्रजा ने जिसका साथ दिया। तीसरे मज़हबी युद्ध में उसके मर जाने का समाचार जब जर्मनी पहुँचा तब कोई जर्मन उसे मानने को तैयार न हुआ। क्या उनका राजा भी इस प्रकार मर सकता है!

१६७ होएनस्टौफ़ेन सम्राटों के अधीन जर्मनी (११३८–११५४)

फ्रेड्रिक की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र हेनरी छठा

(११९०-१९७) सिंहासन पर बैठा। विवाह में उसे सिसली का राज्य मिला और उसने अपनी सारी आयु तथा परिश्रम उसे अपने अधिकार में लाने में ख़र्च कर दिया।

होएनस्टौफ़ेन-वंश के राज्य-काल में सम्राटों के जर्मनी से बाहर रहने के कारण बहुत से जर्मन-नगरों ने अपनी स्वतन्त्रता ख़रीद ली और जर्मनी में दो-तीन सौ के बीच छोटे छोटे राज्य या स्वतन्त्र नगर स्थापित हो गये, अर्थात् एक बड़ा जर्मन-राज्य न रह गया। यद्यपि इस वंश के सम्राट् बड़े बलवान् तथा योग्य शासक थे तथापि जर्मनी के मामलों को भूल कर वे पोप के साथ झगड़ा करके या मज़हबी युद्धों में भाग लेकर अपना बल और बुद्धि दोनों व्यर्थ में गँवाते रहे।

दसवीं शताब्दी में जब केरोलिञ्जिय-वंश का अन्त होगया, तब जर्मनी के बड़े सरदारों ने सम्राट् चुनने का अधिकार अपने हाथ में ले लिया। कुछ समय व्यतीत हो जाने पर यह अधिकार कुछ बड़े सरदारों के अधीन होगया, जो निर्वाचक कहलाते थे। होएनस्टौफ़ेन-वंश की समाप्ति पर केवल सात निर्वाचक थे, चार राजा और तीन पादरी। जर्मनी की सारी शक्ति इन्हीं सातों के हाथ में थी।

१६८ सम्राट् के चुनाव में मत-दान का अधिकार

रोमन-मेजिस्ट्रेटों के समान इन्होंने भी खुले तौर पर सम्राट्-पद बेचना आरम्भ कर दिया। एक अवसर पर राजमुकुट के लिए दो उम्मेदवार निकले। दोनों ही विदेशी थे, एक इँग्लेण्ड के राजा हेनरी तृतीय का भाई रिचर्ड, दूसरा कोसटॉल का राजा एल्फॉनसो। दोनों ने निर्वाचकों को एक दूसरे से बढ़बढ़ कर घूँसें दीं और दोनों ही निर्वाचित होगये। एक निर्वाचक ने दोनों के लिए मत दिया। किन्तु निर्वाचन के पश्चात् दोनों का शौक़ जाता रहा और उन्होंने कभी जर्मनी में पाँव भी न रक्खा। १२५४ से लेकर १२७३ तक जर्मनी पर किसी सम्राट् का शासन न था, इसलिए यह काल अराजत्व-काल कहलाता है। अराजत्व के कारण जर्मनी में अराजकता फैल गई, यहाँ तक कि सरदारों ने व्यापारियों को लूटना आरम्भ कर दिया।

जर्मनी के जो नगर जन-संख्या तथा धन की दृष्टि से बढ़ गये थे उन्होंने शासकों तथा सरदारों की लूटमार से बचने के लिए अपनी रक्षा अपने हाथ में ले ली और नगरों के सङ्घ बनाये।

१६६ स्वतन्त्र-नगर

इनमें से दो—हेंसिएटिक तथा राहेनिश—बड़े प्रसिद्ध हैं। कई जर्मन-नगर इटली के नगरों के समान प्रजातन्त्र थे। धीरे-धीरे उन्होंने जर्मन-जातीय सभा में अपने निर्वाचित प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त कर लिया। नगरों के प्रतिनिधि जातीय सभा का तृतीय समाज 'थर्ड कॉलेज' कहलाते थे।

जर्मन-इतिहास में चौदहवीं तथा पन्द्रहवीं शताब्दी में स्विट्ज़रलेण्ड के प्रजातन्त्र का उत्थान एक उल्लेखनीय घटना है। वह प्रदेश, जो आज-कल स्विट्ज़रलेण्ड कहा जाता है, यद्यपि साम्राज्य में सम्मिलित था तथापि उसके स्वतन्त्रता-प्रिय लोग जर्मन-नगरों के समान नाममात्र को ही सम्राट् के अधीन थे। अपने ऊपर जागीरदारों के शासन को ये लोग क्षण भर के लिए भी सहन नहीं करना चाहते थे।

१७० स्विस प्रजातन्त्र का उत्थान

सरदारों में से स्विट्ज़रलेण्ड के हेप्सबर्ग-नामक क़िले के सरदार सभी पहाड़ी लोगों को अपने नीचे देखना चाहते थे। १२७७ में हेप्सबर्ग का कौण्ट रुडॉल्फ़ सम्राट् चुना गया और आस्ट्रिया उसके अधीन होगया। इसी कारण उसका वंश हेप्सबर्ग या आस्ट्रिया का वंश कहलाता है। १२९१ में तीन क़बीले परस्पर एक होकर स्वाधीन होगये।

हेप्सबर्ग-वंश ने स्विस लोगों को अपने अधीन रखने के लिए बहुत प्रयत्न किये। किन्तु उनमें देश-भक्ति तथा त्याग के भाव अत्यधिक मात्रा में थे। १३१५ में उन्होंने मॉरगरटेन के रणक्षेत्र में आस्ट्रिया के सम्राट् को पराजित किया। तत्पश्चात् पाँच अन्य क़बीले उनके साथ मिल गये। सत्तर वर्ष बाद सेम्पाक-स्थल पर उन्होंने आस्ट्रियन सेना को पराजय दी। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में मेक्सिमिलियन प्रथम

ने पराजित होकर उनसे सन्धि कर ली, जिससे उनकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली गई।

पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में इँग्लेण्ड तथा जर्मनी के विश्वविद्यालयों के परस्पर सम्बन्ध के कारण अँगरेज़ सुधारक विक्लिफ़ के मज़हबी सिद्धान्त बोहेमिया में फैलने लगे। उनका प्रचारक प्रेग-विश्वविद्यालय का अध्यापक 'जाहून हस्स' था। चर्च ने कॉनस्टेंटाईन में एक सभा की। सम्राट् ने 'जाहून हस्स' को धोखे से बुलाकर कैद कर लिया और अपराधी बताकर उसे सिविल अफ़सरों के सुपुर्द कर दिया। १४१५ में वह जीवित जला दिया गया। अगले वर्ष एक अन्य सुधारक जेरोम भी इसी प्रकार अग्नि की भेंट हो गया।

१७१ जाहून हस्स

हस्स के हुतात्मा होने पर उसके अनुयायियों ने राजद्रोह आरम्भ किया और पन्द्रह वर्ष तक राजा की सेना से युद्ध करते रहे। उनकी जय हो जाने पर नरम-दल के साथ सन्धि कर ली गई और उन्हें पूजन की स्वतन्त्रता प्राप्त होगई।

हेप्सबर्ग-वंश का पहला सम्राट् मेक्सिमिलियम प्रथम था। उसका राज्य-काल इस लिए प्रसिद्ध है कि आन्तरिक शान्ति तथा जातीय ऐक्य के लिए जर्मन-विधान में सुधार करने का उसने बहुत प्रयत्न किया।

१७२ मेक्सिमिलियन प्रथम का राज्य-काल (१४९३—१५१९)

किन्तु निर्वाचक तथा राजा इतने अनुदार और स्वार्थी थे कि उसे अपने प्रयत्नों में कुछ भी सफलता न हुई।

१४६५ में वर्ग-नगर में जातीय सभा ने स्थायी जातीय शान्ति की घोषणा कर दी और राजा तथा नगरों को परस्पर युद्ध करने से रोका। इसके साथ ही यह बात भी घोषित की गई कि हर एक झगड़े को सब लोग राजसभा ('इम्पीरियल चेम्बर') में लाया करें, जिसका निर्णय उन्हें स्वीकार करना होगा।

४—इटली

इटली की भी जर्मनी की सी अवस्था थी। पोप तथा सम्राट् के झगड़े के कारण इटली में दो विरोधी दल पैदा होगये। जब चौदहवीं शताब्दी में बहुत समय तक पोप रोम से हट कर एविगनॅन में रहा तब इटली के सरदारों ने इटली के नगरों में एक तरह का ऊधम मचा रक्खा। रोम की पुरानी इमारतों में अपने क़िले बनाकर उन्होंने इर्द-गिर्द के प्रदेशों को भयभीत कर दिया।

१७२ रोम का न्यायाधीश रेनज़ी (१३४७)

अशान्ति की इस अवस्था में इटली की सबसे निम्न श्रेणी में से एक ऐसा पुरुष उत्पन्न हुआ, जिसमें देशभक्ति की अग्नि जल रही थी। इटली को इस अशान्ति से बचाने के अतिरिक्त उसने रोम को इटली की राजधानी तथा संसार को केन्द्र बनाने का भी प्रयत्न किया। यह पुरुष

निकोला-डि-रेनज़ी था। उसकी योग्यता तथा वाक्पटुता अतुलनीय थी।

प्रजा को सरदारों के विरुद्ध उकसा कर उसने १३४७ में रोम के अन्दर एक नई गवर्नमेंट स्थापित की, जिसका वह न्यायाधीश बनाया गया। कुछ ही समय में उसने सभी सरदारों को अपने अधीन करके नगर के अन्दर तथा उसके चारों ओर के प्रदेश में शान्ति का राज्य स्थापित किया। यह एक ऐसी अद्भुत क्रान्ति थी कि समस्त इटली और संसार की आँखें रेनज़ी की ओर लग गईं।

अपनी सफलता से प्रसन्न होकर रेनज़ी ने इटली के सभी राज्यों तथा प्रजातन्त्रों में अपने दूत भेजे कि सब एक होकर इटली में एक प्रजातन्त्र बनायें, और रोम उसकी राजधानी हो। प्रसिद्ध कवि पेट्रार्क भी रेनज़ी का प्रशंसक तथा सहकारी था। किन्तु इटली का ऐक्य-दिवस अभी दूर था। रेनज़ी के लिए विरोधियों की शत्रुता और ईर्ष्या ही पर्याप्त थी। इसके अतिरिक्त सफलता के कारण उसका सिर भी फिर गया और उसने मूर्खता-पूर्ण बातें करना शुरू कर दिया। उसने अपनी सात उपाधियों—रोमोद्धारक; इटली-रक्षक; मनुष्यमात्र-स्वतन्त्रता; शान्ति तथा न्याय-मित्र; न्यायाधीश—के चिह्नस्वरूप सात मुकुट बनवाये। इस अमर्यादित मूर्खता के कारण पोप ने उसे राजद्रोही बताया। सरदार उसके विरुद्ध होगये। अपना

धिकार छोड़कर उसने देश-निर्वाचन स्वीकार कर लिया। इस प्रकार रेनज़ो का स्वप्न समाप्त हुआ।

इससे पहले कि इटली एक जाति बने, उसे अभी अपमान था दासत्व की कई शताब्दियाँ काटना थीं। फ्रांस, चीन तथा आस्ट्रिया का दासत्व, युद्ध एवं कष्ट भोगने थे।

७४ पाँच राज्य

पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य में इटली में पाँच बड़े राज्य थे—मिलन-राज्य, वेनिस तथा फ्लाँरेन्स के प्रजातन्त्र, मध्य इटली में चर्च के राज्य और दक्षिण इटली में नेपल्ज़ का राज्य। इन राज्यों में परस्पर एक दूसरे के विरुद्ध सदा ईर्ष्या द्वेष रहता था। इनकी पारस्परिक फूट के कारण ही फ्रांस का राजा चार्लेस आठवाँ इटली के एक सिरे से दूसरे तक धावा कर गया। तत्पश्चात् तीन शताब्दियों तक संसार के लिए इटली एक देश का भौगोलिक नाममात्र रह गया।

किन्तु इटली को एक जाति तथा राष्ट्र बनाने का विचार लोगों के चित्त से कभी दूर नहीं हुआ। फ्लॉरेन्स के रहनेवाले माक्यावेली का भी यही विचार था। इसने अपनी देश-भक्ति-पूर्ण पुस्तक 'राजा' ('प्रिंस') में कुछ उपाय बतलाये, जिनके द्वारा इटली अपने भौतिक तथा आध्यात्मिक संप्लव से निकलकर इँग्लेण्ड तथा फ्रांस के समान ही एक बड़ा राज्य बन सकता था।

१७५ माक्यावेली

माक्यावेली के मतानुसार इटली का रक्षक वह हो सकता था जिसे अपने कार्य में किसी प्रकार की आशङ्का का विचार न हो, वरन् जो अपने उद्देश की के लिए उचित-अनुचित सभी उपायों का उपयोग करने लिए उद्यत हो और इटली के एक जाति बन जाने के पश्चा उसे (राजा को) प्रजा का प्रतिनिधि बनकर न्यायत: राज्य करना चाहिए।

माक्यावेली के विचार उन राजाओं के क्रियात्मक जीवन के लिए थे, जिन्होंने इटली में अपने-अपने राज्य बना लिये थे। किन्तु माक्यावेली की इस शिक्षा का लोगों ने वास्तविक अर्थ न समझा और उसके प्रति ऐसी घृणा उत्पन्न हो गई, जो अभी तक नहीं होती। सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी की राजनैतिक आचार-नीति पर भी उसका बड़ा प्रभाव पड़ा।

माक्यावेली की बराबरी का फ्लॉरेंस का एक प्रसिद्ध भाँक सावोनारोला एक ऐसा मनुष्य था, जिसे हम छोड़ नहीं सकते। यहूदी पैग़म्बरों के समान वह अलंकारिता का प्रचारक था। वह उस समय के अफ़सरों के अन्याय तथा आचारभ्रष्टता का बड़ा विरोध करता था। चर्च के नैतिक पतन को देखकर वह कहा करता था कि फ्लॉरेंस, इटलीयत संसार-मात्र ईश्वरीय प्रकोप के भाजन बनेंगे।

१७६ सावोनारोला

धिक के उपदेश से लोग इतने भयभीत हुए कि फ्लॉरेंस की नारियों ने अपने सभी आभरण-भूषण अग्नि को भेट कर दिये।

सावोनारोला एक मज़हबी सुधारक था, पर था कट्टर रोमन कैथॉलिक। वह केवल तात्कालिक दोषों को दूर करना चाहता था। उसका कहना था कि मज़हबी मामलों में एक वृद्धा का पद प्लेटो से बढ़ कर है। अन्त में विरोधियों ने उसको जलाकर उसकी भस्म नदी में फेंक दी।

चौदहवाँ अध्याय

पुनर्जागृति

१—पुनर्जागृति के कारण

योरुप में भिन्न भिन्न जातियों की उत्पत्ति के साथ साथ बौद्धिक उन्नति भी होती गई। इसे ही 'पुनर्जागृति' या 'रेनेसाँस' का नाम दिया गया है। पुनर्जागृति का आन्दोलन योरुप के इतिहास में मध्ययुग को वर्तमान युग से सर्वथा पृथक् कर देता है। संक्षेप में, रेनेसाँस उस प्रेम और औत्सुक्य का नाम है जो मध्ययुगों के अन्त में प्राचीन रोम तथा यूनान की विद्याओं और श्रेष्ठ साहित्य के प्रति उत्पन्न हुआ। किन्तु विस्तृत अर्थ में इसे योरुपीय मस्तिष्क का खिलना और प्रकृति के साथ नव-प्रेम कह सकते हैं।

१७७ शब्दार्थ

'पुनर्जागृति' मध्ययुग के प्रतिबन्धों तथा मानसिक सङ्कीर्णत का द्रोही आन्दोलन था, जैसा बाद के मज़हबी संसार : सुधारों तथा राजनीति-संसार में विप्लव से ज्ञात होता है। इस आन्दोलन से प्रभावित होकर पश्चिमी योरुप की जातियों : मानव-जीवन तथा बाह्य संसार के सम्बन्ध में नये सिरे इस प्रकार सोचना तथा अनुभव करना आरम्भ किया जैसे कि प्राचीन रोम तथा यूनान के निवासी किया करते थे। चर्च

अपने प्रभाव से योरुप को बौद्धिक दासत्व में रखकर
ागों में प्रकृति तथा प्राकृत संसार से घृणा उत्पन्न कर दी
ी। प्राकृतिक शक्ति से प्रेम तथा तत्सम्बन्धी खोज का
या भाव उत्पन्न होने पर योरुप ने अपने आपको फिर
ाचीन संसार से बँधा हुआ पाया। और फिर प्राचीन
ाहित्य तथा संस्कृति का प्रेम इटली तथा योरुप में पैदा
होने लगा।

चौदहवीं शताब्दी से पहले ही योरुप के लोगों में कुछ
व्यग्रता सी उत्पन्न होने लगी थी। यह व्यग्रता आनेवाले बौद्धिक
विप्लव का पूर्व-लक्षण था। कहीं-कहीं
कोई ऐसा मनुष्य पैदा होजाता था, जिसे
उसके समकालीन समझ नहीं सकते थे
और वह एक अचम्भा सा मालूम होता था। साधारण तौर
से यह गति प्राचीन विद्याओं के अध्ययन से उत्पन्न होती थी।
इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि जीवन पूर्वभूत जीवन
से ही उत्पन्न होता है।

१७८ पुनर्जागृति का पूर्व लक्षण

हमने देखा है कि मज़हबी युद्धों ने भी योरुप की आँखें
खोलने में बड़ी सहायता की थी, क्योंकि इनके द्वारा ही
योरुप के ईसाई लोग सिकन्दरिया तथा बग़दाद के यूनानी
तथा अरबी विचारों से परिचित हुए।

योरुपीय देशों का अपनी-अपनी भाषा में साहित्य पैदा
करना भी इस आन्दोलन का एक शुभ चिह्न था, क्योंकि

इन्हीं भाषाओं में ऐसे गीत तथा कहानियाँ बन सकती थीं, जो सर्वसाधारण में गति उत्पन्न करते थे। एलबिजेनसियन विद्रोह भी मज़हबी आन्दोलन इतना न था जितना बौद्धिक तथा साहित्यिक।

फ्रेड्रिक द्वितीय (१२१२-१२५०) एक विशेष प्रकार का मनुष्य था, वह मज़हबी पक्षपात से सर्वथा मुक्त था। उसमें वे सभी गुण थे, जो बाद में 'रेनेसाँस' के आन्दोलन में पाये गये। उसने अरिस्टाटल की पुस्तकों का अनुवाद करवाया और नेपल्ज़ में एक विश्वविद्यालय स्थापित किया, जिससे दक्षिण इटली में कुछ समय के लिए बौद्धिक हलचल उत्पन्न होगई।

योरुपीय नगरों की उन्नति भी इस आन्दोलन में बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई।

बौद्धिक उन्नति के इस क्षेत्र में इससे पहले के विश्व-विद्यालयों तथा दर्शन ने बड़ी सहायता की। इतिहास का

१७९ विश्वविद्यालय तथा दार्शनिक

अध्ययन किसी समय के विचारों का अध्ययन होता है। हर एक समय के विचार उस आईना के समान है, जिसमें उस समय के लोगों का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। इस दृष्टि से हमारे लिए मध्ययुग के विचारों का अध्ययन करना कुछ आवश्यक है।

ग्यारहवीं शताब्दी तक पुस्तकों का पठन-पाठन मठों तक ही सीमाबद्ध था। मूरों—मुसलमानों—ने स्पेन में यूनानी तथा पूर्वी

विद्याओं के सिखलाने के लिए विश्वविद्यालय स्थापित करके पश्चिमी योरुप में साहित्यिक आन्दोलन का एक नया मार्ग बना दिया। मज़हबी युद्धों का भी यह प्रभाव हुआ कि योरुपीय देशों में वैद्यक, क़ानून तथा राजनीति के अध्ययन का ख़ास शौक़ पैदा हो गया। लोगों की इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए पुरानी चर्च-पाठशालायें विश्वविद्यालयों का रूप धारण करती गईं। मज़हब के साथ साथ उनमें अन्य विद्याओं का शिक्षण भी दिया जाने लगा। पोप तथा सम्राट् इन पाठशालाओं को अपनी शक्ति बढ़ाने का एक साधन समझ कर इनकी सहायता करते रहे। सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में योरुप में तीन बड़े विश्वविद्यालय—पेरिस, बोलोना तथा सेलरनो थे। इन्हीं को आदर्श मानकर शेष विश्व-विद्यालय स्थापित हुए।

१८० विश्वविद्या-लयों का बनना

इन विश्वविद्यालयों में विभिन्न जातियों के विद्यार्थी तथा अध्यापक रहा करते थे। अपने गण ('गिल्ड') बनाकर इन्होंने अपनी गवर्नमेण्ट भी बना ली थी। इनमें पन्द्रह और तीस के बीच में विद्यार्थी रहा करते थे, जिनमें बहुत से छोटी आयु के तथा वयोवृद्ध पादरी भी हुआ करते थे। किन्तु विद्यार्थियों की नैतिक अवस्था कुछ बहुत अच्छी न थी।

१८१ विद्यार्थी तथा अध्यापक

ईश्वर-विद्या ('थियालोजी'), वैद्यक तथा क़ानून ये तीन बड़ी

विद्यायें थीं, जो इन विश्वविद्यालयों में सिखाई जाती थीं।

१८२ शिक्षा-विधि तथा 'नैयायिक'

ईश्वर-विद्या में बाइबिल, वैद्यक में सुकरात तथा अबुसीना और क़ानून में जस्टिनियन के अध्ययन पर ज़ोर दिया जाता था। अरिस्टाटल की रचना बड़े आदर की दृष्टि से देखी जाती थी।

पुस्तकों का स्मरण करना ही शिक्षा समझी जाती थी। उन पर आलोचना करने का किसी को साहस न होता था। बाद में शिक्षण-विधि में दर्शन की एक विशेष पाठ-विधि प्रचलित हुई जिसके प्रवर्तक को नैयायिक या 'स्कूलमैन' कहते थे। नैयायिक का एक यह विशेष कर्त्तव्य था कि ईसाई-मज़हब के सिद्धान्तों को विज्ञान के अनुकूल सिद्ध करे। वे अरिस्टाटल के न्याय-द्वारा इन सब सिद्धान्तों को सिद्ध करते थे। सिद्धान्त को पहले सत्य कल्पना मानकर नैयायिक उसे तर्क से सिद्ध करता था। उदाहरणार्थ उनके चित्त में कभी यह सन्देह नहीं हुआ कि रोटी तथा शराब, मांस तथा रक्त में परिवर्तित हो सकते हैं। उनका वाद-विवाद सदा क्यों और कैसे ही में रहता था।

उन्हें बाइबिल के देवदूतों पर भी कभी सन्देह न हुआ। उनकी बहस देवदूतों के आकार पर होती थी। किन्तु जल्दी ही उन्हें पता चल गया कि अवतार तथा मृतोत्थापन आदि सिद्धान्त तर्क-द्वारा सिद्ध नहीं हो सकते। इसलिए बाद में उन्हें ऐसे रहस्य बताये गये जिन पर विश्वास करना

आवश्यक था। इसी बात से सम्बन्ध रखनेवाली एबेलार्ड तथा बरनार्ड का वाद-विवाद अति मनोरञ्जक है। एबेलार्ड प्रत्येक वस्तु को तर्क-द्वारा सिद्ध करना चाहता था। इसके विरुद्ध बरनार्ड का कहना था कि ईश्वर तर्क से नहीं जाना जाता वरन् प्रेम और विश्वास से।

मज़हबी युद्धों के पश्चात् अरिस्टाटल के शेष कृतियाँ भी पहले अरबी अनुवादों से, बाद में लेटिन से अनुवादित की गईं। इससे पेरिस तथा आक्सफ़र्ड के विश्वविद्यालयों पर बड़ा प्रभाव पड़ा और ये दोनों स्थान नये आन्दोलन के केन्द्र बन गये। डोमिनिकन माँकों में एक एलबर्ट (११९३-१२८०) और दूसरा थामस इकिनास (१२२७-१२७४) उत्पन्न हुए। उनकी रचनायें ईश्वर-विद्या तथा विज्ञान का सङ्ग्रह समझी जाती थीं।

१८३ एल्बर्ट तथा इकिनास

थामस इकिनास की बराबरी का ब्रिटिश फ्रेंसिसकन माँक डन्स स्कॉटस, जो १३०८ में मरा, बड़ा दार्शनिक समझा जाता था। इसी प्रकार एक अन्य फ्रेंसिसकन पादरी— रॉजर बेकन ने, जो १२९४ में मरा, अरबी पुस्तकों से कल-शास्त्र, चक्षुशास्त्र तथा रसायन-शास्त्र का विशेष अध्ययन किया। उसके समकालीन समझते थे कि इसने शैतान के साथ गुट्ट बना लिया है। इसी अपराध के कारण उसे चौदह वर्ष तक क़ैद रहना पड़ा।

चौदहवीं तथा पन्द्रहवीं शताब्दी में इस दर्शन का पतन आरम्भ हुआ। नैयायिकों पर यह दोष लगाया जाता था कि वे सब बातें तर्क से सिद्ध करना चाहते थे और उनके मस्तिष्क में विज्ञान के प्रयोगों के लिए कोई स्थान न था। इसका परिणाम यह हुआ कि विद्यायें जहाँ की तहाँ बनी रहीं, उनमें कोई उन्नति न हुई। दूसरा दोष उन पर यह लगाया जाता था कि वे लोग बाइबिल या चर्च के निर्णय को ही अन्तिम निर्णय मानते थे। किन्तु वास्तव में इस प्रकार के दोष ऐसे ही बेहूदा हैं जैसे यह कहना कि वे मध्य-युग में क्यों उत्पन्न हुए।

१८४ नैयायिकों पर आलोचना

इन नैयायिकों की सबसे बड़ी सेवा यह थी कि इन्होंने अपने वादविवादों-द्वारा विश्वविद्यालयों में बौद्धिक-गति जारी रक्खी। अतः इन्होंने बौद्धिक-स्वतन्त्रता के लिए बड़ा काम किया। तर्क को उपयोग में लाना क्रियात्मक-रूप से पुनर्जागृति आन्दोलन के मार्ग को साफ़ करना था। सम्भवतः यह कहना भी अनुचित न होगा कि प्राचीन दर्शन के अन्दर ही 'रेनेसाँस' मौजूद था।

१८५ नैयायिकों की सेवायें

इस दर्शन का एक बड़ा प्रतिनिधि फ्लारेन्स का निवासी डान्टे (१२६५-१३२१) हुआ। १३०२ में उसे देश-निकाला मिला। अपने देश-निर्वासन के समय में उसने 'ईश्वरीय-नाटक' ('डिवाईन कॉमेडी') नामक एक पुस्तक लिखी, जो मध्ययुग के

१८६ डान्टे पुनर्जागृति का अग्रेसर

जीवन तथा विचारों का एक चित्र है। उसकी ईश्वर-विद्या, दर्शन तथा विज्ञान उस युग का विज्ञान है। यद्यपि डान्टे अपने दृष्टिकोण से देखता था तथापि वह आनेवाले युग का भविष्यवक्ता था—'पुनर्जागृति' का प्रवर्तक था—प्राचीन कवि वर्जिल को वह गुरुतुल्य समझता था। उसने अपनी पुस्तक की बहुत सी सामग्री पुराने लेखकों से ली है। इससे प्रकट होता है कि वह प्राचीन संस्कृति से प्रेम करता था। उसके बौद्धिक गुणों से भी प्रकट होता है कि वह वर्तमान युग का मनुष्य था। वास्तव में डान्टे ही एक ऐसा मनुष्य है जो अपने व्यक्तित्व में मध्य तथा वर्तमान दोनों युगों को मिलाता है।

२—इटली में पुनर्जागृति

पुनर्जागृति की वास्तविक नींव प्राचीन संस्कृति है। उसी के प्रभाव से पश्चिमी योरुप की जातियों के दुर्ग में उथल-पथल मच गया। प्राचीन संस्कृति का कोष इटली के विद्वानों के हाथ लगा। इस लिए इटली से रेनेसाँस की तरङ्ग उस प्रकार निकली जैसे जर्मनी से सुधार और फ्रांस से विप्लव।

१८७ पुनर्जागृति-आन्दोलन के कारण

रेनेसाँस का आरम्भ इटली से होना आवश्यक था, क्योंकि वे सब कारण, जिन्होंने इस आन्दोलन को उत्पन्न किया था, इटली में ही काम कर रहे थे।

पहले तो अन्य देशों की अपेक्षा इटली का नागरिक जीवन भी अधिक उन्नति कर चुका था। राजनीति, बुद्धि तथा कला की दृष्टि से इटली के नगर प्राचीन यूनानी नगरों की बराबरी करते थे। उदाहरणार्थ एक फ्लॉरेन्स-नगर में ही ऐसे अद्वितीय योग्य मनुष्य उत्पन्न हुए, जो संसार में अन्यत्र नहीं मिलते।

दूसरा, इटली के इन नगरों की आबादी वर्तमान योरुप की आबादी में अपनी तरह की पहली नस्ल थी।

तीसरा, इटली में सभी प्रकार की जातियाँ या क़बीले गॉथ, फ्रेङ्क, नारमन, जर्मन तथा मुसलमान और उनकी सभ्यतायें रोमन, यूनानी तथा अरबी आदि परस्पर इस तरह से मिश्रित हो चुकी थीं कि इस मिश्रण के ख़मीर में से किसी न किसी बौद्धिक आन्दोलन का उत्पन्न होना आवश्यक था। इसी कारण इटली के विश्व-विद्यालयों में ईश्वर-विद्या के अतिरिक्त वैद्यक तथा क़ानून की भी शिक्षा दी जाती थी।

चौथा, अन्य देशों की अपेक्षा इटली में नई सभ्यता पुरानी सभ्यता से कम पृथक् हुई थी। इटली का प्राचीन रोमनों से अधिक सम्बन्ध था इसलिए वे अपने आपको प्राचीन रोमन-सभ्यता का उत्तराधिकारी समझते थे—स्वभावतः इटलीवासियों में अपने पूर्व पुरुषों की संस्कृति को पुनः जागृत करने की लालसा उत्पन्न हुई।

अन्त में, इटली में प्राचीन रोमन-सभ्यता के न ...

मौजूद थे, प्रत्युत इटली के नगर प्राचीन साम्राज्य के
ा थे। यद्यपि यह सत्य है कि इन पुराने स्मारकों ने इटली
पुनर्जागृति के भाव उत्पन्न किये तथापि यह भी सत्य ही
समझना चाहिए कि इस पुनर्जागृति-भाव ने भी पुराने स्मारकों
नया जीवन डाल दिया। यदि इटली के निवासियों में जीवन
त्पन्न न होता तो ये स्मारक पत्थरों के समान पड़े रहते।
थरों के लिए तो समस्त संसार पाषाणतुल्य होता है।

प्राचीन कलाओं तथा साहित्य के पुनरुज्जीवन मानव-
वाद कहलाता है। इस आन्दोलन का प्रवर्तक पेट्रार्क-

मानवत्ववाद का आन्दोलन और पेट्रार्क

नामक एक इटेलियन था जिसका नाम न केवल इटली के साहित्य तथा सभ्य संसार के साहित्य में, प्रत्युत मनुष्य-बुद्धि के इतिहास में उज्ज्वल सितारे के समान
कता है।

पेट्रार्क वह मनुष्य था जिसने पहले-पहल प्राचीन साहित्य
सुन्दरता को समझा। प्राचीन काल के लेखकों के प्रति
की प्रशंसा ने उसके मन में पूजा का भाव धारण कर लिया
। बड़े परिश्रम के पश्चात् उसने दो सौ हस्तलिखित पुस्तकें
ट्ठी कीं, जिनमें सिसरो के पत्र भी थे। उसने कुस्तुनतुनिया
होमर तथा प्लेटो की रचनायें भी मँगवाईं।

प्राचीन आत्माओं से बातें करने से उसे बड़ा हर्ष हुआ।
वह होमर, सिसरो, सेनिका आदि की आत्माओं के
।, ।ा
ते सम

पत्र लिखता तब उसे विशेष आनन्द प्राप्त होता। प्रे
साहित्य से प्रेम करने का भाव उसने अन्य नवयुवकों में
डाल दिया और उसके अध्ययन को एक नये आन्दोलन का
रूप दे दिया।

पेट्रार्क मध्ययुग के नैयायिकों को घृणा की दृष्टि से
देखता था। उसका कहना था कि ये लोग केवल शब्दों से
खेलते हैं और इस बात को भूल जाते हैं
कि शब्द केवल विचारों को प्रकट करने
के लिए बनाये गये हैं। वह इनके विश्व-
विद्यालयों को 'मूर्खता के घोंसले' कहता था।' उसके शत्रुओं
ने जब उसके विरुद्ध अरिस्टाटल के उद्धरण उपस्थित किये
तब उसने कहा 'संसार में बहुत सी ऐसी वस्तुएँ हैं जिन्हें
अरिस्टाटल नहीं जानता था।' चर्च के दर्शन की नींव
अरिस्टाटल पर थी। इसलिए पेट्रार्क का यह आघात केवल
अरिस्टाटल पर ही न था, वरन् सारे चर्च और उसके दर्शन
पर भी।

१८६ पेट्रार्क तथा
नैयायिक

पेट्रार्क को प्राचीनकाल के स्मारकों से एक विचित्र प्रेम
था। मध्ययुग के लोग इन स्मारकों को पत्थर की खानों से
अधिक न समझते थे। इन खण्डहरों के अन्दर ज्ञान के
भाण्डार पड़े थे किन्तु उन्हें इस बात की कुछ भी परवा न
थी। मध्ययुग में रोम के सम्राटों के कई स्मारक तथा
सङ्गमरमर की मूर्त्तियाँ चूना बनाने के लिए जला

। प्रकार की मुहरें तथा ईंटें प्राप्त हुई हैं, जिन पर बनानेवालों के नाम तथा उपाधियाँ खुदी हुई हैं।

मुद्रण-कला का सबसे पहला चिह्न चीन में पाया जाता है। पहले मुहरों से काम लिया जाता था। उसके बाद मुहरों के साथ दो-एक पङ्क्तियाँ जोड़ दी गई। तत्पश्चात् पङ्क्तियों का स्थान पृष्ठों ने ले लिया। अन्त में पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में ब्लॉकों-द्वारा पुस्तकें छापी जाने लगीं।

जर्मनी में जाह्नजूटनबेर्ग-नामक एक मनुष्य ने (१४००-१४६८) चलनशील अक्षरों, का जो आज-कल 'टाईप' कहलाते हैं, आविष्कार किया। १४५४ में उनसे लेटिन की पहली बाइबिल मुद्रित की गई। १४६२ में जर्मनी का माईन्ट्ज़-नगर लूटा गया, जिससे मुद्रक विभिन्न स्थानों में फैल गये। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त से पहले पहल योरुप में सभी स्थानों में मुद्रणालय जारी होगये और पुस्तकें बड़ी जल्दी से मुद्रित होने लगीं।

अकेले वेनिस-नगर में ही दो सौ से अधिक मुद्रणालय थे। इनमें एल्डीन का मुद्रणालय बड़ा प्रसिद्ध था। इसने यूनानी लेखकों की सभी पुस्तकें छापकर योरुप के विद्वानों के पास भेज दीं। इस प्रकार इसने एक सौ से अधिक पुस्तकें छापीं, जिनका काग़ज़, छपाई तथा सुन्दरता अभी तक अद्वितीय समझी जाती है।

१४५३ में कुस्तुनतुनिया पर तुर्कों का अधिकार हो जाने से इस आन्दोलन की बड़ी उन्नति हुई। आधी शताब्दी पूर्व ही जब तुर्कों ने हमले करने शुरू किये थे तब यूनानी विद्वान् नगर छोड़कर पश्चिम को भागने लगे। ये विद्वान् अपने पुस्तक-संग्रह भी अपने साथ लेते गये। इटली में यूनानी-भाषा से इतना प्रेम था कि उनमें से बहुत से विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में अध्यापक बन गये। अब फिर वही हुआ जो प्रजातन्त्र के समय में पहले एक बार हुआ था। यूनानी मस्तिष्क ने इटली को जीत लिया। यूनान पराजित न हुआ, वरन् देशनिर्वासित होकर इटली में पहुँच गया।

१६४ कुस्तुनतुनियाँ पर तुर्कों का अधिकार

हम देख चुके हैं कि सेलजुक तुर्कों ने पेलिस्टाईन पर स्वत्व प्राप्त करके जब कुस्तुनतुनिया की ओर बढ़ना शुरू किया, तब योरुप की ईसाई-जातियों ने उनसे डट कर मज़हबी युद्ध आरम्भ किये। इन युद्धों से तुर्कों के शासन का अन्त होगया। तुर्कों के पतन के समय मध्यएशिया में मङ्गोलों की शक्ति उत्पन्न हुई इसका प्रवर्तक चङ्गेज़ख़ान (१२०६-१२२७) था। उसने असभ्य क़बीलों की सेना एकत्र करके समस्त एशिया को लूटा, चीन की दीवार को तोड़कर उत्तरी चीन पर अधिकार कर लिया और तुर्किस्तान तथा ईरान पर भी चढ़ाइयाँ करके लूट-मार की।

१६५ कुस्तुनतुनिया के विजेता

चङ्गेज़ख़ान के बेटे चग़ताई ने एशिया में उसके राज्य को बढ़ाया, योरुप पर आक्रमण करके रूस, पोलेण्ड तथा हंग्री को उजाड़ दिया तथा मॉस्को, कीव तथा पेस्थ नगरों को जला दिया। किन्तु १२४१ में उसकी मृत्यु हो जाने से शेष योरुप उसकी मार-काट से बच गया। उसके उत्तराधिकारी किब्लेख़ान (१२४६-१२६४) ने अपने राज्य को और भी बढ़ाया; एशिया तथा रूस पर भी उसने स्वत्व प्राप्त कर लिया। उसकी राजधानी पेकिङ्ग थी। उसके एक सेनानायक ने बग़दाद को विजित किया था। किब्लेख़ान की मृत्यु पर उसका राज्य छिन्न-भिन्न होगया, यद्यपि बाद में तेमूर ने राज्य का पुनःस्थापन किया। रूस में मङ्गोलों का राज्य तीन सौ वर्ष तक रहा। उसने रूस के इतिहास पर अपना स्थायी प्रभाव डाला।

मङ्गोलों के प्रादुर्भाव के कई अच्छे परिणाम हुए। इनके मार्ग से योरुप के माँकों, व्यापारियों तथा यात्रियों का आना-जाना जारी हो गया, जैसे मज़हबी युद्धों के समय में हुआ था। इस मार्ग के द्वारा एशिया के कई आविष्कार तथा विचार योरुप में पहुँच गये, जिनसे पश्चिमी योरुप को बड़ी सहायता मिली। इनके बिना योरुप की सभ्यता कई शताब्दियाँ पीछे पड़ जाती।

१६६ मङ्गोल-प्रादुर्भाव के फल

मङ्गोलों के अतिरिक्त एक और दूसरी बड़ी आक्रमणकारी जाति थी, जिसका नाम उस्मान तुर्क था। इसके एक समूह ने अङ्गोरा

१६७ उस्मान-तुर्क

के निकट एक युद्ध में सुलतान की फ़ौज को सहायता दी थी। राजा ने उसको अपने य बुलाकर भूमि-प्रदान की। उसके राजकुमा उस्मान ने अपने आपको राजा प्रसिद्ध करके एशिया माइनर व जीतना आरम्भ कर दिया। चौदहवीं शताब्दी के अन्त में योरुप टर्की उन लोगों के हाथ में पड़ गई।

उनको अपनी विजय में जेनिज़री-नामक एक सेना से बड़ी सहायता मिली। इस सेना के सैनिक जब किसी युद्ध में ईसाइयों को पकड़ पाते थे तब उनके सुन्दर लड़कों को चुनकर अपनी सेना में सम्मिलित कर लेते थे। जब ईसाई क़ैदी मिलने बन्द होगये तब उन्होंने ईसाई-प्रजा के लड़कों को सेना में भरती करना शुरू कर दिया। आठ वर्ष की आयु से ही इन बालकों को मुसलमान बनाकर सैनिक शिक्षा दी जाती थी। इस सेना ने तीन सौ वर्ष तक उस्मान-राज्य के बनाने में एक बड़ा काम दिया।

चौदहवीं शताब्दी के अन्त में सुलतान बजज़ैद (१३४७-१४०४) ने मध्य तथा पश्चिमी योरुप पर आक्रमण कर

१६८ ईसाई तथा तुर्क

आरम्भ कर दिये। इन्हें रोकने के लिए हङ्गरि पोलेण्ड तथा फ्रांस की सेनायें एकत्र हुई किन्तु बलगारिया में निकोपुलिस के रण पर उन्हें पराजय हुई, जिसमें लगभग एक लाख मनुष्य गये। बजज़ैद ने रोम को जीतने का निश्चय किय

किन्तु फिर उसका ध्यान कुस्तुनतुनिया की तरफ़ फिर गया। ..गर-वासी घबरा गये और योरुप से सहायता के लिए प्रार्थना ..रने लगे। ईसाई-योरुप में तो सहायता देने का सामर्थ्य ही ..। था इसलिए उसकी ओर से कोई उत्तर न मिला। हाँ, पूर्व ..की आकस्मिक इस्लामी सहायता ने कुस्तुनतुनिया को बचा लिया।

१९९ तुर्क तथा मङ्गोल

इस समय तैमूर एशिया-माइनर में बढ़ता चला आ रहा था। बजज़ैद को कुस्तुनतुनिया का घेरा उठाकर उसका सामना करने के लिए जाना पड़ा। अङ्गोरा के रणक्षेत्र में १४०२ में तुर्कों की एक भारी पराजय हुई और बजज़ैद स्वयं गिरफ़्तार होगया। इस आघात से तुर्क पचास वर्ष के लिए शान्त हो गये।

२०० कुस्तुनतुनिया की पराजय (१४५३)

अन्त में १४५३ में मुहम्मद द्वितीय ने कुस्तुनतुनिया पर घेरा डाला। थोड़ी देर में ही नगर ने अधीनता स्वीकार कर ली। सम्राट् कॉनस्टेंटाईन हाथ में तलवार लिये हुए युद्धक्षेत्र में मारा गया। नगर की एक लाख जन-संख्या में से चालीस हज़ार मनुष्य मारे गये और पचास हज़ार दास बना लिये गये। ..ेण्ट सोफ़िया के गिरजे के ऊपर सलीब के स्थान में चन्द्रतारा ..ा झण्डा फहराने लगा।

योरुप के इतिहास में कुस्तुनतुनिया का तुर्कों के हाथ में ..ला जाना एक ऐसी घटना थी, जिससे समस्त योरुप पर मुस-

२०१ हङ्गेरियनें का उस्मानों को रोकना

लमानी आक्रमण की संभावना हो गई। योरुप में बहुत से प्रयत्न किये गये कि सब देश मिलकर तुर्कों का सामना करें। किन्तु मज़हबी युद्धकाल गुज़र चुका था। अब सबके एक होने की कोई सूरत न दीख पड़ती थी। केवल हङ्गरी की सैनिक-आबादी ने तुर्कों की बाढ़ को रोक रक्खा। सोलहवीं शताब्दी के अन्त में तुर्कों की विजय-शक्ति समाप्त भी होगई, इसलिए उनका राज्य कुस्तुनतुनिया से आगे न बढ़ सका।

पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य में कई जर्मन नवयुवक इटली में इस अभिप्राय से आये कि यहाँ यूनानी-भाषा तथा

२०२ योरुप के अन्य देशों में पुनर्जागृति

साहित्य का अध्ययन करें। इन नवयुवकों में से जिनको मानवत्ववाद से शौक़ पैदा हुआ था एक रायचलीन भी था। यह १४८२ में इटली में आया था। यूनानी सीखने के लिए यह एक पाठशाला में गया। गुरु ने अनुवाद के लिए उसे कुछ पङ्क्तियाँ दीं। उसके अनुवाद को देख गुरु आश्चर्यान्वित हो गया।

मध्ययुग के अन्त में इटली फ्रांस तथा स्पेन के हमलों का शिकार बन गया। इन आक्रमणों से प्राचीन कलाओं को बड़ा धक्का लगा। इटली की पाठशालाओं में यूनानी-भाषा का पढ़ना बन्द होगया। किन्तु यह आन्दोलन एल्प्स-पर्वतों

के बाहर जा चुका था और ज्यों-ज्यों इटली में उत्साह कम होता जाता था त्यों-त्यों जर्मनी, फ्रांस तथा इँग्लेण्ड की पाठशालाओं में नई विद्याओं की शिक्षा ज़ोर पकड़ती जाती थी।

इटली तथा अन्य देशों में अन्तर केवल यह था कि इटली में यह आन्दोलन यूनानी और लेटिन भाषाओं तक ही सीमाबद्ध था किन्तु उत्तरी देशों में पुराने ईसाई तथा यहूदी पुस्तकों का अध्ययन भी बढ़ा दिया गया। इसका फल यह हुआ कि उत्तरी देशों में नई विद्याओं के प्रसार के साथ-साथ मज़हबी ग्रन्थों का अध्ययन आरम्भ होने से मज़हबी सुधार का बीज भी पड़ गया।

३—पुनर्जागृति के फल

पुनर्जागृति-आन्दोलन ने बौद्धिक परिवर्तन के साथ साथ इटली की कलाओं में भी परिवर्तन उत्पन्न कर दिया। चर्च के उत्कर्ष-काल में प्राचीन मूर्त्ति-कला का स्थान चित्र-चित्रण ने ले लिया था।

२०३ कला-पुनरुद्धार

किन्तु इस कला में धार्मिक उत्साह तथा विचार काम करते थे। मध्ययुग में सर्वसाधारण के विचार स्वर्ग, नरक, प्रलय, मृत्यु आदि की ओर झुके हुए थे, इसलिए तत्कालीन चित्र-कला में भी उन्हीं के दृश्य मिलते हैं। पुनर्जागृति के पश्चात् पुराने पेगन-साहित्य के अध्ययन ने पेगन-विचारों को ताज़ा कर

दिया। इसलिए इस समय के बाद के चित्रों में मज़हबी दृश्यों के साथ-साथ प्राकृतिक सौन्दर्य के दृश्य भी मिलते हैं।

इटेलियन पुनर्जागृति का एक और भी परिणाम यह हुआ कि इटली में ईसाई-नैतिक आदर्श का स्थान पेगन नैतिक आदर्श ने ग्रहण कर लिया। लोग ईसाइयों के मज़हबी नियमों की हँसी उड़ाने और पेगन-दोषों की प्रशंसा करने लगे। इससे विश्वविद्यालयों में एक प्रकार की नास्तिकता आगई। वास्तव में, यह नास्तिकता पेट्रार्क के समय से चली आ रही थी।

२०४ इटेलियन पुनर्जागृति में पेगन-विचार

इस आन्दोलन ने ईसाई-योरुप के अन्दर वैसी ही नैतिक तथा बौद्धिक-क्रान्ति उत्पन्न कर दी जैसी कि इसके पहले प्राचीन योरुप में ईसाई-मज़हब ने उत्पन्न की थी। इस मज़हब ने जीवन तथा संसार के सम्बन्ध में योरुप में कुछ ऐसे विशेष विचार पैदा कर दिये, जो प्राचीन संस्कृति के सर्वथा विरोधी थे। पुनर्जागृति ने उन विचारों को पीछे हटाकर फिर से प्राचीन संस्कृति को लोगों के सामने उपस्थित कर दिया। प्राचीन सभ्यता के पुनर्जागरण ने मानो लोगों के सामने एक नया संसार ही रख दिया। इससे उनको मनुष्य का वास्तविक रूप दिखाई पड़ने लगा और उन्हें ज्ञात होगया कि यह संसार तथा जीवन रहने योग्य हैं; इस जीवन का आनन्द भी अगले जीवन के आनन्द

२०५ जीवन तथा संसार-सम्बन्धी नये विचार

के समान है। उसे प्राप्त करने के लिए चेष्टा करना मनुष्य का वैसा ही आवश्यक कर्त्तव्य है जैसा अगले जीवन को प्राप्त करना। इस पुनर्जागरण ने योरुप में न केवल जीवन का नया पक्ष उपस्थित किया, वरन् मज़हब, राजनीति, साहित्य, कला, विज्ञान तथा शिल्प के अध्ययन में भी एक नवीन भाव आ गया।

चर्च ने पेगनत्व पर विजय लाभ करके प्राचीन सभ्यता को व्यर्थ कहकर उसे परे फेंक दिया था। यद्यपि ईसाई-मज़हब ने प्राचीन सभ्यता में से अपने लाभ की कुछ बातें ले ली थीं तथापि उसे कुचल डालना प्राचीन इतिहास का अन्त कर देना था। प्राचीन सभ्यता के कोष में वे सभी विचार थे जिनका जन्म प्राचीन काल की मनुष्य-बुद्धि में हुआ था। उनका दुबारा प्राप्त करना संसार की सभ्यता की उन्नति के लिए अत्यावश्यक था। पुनर्जागृति इस खोई हुई सम्पत्ति को फिर मनुष्य के पास ले आई। सारांश, इसने उस भेद को, जो ईसाई-मज़हब ने प्राचीन तथा नवीन संसार के बीच में डाल दिया था, हटाकर प्राचीन इतिहास को वर्तमान इतिहास से जोड़ दिया।

२०६ ऐतिहासिक एकता का प्रतिपादन

इस आन्दोलन के द्वारा न केवल योरुप के विश्वविद्यालयों तथा विद्यालयों में यूनानी तथा लेटिन भाषाओं का पढ़ाना

२०७ विभिन्न देशीय भाषाओं के साहित्यों की उन्नति

आवश्यक होगया, प्रत्युत प्राचीन साहित्य के प्रसार से, प्रत्येक देश में वह सामग्री प्रस्तुत होगई जिसके द्वारा विभिन्न जातियाँ अपनी-अपनी भाषा का साहित्य तैयार करने में समर्थ हुईं। प्राचीन साहित्य ने इन देशीय भाषाओं को उच्च विचारों से भर दिया, इन्हें शुद्ध करके सुन्दर बना दिया। प्रत्येक भाषा में बाइबिल का अनुवाद होगया। बाइबिल का अध्ययन नये अनुसन्धान-भाव के साथ आरम्भ हुआ।

तीसरा भाग—वर्तमान युग

तीसरा भाग—वर्तमान युग

भूमिका

योरुप के इतिहास के तीसरे भाग का आरम्भ सोलहवीं शताब्दी से आरम्भ होता है। इस समय योरुप के विभिन्न देशों में विभिन्न जातियों ने अपना-अपना अस्तित्व स्थिर कर लिया था। इसके पश्चात् योरुप में जो विचार-तरङ्ग बही है वह इन जातियों पर कई विधियों से अपना प्रभाव डालती दिखाई देती है। इनमें से कई ऐसी घटनायें हैं जिनका प्रभाव समस्त योरुप पर एक सा ही पड़ा है।

नई और पुरानी दुनिया

जिस समय योरुप मध्ययुग के अन्धकार से निकल कर वर्तमान युग के प्रकाश में आता है उस समय एक बड़ी घटना, जो योरुप की आँखें खोलने में मद्द देती है, नये और पुराने जगत् का आविष्कार है। यह आविष्कार कई बड़े साहसी तथा वीर पुरुषों के अन्वेषण तथा साहस का फल था और इसका प्रभाव योरुपीय जातियों के इतिहास पर बहुत ही गहरा पड़ा है। इसका एक फल तो यह था कि योरुपीय जातियों का व्यापार पुरानी तथा नई दुनिया में बढ़ने और फैलने लगा, और साथ ही साथ उनको विदेशों में अपने उपनिवेश बनाने का शौक़ भी उत्पन्न हो गया।

व्यापार का सर्व-प्रथम केन्द्र स्पेन हुआ। उस समय स्पेन योरुप में सबसे अधिक धनी देश समझा जाता था। स्पेन के बाद हॉलेण्ड, इँग्लेण्ड तथा फ्रांस ने व्यापार-क्षेत्र में परस्पर स्पर्द्धा करना प्रारम्भ कर दिया। आरम्भ में हॉलेण्ड सबसे बाज़ी ले गया और उसके शहर योरुप में बड़े धनी गिने जाने लगे। शनैः शनैः यह व्यापार इँग्लेण्ड तथा फ्रांस के हाथों में चला गया और व्यापार तथा उपनिवेशों के लिए दोनों देशों में परस्पर घोर संघर्ष आरम्भ हुआ। इस संघर्ष में इँग्लेण्ड का पलड़ा भारी रहा और वही संसार के विभिन्न भागों में अपने उप निवेश बनाने तथा व्यापार बढ़ाने में सफल हुआ। इसके अनन्तर योरुप में जर्मनी का उत्कर्ष आरम्भ हुआ। इँग्लेण्ड के उदाहरण को देख कर जर्मनी को अपना साम्राज्य बनाने की प्रबल इच्छा हुई, जिसका परिणाम वर्तमान युग में योरुपीय महासमर कहा जा सकता है।

संसार के इतिहास में कहीं कोई घटना एकाएक नहीं होती, बल्कि सारी घटनाओं का सिलसिला एक ऐतिहासिक तरङ्ग के रूप में बहता हुआ चलता है। किसी समय पर यह तरङ्ग इतनी मध्यम पड़ जाती है कि ऊपर से देखनेवालों को यह चलती हुई नहीं दिखाई देती, परन्तु वास्तव में कहीं न कहीं समाज के अन्तस्तल में रहती अवश्य है।

संसार को ऊँचा करने में स्पेन का भाग

पुरानी दुनिया के आविष्कार का अर्थ यह नहीं है कि

योरुप की जातियों को पहले उसका ज्ञान ही न था। पुरानी दुनिया के साथ योरुप का व्यापार प्राचीन काल में भी स्थल-मार्ग द्वारा इटली के नगरों में होकर हुआ करता था। इस नये आविष्कार का अर्थ यह है कि योरुपवासियों को पुरानी दुनिया में जाने का एक जल-मार्ग ज्ञात हुआ। इसी जल-मार्ग की खोज में अमरीका के दो महाद्वीपों का ज्ञान भी उन्हें हुआ। इन्हें वे नई दुनिया कहने लगे।

इन समुद्री अन्वेषणों में स्पेन तथा पुर्तगाल के निवासियों ने अधिक भाग लिया। कोलम्बस और वासकोडेगामा इन्हीं देशों की ओर से खोज के लिए रवाना हुए थे। मजेलन, जिसने पृथ्वी की प्रदक्षिणा की थी (१५१९-१५२२), स्पेन के राजा चार्लेस पाँचवें की ओर से भेजा गया था। वह मलक्का-द्वीप, जहाँ गरम मसालों की पैदावार होती है, को ढूँढ़ते ढूँढ़ते शान्त महासागर से गुज़रता हुआ फ़िलपाईन द्वीपों में जा पहुँचा। वहाँ पर वह तो एक युद्ध में मारा गया किन्तु उसकी सेवा मनुष्य-जाति के लिए एक बहुमूल्य और अद्भुत धन के समान रह गई। इससे बढ़कर सेवा तभी हो सकती है जब कोई मनुष्य पृथ्वी से किसी अन्य सितारे में पहुँचे।

स्पेन में इन खोजों का इतना जोश बढ़ा कि जब हम इस समस्या को हल करने के प्रयत्न में इसकी तह में जाते हैं तब हमें ऐतिहासिक क्रम के एक होने का प्रमाण मिलता है।

हम देख चुके हैं कि किस प्रकार मुसलमान आक्रमणकारियों ने उत्तरीय अफ़रीका से निकल कर स्पेन-देश में अपना राज्य जमाया था। सात सौ बरस तक स्पेन में मुसलमानी चक्र चलता रहा। स्पेनवासी चिर-काल तक अपने आपको स्वतन्त्र करने में लगे रहे। जब वे इसमें सफल होगये तब एक तो इस सफलता से जाति के अन्दर एक नया जीवन आ गया और दूसरे, मुसलमानों से उन्हें इतनी घृणा हो गई कि उन्होंने यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि जहाँ-कहीं मुसलमान जायँगे वे उन्हें नष्ट करने के लिए उनका पीछा करेंगे।

इससे पूर्व योरुपवासी समुद्र-यात्रा से बड़े डरते थे। तात्कालिक विद्वान् यह समझते थे कि समुद्रों के आगे जिन तथा भूतों का देश है, और वहीं पर नरक के द्वार हैं। राह में जलती हुई अग्नि है, जिनसे गुज़रना मनुष्य के लिए अति कठिन है। किन्तु नये जोश ने इन सारे मिथ्या विश्वासों को दबा दिया और अनेक स्पेनवासी मुसलमानों का पीछा करते हुए खोज के उत्साह तथा काफ़रों में ईसाई-मज़हब फैलाने के विचार से समुद्र में निकल पड़े।

इन लोगों की सहायता करनेवाला पुर्तगाल का शासक हेनरी (१३९४-१४६०) था, जिसे नाविक की उपाधि दी गई थी। पुर्तगाल के नाविक पश्चिमी अफ़रीका के बराबर चलते हुए १४४२ में गिनी की खाड़ी में जा पहुँचे। वहाँ पर उन्होंने काले हबशियों का व्यापार शुरू किया। इस समय से दासों

नये व्यापार का आरम्भ होता है। १४८६ में बारथा लोमेडाइस अफ़्रीका के दक्षिणी तट पर जा पहुँचा जिसे है आशा-अन्तरीप का नाम दिया गया। किन्तु वहाँ उसे ज्ञात गया हुआ कि अफ़रीका महाद्वीप बहुत ही बड़ा है और इस मार्ग से भारतवर्ष में पहुँचना कठिन है।

जनेवा के एक निवासी कोलम्बस ने इस बात पर विश्वास करके कि पृथ्वी गेंद के समान गोल है, अन्य समुद्री मार्गों से भारतवर्ष जाने का निश्चय किया। आरम्भ में कोई भी उसकी बात सुनने के लिए तैयार न हुआ। किन्तु अन्त में रानी इसबेला ने तीन छोटे-छोटे जहाज़ उसके सुपुर्द किये और वह यात्रा के कष्टों को सहन करता हुआ पश्चिमी हिन्द के द्वीप-समूह में जा पहुँचा। इधर कोलम्बस भारतवर्ष के बजाय एक नये महाद्वीप को दर्याफ़्त कर रहा था, उधर वासकोडे-गामा-नामक एक पुर्तगीज़ आशा-अन्तरीप से पूर्वी तट होता हुआ मोजम्बिक जा पहुँचा। यहाँ पर भारतवासी आया-जाया रते थे। एक भारत नाविक १४६८ में वासकोडेगामा को लाबार-तट पर ले आया।

इन आविष्कारों से योरुपवासियों के विचार बड़े उदार हो , जिससे उनके मस्तिष्क सामाजिक तथा मज़हबी क्रान्ति लिए तैयार होने लगे।

हम समझते हैं कि यद्यपि चीन का प्राचीन साम्राज्य प्रकार से संसार की ऐतिहासिक चाल से पृथक् रहा है

तथापि चीनियों की उन्नति का इतिहास पर गहरा प्रभाव पड़ा है। हम देख चुके हैं कि रेशम का व्यवसाय सबसे पहले चीन में होता था, जैसे रुई और चीनी बनाने का व्यवसाय भारतवर्ष में होता था। सबसे पहले पुर्तगीज़ों ने भारतवर्ष से गन्ना ले जाकर अमरीका में लगाया था। इसी प्रकार कुछ ईसाई साधु रेशम के कीड़ों के अण्डों को कुछ खोखले बेतों में चुराकर चीन से योरुप लाये थे और तब योरुप में रेशम के व्यवसाय का आरम्भ हुआ था।

चीन का भाग

इसी समय में ईसाई-पादरी चीन से तीन और बड़ी चीज़ें योरुप लाये। इनमें से एक समुद्री दिग्दर्शक था। इस छोटे से यन्त्र में शलाका का सिरा सदा उत्तर की ओर रहता था। इसके द्वारा समुद्र में नाविकों को दिशाओं का ज्ञान होने लगा। दूसरा बड़ा आविष्कार, जिसका आविष्कर्त्ता भी चीन ही समझा जाता है, था बारूद। बारूद के रिवाज से पहले योरुप में युद्ध करनेवाली एक विशेष श्रेणी थी। छुटपन से ही भालों आदि का प्रयोग करना वे लोग अपना कर्त्तव्य समझते थे। इसी श्रेणी की बदौलत योरुप में जागीरदारी और शौर्य ('फ्युडलिज़्म' तथा 'शिवलरी') का प्रभुत्व रहा था। बारूद के प्रयोग ने युद्ध के साधनों में क्रान्ति कर दी। बन्दूक़ हाथ में लिये हुए एक निर्बल मनुष्य बड़े से बड़े वीर पुरुष का सामना कर सकता था। अब पुराने ज़माने के सरदारों और 'नाईटों' की आवश्यकता

न रह गई। उनके स्थान में मध्य श्रेणी के लोगों का ज़ोर बढ़ने लगा। सरदारों की शक्ति घट जाने से राजा बड़े शक्तिशाली होगये। इसी काल में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का भी बीज बोया गया, जिसका सुफल वर्तमान-कालीन स्वतन्त्रता का इतिहास है।

तीसरा आविष्कार मुद्रण-कला है। मुद्रण या छापा के सुफल का हम तब अनुभव कर सकते हैं जब हम अपने आपको इस आविष्कार से पहले के समय में रखकर देखें। तब प्रत्येक मनुष्य को विद्या-प्राप्ति के लिए स्वयं पुस्तकों की नक़ल करना पड़ती थी। क्योंकि पुस्तकें बहुत थोड़ी संख्या में होती थीं और लिपिकार भी बहुत कम होते थे। छापखानों ने पुस्तकों की संख्या को यहाँ तक बढ़ा दिया है कि साधारण से साधारण मनुष्य के लिए पुस्तकें प्राप्त करना एक मामूली बात होगई है। इस छापाख़ानाओं की बदौलत ही पुनर्जागरण आन्दोलन हुआ। इन्हीं के कारण मज़हबी सुधार और राजनैतिक क्रान्ति हुई और वर्तमान-काल में तो मुद्रण-कला की उन्नति तथा प्रसार ने लोगों को उदार बना दिया है। इसने उनकी आँखें खोल दी हैं।

जब स्पेन में मुसलमानी शासन का अन्त हुआ तब तुर्कों ने योरुप के एक अन्य कोने में कुस्तुनतुनियाँ पर अपना अधिकार जमाया। जहाँ एक घटना ने स्पेन-वासियों के अन्दर जोश तथा घमण्ड उत्पन्न किया, वहाँ एक दूसरी घटना ने

वर्तमान इतिहास के चित्र का ढाँचा

योरुप में पुनर्जागरण या रेनेसाँस के आन्दोलन का आरम्भ कर दिया। यूनानी विद्वान् तथा दार्शनिक अपनी-अपनी पुस्तकें लेकर कुस्तुनतुनिया से योरुप को भागे और वहाँ पर उन्होंने विभिन्न विद्याओं का प्रचार करना आरम्भ किया। इस आन्दोलन से जो मज़हबी हलचल हुई, उसीका फल लूथर का सुधार कहा जा सकता है। मज़हबी सुधार योरुपीय देशों में फैलने लगा और इससे डेढ़ सौ बरस तक मज़हबी युद्ध होते रहे। सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ से लेकर सत्रहवीं शताब्दी के मध्य—१६४८ की वेस्टफेलिया की सन्धि—तक योरुपीय देशों में मज़हबी झगड़ों का दौर-दौरा रहा।

मज़हबी सुधार तथा झगड़ों का दूसरा पक्ष राजनैतिक था। उदाहरणार्थ, यद्यपि स्पेन के विरुद्ध हालैण्ड के युद्ध का कारण मज़हबी अत्याचार था परन्तु सर्वसाधारण लोगों के अन्दर मज़हबी स्वतन्त्रता के साथ-साथ राजनैतिक स्वतन्त्रता का भाव भी ज़ोर से काम करता था। इसी प्रकार जो युद्ध इँग्लैण्ड के प्युरिटन लोगों ने अपने राजा के विरुद्ध किये थे उनके अन्तस्तल में भी मज़हबी तथा राजनैतिक दोनों प्रकार की स्वतन्त्रता के भाव थे। तदनन्तर योरुपीय देशों में जो आन्दोलन या लड़ाई-झगड़े हुए वे राजनैतिक स्वतन्त्रता के भाव पर आश्रित थे।

इस राजनैतिक स्वतन्त्रता के इतिहास का काल स्पेन की स्वतन्त्रता से आरम्भ होता है। यह तरङ्ग स्पेन से

हॉलेण्ड, हॉलेण्ड से इँग्लेण्ड, इँग्लेण्ड से अमरीका तथा फ्रांस, और वहाँ से योरुप के अन्य देशों में फैली है। इस तरङ्ग का इतिहास ही वर्तमान काल के योरुप का इतिहास है। इस-लिए अब दो एक शताब्दियाँ पीछे हटकर यह स्पेन के इतिहास से आरम्भ किया जाता है। घटनाओं के क्रम का पहले या पीछे होने का विचार न करके स्पेन के पश्चात् योरुप के अन्य देशों का पृथक् पृथक् वर्णन दिया गया है।

१—मज़हबी सुधार-काल

पहला अध्याय

मज़हबी सुधार का आरम्भ

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त से योरुप में वर्तमान युग का आरम्भ होता है। इसी समय लोगों के पुराने विचारों में परिवर्तन होना आरम्भ हुआ था। उन्होंने नये-नये देशों को मालूम करना शुरू किया। उनके हृदय से पुराने रीति-रिवाज का परदा उठने लगा। लोगों में मज़हब के लिए पहले की तरह अन्धविश्वास नहीं रहा था। इससे पहले लोग मज़हबी सिद्धान्तों एवं रस्म व रिवाजों के बड़े पाबन्द थे। उनके अन्दर पोप के प्रति बड़ा आदर-भाव था, पादरियों के दोषों को देखते हुए भी वे उन पर विश्वास रखते थे।

१ विषय-प्रवेश

ईसाई-मज़हब के अनुसार पादरियों को जीवन पर्य्यन्त अविवाहित रहना पड़ता था। उनके मठों में कुछ स्त्रियाँ भी रहा करती थीं। उन्हें भी आयु भर कुँआरी रहना पड़ता था। दोनों का व्यक्तिगत जीवन गिर जाने से ये बदनाम होने लगे थे। उनमें वैसे भी कोई मज़हबी योग्यता या आचार-शुद्धता न थी। इसके साथ ही उन्होंने मज़हब की आड़ में धन कमाना

और सब तरह की बुराइयाँ करना शुरू कर दिया। लोगों में परिवर्तन होते ही उन्होंने एक मज़हबी आन्दोलन शुरू किया।

यह आन्दोलन चर्च के दोषों को दूर करने और उसमें सुधार करने के लिए उठाया गया था, इसलिए इसे 'मज़हबी सुधार' का आन्दोलन कह सकते हैं। इस आन्दोलन के कई कारण थे। पहला, पादरी-मण्डल में दोष आ जाने से सज्जनों में उनके दूर करने का विचार उत्पन्न हुआ। दूसरा, सर्वसाधारण में विद्या-लाभ का उत्साह बहुत बढ़ गया था, अतएव उनमें औदार्य, विचार-स्वातन्त्र्य तथा मज़हबी मिलों पर आलोचना करने का स्वभाव आदि बातें आ गई थीं। तीसरा, इससे पहले के लोगों के अन्दर जातीयता का भाव न था, अब उनमें अपने देश के प्रति प्रेम तथा भक्ति और जातीयता का भाव उत्पन्न होना शुरू हो गया। इससे सभी देश मज़हबी तथा राजनैतिक दृष्टि से पोप के अधीन होते थे किन्तु अब वे कम से कम अपनी राजनैतिक पराधीनता से मुक्त होना चाहते थे। इसलिए उनमें पोप विरोध का भाव उत्पन्न हुआ।

२ मज़हबी सुधार के कारण

सर्वसाधारण में ये विचार एक-दम से नहीं उत्पन्न हुए। विचारों की उत्पत्ति के लिए क्षेत्र बहुत समय से

तैयार हो रहा था। तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दियों में भी उस समय के मज़हबी दोषों के विरुद्ध बहुत से मनुष्यों ने आवाजें उठाई थीं। इँग्लेण्ड में विक्लिफ़ ने चौदहवीं शताब्दी में यह काम अपने ज़िम्मे लिया था। किन्तु उसे सफलता न प्राप्त हुई। बोहेमिया में पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में जाह्न हस्स नामक एक अध्यापक ने मज़हबी दोषों को दूर करना चाहा। किन्तु वह फाँसी पर लटकाया गया और उसके मतावलम्बी बहुत से अत्याचारों के द्वारा कुचल दिये गये।

३ मज़हबी सुधार के पूर्व चिह्न

इस समय एक दूसरा आन्दोलन भी योरुप में चल रहा था। प्रायः सभी योरुपी देशों में ऐसे विद्वान् मौजूद थे जो रोमनकेथालिक सम्प्रदाय को ठीक न समझते थे। वे मानवत्ववादी कहलाते हैं। उनका उद्देश मज़हबी सुधार नहीं था, वरन् विद्याप्राप्ति और मनुष्य-सेवा था।

४ मानवत्ववादी

इँग्लेण्ड में मानवत्ववादी आन्दोलन का केन्द्र आक्स था। नेताओं में से तीन—कॉलेट, इरेज़मस तथा मोर—प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने पुस्तकें भी लिखी थीं। ये लोग मज़हब सुधार तो करना चाहते थे किन्तु रीतियों को नहीं तो चाहते थे। जर्मनी में 'साधारण जीवन-प्रेमी'—नामक सभा ने पाठशालायें आदि स्थापित करके सर्वसाधारण

शिक्षा का प्रसार किया। इस प्रकार लोगों में शिक्षा फैल जाने से उनके विचारों में परिवर्तन होने लगे।

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में मॉर्टन लूथर नामक एक मनुष्य उत्पन्न हुआ, जिसके भाग्य में मज़हब का सुधार करना लिखा था। उसका जन्म १४८३ में जर्मनी के एक गाँव में एक निर्धन मनुष्य के घर में हुआ था। अपने बुद्धि-बल तथा परिश्रम-द्वारा वह एक विद्वान् बन गया। तत्पश्चात् पादरी बन कर उसने चर्च की सेवा करना शुरू की।

लूथर

आरम्भ में वह पोप का बड़ा आदर करता और ... के रस्म-व-रिवाज का बड़ा पाबन्द था। १५११ में वह ... की यात्रा करने गया। उसका ख़याल था कि रोमवासी ... मज़हबी और पवित्र जीवन व्यतीत करनेवाले होंगे। वहाँ ... जब उसने लोगों में दोष देखे तब उसके हृदय पर आघात हुआ। किन्तु पोप का आदर फिर भी वह रहा। अभी तक वह अपने मज़हब पर दृढ़ था। किन्तु ... वर्षों के पश्चात् एक ऐसी घटना हुई, जिससे लूथर पोप विरोधी बन गया।

उस समय एक रिवाज यह था कि मनुष्य के पापों के लिए क्षमा-पत्र दिया करते थे। सर्वसाधारण का यह ख़याल था कि अपने या अपने मृत-आत्मीयों तथा मित्रों के पापों को किसी पादरी के सामने

-पत्र

स्वीकार कर लेने और क्षमा-दान के साथ पोप को कुछ रुपया देकर सर्टीफ़िकेट प्राप्त कर लेने से मनुष्य मुक्त हो जाता है। ये क्षमा-पत्र कई अवसरों पर प्रदान किये जाते थे। उदाहरण के लिए, जब मुसलमानों के साथ ईसाइयों के युद्ध हुए, तब उन ईसाइयों को, जो अपने मज़हब को मुसलमानों से बचाने के लिए रण-क्षेत्र में युद्ध करते थे, क्षमा-पत्र दिये जाते थे। यदि किसी समय गिरजा आदि बनाने के लिए धन की आवश्यकता पड़ती तो वह धन उनके द्वारा ले लिया जाता था।

सन् १३०० में पोप बॉनिफ़ेस सातवें ने यह घोषित किया कि हर शताब्दी में रोम में एक मेला होगा। उस समय जो मनुष्य सच्चे दिल से रोम की यात्रा करेगा उसे यह क्षमा-पत्र मुफ़्त प्रदान किया जायगा। कुछ समय के पश्चात् इन मेलों के बीच का समय पच्चीस वर्ष कर दिया गया। क्योंकि इन मेलों में लाखों लोग रोम में एकत्र होते थे, इसलिए पोप की शक्ति तथा मान बढ़ता था।

सन् १५१३ में पोप ल्यू दसवें ने जब अपने कोष को ख़ाली पाया तब इन्हीं साधनों-द्वारा उसने उसमें धन बटोरने का निश्चय किया। उसने इन क्षमा-पत्रों को बाँटने के लिए विभिन्न देशों में कई मनुष्य नियुक्त किये। जर्मनी में इस काम के लिए एक टेट्ज़ेलनामक मनुष्य था जो बड़े भद्दे उपायों से लोगों से धन एकत्र करता था।

७ टेट्ज़ेल

लूथर यह बात सहन न कर सका कि ऐसी बुरी तरह से मज़हब का उपयोग किया जाय। उसने टेट्ज़ेल के कारनामों को रोकने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु सफल न हुआ। अन्त में तङ्ग आकर उसने टेट्ज़ेल के विरुद्ध एक पत्र लिखा और उसे गिरजे के द्वार पर चिपका दिया। तात्कालिक रीति-अनुसार उसका यह अर्थ था कि लिखनेवाला उन बातों को सिद्ध करने के लिए तैयार है। लूथर उस समय पापों को क्षमा कर देने के सिद्धान्त को ग़लत नहीं समझता था, वह केवल उसका सुधार करना चाहता था।

लूथर की बराबरी पर टेट्ज़ेल ने भी अपना एक विज्ञापन लगाया। सर्वसाधारण में यह वाद-विवाद यहाँ तक बढ़ा कि पोप को भी इस झगड़े में आना पड़ा। उसने लूथर को क्षमा माँगने के लिए कहा किन्तु वह अपनी बात पर अड़ा रहा। तब पोप ने उसे मज़हब से बहिष्कृत करने की घोषणा की। लूथर ने सबके सामने घोषणा-पत्र को जला दिया, जिसका अर्थ यह था कि उसने पोप का खुल्लमखुल्ला विरोध किया है।

तत्पश्चात् लूथर ने जर्मनी के राज्यों के नाम एक सन्देश प्रकाशित किया, जिसे 'मज़हबी सुधार का घोषणा-पत्र' कह सकते हैं। इस पत्र में लूथर ने लोगों को पादरियों को अपनी प्रथम वर्ष की आय देने से रोका था, इस बात पर भी ज़ोर

दिया था कि चर्च पादरियों को विवाह करने की आज्ञा दें और यह कि पोप को किसी शासन पर कोई अधिकार नहीं है।

लूथर की इस घोषणा से जर्मनी में शोर मच गया। लोगों में जोश फैल गया, बहुत से लूथर के अनुयायी बन गये। पोप ने चार्लेस पाँचवें को आदेश दिया कि वह लूथर को रोके। चार्लेस ने लूथर को वर्म्ज़ में सभा के सामने उपस्थित होने के लिए बुलवा भेजा और प्राण-दान का वचन दिया। जब लूथर राजा के यहाँ जा रहा था तब राह में किसी ने उससे कहा कि वर्म्ज़ में तुम्हारे प्राण सुरक्षित न रहें। लूथर ने उत्तर दिया, यदि वहाँ इतने शैतान हों जितनी यहाँ के घरों की ईंटें हैं तब भी मैं वहाँ जाऊँगा।

वार्म्ज़ में सभा
(१५२१)

सभा के सामने पेश होने पर सभापति चार्लेस ने उससे क्षमा माँगने के लिए कहा। किन्तु लूथर ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। किन्तु राज्य-प्रतिज्ञा के कारण उसके प्राण बच गये और वह अपने एक मित्र के साथ रहने लगा। यहाँ उसने जर्मन-भाषा में पुस्तकें लिखना आरम्भ किया और इसी भाषा में बाइबिल का अनुवाद किया। लूथर इस पक्ष में था कि गिरजों तथा मठों की सारी सम्पत्ति राजाओं के हाथ में होनी चाहिए। इसीलिए जर्मनी के तथा अन्य बहुत से राजा उसके पक्ष में हो गये। जर्मनी, स्वीडन तथा इँग्लेण्ड में गिरजों की बहुत सी सम्पत्ति ज़ब्त हो गई।

पुराने विचार के लोगों में—कैथॉलिकों में—इन बातों से खलबली मच गई। १५२९ में उन्होंने परस्पर मिलकर यह निर्णय किया कि लूथर-मत के राजाओं तथा नगरों से अपने मज़हब के चुनने का अधिकार छीन लिया जाय और मज़हब-सम्बन्धी कुछ विशेष बातें कहीं भी लोगों को न बतलाई जायँ। जर्मनी के छः राजाओं और बहुत से नगरों ने इसका विरोध (प्रॉटेस्ट) किया। इसी कारण उनका नाम 'प्रॉटेस्टेण्ट' ('विरोधी') हो गया।

९ प्रॉटेस्टेन्ट; लूथरन् सम्प्रदाय

अगले वर्ष लूथर के अनुयायियों ने आग्सबर्ग की सभा के सामने अपने मज़हबी सिद्धान्त रक्खे। इनका रचयिता लूथर का उत्तराधिकारी मिलङ्कथन था। इन सिद्धान्तों-द्वारा ही लूथरन-सम्प्रदाय की नींव रक्खी गई।

सन् १५४६ में लूथर की मृत्यु हुई। निस्सन्देह लूथर सोलहवीं शताब्दी का सर्वश्रेष्ठ महापुरुष था। उसका माहात्म्य विद्वत्ता में और न किसी मज़हबी गुण में; प्रत्युत उसकी उत्कट लग्न और अदम्य उत्साह में था। उसका स्वभाव बड़ा सख़्त था; उसमें कई दोष भी थे। अपने सम्बन्ध में वह स्वयं कहता था, "मैं कई शैतानों के साथ युद्ध करने आया हूँ। मज़हबी जङ्गल में राह बनाने के लिए काँटों और झाड़ियों को साफ़ करना मेरा काम है।"

१० लूथर की मृत्यु; उसका चरित्र

लूथर के बाद उसका मित्र तथा सहायक मिलङ्कथन चर्च व नेता बना। वह सदा लूथर के स्वभाव की उग्रता और जल्दबा की भर्त्सना किया करता था। वह इस बात के लिए प्र करता रहा कि किसी प्रकार चर्च के साथ समझौता हो जाय। यद्यपि दोनों सम्प्रदायों में परस्पर झगड़े होते रहे तथापि यह स्मरण रखना चाहिए कि लूथरन-चर्च या सम्प्रदाय तथा रोमन-कैथॉलिक-चर्च या सम्प्रदाय में अधिक अन्तर न था।

लूथरन-सम्प्रदाय उत्तरी जर्मनी, डेनमार्क, नॉरवे तथा स्वीडन में फैला। ज्विंग्लियन-सम्प्रदाय का ज़ोर स्विट्ज़र्लेण्ड तथा दक्षिणी जर्मनी में था। इरेस्मस का शिष्य ज्विंग्ली (१४८४–१५३१) लेटिन तथा यूनानी भाषाओं का विद्वान् था। लूथरन और ज्विंग्लियन सम्प्रदायों में चर्च-सङ्गठन तथा 'भगवान् का रात्रिभोज' ('लार्ड्स सप्पर') के विषयों पर मतभेद था। ज्विंग्ली का मत था कि बहुमत-पक्ष को अधिकार है कि वह दूसरे पक्ष को बलात् अपने साथ कर ले। १५३१ में वह रोमन-कैथॉलिक लोगों के साथ युद्ध करता हुआ मारा गया।

११ प्रॉटेस्टेण्ट सम्प्रदाय

तीसरा सम्प्रदाय केल्विनिस्ट था। इसका प्रवर्तक जाह्न केल्विन (१५०९-१५६४) जन्म से फ्रांसीसी था। मज़हबी अत्याचार के कारण फ्रांस से भागकर उसने जनेवा का आश्रय

लिया और इस नगर को केन्द्र बनाकर अपने विचारों का प्रचार आरम्भ किया। यह नगर उसके अधीन एक छोटा सा राज्य बन गया। उसके विचार हॉलेण्ड, फ्रांस, इँग्लेण्ड तथा स्कॉटलेण्ड के निवासियों में अधिक फैले। पीछे वे 'न्यू इँग्लेण्ड' (अमरीका) में भी जा पहुँचे। उसके मज़हबी सिद्धान्तों में से भाग्य का सिद्धान्त बड़ा प्रसिद्ध है। उसके विचारों के प्रभाव का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि फ्रांसीसी हुजिनॉट, स्कॉटलेण्ड के कॅवेनेन्टर, डेनमार्क के नीदरलेण्डर, इँग्लेण्ड प्युरिटन तथा पिल्ग्रिम फ़ादर्स सभी केल्विन के अनुयायी थे।

इन सम्प्रदायों के पारस्परिक मतभेदों तथा झगड़ों ने मज़हबी सुधार के आन्दोलन के मार्ग में बड़ा बाधा डाली। रोमन-कैथॉलिक प्रॉटेस्टेण्टों के विरुद्ध यह युक्ति देते थे कि यदि प्रत्येक मनुष्य को अपना मत देने की स्वतन्त्रता दी जाय तो उससे मज़हबी एकता तथा सङ्गठन कभी स्थिर नहीं रह सकता। इसलिए यह आवश्यक है कि मज़हबी समुद्र में जहाज़ के चलानेवाले नायक पर ही अन्ध-विश्वास रक्खा जाय। बहुत से लोग जो नये आन्दोलन की ओर झुक गये थे, इन झगड़ों से घबरा कर फिर पुराने चर्च में वापस आगये।

इस प्रकार मज़हबी सुधार का आन्दोलन, जो तूफ़ान के समान योरुप के सब देशों में फैलता दिखाई देता था,

एकाएक रुक गया। पुराना चर्च, जो अब बहुत चौकन्ना हो गया था, दल-बल-सहित विरोध के लिए तैयार हो गया और शत्रु का दलन करने के लिए उसने कई हथियारों का प्रयोग किया।

हमने देखा है कि चर्च में बहुत से दोष आगये थे जिनके कारण सर्वसाधारण में उसका मान कम होगया था। इस-लिए केथॉलिक चर्च ने सर्वप्रथम इस बात का प्रयत्न किया कि अपने में से वे दोष दूर कर दिये जायँ।

१२ केथालिक चर्च में प्रतिकूल सुधार, ट्रेण्ड-सभा (१५४५-१५६३)

इतने में ही स्पेन तथा फ्रांस के पारस्परिक युद्धों के कारण १५२७ में रोम में सेनाओं ने वह लूटमार मचाई कि रोमवासियों को पुरानी पेगन लूटों का स्मरण होने लगा। लोगों के मुख से स्वभावतः यह आवाज़ निकली कि रोम को अपनी आचार-भ्रष्टता के लिए यह दण्ड मिला है।

प्रत्येक सच्चा रोमन-केथॉलिक अपने चर्च को शुद्ध तथा पवित्र बनाने का प्रयत्न करने लगा। १५४५ में ट्रेण्ट में एक सभा बैठी, जिसने सभी दोषों को दूर करने का निश्चय किया और सभी सिद्धान्तों को ऐसी अच्छी तरह से समझाया कि उनके सम्बन्ध में किसी से भूल हो नहीं हो सकती थी। उसने चर्च की परम्परागत कथाओं को बाइबिल के ही समान पवित्र ठहराया।

इन बातों से चर्च में ऐसे विशप निकले, जिन्होंने पादरियों को सुधारना, पुराने गिरजों को नये सिरे से बनाना और उनमें मज़हबी जीवन डालना अपना उद्देश बना लिया। अकेले मिलन के आर्चविशप कार्लो बॉरोमियो की पवित्रता ने इटली में प्रॉटेस्टेण्ट लहर को रोक दिया।

दूसरी बड़ी शक्ति जिसने पुराने चर्च को बचाने में सहायता की, वह जेज़्विट-समिति थी। जो 'जीसस' (ईसा) के नाम पर बनाई गई थी। इसका प्रवर्तक इग्नेटियस आव् लॉंयला-नामक (१४९१-१५५६) एक स्पेनवासी था।

१३ जेज़्विट समिति; इग्नेटियस ज़ेवियर

इग्नेटियस मानो मज़हबी आवेश की मूर्त्ति था। पहले वह एक मामूली सैनिक था। युद्ध में लड़ते समय टाँग टूट जाने पर वह पादरी बन गया और उसने सैनिक नमूने पर एक समिति बनाई। सैनिक के समान समिति के प्रत्येक सदस्य को अपनी इच्छा अपने नायक के अधीन कर देना होती थी। आत्म-त्याग और आज्ञापालन इसके दो मुख्य गुण थे। समिति में प्रविष्ट होने पर प्रत्येक सदस्य को समिति की आज्ञा का हर हालत में पालन करना होता था।

समिति बनाने से पहले इग्नेटियस एक कॉलेज में प्रविष्ट हुआ था। पेरिस के विश्वविद्यालय में से उसने अपने मतलब के आठ और साथी चुने थे। उनमें से एक फ्रैंसिस ज़ेवियर (१५०६-१५५२) था। जेवियर एक धनी का पुत्र

था। उसे मज़हब की कुछ भी परवा न थी। इग्नेटियस को जब कभी जेवियर मिलता तब वह उससे कहता—'यदि तुम्हारी आत्मा खो जाय तो संसार का राज्य प्राप्त करके भी तुम क्या करोगे ?'

एक बार जेवियर सख़्त बीमार होगया। इग्नेटियस ने दिन-रात जागकर उसकी सेवा की और उसे मृत्यु-मुख से निकाल लिया और फिर वही बात दुहराई। जेवियर ने उसका साथ देने की प्रतिज्ञा की। १५४० में वे सब नङ्गे पाँव रोम में पोप पाल तृतीय के पास पहुँचे। उसने समिति बनाने की आज्ञा दे दी। इसके सदस्य विभिन्न कामों पर नियत किये जाते थे। अध्यापक, शिक्षक, राज-पुरोहित, दरबारी, डाक्टर, वैज्ञानिक, नौकर, प्रचारक आदि काम करते हुए भी इनके जीवन का उद्देश रोमन-केथॉलिक चर्च का प्रचार करना था।

इस समिति ने विभिन्न देशों में कई विद्यालय तथा महाविद्यालय स्थापित किये। इग्नेटियस की मृत्यु से पूर्व इनकी संख्या सौ से ऊपर हो चुकी थी। इनके द्वारा ही हङ्गरी, पोलेण्ड, बोहेमिया तथा दक्षिणी जर्मनी रोमन-केथॉलिक चर्च में वापस आगये।

जेवियर समिति की ओर से प्रचार-कार्य करता था। पहले वह एक अस्पताल में नियुक्त किया गया। एक बार उसे एक रोगी के फोड़े के पीब को मुँह से चूसने की आज्ञा

दी गई। ज़ेवियर को आज्ञा का पालन करना ही था। वह लिखता है कि इस घटना के पश्चात् मुझे कभी किसी मनुष्य से घृणा नहीं उत्पन्न हुई। उसने भारतवर्ष तथा जापान में भी प्रचार किया। गाँव में दवाइयों का सन्दूक़ लिये फिरता था। इसके पास एक कम्बल रहता था, जो प्रायः ग़रीबों के साथ रहने के कारण जुँओं से भरा रहता था। इसने कई लाख मनुष्यों को ईसाई बनाया।

१४ मज़हबी अत्याचार

चर्च के हाथ में तीसरी बड़ी शक्ति थी 'मज़हबी अत्याचार' ('इनक्विज़ीशन') अर्थात् मज़हबी दृष्टि से मत-विरोधियों को दण्ड दिये जाने लगे। मत-विरोध का दण्ड था सम्पत्ति-हरण या जीवित मनुष्य का अग्नि-दाह। सरकारी अफ़सरों को यह आदेश दिया जाता था कि वे मत-विरोध को दूर करने में चर्च की सहायता करें। इटली तथा स्पेन में इसका बड़ा ज़ोर रहा। उस समय मज़हबी मतविरोधियों को दण्ड देना कुछ बुरा न समझा जाता था।

१५ स्पेन का मज़हबी उत्साह

स्पेन इस समय रोमन केथॉलिक चर्च का आश्रय तथा अवलम्ब था। वह स्पेन जो शताब्दियों से इस्लाम के अधीन चला आता था, किस प्रकार इस समय योरूप में सबसे बड़ी शक्ति बन गया, इसका वर्णन आगे किया जायगा। यहाँ पर केवल यह बताना पर्याप्त है कि इसने अपने राजा चार्लेस पाँचवें

(१५१६-१५५६) और फ़िलिप द्वितीय (१५५६-१५६८) के राज्य-काल में रोमन केथॉलिक चर्च के लिए क्या क्या किया था।

१६ चार्लेस और मज़हबी अत्याचार

सन् १५०० में आस्ट्रिया के आर्चड्यूक फ़िलिप के यहाँ चार्लेस का जन्म हुआ। इसको चार विभिन्न वंशों की विरासतें मिलीं। अपनी मा की तरफ़ से इसे केस्टील तथा अरागाँन मिले, क्योंकि केस्टील के राजा फ़र्डिनण्ड और अरागॉन की रानी इसाबेला की लड़की जोअना चार्लेस की माता थी। अपने पिता की तरफ़ से इसे आस्ट्रिया तथा बरगण्डी मिले, क्योंकि इसके पिता फ़िलिप को अपने पिता (चार्लेस का दादा) मेस्कीमिलियन से आस्ट्रिया और अपनी माता (चार्लेस की दादी) मेरी से बरगण्डी विरासत में मिले थे। चार्लेस अभी उन्नीस वर्ष का ही हुआ था कि सबके मर जाने से सभी राजमुकुट इसी के सिर पर आकर एकत्र हो गये। स्पेन के राजत्व के अतिरिक्त नई दुनिया तथा नेपल्ज़ के राजसिंहासन भी उसी के हिस्से में आये। निर्वाचकों के बहुमत से १५०६ में इसे सम्राट् की उपाधि भी मिल गई।

राज्य के अत्यधिक बढ़ जाने से एक तो चार्लेस को लगातार फ्रांस के साथ युद्ध करने पड़े। फ्रांस का राजा फ्रेंसिस प्रथम इससे ईर्ष्या करने लगा। वह प्रतिक्षण इसे निर्बल करने का उपाय सोचता रहता था। दूसरा, सम्राट् बन

जाने से इसको जर्मनी के आन्तरिक मामलों में भी दख़ल देना पड़ा। परिणाम यह हुआ कि उसको जर्मन प्राँटेस्टेण्ट शासकों के विरुद्ध युद्ध करना पड़ा।

स्पेन की शक्ति बहुत बढ़ जाने से योरुप में राजनैतिक शक्ति के तराज़ू का एक पलड़ा बहुत नीचे झुक गया। उस समय से योरुपीय देशों में यह नीति चली आती है कि किसी प्रकार इसकी समता ठीक रक्खी जाय। योरुपीय राज्यों की ईर्ष्या के अतिरिक्त चार्लेस को फ्रांस के साथ भी युद्ध करना पड़ा और टर्की के सुलतान सुलेमान (१५२०-१५६६) के भयानक आक्रमणों से हङ्गरी तथा आस्ट्रिया की रक्षा भी करना पड़ी। एक बार तो तुर्क-सेनायें विएना पर चढ़ गई थीं।

चार्लेस को जब युद्ध से अवकाश मिलता तब वह अपना बल प्राँटेस्टेण्ट चर्च के विरुद्ध लगाता था। फ्रेंसिस के साथ उसे चार बड़े युद्ध करने पड़े। अन्त में दोनों में इस बात पर सन्धि हुई कि दोनों अपने-अपने देश के मज़हबी मत-विरोध को नष्ट करें।

सन् १५५६ में चार्लेस ने स्वयं ही राजपाट छोड़ कर अपनी आयु के शेष दो वर्ष यूस्टे के मठ में व्यतीत किये।

१७ फ़िलिप और मज़हबी अत्याचार

किन्तु वहाँ पर रहते हुए भी वह राज्य के मामलों से बड़ा अनुराग रखता था, जिससे फ़िलिप को अपने पिता के अनुभवों से लाभ पहुँचता रहा।

मज़हबी मामलों में फ़िलिप अपने पिता से कुछ कम न था। उसने अपने समस्त राज्य में 'मज़हबी अत्याचार' को ज़ोरों से जारी किया। वह अपने आपको सर्वोत्तम मनुष्य और अपनी जाति को सर्वोत्तम जाति समझता था। 'मज़हबी मतविरोध' को वह न केवल पाप, वरन राजद्रोह समझता था। इसी कारण उसका उन्मूलन करना वह अपना परम पवित्र कर्तव्य मानता था। अपने आपको अधिराज बनाने के लिए वह मज़हबी एकता को अत्यधिक आवश्यक समझता था। यही कारण था कि उसने नीदरलेण्ड में मज़हबी तथा राजनैतिक अत्याचार किये, अपने जहाज़ी बेड़े आरमेडा को साथ लेकर इँग्लेण्ड पर आक्रमण किया और स्पेन से लाखों मुसलमान कारीगरों को बाहर निकाल दिया, उन्हें अपनी भाषा बोलने से, अपनी वेश-भूषा पहनने से रोक दिया, यहाँ तक कि बालकों के ईसाई नाम रखने की आज्ञा दी। ग्रानाडा में मुसलमानों ने राजद्रोह किया। फ़िलिप ने बड़ी सख़्ती के साथ उसे दबा कर बच्चों तथा स्त्रियों को जीवित जला दिया। इन अत्याचारों का परिणाम यह हुआ कि स्पेन का पतन होना आरम्भ हुआ; मज़हबी एकता प्राप्त करने में उसने अपने आपको नष्ट कर लिया।

दूसरा अध्याय

मज़हबी युद्धों की एक शताब्दी

साधारणतया यह कहा जा सकता है कि प्रॉटेस्टेण्ड क्रान्ति का एक बड़ा फल यह हुआ कि उत्तरी जर्मनी, डेनमार्क, स्वीडन, नॉरवे, इँग्लेण्ड, स्कॉटलेण्ड, स्विट्ज़रलेण्ड तथा नीदरलेण्ड के प्रदेश अर्थात् ट्यूटन जातियाँ रोमन केथॉलिक चर्च से पृथक् होगई और बड़ी-बड़ी रोमन-जातियाँ फ्रांस, स्पेन तथा इटली, दक्षिणी जर्मनी, पोलेण्ड, बोहेमिया, हङ्गरी तथा आयर्लेण्ड केथॉलिक चर्च के साथ रहीं।

१८ मज़हबी सुधार के परिणाम

उपर्युक्त देशों के चर्च से पृथक् होने का यह अर्थ था कि ये जातियाँ उन सब राजनैतिक अधिकारों से, जो पोप को प्राप्त थे, मुक्त हो गई। इन देशों के पादरी तथा मॉक आदि, जो अभी तक पोप के अधीन समझे जाते थे, स्वतन्त्र हो गये और मज़हबी न्यायालयों के जातीय बन जाने से विवाह और वसीयत आदि के मामले पोप की अध्यक्षता से निकल कर जाति के हाथ में आ गये अर्थात् राजनैतिक एवं मज़हबी मामलों में ये जातियाँ पूर्णतया स्वतन्त्र होगई। मज़हबी मामलों में प्रत्येक मनुष्य को व्यक्तिगत मत रखने,

अपने लिए सोचने और निर्णय करने की स्वतन्त्रता दी गई। यद्यपि उस समय सर्वसाधारण में मज़हबी सहिष्णुता का भाव न आया था तथापि मत-स्वातन्त्र्य उन्नति की ही एक सीढ़ी थी, जिसने भविष्य में मज़हबी सहिष्णुता की नींव रक्खी।

रोमन-कैथॉलिक चर्च इस पराजय को सहन न कर सकता था। इसलिए पोप ने उपर्युक्त जातियों को चर्च के साथ रखने के लिए अपनी शक्ति का हर प्रकार से उपयोग किया। पोप ने न केवल चर्च के सभी दोषों को दूर किया और बहुत से सुधार किये, वरन् स्थान-स्थान पर लोगों पर मज़हबी अत्याचार करने आरम्भ किये। उसने जेन्विट-समिति की नींव रक्खी, जिसके सदस्यों ने विभिन्न देशों की शिक्षा अपने हाथ में लेकर उन पर दुबारा स्वत्व जमाने का प्रयत्न किया। प्रॉटेस्टेण्टों के सुधार-आन्दोलन की तुलना में रोमन-कैथॉलिक चर्च का यह सुधार-आन्दोलन प्रतिकूल-सुधार ('कौन्ट रिफ़ार्मेशन') कहलाता है।

यदि यह मामला यहीं समाप्त हो जाता तो कुछ हर्ज न था किन्तु चर्च ने इसको पर्याप्त न समझ कर सभी देशों में युद्ध की नींव रख दी, जिससे जर्मनी, फ़्रांस, इँग्लेण्ड, स्पेन तथा नीदरलेण्ड में सौ वर्ष तक बराबर युद्ध होते रहे।

१६ मज़हबी युद्धों के सौ वर्ष

इन देशों में जितने युद्ध हुए, वास्तव में वे सब एक ही नाटक के भिन्न-भिन्न दृश्य हैं। इनमें से स्पेन के नीदरलेण्ड

के युद्ध वास्तव में गृह-युद्ध हैं क्योंकि नीदरलेण्ड स्पेन-साम्राज्य का एक भाग था। नीदरलेण्डवासियों को इस युद्ध ने मज़हबी स्वातन्त्र्य के साथ देश की राजनैतिक स्वतन्त्रता भी प्रदान की। योरुप के इतिहास का यह एक ऐसा सुन्दर प्रकरण है कि इसका वर्णन एक पृथक् अध्याय में करना आवश्यक होगा।

१—जर्मनी

लूथर के समय में जर्मनी के कृषक आधे गुलाम थे। पादरी लोग, उन्हें आराम पहुँचाने के बजाय उन पर कई प्रकार के कर लगाकर उनकी दशा शोचनीय बना रहे थे। इनके अत्याचारों से वे बड़े तङ्ग आये गये थे, उसी समय देश में लूथर का मज़हबी आन्दोलन चला। सुएबिया तथा फ्रेंकोनिया के कृषक राजा के विरुद्ध खड़े होगये। उन्होंने सरदारों के क़िले और पादरियों के मठ जला दिये। यह राजद्रोह अन्त में दबा तो दिया गया किन्तु इससे दक्षिणी जर्मनी का एक बड़ा भाग उजड़ गया और लगभग एक लाख प्राणी मारे गये।

२० कृषक-युद्ध (१५८४-१५८५)

स्पेन का राजा चार्लेस पाँचवाँ जर्मनी का सम्राट् था। उसके फ्रांस के युद्धों में लगे रहने के कारण जर्मनी में प्रॉटेस्टेण्ट-आन्दोलन का ज़ोर बढ़ता गया, और १५३१ में प्रॉटेस्टेण्ट नगरों तथा राजाओं ने 'शमालकाल्ड डेनिक' नामक एक

२१ चार्लेस तथा प्रॉटेस्टेंट जर्मन राजों में युद्ध

'लीग' या समिति बनाई, जो साम्राज्य के अन्दर एक विरोधी शासन के समान थी। इसलिए १५४४ में जब लूथर मरा तब चार्लेस ने उस पर आक्रमण कर दिया। समिति के सदस्य, सेक्सनी के प्रॉटेस्टेण्ट राजा मारिस के चार्लेस की ओर हो जाने से समिति की पराजय हुई। स्पेनिश राजा ने उसे नष्ट कर देने का निश्चय किया।

अत्याचार-पीड़ित होने से जर्मनी के प्रॉटेस्टेण्ट लोग चार्लेस के विरुद्ध उठ खड़े हुए। उधर फ्रांस के राजा हेनरी द्वितीय ने भी चार्लेस के साथ युद्ध करना आरम्भ कर दिया। दोनों ने उसे ऐसा फँसा लिया कि उसने भागकर अपने प्राण बचाये।

२२ आग्सबर्ग की सन्धि (१५५५)

अपनी सेना को बार-बार पराजित होते देखकर उसने १५५५ में प्राँटेस्टेण्ट राज्यों के साथ में सन्धि कर ली। यह आग्सबर्ग की सन्धि कहलाती है। इसमें दो बातों का निर्णय हुआ। पहली, राजा को अपना मज़हब चुनने तथा उसे प्रजा का मज़हब बनाने का अधिकार होगा। दूसरी, राजा उन लोगों को, जो उसके मज़हब के न हों, अपने राज्य से बाहर निकाल सकता है। रोमन केथॉलिक दल ने एक शर्त यह भी करवाई कि यदि कोई रोमन-केथॉलिक चर्च का पदाधिकारी, बिशप या आर्चबिशप, प्राँटेस्टेन्ट हो जावे, तो उसे अपनी जागीर

को छोड़ देना होगा। प्राटेस्टेन्ट चर्च इसे अस्वीकार करता था, इसलिए दोनों सम्प्रदायों में झगड़े का बीज पड़ गया।

२—तीस वर्षीय युद्ध

सन् १५५६ में चार्लेस पाँचवाँ मर गया। उसके दो उत्तराधिकारी फ़र्डिनन्ड पहला (१५६४ तक) और मेक्सि-मिलियन (१५७६ तक) बड़े विचारशील तथा सहिष्णु-स्वभाव के मनुष्य थे। उनके राज्य-काल में प्रॉटेस्टेण्ट-सम्प्रदाय जर्मनी में ख़ूब ही फैला।

३ 'प्रॉटेस्टेण्ट यूनियन' 'केथॉलिक लीग' (१६१६-१६४८)

वह युद्ध जो लगातार तीस बरसों तक जर्मनी के प्रॉटे-स्टेण्ट तथा केथॉलिक राजाओं में होता रहा, तीस वर्षीय युद्ध कहलाता है। कुछ समय के पश्चात् इसमें योरुप के प्रायः सभी राज्यों ने भाग लिया। इसके कारण हमने पिछले प्रकरण में बतला दिये हैं। किन्तु तीसरा उत्तराधिकारी रुडॉल्फ़ द्वितीय (१६१२ तक) उपर्युक्त दोनों के सर्वथा प्रतिकूल था। उसने हंग्री तथा बोहेमिया के प्रॉटेस्टेण्ट लोगों पर अत्या-चार करना आरम्भ किया और डोनऊवेर्ट-नामक स्वतन्त्र नगर में उनको ईश्वर-प्रार्थना करने से रोक दिया। जर्मनी की प्रॉटेस्टेन्ट आबादी इससे घबरा गई और १६०८ में उन्होंने 'प्रॉटेस्टेण्ट-यूनियन' नामक एक सभा बनाई। रोमन-

युद्ध और उसके कारण

केथॉलिकों ने भी इसके बराबरी की अपनी एक सभा बनाई जिसका नाम 'केथॉलिक यां होली लीग' था।

युद्धाग्नि पहले-पहल बोहेमिया से आरम्भ हुई। प्रॉटे-स्टेंट लोग अपना एक गिरजा बना रहे थे कि रोमन-केथॉलिकों ने उसे गिराना शुरू कर दिया। प्रॉटेस्टेण्टों ने बोहेमिया के राजा से इसकी शिकायत की, किन्तु कुछ परिणाम न निकला। इस पर कुछ बोहेमियन सरदारों ने प्रेग-नगर के राजदुर्ग में प्रवेश करके दो अफ़सरों को खिड़की से बाहर फेंक दिया। इस घटना ने (१६१८) उस युद्ध की नींव रक्खी, जो तीस वर्ष तक जर्मनी को उजाड़ता रहा।

२९ बोहेमिया से युद्ध का आरम्भ

बोहेमिया में प्रॉटेस्टेण्टों ने अपना एक राजा चुन लिया। किन्तु पहली ही लड़ाई में उसकी हार हो जाने से प्रॉटेस्टेण्ट राजद्रोह दब गया और बोहेमिया का केथॉलिक राजा फ़र्डिनण्ड जर्मनी का सम्राट् चुना गया। अपने पूर्वपुरुष चार्लेस पाँचवें के समान उसने भी निश्चय किया कि प्रॉटेस्टेण्ट सम्प्र-दाय को जर्मनी से निकाल दे।

इस निश्चय से योरप के प्रॉटेस्टेण्ट देश—इँग्लेण्ड, डेनमार्क आदि चौंक उठे और डेनमार्क का राजा, क्रिश्चियन चौथा, जर्मनी, के प्रॉटेस्टेण्टों का सहायक बन गया। १६२५ से लेकर १६२९ तक दोनों पक्षों में युद्ध होता रहा। अन्त में क्रिश्चियन को सन्धि करके

६२ डेनमार्क की सहायता

जर्मनी से वापस आना पड़ा। इस युद्ध में फ़र्डिनण्ड के सेना-नायक वॅलनस्टीन ने 'होली लीग' के सेनानायक टिले की बड़ी सहायता की। वॅलनस्टीन केवल सैनिकों को प्रसन्न रखना जानता था, इसलिए शेष सब लोग और पादरी उसके घमण्ड से तङ्ग आगये। सन्धि हो जाने पर सम्राट् ने उसे पदच्युत कर दिया।

स्वीडन की सहायता

सन्धि हुए अभी कुछ ही मास हुए थे कि स्वीडन का प्रॉटेस्टेण्ट राजा गस्टेवस अडॉल्फ़स जर्मन प्रॉटेस्टेण्टों की सहा-यता के लिए आ पहुँचा। सम्राट् ने उसकी कुछ भी परवा न की और प्रॉटेस्टेण्ट राजा भी उस पर अविश्वास ही करते रहे, जिसका परिणाम यह हुआ कि कैथॉलिक सेनानायक टिले ने मेग्डेबर्ग-नगर का घेरा डालकर उसे जीत लिया। नगर में आग लगा दी गई, जिससे सहस्रों मनुष्य अग्नि की भेंट होगये। कई दिन तक नदी में रुधिर-धारा बहती रही। टिले ने विजय का मङ्गल-संवाद सम्राट् को भी भेजा।

यह कुसमाचार सुनकर प्रॉटेस्टेण्ट राजाओं को बड़ा शोक हुआ। उन्होंने स्वीडन-नरेश की सहायता के लिए सेना भेजी, जिससे टिले को एक भारी पराजय मिली और वह रणक्षेत्र में मारा गया। सम्राट् इससे इतना विपद्ग्रसित हो गया कि उसे इसके सिवा और कोई चारा न दीख पड़ा कि वॅलनस्टीन को दुबारा बुलाये। ज्योंही वॅलनस्टीन की पताका फ़हराने

लगी त्योंही लगभग चालीस सहस्र मनुष्य उसके नीचे एकत्र होगये। १६३२ में लटज़ेन (सेक्सनी) के रणक्षेत्र में युद्ध हुआ। प्रॉटेस्टेण्ट- राजा की विजय हुई; किन्तु स्वीडन-नरेश मारा गया।

गस्टेवस ने अपने प्राण देकर जर्मनी के प्रॉटेस्टेण्ट सम्प्रदाय को बचा लिया। तत्पश्चात् सोलह वर्ष तक युद्ध होता रहा। अन्त में सम्राट् और प्रॉटेस्टेण्ट राजा युद्ध से तङ्ग आकर परस्पर सन्धि चाहने लगे। किन्तु फ्रांस आस्ट्रिया के राज-वंश को गिराने के अभिप्राय से उसके विरोधियों को प्रोत्साहन करता रहा। इस प्रकार यह युद्ध मज़हबी से राजनैतिक हो गया। रोमन-कैथॉलिक होते हुए भी फ्रांस सम्राट् के विपक्षी प्रॉटेस्टेण्ट राजाओं की सहायता करता था, इसलिए युद्ध जारी रहा। युद्ध में फ्रांस-नरेश का प्रधान मन्त्री कार्डिनल रिशलू १६४२ में मर गया। अगले साल लुइस तेरहवें ने भी उसका अनुकरण किया। फर्डिनण्ड दूसरे के स्थान में फर्डिनण्ड तीसरा और लुइस तेरहवें के स्थान में लुइस चौदहवाँ सिंहासन पर बैठे।

२८ फ्रांस रणक्षेत्र में

सन् १६४८ में वेस्टफेलिया की वह बड़ी सन्धि हुई जिससे जर्मनी के तीस वर्षीय युद्ध का अन्त हो गया तथा इसके साथ ही योरुप के मज़हबी युद्धों का भी अन्त हुआ अर्थात् इसके पश्चात् योरुप में जो युद्ध हुए वे सब राजनैतिक थे न कि मज़हबी।

२६ वेस्टफेलिया की सन्धि (१६४८)

इसके अनुसार तीन ईसाई-सम्प्रदायों—केथॉलिक, लूथरन तथा केल्विन—को समान पद दिया गया। रोमन-केथालिक और प्रॉटेस्टेण्ट दोनों चर्च के पद और सम्पत्ति को रख सकते थे, जैसा कि १६२४ से पहले था। राजा अपने मज़हब को राज-मज़हब (सर्वसाधारण प्रजा का मज़हब) बना सकता था, किन्तु जिनको वह अपने राज्य से बाहर निकालना चाहे उन्हें पहले पाँच वर्ष की मुहलत देने का नियम था। इसके अनुसार पेलिस्टाईन के शासकों ने साठ वर्ष के भीतर चार बार अपनी प्रजा का मज़हब बदला।

सन्धि की राजनैतिक शर्तों के अनुसार स्विट्ज़रलेण्ड तथा नीदरलेण्ड जर्मन-साम्राज्य से पृथक् हो गये। लोरेन-प्रदेश के बिशपों के तीन बड़े नगरों—मेट्ज़, टौल-वेरडन और स्ट्रेस्बर्ग—को छोड़ शेष एलसास-प्रदेश फ्रांस को दे दिया गया। १८७१ तक ये प्रदेश फ्रांस के अधीन रहे (गत योरुपीय महासमर में फ्रांस तथा जर्मनी के युद्ध का एक कारण ये दोनों प्रदेश थे।) स्वीडन के राजा को भी उत्तरी जर्मनी में पश्चिमी पॉमेरनिया तथा कुछ और प्रदेश दिये गये। किन्तु इसके लिए उसे सम्राट् को अपना अधिपति स्वीकार करना पड़ा। ब्रेडनबर्ग के राजा को पूर्वी पॉमेरनिया तथा कुछ अन्यप्रदेश दिये गये। यह बात स्मरण रखने योग्य है, क्योंकि इससे ब्रेडनबर्ग-साम्राज्य का एक नया केन्द्र बनना आरम्भ हुआ, और इसके साथ प्रशिया के मिल जाने से जर्मनी नये रूप में प्रकट हुआ।

राजनैतिक दृष्टि से जर्मन-साम्राज्य में चार सौ से ऊपर छोटे-छोटे राज्य थे, जो परस्पर एक दूसरे के साथ तथा विदेशी राज्यों के साथ भी सन्धि कर सकते थे। किन्तु सम्राट् के विरुद्ध उन्हें ऐसा करने का अधिकार न था। इस प्रकार इटली के समान जर्मनी में भी छोटे-छोटे राज्यों का एक शिथिल। ('कॉन-फेडूरेशन') बन गया, जिसमें पारस्परिक एकता के न होने के कारण प्रत्येक को दूसरे का भय रहता था।

यह युद्ध करके जर्मनी ने कई विपदायें मोल लीं। युद्ध के पश्चात् जर्मनी की तीन करोड़ जन-संख्या में से कुल एक करोड़ से कुछ ऊपर ही शेष रह गई। अब बर्लिन में केवल दो-तीन सौ बलहीन मनुष्य ही इधर-उधर फिरते थे। कई बड़े नगर नष्ट होगये।

३० जर्मनी पर युद्ध के प्रभाव

व्यापार तथा व्यवसाय के अतिरिक्त ललित कलायें—चित्र चित्रण, मूर्त्तिकला तथा वास्तुकला, विज्ञान और आचार-नीति सब नष्ट होगई। शिक्षा को भी बड़ा धक्का लगा; तीस बरस तक युद्ध रहने से एक नस्ल तो सर्वथा अशिक्षित हो रही। नैतिक दृष्टि से लोग पतित होगये। वह जर्मन-साम्राज्य जो एक हो रहा था, फिर एक बलहीन टूटा-फूटा पञ्जर-मात्र रह गया।

वेस्टफेलिया की सन्धि सुधार-काल का अन्त कर देती है। इससे लोगों को यह मानना पड़ा कि उन्हें एक दूसरे के मज़हब को वाध्य होकर सहन करना होगा। इसके पश्चात् योरुप में किसी सम्प्रदाय के लिए, दलबन्दी युद्ध करने का

भाव दूर हो गया और उसका स्थान सिविल तथा राजनैतिक मामलों ने ले लिया।

३—फ्रांस

फ्रांस के राजा चार्लेस आठवें ने इटली में जो युद्ध शुरू किये थे उन्हें उसके उत्तराधिकारी लुइस बारहवें, फ्रेंसिस पहले तथा हेनरी दूसरे ने जारी रक्खा।

३१ फ्रांस में 'पुनर्जागृति'

फ्रांसीसी सैनिकों के इटली में रहने से उनके हृदय में इटली की विद्याओं तथा कलाओं के प्रति प्रेम तथा चर्च के प्रति घृणा उत्पन्न होगई।

अभी लूथर ने चर्च से विद्रोह आरम्भ ही नहीं किया था कि फ्रांस के कई विद्वानों का बाइबिल पढ़ने से उसके विषय में उनका भी लूथर का सा मत होगया।

३२ फ्रांस में मज़हबी सुधार

लूथर के विचार तथा सिद्धान्त अधिक जर्मनात्मक थे। इसलिए फ्रांस में मज़हबी सुधार का आन्दोलन जॉन केल्विन के अधीन हो गया। लेकिन केल्विन को फ्रांस से भागकर जनेवा जाना पड़ा, इस कारण उसने वहाँ से प्रॉटेस्टेण्ट विचारों का प्रसार करना आरम्भ किया।

फ्रेंसिस प्रथम (१५१५-१५४७) पहले-पहल इस नये आन्दो-

लन की सहायता करता था किन्तु बाद में उसने प्रॉटेस्टेण्टों पर अत्याचार करना शुरू कर दिया।

३३ फ्रेंसिस प्रथम तथा हेनरी द्वितीय

हेनरी द्वितीय (१५४७-१५५६) ने भी उन्हें बहुत कष्ट दिये। फिर भी यह आन्दोलन फ्रांस में फैलता ही गया।

हेनरी पर एक दुष्टा स्त्री का बड़ा प्रभाव था। उसी के कहने से हेनरी ने उस मज़हबी झगड़े का बीज बोया, जो उसके तीनों लड़कों—फ्रेंसिस, चार्लेस तथा हेनरी के समय में चलता रहा। उसका लड़का फ्रेंसिस द्वितीय (१५५६-१५६०), जिसने स्कॉटलेण्ड की राजकुमारी मेरी से विवाह किया था, शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से अति निर्बल था। एक वर्ष ही राज्य करके वह मर गया।

फ्रेंसिस के समय में सारी राज-शक्ति उसकी माता केथराईन-डि-मेडिसी के हाथ में चली गई, जिसने इटेलियन राजनीतिज्ञ माक्यावेली के सिद्धान्तों को भली भाँति समझ कर अपने जीवन को उनके अनुसार बना लिया था।

३४ केथराईन-डिमेडिसी और गूइज़

उसे मज़हब का कोई ख़याल न था, वह केवल राजशक्ति को अपने हाथ में रखना चाहती थी। आवश्यकतानुसार कभी वह प्रॉटेस्टेण्ट हो जाती और कभी केथॉलिक चर्च की शरण लेती। अपने शत्रुओं को विनष्ट करने के लिए उसने कई रमणियाँ भी रक्खी

थीं, अपने तीनों लड़कों के राज्य-काल में उसने फ़्रांस की बड़ी दुर्दशा की और अपने वंश का अन्त कर दिया।

इस समय फ़्रांस में गूइज़-परिवार बड़ा बलवान् था, इसका अग्रणी ड्यूक-आव्-गूइज़ था, जिसने इँग्लेण्ड से 'केले' वापस लेने में बड़ी वीरता दिखाई थी। वह और उसका छोटा भाई चार्लेस दोनों रोमन-केथॉलिक थे। ड्यूक फ़्रांस का राजा बनना चाहता था और उसका भाई पोप।

गूइज़ों के विरुद्ध 'बोरबोन' नामक एक दूसरा परिवार था। इसके अग्रणी नावारे का राजा एण्टनी और कॉङ्कडे का राजा लुइस थे। यह परिवार सिंहासन का अधिकारी था। मज़हब की दृष्टि से इनकी नीति प्रॉटेस्टेण्टों के पक्ष में केवल इसलिए थी कि ये गूइज़-परिवार का विरोध करना चाहते थे। फ़्रांस का नौ-सेनाध्यक्ष कॉलीनपी एक प्रसिद्ध और सच्चा प्रॉटेस्टेण्ट था, जो मृत्यु पर्यन्त प्रॉटेस्टेण्ट-चर्च का साथ देता रहा।

३५ बोरबोन राजा; ह्यूजनाट-षड्यन्त्र (१५६०)

फ्रैंसिस द्वितीय ने जब ह्यूजनाट लोगों (फ़्रांस में प्रॉटेस्टेण्ट-सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखनेवाले 'ह्यूजनाट' कहलाते थे) पर अत्याचार करना आरम्भ किया तब उन्होंने १५६० में गूइज़ों के विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा। अकस्मात् षड्यन्त्र का भेद खुल गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि एक हज़ार ह्यूजनाटों का वध कर डाला गया। उनको फाँसी देना या जला

देना मनोरञ्जन की सामग्री बन गया। राजा-रानी तथा दरबारियों के मनोरञ्जनार्थ ये 'तमाशे' प्रायः भोज के पश्चात् हुआ करते थे।

फ्रेंसिस के जल्दी ही मर जाने से रानी मेरी स्कॉटलेण्ड चली गई और दस वर्ष का बालक चार्लेस नवाँ सिंहासन पर बैठा। केथराईन ने अपनी नीति बदल दी। बोरबोन-परिवार के लोगों को उसने सरकारी पदों पर नियुक्त कर दिया और ह्यूजनाटों को पूजन-स्वातन्त्र्य प्रदान किया। इससे रोमन केथॉलिक और गूइज़-परिवार जल-भुन गया। ड्यूक-आव्-गूइज़ एक स्थान से गुज़र रहा था कि उसने एक ह्यूजनाट-समूह को पूजा करते देखा। उसके आदमियों ने पहले उन पर हमला किया, तत्पश्चात् उसमें से चालीस का वध कर डाला और बहुतों को ज़ख्मी कर दिया।

३६ वासी का संहार (१५६२)

ह्यूजनाट-नेता जब फ्रांस के राजा के पास शिकायत ले गया तब उस समय बोरबोन-राजा एण्टनी भी गूइज़ों के साथ मिल गया और सारा दोष उनके ही सिर मढ़ दिया। तब बीज़ा ने ये शब्द कहे—"यह सत्य है कि चर्च के भाग्य में यही लिखा है कि वह चुपचाप चोटें खाये और उसका कोई उत्तर न दे, किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि स्थाणु हज़ारों चोटें खाता हुआ भी अन्त में हथोड़ों को तोड़ डालता है।"

अत्यधिक पीड़ित होने से ह्यूजनाटों में से एक ऐसा

दल उत्पन्न हुआ जो अहिंसात्मक हीतात्म्य करने को तैयार न थे। वह चोट खाने के साथ-साथ चोट करने का भी निश्चय करके नौ-सेनाध्यक्ष कालीनपी की संरक्षता में युद्ध के लिए तैयार होगया। आठ वर्ष तक फ्रांस में मज़हबी युद्ध होता रहा, जिसमें इतनी निर्दयता और कपट का व्यवहार किया गया कि उसके वर्णन से मानवहृदय काँप उठता है। मज़हब के साथ-साथ दोनों पक्षों के सामने स्वार्थ तथा राजनैतिक लाभ भी थे। घेरे, युद्ध, सन्धियाँ, षड्यन्त्र, धोखाबाज़ी और वध इस युद्ध के इतिहास की विशेषताएं थीं। १५६२ में नावारे का राजा मारा गया, फ्रैंसिस ड्यूक-आव्-गूइज़ १५६३ में और काण्डे का राजा १५६९ में मार डाले गये।

३७ आठ वर्ष तक युद्ध

सेण्ट-जर्मेन की सन्धि के अनुसार उसकी रक्षा की दृष्टि से चार नगर, जिनमें ला-रोशेल का प्रसिद्ध क़िला भी था, ह्यूजनाटों को दे दिये गये और केथराईन ने राज-कुमारी मारगरेट का विवाह भी नावारे के नवयुवक बोरबोन राजा हेनरी के साथ कर दिया जिससे सन्धि स्थायी हो जाय। केथॉलिक तथा प्रॉटे-स्टेन्ट—दोनों सरदारों के पेरिस में एकत्र होने पर यह विवाह किया गया। अभी रङ्गरलियाँ ख़तम नहीं हुई थीं कि इसी बीच में एक ऐसी घटना हुई, जिसने सबको क्षोभित कर दिया।

३८ सेण्ट-जर्मेन की सन्धि (१५७०)

नवयुवक राजा पर नौ-सेनाध्यक्ष कालीनपी का बड़ा प्रभाव

था। केथराईन को यह भय हुआ कि कहीं उसका बेटा उसके हाथ से निकल न जाय। उसने काली-नपी का वध करवाने का प्रयत्न किया किन्तु उसे थोड़े ही घाव लगे और वह बच गया। सारे ह्यूजनाट अपने नेता के पास एकत्र होगये।

३६. सेन्ट-बरथॉलॉमियु-दिवस पर सर्ववध (१५७४)

केथराईन इससे बहुत डरी और अपनी रक्षा का उसे एक ही उपाय सूझा कि सारे ह्यूजनाटों का वध कर डाला जाय। २३ अगस्त सायङ्काल को वह राजा के पास गई और कहा कि ह्यूज-नाटों ने राजघराने का अन्त करने के लिए एक षड्यन्त्र रचा है, इसलिए अपनी रक्षा के लिए उनका वध आवश्यक है। अल्पधी राजा इस प्रकार की बात सोचते ही काँप उठा। पहले तो वह इन्कार करता रहा, पीछे कहने लगाः—"हाँ, मैं तैयार हूँ यदि फ्रांस में एक भी ह्यूजनाट न बचे जो मेरा तिरस्कार कर सके।"

२४ अगस्त को सेण्ट-बरथॉलॉमिउ की रात्रि में आधी रात के समय एक घण्टी बजी और बिस्तरों पर पड़े हुए ह्यूज-नाटों का वध कर दिया गया। कालीनपी को मारकर उसका शव गली में फेंक दिया गया। तीन दिन और तीन रात तक सर्ववध होता रहा। अकेले पेरिस में मरे हुए मनुष्यों की संख्या का अनुमान एक और दस सहस्र के बीच में लगाया जाता है। पेरिस के पश्चात् कई अन्य नगरों में भी ह्यूजनाटों का संहार किया गया। समस्त देश के हत मनुष्यों की संख्या का अनुमान तो दो हजार से एक लाख तक पहुँच जाता है।

इस सर्वसंहार ने समस्त यौरुप में खलबली उत्पन्न कर दी, विशेष कर इँग्लेण्ड तथा नीदरलेण्ड में, यहाँ पर इसके लिए बड़ा शोक प्रकट किया गया। इसके विपरीत स्पेन के राजा को इससे बड़ा हर्ष हुआ। फ्रांस में, इसके बजाय कि ह्यूजनाट-समुदाय कुछ दब जाता, सर्वसाधारण में उसके प्रति बड़ी सहानुभूति और उत्साह उत्पन्न होगया और अगले पन्द्रह वर्ष तक देश में झगड़े ही होते रहे।

चार्लस बड़ी अनुतप्त अवस्था में मरा। तत्पश्चात् उसका भाई हेनरी तृतीय १५८६ तक राज्य करता रहा। उसने ह्यूजनाट-समुदाय के साथ कुछ रियायतें कीं, जिससे केथॉलिक-समुदाय नाराज़ होगया और ड्यूक-आव-गूइज़ की शक्ति बढ़ने लगी। ईर्ष्या के कारण हेनरी ने उसका वध करवा दिया। इस पर एक मॉङ्क ने हेनरी को मार डाला, और इस प्रकार वालवा-वंश का अन्त हो गया।

४० हेनरी तृतीय का राज्य-काल (१५७४-१५८९)

अब नावारे का बोरबोन-राजा हेनरी ही सिंहासन का उत्तराधिकारी रह गया था। किन्तु केथॉलिक लीग उसके विरुद्ध थी, इसलिए गृह-युद्ध फिर भी जारी रहा। चार बरस बाद हेनरी ने यह उचित समझा कि रोम-केथॉलिक-मत स्वीकार करके घरेलू युद्ध का अन्त कर दिया जाय। इस परिवर्तन से केथॉलिक सहमत हो गये और

४१ हेनरी चौथा (१५८९-१६१०); नेन्टूस की राजाज्ञा (१५९८)

उन्होंने हेनरी को अपना राजा स्वीकार कर लिया। १५९८ में उसने फिर नेंट्स-नगर में एक राजाज्ञा निकाली, जिसके अनुसार ह्यूजनाट-समुदाय को विचार तथा पूजन की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की गई और सब सरकारी पद भी उनके लिए खोल दिये गये।

हेनरी चौथा अपनी प्रजा से बड़ा प्रेम करता था, लोग उसे अपना पिता कहते थे। अपने राज्य-काल में इसने देशहितार्थ कई परिवर्तन किये। इसने दलदलें साफ़ करवाईं, नहरें और सड़कें बनवाईं तथा कृषि और शिल्प में कई सुधार कराये। १५०८ में हेनरी की संरक्षता में एक कम्पनी ने सेण्ट-लारेन्स-नदी के तट पर क्युबेक-नामक नगर बसाया। एक समय वह फ्रांस की सीमाओं को बढ़ाने का उपाय सोच रहा था कि एक मज़हबी भक्त ने ख़ञ्जर से उसे मार डाला। यह हेनरी उसी बोरबोन-वंश का प्रवर्तक था, जो फ्रांस की राज्यक्रान्ति तक राज्य करता रहा।

४२ हेनरी का राज्य

हेनरी का उत्तराधिकारी उसका लड़का लुइस तेरहवाँ था, जो नव वर्ष की आयु में राजगद्दी पर अभिषिक्त हुआ। इसके राज्य-काल में देश में फिर वही अशान्ति फैलनी आरम्भ हो गई। पुराने ज़ख़्म फिर ताज़े हो गये, कोष ख़ाली हो गया और १६१४ में स्टेट्स-जनरल की सभा हुई कि किसी प्रकार यह कठिनाई हल हो। किन्तु लीग की शक्ति क्षीण हो गई और वह

४३ लुइस तेरहवाँ (१६१०-१६४३)

विसर्जित कर दी गई। तत्पश्चात् १७५ वर्ष तक स्टेट्स-जनरल का कोई अधिवेशन नहीं हुआ।

राजा के बड़े होने पर कार्डिनल रिशलू उसका प्रधान मन्त्री बनाया गया। इँग्लेण्ड के राजा हेनरी आठवें के प्रधान मन्त्री वूल्से के समान यह भी सत्रहवीं शताब्दी का एक अपूर्व नायक है। वास्तव में वही फ़्रांस पर शासन करता था।

४४ कार्डिनल रीशलौ और उसकी नीति

रिशलू की नीति के दो पक्ष थे। एक तो वह जागीरदारों, ह्यूनाट तथा सभी स्थानीय सभाओं—जैसे पार्लमेण्ट, न्यायालय आदि—को दबाकर राजा को स्वच्छन्द बनाना चाहता था। दूसरा, आस्ट्रिया तथा स्पेन के शासक-वंश हेप्सबर्ग को निर्बल करके फ़्रांस को योरुप में शक्तिशाली बनाना चाहता था।

रिशलू से डरकर ह्यूजनाटों ने इँग्लेण्ड की सेना की सहायता से ला-रोशेल-नगर को अपनी राजधानी नियत करके एक प्रजातन्त्र बनाने का निश्चय किया। ख़बर पहुँचते ही रिशलू ला-राशेल पहुँचा और नगर को जीत करके उसकी सारी दीवारें गिरा दीं। इस घटना से ह्यूजनाट-समुदाय की राजनैतिक शक्ति बिल्कुल ही नष्ट हो गई। एक राजाज्ञा के द्वारा राजा ने रोमन-केथॉलिक तथा प्रॉटेस्टेण्ट—दोनों प्रजाओं की रक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया।

४५ ह्यूजनाटों की राजनैतिक शक्ति का विनाश

फ्रांस के उन सारे युद्धों का फल यह हुआ कि लगभग दस लाख प्राणी तथा कई सौ क़सबे नष्ट हो गये। रिशलू की वैदेशिक नीति जर्मनी के तीस वर्षीय युद्ध में प्रकट हुई, पहले तो वह स्वीडन के राजा की धन से सहायता करता रहा और बाद में फ्रांस के सैनिक उसने रणक्षेत्र में भेजे।

४—इँग्लेण्ड

सुधार ने इँग्लेण्ड में पहले एक राजद्रोह का रूप धारण किया। बाद में वह मज़हबी सुधार का आन्दोलन बन गया, जिसने शनैः-शनैः इँग्लेण्ड को मज़हबी रूप दे दिया। तीन सौ वर्ष तक इँग्लेण्ड-वासी पोप के प्रभुत्व के विरुद्ध शिकायतें करते रहे। कई अवसरों पर पार्लमेण्ट ने ऐसे क़ानून पास किये कि पोप को इँग्लेण्ड के मामलों में हस्तक्षेप न करना चाहिए और न इँग्लेण्ड को अपने देश का धन बाहर भेजना चाहिए। तत्पश्चात् मानवत्ववादी-आन्दोलन के शुरू होने पर ऑक्सफ़र्ड में कॉलेट, इरेज़मस तथा मोर आदि जैसे विद्वानों ने नये विचारों को इँग्लेण्ड में फैलाया। इन्हीं के टिण्डल-नामक एक शिष्य ने बाइबिल का अँगरेज़ी में अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त विक्लिफ़ के आन्दोलन

४६ इँग्लेण्ड में 'सुधार' आन्दोलन

का भी इँग्लेण्ड पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। कई निर्धन कृषक विक्लिफ़ के अनुयायी—लॉलर्ड—बन चुके थे।

इँग्लेण्ड के 'सुधार' का राजनैतिक पक्ष समझने के लिए हम ट्यूडर-वंश के पहले राजा हेनरी सातवें को उपस्थित करते हैं। शेष योरुपीय शासकों के समान यह राजा भी अपने आपको स्वच्छन्द बनाना चाहता था। इसके लिए उसे धन का बड़ा लोभ था। प्रजा से धन बटोरने के उसने कई पुराने तथा कई नये बहुत से उपाय निकाले। वह लोगों से कर्ज़ ले लेता था, चन्दे इकट्ठा करता था, और पार्लामेण्ट से युद्ध करने के लिए रुपया माँगता था। यद्यपि युद्ध करने का उसका कोई निश्चय न होता था।

४७ हेनरी सातवाँ (१४८५-१५०९) अनियन्त्रण तथा उसकी धन-लोलुपता

उसके एक मन्त्री कार्डिनल मार्टन के विषय में तो यह प्रसिद्ध है कि उसने लोगों से धन निकालने का एक अद्भुत ढङ्ग निकाला था। वह यह कि जो लोग मितव्ययिता से रहते उनसे तो वह यह कहता कि तुमने बहुत सा धन एकत्र कर लिया होगा इसलिए थोड़ा सा राजा को भी भेंट करो और जो अमीरों के ढङ्ग से रहते उनसे कहता कि तुम्हारे पास बहुत धन है, इसलिए तुम्हें राजा को भी उदारतापूर्वक कुछ धन देना चाहिए।

हेनरी के राज्यकाल में ही स्पेनवासी कोलम्बस ने अमेरिका और पुर्तगीज़ वासको-डे-गामा ने एशिया के मार्ग

मालूम किये थे। हेनरी ने भी वेनिसवासी केवट-नामक नाविक को समुद्र-यात्रा पर रवाना किया। उसने न्युफ़ौण्डलेण्ड के समीपस्थ प्रदेश पर अधिकार कर लिया। १५०८ में केवट का लड़का चीन की तरफ़ से एक उत्तर-पश्चिमी मार्ग मालूम करने के लिए निकला। किन्तु उत्तरी समुद्र के भाफ़ के कारण उसे लौटना पड़ा।

४८ समुद्रीय आविष्कार

हेनरी की वैदेशिक नीति यह थी। वह फ़्रांस की अपेक्षा स्पेन को अपना मित्र बनाना चाहता था। मैत्री को स्थायी बनाने के लिए उसने अपने बड़े लड़के आर्थर का विवाह फ़र्डिनण्ड और इसेबेला की लड़की केथेराइन से कर दिया था। कुछ समय के पश्चात् आर्थर मर गया, किन्तु हेनरी ने विवाह-सम्बन्ध को जारी रखने के लिए पोप की विशेष अनुज्ञा से अपने दूसरे बेटे हेनरी का विवाह केथराईन के साथ कर दिया। इस विवाह से कई महत्व-पूर्ण परिणाम निकले, जिनका वर्णन आगे दिया जायगा।

४९ वैदेशिक विवाह-संबन्ध

स्पेन की तरह स्कॉटलेण्ड को भी अपना मित्र बनाये रखने के लिए हेनरी ने अपनी लड़की मारगरेट का विवाह स्कॉट-लेण्ड के राजा जेम्स चौथे के साथ कर दिया, जिसका फल यह हुआ कि मारगरेट की सन्तति में से जेम्स छठा इँगलेण्ड

के सिंहासन पर बैठा और इँग्लेण्ड तथा स्कॉटलेण्ड एक राजा के अधीन हो गये।

हेनरी सातवें के देहावसान पर उसका लड़का हेनरी आठवाँ १५०८ में राजा हुआ। हेनरी का पहला प्रधान मन्त्री कार्डिनल वुल्से था, जो तात्कालिक योरुप में एक अद्वितीय मनुष्य था। वुल्से एक सच्चा देशभक्त तो था ही पर रिशलू की तरह इँग्लेण्ड को शक्तिशाली बनाने के लिए वह हेनरी को स्वच्छन्द देखना चाहता था। यही उसकी नीति थी। वैदेशिक नीति में वह इँग्लेण्ड को फ़्रांस, स्पेन तथा रोम के बीच पञ्च बनाने का प्रयत्न करता था।

४० हेनरी आठवाँ (१५०६-१५४७) और उसका प्रधान मन्त्री वुल्से.

जब सम्राट् चार्लेस पाँचवाँ और फ़्रांस का राजा फ़्रेंसिस परस्पर युद्ध कर रहे थे तब हेनरी ने फ़्रांस पर आक्रमण किया, पर उससे इँग्लेण्ड को कुछ लाभ न हुआ। किन्तु अभी हेनरी फ़्रांस में ही था कि स्काटलेण्ड के राजा जेम्स चौथे ने फ़्रांस की सहायता करने के लिए इँग्लेण्ड पर आक्रमण कर दिया। किन्तु फ्लॉडेन के युद्ध में स्कॉटलेण्ड की सेना पराजित हुई, जिसमें उनका राजा भी वीर-गति को प्राप्त हो गया।

४१ हेनरी के युद्ध

हेनरी के आठवें वर्ष में लूथर ने अपने पञ्चानवें आक्षेप विटेनबेर्ग के गिरजे के द्वार पर चिपकाये। हेनरी ने उस पत्र

के उत्तर में एक लेटिन पुस्तक लिखी। इस पर पोप उसे एक उपाधि दी 'मज़हब का रक्षक' किन्तु कुछ ही समय बाद हेनरी पोप का बड़ा शत्रु बन गया।

५२ 'मज़हब का रक्षक' हेनरी

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है केथेराईन के साथ हे के विवाह का कारण वास्तविक प्रेम न था, दूसरे केथेराईन पाँच सन्तानों में से चार मर गई थीं, तीसरे एनी बोलिन-नामक एक परिचारिका से उसका प्रेम हो गया था, इसलिए केथेराईन से हेनरी का जी हट गया। इसलिए वह यह चाहता था कि पोप उसे सम्बन्ध-त्याग की अनुज्ञा दे दे। सम्बन्ध-त्याग मज़हब के विरुद्ध था, दूसरे पोप को चार्लस का भी लिहाज़ था, इसलिए उसने इस बात का निर्णय करने के लिए कार्डिनल बुल्से और एक अन्य इटेलियन कार्डिनल का एक कमिशन नियत कर दिया।

५३ केथेराईन से सम्बन्ध-त्याग; बुल्से की मृत्यु (१५३०)

राजा को किसी प्रकार यह विश्वास हो गया कि बुल्से उसके सम्बन्ध-त्याग के लिए प्रयत्न नहीं करता है। इसलिए उसने बुल्से को न केवल आर्चबिशप की उपाधि से वञ्चित कर दिया, वरन् उसे गिरफ़ार करके उस पर राजद्रोह का अभियोग चलाया। कार्डिनल इसी दुःख में मर गया।

इतने में क्रेनमर-नामक एक नवयुवक पादरी ने राजा को परामर्श दिया कि सम्बन्ध-त्याग के विषय में विश्वविद्यालयों

४ विश्वविद्यालयों की स्मति; थामस क्रॉमवेल

की सम्मति लेना चाहिए। विश्वविद्यालयों के भी इस विषय में कई मत थे, इसलिए इनके द्वारा भी हेनरी का काम न निकला।

वुल्से के एक परिचारक थाम्स क्रॉमवेल ने हेनरी को यह सलाह दी कि पोप की परवा न करके उसे अपने आपको चर्च का प्रमुख बना लेना चाहिए। इसे स्वीकार करके हेनरी ने एनी बोलिन का पाणिग्रहण कर लिया।

सन् १५३३ में पार्लामेण्ट में यह क़ानून पास हुआ कि किसी भी मुक़दमे की अपील पोप के पास न की जाय और

५९ पार्लामेण्ट में स्वीकृत क़ानून

इस क़ानून का पालन न करना अपराध माना गया। १५३४ में एक और क़ानून पार्लामेण्ट में स्वीकृत हुआ। वह यह कि भविष्य में आर्चबिशप तथा बिशप का पहला वेतन पोप को न भेजा जाय। इस पर पोप ने क्रोध में आकर हेनरी को मज़हब से बहिष्कृत कर दिया। तब १५३४ में पार्लामेण्ट ने वह क़ानून पास किया, जिसके अनुसार हेनरी इँग्लेण्ड के चर्च का सर्वप्रमुख नियत कर दिया गया। इस क़ानून ने इँग्लेण्ड में एक स्वतन्त्र चर्च की नींव रख दी और इसका स्वीकार न करना एक बड़ा अपराध ठहराया गया, जिसके अनुसार यूटोपिया या 'आकाश कुसुम' नामक पुस्तक के रचयिता सर थाम्स मोर आदि (प्रकरण ४६) जैसे मनुष्य वध किये गये।

एक तो मॉक-समुदाय हेनरी के विचारों के विरुद्ध था, दूसरे

इँग्लेण्ड की भूमि का पाँचवाँ भाग इसके अधिकार में था, तीसरे अन्वेषण करनेवाले कमिशन के मतानुसार ये मठ आचार-भ्रष्टता के घर थे, इसलिए १५३६ में पार्लमेण्ट ने मठों को बन्द कर देने की आज्ञा निकाल दी। तब मठों को बन्द करके उनकी धन-सम्पत्ति ज़ब्त कर ली गई और वह राजा के ख़ुशामदियों को नाम-मात्र क़ीमत पर दे दी गई। (वर्तमान समय के बहुत से अँगरेज़ ज़मींदारों की मलकियत का हक़ उसी समय से शुरू होता है।) मठों के बन्द होने का एक दुष्परिणाम यह हुआ कि लॉर्ड-सभा में एबट तथा प्रायर-पादरी सदस्यों के न होने से वह संस्था ऐसी बेकार हो गई जैसे शरीर बुद्धि तथा इच्छा के न रहने से हो जाता है। अभी तक लार्ड-सभा राजा की स्वेच्छा या आचरण में एक प्रकार का प्रतिबन्ध था, किन्तु इस क़ानून के स्वीकृत हो जाने से लार्ड-सभा कमज़ोर हो गई। उसके कमज़ोर होने से राजा पूर्णतया अनियन्त्रित होगया।

सन् १५३९ में पार्लमेण्ट में एक और नया क़ानून स्वीकृत हुआ, जिसके अनुसार रोमन-केथॉलिक चर्च के बड़े-बड़े सिद्धान्त इँग्लेण्ड के चर्च के अनुकूल ठहराये गये। इस प्रकार अँगरेज़ी चर्च न तो प्रॉटेस्टेण्ट ही रहा क्योंकि उसके सारे सिद्धान्त रोमन-केथॉलिक जैसे थे और न वह रोमनकेथॉलिक ही रहा क्योंकि वह पोप को चर्च का प्रमुख नहीं स्वीकार करता था। हेनरी के राज्यकाल में कई रोमन-केथॉलिक तथा

प्रॉटेस्टेण्ट दोनों, एक तो राजा को प्रमुख अस्वीकार करने से और दूसरे उसके सिद्धान्तों पर विश्वास न रखने से, फाँसी पर चढ़ाये गये।

एनी बोलिन से भी हेनरी जल्दी ही तङ्ग आ गया। इसलिए उस पर पति-भक्ति न होने का दोष लगा कर उसका वध करवा दिया गया। तत्पश्चात् उसने जेनसेमॉ सौर-नामक युवती से विवाह किया, जिससे उसके एक लड़का—एडवर्ड उत्पन्न हुआ और उसकी माता की मृत्यु हो गई। फिर राजा ने क्रमशः तीन विवाह और किये। जिनमें से एक से सम्बन्ध-त्याग कर दिया, दूसरी का वध कर दिया गया लेकिन तीसरी जीवित रही। १५४७ में हेनरी मर गया।

९६ हेनरी का चरित्र तथा कार्य

हेनरी का इँग्लेण्ड के लिए एक सबसे बड़ा काम था। वह था जहाज़ों का एक बेड़ा बनाना। जब योरुप के अन्य देश सेनायें तैयार कर रहे थे तब हेनरी ने देखा कि इँग्लेण्ड का राज्य भी समुद्रों से पार बढ़ाया जा सकता है। इसलिए उसने एक सैनिक बेड़ा बनवाया।

हेनरी के मृत्यु पर उसके नव वर्ष के लड़के, एडवर्ड का अभिषेक हुआ। बालक-राजा का मामा एडवर्ड सेसैार, जो एक कट्टर प्रॉटेस्टेण्ट था, उसका रक्षक नियत हुआ।

९७ एडवर्ड छठा (१५४७-१५५३)

एडवर्ड के राज्यकाल में मजहब में वे परिवर्त्तन किये गये जिनके कारण अँगरेज़ी चर्च रोमन-कैथॉलिक चर्च से पृथक् होकर, एक नया मजहब बन गया। गिरजों से चित्र तथा सलीबें हटा दिये गये, बत्तियाँ तथा धूप जलाना बन्द कर दिया गया, 'सेक्रेमेण्ट' अर्थात् संस्कार के पेय तथा भोजन के अन्दर ईसा की उपस्थिति मानना, मृतकों के लिए प्रार्थनायें करना और 'परगेटरी' या पापमोचन-स्थान आदि बातें मिथ्याविश्वास ठहराई गईं। पादरियों को विवाह करने की अनुज्ञा दी गई और प्रार्थना लेटिन के स्थान में अँगरेज़ी में कर देने के लिए अँगरेज़ी में एक प्रार्थना-पुस्तक भी बनाई गई।

ये सिद्धान्त, जिनकी संख्या उन्तालीस थी, अँगरेज़ी चर्च के प्रारम्भिक सिद्धान्त थे। राजा की आज्ञा से सभी प्रचारकों तथा अध्यापकों के लिए इन पर हस्ताक्षर करना आवश्यक था। अनेक मनुष्यों को नई प्रार्थना के अस्वीकार करने पर कैद भुगतनी पड़ी और कम से कम दो तो जीवित ही जला दिये गये।

एडवर्ड का स्वास्थ्य बिगड़ रहा था। उसके मरने पर ड्यूक-आव्-नार्थम्बरलैण्ड ने जिसके हाथ में राज्य का सारा प्रबन्ध था, प्रॉटेस्टेण्ट-मत को प्रचलित रखने के लिए 'मेरी' को राजसिंहासन से वञ्चित करके अपनी बहू 'लेडीजेन ग्रे' को राजा की उत्तराधिकारिणी बना दिया। किन्तु वह केवल नौ दिन ही राज्य कर पाई।

८८ मेरी (१५५३-१५५८) पोप के साथ पुनः मैत्री

इँग्लेण्डवासी ड्यूक-आव् नार्थम्बरलेण्ड से घृणा करते थे, दूसरे हेनरी आठवें की लड़की मेरी को वास्तविक उत्तराधिकारिणी समझते थे, इसलिए उन्होंने उसे सिंहासन पर बैठा दिया। इस पर कुछ प्रॉटेस्टेण्टों ने राजद्रोह किया, जो बड़ी सख्ती से दबा दिया गया।

मेरी ने स्पेन के राजा फ़िलिप से विवाह किया। फ़िलिप इँग्लेण्ड में आया और विवाह करके वापस लौट गया। तत्पश्चात् मेरी ने इँग्लेण्ड को पोप के अधीन करने का निश्चय कर लिया। कार्डिन पोल-नामक पोप के एक दूत के इँग्लेण्ड में आने पर पार्लमेण्ट के सभी सदस्यों ने अपने अपराधों के लिए क्षमा माँगी और सभी स्वीकृत क़ानून रद्दी कर दिये गये। यह संवाद सुनकर पोप ने बड़ी प्रसन्नता से कहा—'बिछड़ा हुआ लड़का फिर अपने बाप के घर वापस आगया है।'

कॅथॉलिक-पूजन की स्थापना के साथ ही इँग्लेण्ड में प्रॉटेस्टेण्टों पर अत्याचार आरम्भ हो गये। जिन लोगों का वध किया गया उनमें से तीन बहुत प्रसिद्ध हैं। लेटिमर, रिड्ले तथा क्रेनमर। लेटिमर और रिड्ले का अपराध तो यह था कि वे 'संस्कार' में ईसा की उपस्थिति स्वीकार न करते थे। दोनों एक ही स्थान में बाँधकर जीवित जला दिये गये। आग लगने पर सत्तर वर्ष के वृद्ध लेटिमर ने रिड्ले से कहा 'रिड्ले महाराज, हिम्मत न हारना! आज के दिन हम इँग्लेण्ड में

२९ प्रॉटेस्टेण्टों पर अत्याचार

जो ज्योति जला रहे हैं वह कभी नहीं बुझने की !' लैटिमर अग्नि की लपटों में इस प्रकार हाथ धोता रहा मानो वे पानी की बौछारें हों। क्रेनमर निर्बल था, वह अपने विचार छोड़ने के लिए तैयार हो गया। फिर भी जब उसको अग्नि-भेट का आदेश हुआ तब उसे अपनी भूल पर बड़ा दुःख हुआ और उसने अपना दाँया हाथ इसी लिए सबसे पहले आग में डाला क्योंकि 'उसी ने खण्डन-पत्र पर हस्ताक्षर किये थे।'

मेरी के राज्य-काल में दो-ढाई सौ मनुष्य हुतात्मा-पद को प्राप्त हुए, शेष सैकड़ों कैद भुगतते रहे। वास्तव में, इन लोगों के आत्मोत्सर्ग ने ही इँग्लैण्डवासियों का दिल कैथॉलिक चर्च से फेर कर प्रॉटेस्टेण्ट-मत की ओर झुका दिया। किसी विचार की सत्यता के लिए बलिदान ही सबसे बड़ा प्रमाण है। सर्वसाधारण को उसकी सत्यता पर तभी विश्वास होता है जब उसके लिए मनुष्यों की आहुति दी जाती है।

फ़िलिप फ़्रांस के साथ युद्ध कर रहा था कि उसने मेरी से फ़्रांस के विरुद्ध सहायता माँगी। युद्ध का परिणाम यह हुआ कि १५५८ में फ़्रांस में इँग्लैण्ड के एकमात्र स्थान कैले पर भी फ़्रांस का स्वत्व होगया। कैले के खोये जाने के बाद मेरी बहुत दिनों तक जीवित न रह सकी। उसके देहावसान पर एनी बोलिन की लड़की इलिज़बेथ अभिषिक्त हुई।

६८ कैले-हरण (१५५८)

इलिज़बेथ यद्यपि लड़की थी, तथापि उसका साहस और बुद्धि मनुष्यों की सी थी। उसे मज़हबी सिद्धान्तों की अधिक परवा न होते हुए भी उसका स्वाभाविक झुकाव प्रॉटेस्टेण्ट-मत की ओर था। वह अपनी प्रजा के आन्तरिक भाव को भलीभाँति समझती थी, इसलिए अपना आचरण उसी के अनुकूल रखने का प्रयत्न करती थी। उसने जीवनपर्यन्त विवाह नहीं किया कि कहीं वह किसी समुदाय की न समझ ली जावे। उसने १६०३ तक राज्य किया। इस काल में उसने इँग्लेण्ड को एक प्रकार की अप्रसिद्धि की दशा से निकाल कर एक प्रमुख राष्ट्र बना दिया।

६१ इलिज़बेथ (१५५८-१६०३)

इलिज़बेथ में भी कई दोष थे। उसमें विश्वासघात तथा चापल्य था। नीति में वह झूठ और कपट से काम लेती थी। अपनी सुन्दरता की प्रशंसा करने का उसे बड़ा शौक़ था। यद्यपि वह चाटुकारों को बहुत पसन्द करती थी तथापि मनुष्य को पहचानने का गुण उसमें काफ़ी था। उसने अपनी कौंसिल में सबसे बुद्धिमान् तथा राजनीतिज्ञ एकत्र किये थे, जिनमें से सर विलियम सीसल उसका विशेष परामर्शदाता था।

जिस प्रकार मेरी ने एडवर्ड के किये हुए कार्य को उलट दिया था, उसी प्रकार इलिज़बेथ ने मेरी के किये काम को उलट दिया। पार्लामेंट में स्वीकृत क़ानून फिर पास किये गये। जो लोग उनके विरुद्ध आचरण करते थे उन्हें राज्य की

६२ संशोधित चर्च का पुनःस्थापन

ओर से दण्ड दिये जाने लगे। बहुत से मार डाले गये और अनेक बन्दीखानों में ठूँस दिये गये। 'प्राधान्य का कानून' के अनुसार प्रत्येक पादरी तथा सरकारी पदाधिकारी को यह प्रतिज्ञा करना पड़ती थी कि सभी सांसारिक और मज़हबी मामलों में वह राज्ञी को ही प्रधान शासक मानेगा और यह कि वह किसी विदेशी राज्य का स्वीकार नहीं करता। 'सारूप्य का क़ानून' के अनुसार कोई पादरी अँगरेज़ी प्रार्थना के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं पढ़ सकता था, उसे रविवार तथा अन्य पवित्र दिवसों पर अँगरेज़ी चर्च में जाना होता था, और प्रत्यंक अनुपस्थिति के लिए एक शिलिङ्ग जुर्माना देना होता था।

ये क़ानून बड़े सख़्त थे। इनका प्रभाव न केवल रोमन-केथॉलिकों पर हुआ, वरन् प्रॉटेस्टेण्टों में भी एक ऐसा दल बन गया जो अँगरेज़ी प्रार्थना-विधि को स्वीकार करने के लिए तैयार न था। उसे 'नॅनकॉनफ़ॉर्मिस्ट' अर्थात् 'अननुरूपक' कह सकते हैं। इस दल के आगे दो शाखायें हो गईं—'प्युरिटन' या शुचिताश्रयी और 'सेपेरेटिस्ट' या विच्छेदक।

६३ प्रॉटेस्टेन्ट नॅन-कॅनफ़ॉर्मिस्ट—प्युरिटन तथा सेपेरेटिस्ट

'प्युरिटन' वे प्राटेस्टेण्ट थे, जो अँगरेज़ी प्रार्थना-विधि की अपेक्षा अधिक पवित्र विधि का उपयोग करना चाहते थे। उनको इलिज़बेथ के चर्च में बहुत से सुधारों की आवश्यकता दीख

पड़ती थी, इसलिए वे केल्विन के चर्च के समान उसमें पूर्ण क्रान्ति चाहते थे। जो स्टुअर्टवंशीय राजाओं के राज्य-काल में इँग्लेण्ड के चर्च तथा गवर्नमेण्ट को बदलने में सफल हुए थे वे प्युरिटन ही थे। 'सेपेरेटिस्ट' प्युरिटिस्टों से भी दो क़दम आगे बढ़ना चाहते थे। इन्होंने अँगरेज़ी चर्च से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया था और आत्मा के स्वातन्त्र्य के लिए कष्ट-सहन करने पर तैयार थे। इनमें से कई तो देश छोड़ कर हॉलेण्ड चले गये, और वहाँ से जहाज़ लेकर वे 'यात्री-पिताओं' ('पिल्ग्रिम फ़ादर्स') के रूप में अमरीका पहुँचे, जहाँ उन्होंने राजनैतिक तथा मज़हबी स्वतन्त्रता की नींव रक्खी।

इलिज़बेथ का बहुत सा समय स्कॉट की रानी मेरी स्टुअर्ट के साथ होनेवाले झगड़ों में गुज़रा। मेरी स्कॉटलेण्ड के राजा जेम्स पाँचवें की लड़की थी। बचपन में ही उसका विवाह फ़्रांस के राजकुमार फ़्रेंसिस द्वितीय के साथ कर दिया गया था। वह हेनरी आठवें का एनी बोलिन के साथ विवाह होना सर्वथा अनुचित समझती थी और इसी लिए इलिज़बेथ का इँग्लेण्ड के सिंहासन पर कोई अधिकार नहीं समझती थी। जब उसका पति सिंहासन पर आरूढ़ हुआ तब उन्होंने फ़्रांस के राजा तथा राज्ञी के साथ-साथ स्कॉटलेण्ड एवं इँगलेण्ड के राजा तथा राज्ञी की उपाधि भी ग्रहण कर ली। स्वभावतः इलिज़बेथ इससे ईर्ष्या करने लगी और उसने स्कॉटलेण्ड के प्रॉटेस्टेण्टों

६४ मेरी स्टुअर्ट और इलिज़बेथ

को अपनी तरफ़ कर के उन्हें मेरी के विरुद्ध उकसाना आरम्भ कर दिया।

अगले वर्ष ही फ़्रांस के राजा का देहपात हो गया और मेरी स्कॉटलेण्ड वापस चली आई। उसकी आयु इस समय उन्नीस वर्ष की थी और रूप-लावण्य ते अद्वितीय समझा जाता था। रोमन-कैथॉलिक होने के कारण स्कॉटलेण्ड के निवासी उसे पसन्द न करते थे और उनका नेता जाह्न नॉक्स उसके सामने पहुंच कर मूर्ति-पूजा के विरुद्ध भाषण करता था।

सन् १५६५ में उसने लार्ड डार्नली से व्याह कर लिया, और साथ ही रीटसिओ-नामक अपने एक इटेलियन मन्त्री पर इतनी कृपा करने लगी कि ईर्ष्यावश डार्नली ने उसका वध करवा डाला। मेरी ने प्रतीकार की इच्छा से प्रेरित होकर डार्नली के मकान को बारूद से उड़ा दिया और तब उसी बॉथवल के अर्ल के साथ विवाह कर लिया, जिस पर लोग डार्नली के वध का सन्देह करते थे। स्कॉटलेण्ड-वासियों ने राजद्रोह करके मेरी को एक क़िले में बन्द कर दिया। १५६७ में उसे इस पर बाध्य किया गया कि वह अपना राज-मुकुट अपने छोटे लड़के जेम्स के सिर पर रख दे।

अगले बरस वह भागकर इँग्लेण्ड चली गई और वहाँ अपने आपको इलिज़बेथ की करुणा पर छोड़ दिया। इलिज़बेथ/ने उसे उन्नीस वर्ष तक क़ैद रक्खा। इस काल में

मेरी ने इलिज़बेथ के विरुद्ध कई षड्यन्त्र रचे। इसी समय योरुप के अन्य देशों में मार-काट हो रही थी। फ्रांस में (१५७२) ह्यूजनाटों का वध किया गया, नीदरलेण्ड में (१५८४) प्रिंस ऑरेञ्ज को एक मनुष्य ने मार डाला। इस कारण इँग्लेण्डवासियों में अपनी राज्ञी के लिए भय सा उत्पन्न हो गया। इसी भयंकर-दशा में उन्हें मेरी तथा स्पेन के राजा फ़िलिप के एक षड्यन्त्र, जिसका उद्देश इलिज़बेथ के स्थान पर मेरी को सिंहासनारूढ़ करना था, का पता लगा। मेरी पर षड्यन्त्र-रचना का अपराध लगाकर अभियोग चलाया गया और १५८७ में उसे मृत्यु-दण्ड दिया गया।

६९ स्पेन का 'आडा'

फ़िलिप पहले से ही इलिज़बेथ से नाराज़ था, क्योंकि उसने नीदरलेण्ड में राजद्रोही प्रजा को, जब वह इँग्लेण्ड के प्रॉटेस्टेन्ट लोगों को दबाकर सुधार-सिद्धान्तों को योरुप से उठा देना चाहता था, सहायता की थी। अब इस षड्यन्त्र के कारण मेरी के वध ने फ़िलिप को अपने निश्चय पर सुदृढ़ कर दिया। उसने सैनिक जहाज़ों का बेड़ा या 'अमोडा' इकट्ठा करके इँग्लेण्ड पर आक्रमण करने का निश्चय किया। पोप ने न केवल उसे प्रोत्साहन दिया, प्रत्युत धन के द्वारा भी सहायता करने का वचन दिया। बस लिसबन से एक सौ तीस सैनिक जहाज़ों का बेड़ा इँग्लिश चेनल को रवाना हो गया।

यह वह आर्मांडा था, जो सबसे पहले एटलाण्टिक महासागर में निकला था। इससे समस्त इँग्लेण्ड में हल-चल मच गई। अमीर और ग़रीब, प्रॉटेस्टेण्ट और केथॉलिक सभी इँग्लेण्डवासी शत्रु के मुक़ाबले के लिए तैयार होगये। १६ जूलाई १५८८ को पहरादारों ने बेड़े को देखा। समस्त देश भर में एक स्थल से दूसरे स्थल पर आग जलाकर इस सङ्कट की सूचना दी गई। अँगरेज़ी जहाज़, जिनकी संख्या अस्सी थी, आर्मांडा पर इधर-उधर से सात दिन तक आक्रमण करते रहे। एक रात को केले के निकट कुछ जहाज़ों में आग लगा दी गई और अगले दिन ड्रेक, हावर्ड तथा सेमैार के अधीन अँगरेज़ी जहाज़ों ने उनको बहुत हानि पहुँचाई। बहुत से स्पेनिश जहाज़ उत्तर की ओर जा निकले। किन्तु उसी समय उत्तरी महासागर में ऐसा तूफ़ान आया कि लगभग दो तिहाई जहाज़ स्कॉट-लेण्ड तथा आयर्लेण्ड के तटों के साथ टकरा कर नष्ट होगये। बचे हुए स्पेन जा पहुँचे।

इस युद्ध ने संसार को स्पेन की शक्तिहीनता और इँग्लेण्ड की बढ़ती हुई शक्ति का परिचय दिया। साथ ही इसने केथॉलिक तथा प्रॉटेस्टेन्टों के पारस्परिक आन्दोलन का अन्त कर दिया। इसका फल केवल यही नहीं हुआ कि इँग्लेण्ड प्रॉटेस्टेन्ट होगया, प्रत्युत इससे रोमन-केथॉलिक मज़हब की सीमा ही बँध गई। नीदरलेण्ड, उत्तरी जर्मनी और स्केण्डे-नेविया में प्रॉटेस्टेण्ट समुदाय की स्वतन्त्रता सुनिश्चित होगई।

इँग्लेण्ड पर सीधे आक्रमण में असफल होने पर फ़िलिप ने आयर्लैण्ड के क़बीलों को बहका कर इलिज़बेथ को तङ्ग कराना आरम्भ किया। १५६४ में टिरोन के अर्ल ने राजद्रोह किया और स्पेन ने उसे सहायता देने की प्रतिज्ञा की। इलिज़बेथ ने इसके मुक़ाबले पर स्पेन में जहाज़ों का एक बेड़ा भेजा, जिसने केडिज़ के बन्दर में जाकर वहां के व्यापारिक जहाज़ नष्ट कर दिये और नगर को जला दिया। १५६६ में इलिज़बेथ ने एसेक्स के अर्ल को आयर्लैण्ड भेजा किन्तु उसे सफलता न प्राप्त हुई। उसके लौटने पर लार्ड मौण्टजॉए रवाना किया गया। उसने न केवल राजद्रोह को दबा दिया, प्रत्युत द्वीप के कुछ भागों से वहाँ के मूल-निवासियों को निकाल कर उनके स्थान में अँगरेज़ों तथा स्काचों को बसा दिया।

६६ टिरोन का राजद्रोह (१५६४)

पैंतालीस वर्ष राज्य करके सत्तर वर्ष की आयु में (१६०३) इलिज़बेथ की मृत्यु हुई और उसके साथ ट्यूडर-वंश का अन्त हो गया।

तीसरा अध्याय

स्पेन की स्वाधीनता का इतिहास

१—स्पेन में मूरों का राज्य

हज़रत मुहम्मद के पश्चात् ख़लीफ़ाओं ने मिस्र, ईरान, उत्तरीय अफ़रीक़ा आदि देशों पर आक्रमण किये थे। थोड़े ही दिनों में दजला-नदी से लेकर एटलाण्टिक-महासागर तक सारे देशों में अज़ाँ की आवाज़ सुनाई पड़ने लगी। यूनानियों ने मुसलमानी सेनाओं का पर्याप्त समय तक सामना किया किन्तु अन्त में उसमानी तुर्कों ने कुस्तुनतुनिया को विजित कर ही लिया। भूमध्य-सागर में सूटा के क़िले पर भी, जो यूनानियों के अधीन था, मुसलमानों का स्वत्व होगया। परन्तु कुस्तुनतुनिया से दूर होने के कारण उसकी रक्षा एक प्रकार से स्पेन के ही ज़िम्मे रही।

मुसलमानी आक्रमण के समय स्पेन की अवस्था

सूटा (स्पेन में) के पराजित होने की देर थी कि स्पेन की उर्वरा भूमि भी मुसलमान विजेताओं के हाथ लग गई। गुआडालक्वेर-नदी के तट पर सात दिन तक मुसलमान और ईसाई-सेनाओं के बीच घोर युद्ध होता रहा, अन्त में, जुलाई ७११ को ईसाइयों की ऐसी पराजय हुई कि उसकी मार से

सँभलने में उसे आठ शताब्दियों से कम समय न लगा। मुसलमानों की संख्या थोड़ी होते हुए भी किस तरह वे स्पेन पर राज्य करते रहे, स्पेन क्यों शताब्दियों तक मुक्ति प्राप्त करने में असफल रहा, और अन्त को किस प्रकार फ़र्डिनन्ड तथा इसबेला के अधीन उन्हें फिर दुबारा स्वच्छन्दता प्राप्त हुई, ये बातें ऐसी हैं जिन पर यहाँ विचार करना आवश्यक है।

स्पेनिश-ऐतिहासिकों ने मुसलमान मूरों की विजय के विभिन्न कारण बतलाये हैं:—किसी ने राजा वर्प्रसिपा की अयोग्यता, किसी ने अडरिक की स्वेच्छाचारिता, किसी ने यहूदियों की दग़ाबाज़ी, किसी ने सरदारों की पारस्परिक फूट और किसी ने सर्वसाधारण का नैतिक पतन। परन्तु पूर्णरूप से इस रहस्य को समझने के लिए मुसलमानी आक्रमणों से पहले के स्पेन के इतिहास पर एक दृष्टि डालनी आवश्यक है।

स्पेन या आइबेरिया अति प्राचीनकाल से बाह्य आक्रमण-कारियों के अत्याचार का शिकार हो रहा था। केल्ट, यूनानी, फ़ीनीशियन तथा कारथेजियन एक एक कर के आये और उन्होंने स्पेन के मूलनिवासियों को बाहर निकाल दिया। जब रोम-साम्राज्य फैला तब स्पेन उसका एक भाग बन गया। जब रोम की शक्ति को मटियामेट करनेवाली उत्तरी भयानक जातियाँ आईं तब स्पेन भी उनके विभिन्न क़बीलों, बण्डाल आदि में बँट गया। पाँचवीं शताब्दी में वहाँ गॉथ लोग आये

और उन्होंने फिर से स्पेन को विजित करना आरम्भ किया। ये लोग इस समय रोमन लोगों के साथ थे। यद्यपि उन्होंने रोमन-भाषा और रीति-रवाज ग्रहण कर लिये थे तथापि वास्तव में वे रोमन सफलता के रहस्य से अपरिचित न थे।

रोमवालों ने स्पेनवासियों को एक जाति बना दिया था, परन्तु गॉथ एक विदेशी शक्ति की छावनी के समान थे। ये सर्वसाधारण के साथ बिलकुल मिलते-जुलते न थे। इसलिए गॉथों की एक 'उच्च श्रेणी' और अन्य लोगों की 'नीच श्रेणी' बन गई। भोग-विलास के कारण सरदार तो बिलकुल निकम्मे हो चुके थे और ग़रीब काश्तकार एक प्रकार से उनके दास थे। स्पेन में यह प्रथा पहले से ही चली आती थी कि जो कोई ज़मीन ख़रीदता था, उसके काश्तकार भी उसके साथ ही मिलते थे अर्थात् वे एक प्रकार से ज़मीन के साथ बँधे हुए थे। अब गॉथ सरदारों ने इस दासत्व को और भी करुणाजनक और भयानक बना दिया।

इस प्रकार ये दोनों श्रेणियाँ तो देश के शरीर के स्वस्थ अङ्ग नहीं गिने जा सकते थे। शेष रही मध्यश्रेणी। शासन के सारे कार-बार के भार को यही लोग उठाते थे। इसलिए उनका भी हाल अच्छा न था। पादरी-दल, जो किसी समय यह प्रचार करता था कि सारे ईसाई भाइयों के समान एक दूसरे के बराबर हैं, अब वे भी धन-सम्पन्न होजाने से बेचारे ग़रीब दासों पर अत्याचार करने

में कोई कसर न रखते थे। ६७२ तक गाँथों के लिए किसी दूसरी श्रेणी में विवाह करना नियम के विरुद्ध था।

इस प्रकार मुसलमानी आक्रमण के समय स्पेन की जनता को इस बात में कोई लाभ नहीं मालूम हो सकता था कि वे मुसलमान सेनाओं के साथ युद्ध करके अपना ख़ून बहायें। गाँथों का राज्य मानों एक जर्जर इमारत थी। इस्लाम के यौवनपूर्ण के बलवान् हाथों से छूने का तो बहाना था, वास्तव में वह अपने आप गिरना चाहती थी।

उन शक्तियों का, जो इस समय के स्पेन के इतिहास को बनानेवाली हैं, संक्षेप में उल्लेख कर दिया गया है। उन शक्तियों ने किन-किन मनुष्यों तथा किन-किन विशेष घटनाओं के द्वारा इतिहास का रूप प्राप्त किया, इसका उल्लेख संक्षेपतः यहाँ किया जाता है।

स्पेन का राजवंश

राजा वपसिपा को 'धूर्त' राजा की उपाधि दी गई है। और वास्तव में, जितनी हानि इसकी नीति ने स्पेन को पहुँचाई है यदि उसका ख़याल किया जाय तो यह नाम अनुचित भी नहीं। जंगजू नस्ल के वंशज गाँथों के सामने जब कोई बाह्य शत्रु न होता तब वे आपस में ही युद्ध करने लगते थे। वपसिपा को यह बात पसन्द न थी। उसने देश के सारे बड़े-बड़े क़िले गिरवा दिये जिससे लोगों का युद्ध-भाव जाता रहे। इस नीति से शान्ति का भाव फैलने लगा और

विलासप्रियता बढ़ने लगी। मुसलमानों की सफलता तथा आश्चर्यजनक उन्नति को देखकर उसने अपने देश के लिए यह निष्कर्ष निकाला कि पाप करना सीखना चाहिए। मुसलमानी प्रथा के अनुसार उसने एक से अधिक स्त्रियों से व्याह करने तथा विवाह के बिना ही दासियाँ रखने की रीति को बढ़ा दिया। राज-नियमानुसार उसने पादरियों के लिए न केवल अविवाहित रहने का प्रतिबन्ध हटा दिया वरन् उन्हें कई विवाह करने के लिए विवश भी किया।

वपसिपा को हटाकर ओडरिक ने स्वयं सिंहासन पर अधिकार जमा लिया। इसके राज्य का आरम्भ तो अच्छा हुआ किन्तु अन्त में वह भी अपने आपको भोग के प्रलोभनों से न बचा सका। एक मुसलमान राजकन्या के साथ व्याह करके ओडरिक सदा अपने हरम में ही मग्न रहता था। वपसिपा का जमाई मौण्ट जूलियन सूटा का गवर्नर था। तात्कालिक रीति के अनुसार उसने अपनी लड़की शिक्षा के लिए ओडरिक के राजप्रासाद में भेजी। राजा ने उसका सर्वस्व-हरण करने का निश्चय किया। लड़की ने अपने पिता को पत्र लिखा इस पर जूलियन उसे वापस ले गया। प्रतीकार की इच्छा से उसने मुसलमानों को, जिनका वह अभी तक बड़ी वीरता से सामना कर रहा था, स्पेन पर अधिकार करने का निमन्त्रण दिया।

उत्तरी अफ़रीका का अरब गवर्नर मूसा बड़ा बुद्धिमान्

और सतर्क मनुष्य था। ७१० में उसने कुछ सैनिक जूलियन के जहाज़ों में रवाना किये। उनके सफल होने से मूसा को ज्ञात होगया कि स्पेन वास्तव में बहुत निर्बल है। दूसरी बार उसने एक भारी सेना भेजी। गुआडालक्वेर नदी पर सात दिन तक दोनों सेनाओं में युद्ध होता रहा। मुसलमानी फ़ौज में अरब तो बहुत कम थे, अधिकतर बर्बर थे। उनका अफ़सर तारक भी, जिसके नाम से जबल-उल-तारक या जिबराल्टर अब तक प्रसिद्ध है, बर्बर ही था। ये लोग, वास्तव में, वही वंडाल थे, जिन्हें गॉथों ने पहले स्पेन से निकाल दिया था। लेकिन अब एक ओर तो ये गॉथ विलासिता के कारण निर्बल हो चुके थे, और दूसरी ओर वंडालों में इस्लामी रङ्ग में रङ्गने के कारण एक नया जीवन आगया था। गॉथ पराजित हुए। स्पेन में राजा वपसिपा की मूर्खता से क़िले तो बिलकुल थे ही नहीं इसलिए मुसलमानों ने एक नगर के बाद दूसरे नगर पर स्वत्व जमाना शुरू कर दिया। केवल कॉर्डोवा-नगर ने कुछ थोड़ा सामना किया। नहीं तो समस्त देश ऐसी बेबसी की अवस्था में था कि लोग बिना शस्त्र उठाये ही पराधीनता स्वीकार कर लेते थे।

यहूदियों ने भी मुसलमानों की पर्याप्त सहायता की। टोलेडो-नगर में, जहाँ गॉथक राजा का कोष था, शायद कुछ युद्ध होता। परन्तु कहा जाता है कि यहूदियों ने मूरों की राह साफ़ कर दी। मुसलमान भी यहूदियों को पीड़ित न

करते थे। जहाँ अरब लोग युद्ध के लिए पहुँचते वहाँ यहूदी भी साथ ही साथ व्यापार के लिए जाते थे। और जब शान्ति हो जाती तब अरब, यहूदी तथा यूनानी विद्या, कला, विज्ञान तथा दर्शनशास्त्र की उन्नति में लग जाते। दो-तीन वर्ष के अन्दर ही मूर पिरेनीस-पर्वत के अञ्चल तक जा पहुँचे और फ्रांस पर अधिकार जमाने की धुन में लगे। परन्तु इस समय फ्रांस स्पेन के गॉथों के समान निरुत्साह अथवा भीरु न था। कुछ दिन युद्ध करने के पश्चात् चार्लेस की सेना ने मुसलमान सेना के दाँत ऐसे खट्टे कर दिये कि दुबारा मूरों को फ्रांस पर आक्रमण करने का साहस न हुआ।

समस्त स्पेन अब दमिश्क के ख़लीफ़ा के अधीन होगया था। कई एक स्पेनिश सरदार उत्तरीय पार्वत्य प्रदेश में चले गये थे।

मुसलमानी राज्य

वपसिपा और जूलियन के वंशज तथा अन्य कई वंश, जो जातीय अभिमान की अपेक्षा व्यक्तिगत सुख को अच्छा समझते थे, ख़ूब मज़े में अरब राजा की छत्रछाया में रहने लगे।

स्पेनवासी पहले ही गॉथ शासकों तथा सरदारों से तङ्ग आ गये थे। ईसाई भी वे नाम-मात्र के ही थे। इसलिए उन्होंने मूरों का स्वागत किया। मूरों ने बड़ी बुद्धिमत्ता से काम लिया। उन्होंने विजित जाति पर अत्याचार नहीं किये वरन् लोगों को ऐसी शान्ति और सुख-चैन से रक्खा कि उन्हें ईसाई शासकों के राज्य में यह कभी नसीब नहीं हुआ था। पहले कुछ समय

तक तो अंधाधुँधवध, लूट-मार आदि बेशक होती रही और ऐसा होना स्वाभाविक भी था। किन्तु शीघ्र ही उन्होंने राजप्रबन्ध सुव्यवस्थित करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने लोगों को अपने न्यायाधीश चुनने की अनुज्ञा दे दी, जो वहाँ के नियमानुसार निर्णय करते थे। ज़िले के अधिकारी भी उसी ज़िले के होते थे। जो सरदार उत्तरी पहाड़ी प्रदेश में भागकर चले गये थे, उनकी ज़मीनें उन्हीं के दासों को दे दी गईं।

मुसलमान सैनिक बनना पसन्द करते थे; काश्तकारी उन्हें नापसन्द थी। इसी लिए वे भूमि की उपज का एक भाग ही लेकर सन्तुष्ट हो जाते थे। कुछ समय के पश्चात् उन्होंने कर की व्यवस्था प्रचलित कर दी। इसके अनुसार प्रत्येक ज़मींदार को, बिना किसी मज़हब के लिहाज़ के, उपज के नियमित अंश के अतिरिक्त कर भी देना पड़ता था। इस्लाम-मज़हब में दासों की मुक्ति एक बड़ा पुण्य कार्य माना गया है। इसके लिए भी मुसलमान अधिकारियों ने प्रयत्न किया। इन बातों से, स्वभावतः, वे लोगों के हृदय पर राज्य करने लगे।

इन बातों के अतिरिक्त मज़हब की समस्या भी कठिन न थी। स्पेन में ईसाई-मज़हब नाम-मात्र था। वहाँ के निकम्मे पादरियों ने लोगों को अपनाने का कभी प्रयत्न नहीं किया था। साथ ही मुसलमान अधिकारियों की ओर से पूर्ण मज़हबी स्वतन्त्रता थी। भूमि से जकड़े हुए ग़रीब दासों को एक प्रकार से मुक्ति का मार्ग दिखाई पड़ने लगा। वे

मसजिद में जाते, कलमा पढ़ते और मुसलमान बन जाते। इस प्रकार स्पेन में इस्लाम के प्रचारार्थ तलवारें भी नहीं चलाई गईं। मज़हबी दृष्टि से लोगों के सन्तुष्ट होने का सबसे प्रबल प्रमाण यह है कि ईसा की आठवीं शताब्दी में स्पेन में एक भी मज़हबी द्रोह नहीं हुआ।

विचार-स्वातन्त्र्य के साथ बौद्धिक उन्नति के लिए भी तत्कालीन मुस्लिम-शक्ति प्रसिद्ध है। योरुप में सबसे पहला विश्वविद्यालय कॉर्डोवा में मुसलमान शासकों ने ही स्थापित किया था। इस समय स्पेन में विभिन्न विद्याओं की जो उन्नति हुई उससे पड़ोस की जातियाँ चकित हो रही थीं।

कॉर्डोवा एक अति सुन्दर नगर था। इसकी लम्बाई दस मील थी। गुआडालकेवेर या अकबर—नदी के तट पर संगमरमर की बड़ी ऊँची इमारतें बनी हुई थीं। नगर में अनेक बाग़ लगे थे। जिनके लिए पर्वतों से पानी सिक्के की नालियों के द्वारा लाया जाता था और सोने-चाँदी के हौज़ों तथा संगमरमर के तालाबों में इकट्ठा किया जाता था। इनके अवशेष अभी तक बाक़ी हैं। मूरों ने सिँचाई के लिए नहरें भी बनवाई थीं।

साहित्य और विज्ञान के अतिरिक्त चिकित्सा-शास्त्र, मज़हब तथा क़ानून के अध्ययन के लिए भी संसार के सभी भागों से लोग कॉर्डोवा में एकत्र होते थे। सुलतान-नामक स्पेन के दूसरे मुसलमान शासक को पढ़ने-लिखने का ऐसा व्यसन था कि उसने, उस काल में जब कि मुद्रण-कला का

आविष्कार न हुआ था, अपने पुस्तकालय में चार लाख हस्तलिखित पुस्तकें इकट्ठी की थीं। वह स्वयं इतना विद्वान् था कि उसकी मृत्यु के पश्चात् भी लोग उसकी टिप्पणियों को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

ये सब बातें उस ज़माने की हैं जब इँग्लेण्ड के सेक्सन-लोग कन्दराओं जैसे मकानों में रहते और घास-फूस से बिछौनों का काम लेते थे। उस समय केवल इटली में योरुप में सभ्यता कहीं-कहीं दिखाई देती थी। तब मूरों ने कॉर्डोवा में सुन्दर बाग़ तथा इमारतें ही नहीं बनाईं, वरन् अनेक विद्याओं में भी उन्होंने बड़ी उन्नति की। शिल्प में वे सबसे आगे थे। मिट्टी तथा धातुओं के बर्तन, रेशम के कपड़े और खड्ग आदि शस्त्र बनाने में मूरों का स्पेन अद्वितीय था।

२—स्पेन की स्वाधीनता

गुआलडीलेट के निर्णायक युद्ध के पश्चात् ईसाई दो दिशाओं में भागे। थियोडमेर, जो रोडरिक का वंशज था, एक बड़ा दूरदर्शी एवं चतुर मनुष्य था। अपने साथियों को लेकर उसने मरसिया-पर्वतों की राह ली। यद्यपि उसने मूरों को रोकने का प्रयत्न किया तथापि वह सफल न हुआ। अन्त में उसने मूरों

स्वतन्त्रता-इच्छुक जन-संख्या

से सन्धि कर ली, जिसके अनुसार ख़लीफ़ा के अधीन उसे अपने देश पर राज्य करने का अधिकार दे दिया गया। लगभग पैंतीस बरस तक उसके उत्तराधिकारियों ने राज्य किया, जिसके पश्चात् वह प्रदेश मुसलमानी राज्य में मिला लिया गया।

इनके अतिरिक्त एक ऐसा दल भी था जिसका जातीय भाव यह सहन न कर सकता था कि वे किसी विदेशी शासन के अधीन नाम-मात्र का स्वतन्त्र जीवन, चाहे वह कितना ही सुखपूर्ण क्यों न हो, व्यतीत करें। उन्होंने आस्ट्रेस-नामक उत्तरी प्रदेश की ओर अपना मुख फेरा। यहाँ के पहाड़ी निवासियों को कारथेजियन, रोमन, वण्डाल और गॉथों में से किसी ने भी विजित नहीं किया था। ये लोग बड़े परिश्रमी थे और युद्ध तो वायु के समान इनके जीवन के लिए आवश्यक था। आस्ट्रेस की पहाड़ियाँ स्पेनिश देश-भक्तों की आश्रय-दाता थीं और अब भी उन्होंने वही काम दिया। जो दल इस ओर गया था उसने पेलापो को अपना नेता बनाया। पुराने गॉथों में यह प्रथा नहीं थी कि पिता के पश्चात् पुत्र ही सिंहासन पर बैठे। राजा प्राय: राजवंश में से लोगों की ओर से चुना जाता था, और वे प्राय: वंश के छोटे सदस्य की अपेक्षा बड़े को पसन्द करते थे। पेलापो को लोगों ने उसके व्यक्तिगत गुणों के कारण निर्वाचित किया था।

यद्यपि मूरों ने आस्ट्रेस तक गॉथों का पीछा किया

किन्तु उन्होंने उसे कभी अपना घर न बनाया। मैदान ही उन्हें दिल से प्यारे थे और वहाँ के जीवन को वे पहाड़ी जीवन के पीछे तिलाञ्जलि नहीं देना चाहते थे। इसके अतिरिक्त जो लोग आस्ट्रेस तक पहुँचे वे संख्या में इतने थोड़े थे कि मूर उन्हें भय का कारण न समझते थे। पेलापो के अधीन यहाँ एक छोटा सा स्वतन्त्र राज्य बन गया, जिसके लिए उन्हें बड़े कष्ट सहन करने पड़े। सन् ७१८ में वाड्कङ्गा के स्थल पर उन्होंने मूरों को पराजय दी। यद्यपि यह युद्ध बड़े महत्त्व का न था तथापि इसने मुसलमानों का जादू तोड़ दिया और ईसाइयों को यह आशा हो चली कि सम्भवतः वे फिर अपने देश को वापस ले सकेंगे।

आस्ट्रेस की पहाड़ियों में गॉथों को अपने पुराने पाप धोने के लिए पर्याप्त समय मिल गया। पर इस छोटे से पार्वत्य प्रदेश में दो विभिन्न जातियाँ नहीं रह सकती थीं, इसलिए गॉथों ने अपने घमण्ड को एक ओर रखकर आस्ट्रेस के मूलवासियों से मेल किया। आस्ट्रेस में अब दो जातियाँ न थीं, वरन् एक ही स्पेनिश जाति थी। दोनों के जातीय भेद-भाव ऐसे दूर हो गये, मानो उनका पृथक्-पृथक् अस्तित्व ही न था। इन्हीं कारणों से स्पेन की स्वतन्त्रता की नींव आस्ट्रेस की पहाड़ी में रक्खी गई और आस्ट्रेस के द्वारा ही स्पेन ने मुसलमानी राज्य से मुक्ति प्राप्त की।

पेलापो के उत्तराधिकारियों ने धीरे-धीरे अधिक प्रदेश

पर अपना स्वत्व प्राप्त करना आरम्भ किया। कुछ ही समय में उन्होंने गेलिशिया, लिपन तथा पुर्तुगाल भी अपने अधिकार में कर लिये और इस प्रकार एक बड़ा राज्य बना लिया। किन्तु फिर भी इस प्रदेश की सीमायें कभी ठीक तरह से नियत नहीं हो सकी थीं। यह किसी निर्बल राजा के समय में छोटा हो जाता था और समर्थ तथा बलवान् के राज्य-काल में बढ़ जाता था। बीच में कई राजा या सरदार ऐसे भी आये जिन्होंने मुसलमान शासक को राजस्व देना भी स्वीकार कर लिया। किन्तु फिर दूसरों ने इस दासत्व को परे फेंक दिया।

पहले कहा गया है सर्वसाधारण लोग मूरों के शासन से हर प्रकार संतुष्ट थे। उनको पूर्ण मज़हबी स्वतन्त्रता प्राप्त थी और एक साधारण कर के सिवाय उनके साथ मुसलमानों-जैसा व्यवहार होता था। लोगों में यही एक भाव प्रधान था कि मुसलमानों को स्पेन निकाल कर अपना शासन स्थापित कर लें, यह पर बात सम्भव न दिखाई पड़ती थी। उस समय अन्य कोई सुधार अनावश्यक था।

नगरों में राजद्रोह का बीज

फिर भी ख़ास कॉर्डोवा में मज़हबी जोश से भरे हुए कुछ ऐसे मनुष्य भी थे, जिनको विदेशियों के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध रखना असह्य था। नवीं शताब्दी में स्पेन के एक भाग में यह भाव प्रचण्ड होने लगा। इसका नेता पुलोजेस-नामक एक फ़ौलादी मनुष्य था। उसके अधीन कई पादरियों

तथा स्त्रियों ने भी इस्लाम को गालियाँ देना आरम्भ कर दिया। इन लोगों को मूर-गवर्नमेण्ट की ओर से समझाने का प्रयत्न किया गया कि जब उनको अपने मज़हब के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता है और जब मुसलमान हज़रत-ईसा को आदर के साथ स्मरण करते हैं तब उनके लिए हज़रत मुहम्मद का अनादर करना अनुचित है। परन्तु वे तो बलिदान होने के लिए जान-बूझ कर सब कुछ कर रहे थे। इसलिए राज्यादेश सफल न हुए। इस पर फिर वही कड़ा मुसलमानी क़ानून, जिसके अनुसार ऐसे अपराधों के लिए मृत्यु का विधान था काम में लाया गया।

पुलोजेस ऐसा पाषाण-हृदय था कि उसने स्वयं अपनी प्रेयसी से फाँसी पर चढ़ने का अनुरोध किया और बड़े अभिमान के साथ उसे मज़हब पर बलिदान कर दिया। अन्त में एक अभियोग में क़ाज़ी ने उसे भी अपराधी ठहराया और उसको बेतों का दण्ड दिया गया। इस पर पुलोजेस ने कहा, "लो अपनी तलवार निकालो, उसके लिए मेरा शीश तैयार है। किन्तु एक काफ़र के हाथ से बेत लगवाना मेरे लिए असह्य है।" इसके साथ ही उसने हज़रत मुहम्मद का अपमान किया। इसलिए वह भी ८५९ में मौत के घाट उतारा गया। पुलोजेस के साथ बलिदान की तरङ्ग भी नीचे बैठ गई।

यद्यपि पुलोजेस-दल कुछ दिन पहले ज़ोर पकड़ रहा था

तथापि मूरों को निर्बल बनाने में उसने कोई महत्त्व-पूर्ण काम नहीं किया। मूर-शासन की निर्बलता के केवल दो कारण थे—मुसलमानों की आन्तरिक निर्बलता तथा आस्ट्रेस की ईसाई जन-संख्या।

मुसलमानों में फूट तथा विलास-प्रियता

स्पेन के सरदारों को दमिश्क के खलीफ़ा अथवा उत्तरीय अफ़्रीका के गवर्नरों की ओर से नियत होने के कारण उनके पारस्परिक मत-भेद तथा झगड़ों से शासन को बड़ी हानि हो रही थी। लेकिन केवल अरब के दल ही इन परिवर्तनों के अन्दर काम नहीं कर रहे थे, वरन् बर्बर लोग भी अपनी शक्ति प्रदर्शित करने लगे थे।

स्पेन को विजित करनेवाली पहली सेना में अधिकतर बर्बर ही थे। ये बड़े परिश्रमी एवं विश्वस्त लोग थे। इन्होंने पहले अरबों का सख्त मुकाबला किया था, किन्तु बाद में इस्लाम ग्रहण कर लिया। उनके मत के अनेक सिद्धान्त भी इस्लाम में भरती कर लिये गये। इस प्रकार बर्बरों में बहुत सी उपजातियाँ बन गईं, जिन्होंने स्पेन के इतिहास में पर्याप्त भाग लिया था। इस बात को बर्बर बड़ा बुरा समझते थे कि विजय के कष्ट तो वे उठायें और उसका फल अरब खा जायँ। अमीर अब्दुल-मुल्क के काल में यह भाव यहाँ तक फैल गया कि विवश होकर उसे बर्बरों को दबाने के लिए अफ़रीका से सीरियन लोगों को बुलाना पड़ा। सीरियनों ने इसका काम

तो कर दिया किन्तु अब मामला और भी पेचदार होगया, क्योंकि सीरियन भी स्पेन की उर्वरा भूमि को छोड़कर वापस नहीं जाना चाहते थे। दमिश्क के ख़लीफ़ा को वहाँ एक नया गवर्नर भेजना पड़ा, जिसने सारे प्रदेश को दमिश्कवालों, पेलिस्टाईनवालों और सीरियनों में बाँट दिया। परन्तु यह गुत्थी इस ढङ्ग से सुलझनेवाली न थी।

सन् ७५० में अबासी वंश ने उमिया-वंश के ख़लीफ़ों को बाहर निकाल दिया। निर्वासित वंश का राजकुमार अब्दुलरहमान अफ़रीका पहुँचा और बाद में अपनी वीरता तथा साहस से उसने स्पेन पर अधिकार कर लिया। एक एक करके उसने स्पेन के सभी भागों को अपने अधीन कर लिया और अबासी ख़लीफ़ों की अधीनता बिलकुल परे फेंक दी। फिर से स्पेन दमिश्क या बग़दाद के अधीन न रह गया और अब्दुलरहमान स्पेन का सरदार नहीं, वरन् सुलतान बन गया। अब्दुलरहमान के उत्तराधिकारियों का बहाव मज़हब की ओर होने से मज़हबी विद्वानों ने ईसाइयों पर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया। परिणाम-स्वरूप कई राजद्रोह होते-होते रह गये। यद्यपि ये द्रोह दबा दिये गये तथापि यह मुस्लिम-शक्ति की निर्बलता का सूचक थी।

अब्दुलरहमान के उत्तराधिकारी उस के से तर्क-व्यवहार-कुशल और चतुर न थे। अब्दुल के राज्यकाल में उमिया-शक्ति नाम को रह गई। परन्तु उसके उत्तरा-

धिकारी अब्दुलरहमान तृतीय ने नये सिरे से सारा प्रदेश वापस ले लिया। पर इसके लिए उसे अठारह वर्ष खर्च करने पड़े। केवल इस बात से अनुमान लगाया जा सकता है कि परस्पर के मत-भेद मुसलमानी शक्ति को कहाँ तक निर्बल बना चुके थे।

आस्ट्रेस के ईसाई-सरदारों ने अपनी पहली भूल से शिक्षा ग्रहण करके अपने घोर परिश्रम तथा मूरों के आन्तरिक मत-भेदों से लाभ उठाकर अपना एक बड़ा राज्य बना लिया। एल्फेन्जो तृतीय के राज्यकाल में यह राज्य और भी बढ़ गया। यहाँ तक उसके देहपात के पश्चात् ईसाइयों को इतना साहस होगया कि उन्होंने पहाड़ी राजधानी ओविएडो को छोड़कर खुले मैदान के बीच लियन में अपना केन्द्र बनाना निश्चित किया। यद्यपि लियन-प्रदेश मुसलमानों के अधीन था तथापि धीरे-धीरे वहाँ पर ईसाई-मज़हब बढ़ने लगा।

आस्ट्रेस की बढ़ती हुई शक्ति

दसवीं शताब्दी में कैस्टील प्रदेश लियन से पृथक् होगया। अब ईसाई-राज्य के विभिन्न भागों में भी युद्ध होने लगे। इस प्रकार ईसाई-शक्ति की मध्यम चाल का उत्तरदायित्व दो बातों पर डाला जा सकता है—एक तो पारस्परिक द्वेष और दूसरा वह रिवाज, जिसका आरम्भ एल्फ़ोन्ज़ों ने किया था। ईसाई-राज्य की सीमायें बढ़ाने में एल्फ़ोन्ज़ों ने

बड़ा भाग लिया। इसी कारण वह राज्य का दूसरा निर्माता कहलाता है। परन्तु अपनी मृत्यु के समय वह राज्य के कई टुकड़े कर गया, जिससे एक बड़ा राज्य कई छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया। इस कारण उनमें परस्पर युद्ध होने लगे।

फ़र्डिनण्ड प्रथम की अधीनता में केस्टील तथा लियन दोनों राज्य मिल गये। यद्यपि फ़र्डिनण्ड एक बड़ा दूरदर्शी राजनीतिज्ञ थी तथापि मृत्यु-समय उसने भी एल्फ़ेन्जों की सी भूल की। मूरों के लिए नाज़ुक वक़्त था परन्तु फ़र्डिनण्ड की भूल ने उन्हें ढाढ़स बँधा दिया। केस्टील और लियन में युद्ध छिड़ गया। लियन-वाले जीत गये थे कि अपने सेनानायक डाईज़ के आदेशानुसार केस्टीलवालों ने उन्हें एक कमीने धोखे से हरा दिया। कुछ समय के पश्चात् केस्टील का राजा ज़नेको मर गया और अब केस्टील को विवश होकर उसके दूसरे भाई लियन के उत्तराधिकारी एल्फ़ेन्जो को राजा बनाना पड़ा। डाईज़ और नये राजा के बीच द्वेष होने के कारण सेनानायक को वह प्रदेश छोड़ना पड़ा।

डाईज़ बड़ा वीर तथा मनचला नवयुवक था। उसने मुसलमानों के साथ अनेक युद्ध किये। अपने मतलब के लिए वह ईसाइयों के विरुद्ध और मुसलमानों के साथ भी हो जाता था। मुसलमानों ने आदर से उसे सैयद कहना शुरू कर दिया। स्पेनिश-साहित्य में वह अब तक 'सिड' कहलाता है। इसके विषय में उसमें इतनी ही कथायें तथा कवितायें हैं कि

उनको निकाल देने से स्पेन का साहित्य एक प्रकार से दिवालिया हो जायगा। चाहे वह कट्टर ईसाई तथा देशभक्त रहा हो, और चाहे स्वार्थी या धूर्त इसमें सन्देह नहीं कि उसके विषय में जो साहित्य बनाया गया था उसने स्पेन में एक नवजीवन सञ्चार करने में बड़ा काम किया था।

एलफ़ेन्ज़ो ने टालेडो पर दुबारा स्वत्व प्राप्त किया। इस पर अफ़रीका से एक बर्बर-सरदार यूसुफ़-नामक आया। उसने एल्फ़ेञ्जों को पराजित किया। किन्तु क्योंकि उसे जल्दी ही वापस लौटना था, इसलिए वह उससे पूर्ण लाभ न उठा सका। अगले बरस वह फिर आया, लेकिन इस बार मुसलमानों ने उसकी सहायता न की। इधर 'सैयद' ने भी अपना पृथक् राज्य बना लिया और अन्य कई स्थानों के अतिरिक्त वेलिंशिया पर भी आक्रमण किया। वेलिंशिया लेने में यूसुफ़ असफल हुआ। दक्षिणी स्पेन में अब बर्बर ही राज्य कर रहे थे और 'सैयद' की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने वेलिंशिया पर भी स्वत्व प्राप्त कर लिया।

ईसाइयों का राज्य धीरे-धीरे बढ़ रहा था। किन्तु एल्फ़ेञ्जों की भूल बार-बार उसकी उन्नति में बाधा डालती थी और इसी कारण एक ईसाई-शक्ति नहीं बन पाई थी। जो पृथक् राज्य बन गये थे उनमें से कुछ का वर्णन करना आवश्यक है।

आपस की कशमकश

न्वार-प्रदेश, जो पेरेनीस के पास होने से फ़्रांस के साथ

लगता है, आरम्भ में आस्ट्रेस सरदारों की जागीर थी। शनैः शनैः यह भी एक पृथक् राज्य होगया। नवीं शताब्दी के आरम्भ में ही उसके क़ानून आदि सब पृथक् होगये। परन्तु आन्तरिक युद्धों के कारण बारहवीं शताब्दी में वह अरगन-राज्य के साथ मिल गया।

अरगन का पृथक् अस्तित्व सन् १०३५ से आरम्भ हुआ था, जेनको अपने राज्य को बाँटकर अपने एक लड़के को यह प्रदेश सौंप गया था। इस प्रकार इसका पहला राजा जेनको का पुत्र रेमेरो हुआ, जिसने मूरों से बहुत से प्रदेश छीन अरगन को एक बड़ा अच्छा राज्य बना लिया। तदनन्तर अरगन और कैस्टील के बीच युद्ध छिड़ गये।

इस काल के ईसाई-स्पेन का इतिहास इतना ही है कि लियनकैस्टील, नवार, अरगन, बारसिलोनिया आदि राज्य परस्पर लड़ते रहते थे। कोई न कोई राज्य मुसलमानी प्रदेश पर भी स्वत्व प्राप्त करता रहता था। इन राज्यों में से कभी दो दो तीन तीन मिलकर एक हो जाते और फिर पृथक् हो जाते।

उधर मुसलमानी प्रदेश में भी बड़ी खलबली मची हुई थी। हशाम तृतीय कार्डोवा का अन्तिम ख़लीफ़ा था। इधर, उमियावंश के सुलतानों ने अपने आपको ख़लीफ़ा कहलवाना भी शुरू कर दिया था। इसके साथ ही मूर-राज्य के टुकड़े हो गये। प्रत्येक नगर का अधिकारी अपने आपको सुलतान कहता था। टालेडो, सेवल, ग्रेनाडा, सारगोसा आदि नगर

एक दूसरे से पृथक् हो गये थे। न मुसलमानों की एक शक्ति थी और न ईसाइयों की। स्वभावत: व्यक्तिगत स्वार्थ ही अधिक काम करते थे। मज़हब या जातीयता के लिए युद्ध न होते थे।

मुसलमानों की अपेक्षा ईसाइयों की अवस्था कुछ अच्छी थी। क्योंकि जब अफ़रीका से मुहम्मद, जो अपने आपको 'पैग़म्बर महदी' कहता था, एक भारी सेना लेकर आया तब केस्टील, आरगन और नवार ने मिलकर उसका विरोध किया। १२१२ का यह युद्ध मुसलमानों तथा ईसाई दोनों के लिए महत्त्वपूर्ण था। ईसाई-सेना की विजय हुई और पराजित होने से मुसलमानों के दिल टूट गये।

ईसाइयों की विजय

सन् १२१२ के युद्ध ने ईसाइयों की विजय के लिए मार्ग साफ़ कर दिया। फ़र्डिनण्ड तृतीय ने कॉर्डोवा पर और अरगन के राजा रजेम ने वेलिंशिया पर अधिकार कर लिया। १२७६ में जब वह मरा तब अरगन भी केस्टील के बराबर हो गया था। उधर केस्टील के राजा फ़र्डिनण्ड तृतीय ने जीन तथा मरशिया पर भी स्वत्व प्राप्त कर लिया। इस समय मुसलमानी शक्ति का केन्द्र गरानाडा था और जीन गरानाडा की सीमा पर एक क़िला था। जब यह अधीन कर लिया गया तब गरानाडा का सुलतान सन्धि के लिए राज़ी हो गया। अब गरानाडा ने फ़र्डिनण्ड को राजस्व देना स्वीकार कर लिया। फ़र्डिनण्ड ने उसकी सहायता से सेवल भी जीत लिया, जो

तात्कालिक मुसलमानी स्पेन में सबसे बड़ा नगर था। सेवल पर अधिकार एक प्रकार से बहुत ही महत्त्व-पूर्ण सिद्ध हुआ क्योंकि इससे केस्टील के अधिकार में एक अच्छा बन्दर भी आ गया।

केस्टील तथा अरगन इस समय यही ईसाइयों के दो बड़े राज्य थे। पहाड़ी प्रदेश में भोग-सामग्री न प्रस्तुत होने से सर्वसाधारण लोगों तथा अमीरों को भी स्वभावतः परिश्रमी सैनिकों के समान रहना पड़ता था। अपने प्रदेश की रक्षा के लिए यह आवश्यक था कि सभी निवासियों को शस्त्र-प्रयोग की शिक्षा दी जाय। मुसलमानों के साथ सदा युद्ध होने के कारण लोगों में मज़हब तथा देश के प्रति एक भाव सा उत्पन्न होने लगा। यद्यपि यह पूर्व जातीयता की उमङ्ग न थी तथापि उन दिनों की स्मृति जब उनके पूर्वज स्पेन की उर्वरा भूमि के स्वामी थे, कभी कभी हृदय में एक वेदना सी उत्पन्न कर देती थी।

प्रजा-सत्ता

इन बातों के साथ ही साथ उस समय प्रजा-सत्तात्मक भाव भी उत्पन्न हो रहे थे। यद्यपि प्रजा-सत्तात्मक क़ानून बहुत बदलते रहते थे तथापि सर्वसाधारण को अपने म्युनिसिपल मामलों के लिए मजिस्ट्रेट चुनने का अधिकार रहता था। किसी की धन-सम्पत्ति को किसी ऐसे निर्वाचित मजिस्ट्रेट के निर्णय के बिना हानि नहीं पहुँचाई जा सकती थी। म्युनिसिपल नियमों के अनुसार सर्वसाधारण के विभाग में अमीर लोग ज़मीन नहीं मोल ले सकते थे जिससे वे उनके माल-

असबाब पर लोभ-दृष्टि न डाल सकें। वहाँ पर कोई सरदार अपना क़िला या महल भी नहीं बनवा सकता था। म्युनिसिपल तथा अन्य सार्वजनिक कार्यों में ख़र्च करने के लिए एक विशेष धन पृथक् रक्खा जाता था। प्रत्येक नगर के साथ सार्वजनिक कामों के लिए कुछ ज़मीन भी होती थी। यह वह समय था जब कि शेष योरुप में जागीरदारी या 'फ़्युडलिज़म' का प्रभुत्व था।

अरगन की अपेक्षा केस्टील में अधिक स्वतन्त्रता थी। इँग्लेण्ड की 'सीमटर' पार्लीमेंट से लगभग एक सौ वर्ष पहले केस्टील में एक पार्लीमेंट बन चुकी थी। उसके चुनाव में प्रत्येक नगर को एक वोट देने का अधिकार था। पार्लीमेंट में क़ानून पास करने के लिए पादरियों तथा सरदारों की स्वीकृति की आवश्यकता न थी। एक क़ानून यह भी था कि सर्वसाधारण लोगों की स्वीकृति के बिना किसी प्रकार का टेक्स या कर नहीं लगाया जा सकता था। लोगों को यह भी अधिकार था कि वे इस बात का निर्णय करें कि अमुक मनुष्य सिंहासन का अधिकारी है या नहीं। यद्यपि केस्टील में वर्तमानकाल के प्रजासत्तात्मक सिद्धान्त नहीं पाये जाते थे तथापि शासन-प्रबन्ध में जो स्वतन्त्रता एवं अधिकार प्रजा को प्राप्त थे, वे वस्तुतः उस समय का विचार करते हुए आश्चर्य-जनक मालूम होते हैं। सर्वसाधारण के अतिरिक्त सरदारों को भी पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे। केवल राजा ही का अधिकार-क्षेत्र सीमाबद्ध था।

अरगन में भी प्रायः केस्टील के ही समान नियम तथा रीति-रवाज प्रचलित थे। वहाँ के राजा की शक्ति केस्टील से भी कम थी। विदेशियों के साथ निरन्तर युद्ध होने से राजा के निर्बल तथा सरदारों के बलवान् होने में बड़ी हानि थी। इन प्रदेशों के लोग कट्टर ईसाई थे, फिर भी उन्होंने रोम का अनुचित हस्तक्षेप कभी सहन नहीं किया। इसबेला केथॉलिक नाम से ही स्मरण की जाती है तथापि उसके राज्य-काल में लोगों ने अपनी राजनैतिक स्वतन्त्रता को रोम के हाथ नहीं बेचा।

इस बात का पहले उल्लेख किया जा चुका है कि अपने काल में मूर लोग कला-कौशल की दृष्टि से सभी जातियों से आगे थे। उनके सामने ये ईसाई केवल बर्बर सैनिकों की तरह थे। इनमें लिखना-पढ़ना बहुत ही कम था। साहित्य में भी गीत तथा अन्य ऐतिहासिक और जातीय कवितायें अभी बननी आरम्भ ही हुई थीं। वास्तु-विद्या में भी इन्हें मूरों का ही अनुकरण करना पड़ा। आरम्भ से ही मूर वीरपूजक थे और शत्रु पर दया करना उनका एक बड़ा गुण था। ईसाइयों ने यह बात बाद में सीखी, स्पेन की वीरता के इतिहास में इसके लिए चौदहवीं शताब्दी प्रसिद्ध है।

पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में केस्टील तथा अरगन-राज्यों में राजसिंहासन के लिए बहुत झगड़े हुए। अन्त में

ट्रौस्टेमारा का वंश, जिसे वास्तव में कोई अधिकार न था, दोनों सिंहासनों पर आरूढ़ होगया। केस्टील की रानी इसबेला और अरगन का राजा फ़र्डिनण्ड दोनों इसी वंश में से थे। इसबेला का पिता केस्टील का राजा जाह्न द्वितीय जब पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य में मरा

केस्टील तथा अरगन; इसबेला तथा फ़र्डिनण्ड

तब उसके दो लड़के थे, पहली रानी से हेनरी चौथा और दूसरी रानी से इसबेला का सगा भाई एलफ़ेंज़ो। हेनरी चौथा किसी को प्रिय नहीं था। हेनरी तथा एलफ़ेंज़ो के दो दल खड़े हो गये। अपना उल्लू सीधा करने के लिए हेनरी इसबेला का विवाह एक ऐसे मनुष्य के साथ करना चाहता था जो आयु तथा योग्यता की दृष्टि से इसबेला के लिए सर्वथा अयोग्य था। परन्तु वर के मर जाने से ऐसा न हो सका।

एलफ़ेंज़ो ने भी केवल तीन वर्ष तक राज्य किया, और वह भी नाम मात्र का ही राजा था। उसके शीघ्र ही मर जाने से सर्व-साधारण ने इसबेला से सिंहासन सँभालने की प्रार्थना की।

फ़र्डिनण्ड के पिता जाह्न द्वितीय को आयु भर प्रजा के साथ युद्ध करना पड़ा था, क्योंकि उसने अपनी पहली रानी के लड़के कारलो को, जो नवार का न्यायाधिकारी था, पृथक् कर दिया था। किन्तु कारलो की मृत्यु हो गई। यद्यपि लोग इसके राज्य से तङ्ग आगये थे तथापि अन्तकाल में जाह्न तथा उसकी प्रजा में सन्धि होगई। फ़र्डिनण्ड को अपने

पिता के कष्टों से एक बात का अनुभव हो गया था कि जब तक सरदारों की शक्ति कुछ कम न की जायगी तब तक राजा का काम नहीं चल सकता।

इसबेला से विवाह करने के लिए योरुप के विभिन्न देशों के कई शासकों ने प्रयत्न किया। परन्तु उसने अति दूर-दर्शिता से फ़र्डिनण्ड को अपना पति चुना। सुन्दर नवयुवक होने के अतिरिक्त फ़र्डिनण्ड इसबेला के ही वंश में से था। परन्तु सबसे बढ़कर बात यह हुई कि केस्टील तथा अरगन के मिल जाने से धीरे धीरे एक भारी शक्ति के उदय की सम्भावना हो गई। यद्यपि बहुत दिनों तक यह एकता केवल व्यक्तिगत रही, अर्थात् दोनों राज्यों में अपने-अपने रीति-रवाज और क़ानून रहे, तथापि इसने एक तरह से जातीयता की नीव डाल दी। इसी के सहारे स्पेनवासी मुसलमानों को अपने देश से बाहर निकाल सके। इसी एकता से कुछ ही दिनों में स्पेन की महत्ता प्रकट होने लगी।

यों तो इसबेला और फ़र्डिनण्ड के राज्य-काल में कई बड़ी-बड़ी घटनायें हुईं परन्तु यहाँ केवल सबसे महत्त्व-पूर्ण बातों का वर्णन किया जायगा अर्थात् किस प्रकार इसबेला और फ़र्डिनण्ड ने अपने शासन को दृढ़ करते हुए मुसलमानी शासन से अपने देश को पूर्णरूपेण मुक्त करा दिया।

स्पेन की पूर्ण स्वाधीनता

रानी को यह बात मालूम थी कि सबसे पहला आवश्यक

कार्य सरदारों की शक्ति तोड़ना है। राजनियमानुसार सरदारों को विचित्र अधिकार प्राप्त थे। राजा को अस्वीकार करके वे उसके प्रदेश को छोड़ सकते थे और जाते समय अपनी सन्तान तथा धन-सम्पत्ति की रक्षा के लिए राजा को उत्तरदायी ठहरा सकते थे। जहाँ क़ानून से ऐसी बातें न्याय-संगत ठहराई गई हों वहाँ क़ानून को नये सिरे से बनाने के सिवा और कोई उपाय न था।

सन् १७६४ में उसने अपनी पार्लमेंट में 'पवित्र भ्रातृत्व' नामक एक क़ानून पास करवाया जिसके अनुसार एक भारी रक्षा-दल अथवा पुलिस रखने का निश्चय हुआ। इसका प्रबन्ध एक केन्द्र-सभा के सुपुर्द था, जिसमें सभी नगरों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। स्थानीय मजिस्ट्रेटों तथा ऊँची अदालत के निर्णयों का अक्षरशः पालन कराने के लिए दो हज़ार सवारों की एक छोटी सी फ़ौज भी बनाई गई। सरदार बहुत बड़बड़ाते रहे किन्तु उनकी दाल न गल सकी। सरदारों को निश्चित समय से कुछ समय पहले ही पेंशनें तथा जागीरें देना बन्द कर दिया गया। कला-कौशल की उन्नति की ओर ध्यान दिया गया। कर में तो यहाँ तक सुधार किया गया कि सर्व-साधारण पर अधिक बोझ डाले बिना ही पहले से तीस गुना आय हो गई।

स्पेन में एक नई शक्ति काम कर रही थी, संसार को तब इस बात का ज्ञान हुआ जब स्पेनवासी मुसलमानों पर

विजय पाने लगे। मुसलमानी शक्ति अब केवल ग्रेनाडा-राज्य में ही थी। प्रकृति उसकी चारों ओर से रक्षा कर रही थी, इसीलिए वहाँ का शासन सुदृढ़ था। पहले कहा जा चुका है कि ग्रेनाडा के सुलतान ने केस्टील को राजस्व देना स्वीकार कर लिया था। इस समय वहाँ का शासक एक वीर और युद्धप्रिय अब्दुलहसन था। यह देखकर कि ग्रेनाडा स्पेन में सबसे अधिक सुरक्षित नगर है और उसके पास पचास हज़ार सैनिक भी हैं उसने राजस्व देना बन्द कर दिया। केस्टील के दूत को उसने गर्वपूर्ण उत्तर दिया—"अपने स्वामी से जा कहना कि केस्टील को जो सुलतान ख़िराज देते थे उनका ज़माना जाता रहा, अब तो हमारी टकसाल में केवल कटारें तैयार होती हैं।"

अतएव सन् १४८१ में ग्रेनाडा के सुलतान के विरुद्ध युद्ध शुरू हुआ। फ़र्डिनण्ड की नीति यह थी कि वह एक-एक करके सभी नगरों पर स्वत्व प्राप्त करना चाहता था। उसने स्वयं कहा था—"इस अनार में से मैं एक-एक दाना पृथक् पृथक् निकालूँगा।" इसीलिए यह युद्ध दस वर्ष तक जारी रहा। अन्त में २५ नवम्बर, १४९१ को मूरों की अन्तिम पराजय हुई। ग्रेनाडा-शहर भी ईसाई-शासकों के हाथ में आ गया। युद्ध के पश्चात् जो सन्धि हुई उसमें मूरों को मज़हबी स्वतन्त्रता देने आदि के विषय में बड़ी उदार शर्तें पेश की गईं।

किस प्रकार लगभग आठ सौ वर्ष तक स्पेन में मूरों

का राज्य रहा और किस प्रकार अन्त में उसकी समाप्ति हुई— यह हमने देख लिया है। परन्तु इसके अनन्तर स्पेन में किन किन शक्तियों ने काम किया, किस प्रकार १४६१ के प्रतिबन्धों को ठुकरा करके मुसलमानों तथा यहूदियों पर मज़हबी अत्याचार किये गये, किस प्रकार इस समय के राज्य-काल के चमकते हुए माथे पर मज़हबी अत्याचार का कलङ्क लगा और किस प्रकार स्पेन ने अपने पतन का बीज बोया, ये सब बातें आगे दिखाई जायँगी।

———

चौथा अध्याय

डच-प्रजातन्त्र का उत्थान

नीदरलैण्ड का राजविद्रोह

संसार के इतिहास में जिन जातियों ने धार्मिक, राजनैतिक और वाक्‌सम्बन्धी स्वतन्त्रता के लिए खून की नदियाँ बहाई हैं, उनमें हॉलेण्ड के डच-लोगों को एक उच्च पद दिया जा सकता है। साधनरहित होने पर भी उन्होंने किस प्रकार चार्लेस पाँचवें तथा फ़िलिप द्वितीय जैसे निरंकुश सत्ताधारियों के दाँत खट्टे किये और अपने जन्मसिद्ध अधिकारों को लेकर ही छोड़ा, इन सब बातों का वृत्तान्त पढ़कर मनुष्य उत्साहित और उत्तेजित हो जाता है। इस अध्याय में उसी विकट संग्राम का, जो पचास वर्ष तक डच और स्पेनवासियों के बीच होता रहा, संक्षेप से, वर्णन किया जायगा।

भूमिका

हॉलेण्ड जर्मनी के पश्चिमोत्तर भाग में एक छोटा सा देश है। भूगर्भ-विद्या के पंडितों का कहना है कि लाखों वर्ष पहले हॉलेण्ड के स्थान पर भूमि के कोई चिह्न नहीं होंगे, वहाँ केवल समुद्र था। राइन-नदी लाखों वर्षों तक अपने प्रवाह के साथ मिट्टी ला लाकर वहाँ जमा करती रही और इस प्रकार भूमि बनती गई। यही कारण है कि हॉलेण्ड राइन-नदी

हॉलेण्ड और उसके निवासी

की सन्तान कहा जाता है। पहले-पहल वहाँ की भूमि जलमय थी। परन्तु क्रमशः जल सूखता गया और वहाँ बस्ती के चिह्न दिखाई देने लगे।

हॉलेण्ड के आदिम निवासियों के विषय में हमें कुछ विशेष ज्ञान नहीं। उनके बाद वहाँ पर ट्यूटन-रक्त के लोग बसने लगे थे जिनकी रहन-सहन और आचार-विचार के विषय में हम बहुत कुछ जानते हैं। ट्यूटन-जाति के लोग स्वभाव से बलिष्ठ, कार्यकुशल और स्वातन्त्र्य-प्रिय थे।

आज-कल डच-लोगों में जो गुण पाये जाते हैं, ऐसा मालूम होता है कि वे वंश-परम्परा से ही उनमें चले आते हैं। संसार-विजेता सीज़र ने जब हॉलेण्ड पर आक्रमण किया था तब वहाँ के निवासियों ने अपूर्व वीरता से उसका सामना किया। परन्तु जब सीज़र के उच्च सैनिक संगठन के आगे उनको हार खानी पड़ी तब भी उन्होंने सीज़र की दासता स्वीकार नहीं की। वे विजेताओं के बराबर बनकर रहे। ईसाई-मज़हब के प्रचार से जहाँ अन्य जातियों को किसी हद तक अपनी नैसर्गिक स्वतन्त्रा खोनी पड़ी, वहाँ इन्होंने उसके सामाजिक तत्त्वों को तो ग्रहण कर लिया परन्तु ईश्वर-विद्या के शुष्क सिद्धान्तों और अन्धविश्वासों से अपने आपको निर्बल न होने दिया। इनके जन्मसिद्ध अधिकारों को कुचलने के लिए, जब कभी तलवार के बल से अथवा और किसी दबाव से इन पर अत्याचार किये गये तभी इन्होंने उचित-

अनुचित सभी साधनों का प्रयोग करके अपनी आत्म-रक्षा की। इनके आत्मत्याग, देश-प्रेम और अचल निश्चय के उदाहरणों से इतिहास के बहुत से पन्ने अलंकृत हैं।

डच-प्रजातन्त्र के अभ्युदय के कारणों और घटनाओं का विवेचन करने से पहले योरुप की तत्कालीन स्थिति पर संक्षिप्त दृष्टिपात करना आवश्यक प्रतीत होता है। उसके जाने बिना डच-जाति के गौरवपूर्ण कार्यों पर लिखना धृष्टता-मात्र है।

डच-विद्रोह और तत्कालीन योरुप की स्थिति

जिस समय डच-प्रजातन्त्र का उत्थान हुआ, वह समय इतिहास में 'सुधार-युग' कहलाता है। वर्तमान योरुप उस समय मानो जन्म-यंत्रणाओं में होकर गुज़र रहा था। चारों ओर अशान्ति ही अशान्ति दृष्टिगोचर होती थी। लोग अपने छिन्न-भिन्न विचारों को छोड़कर तर्काश्रित ज्ञान के लिए लालायित हो रहे थे। एक ओर तो नवीन जीवन के लिए उत्साह था, उत्कट इच्छा थी और दूसरी ओर राजनैतिक और मज़हबी शक्तियाँ, अपनी स्थिति को संकट में समझकर, इन उठती हुई जीवन-तरङ्गों को रोकने के लिए सिरतोड़ परिश्रम कर रही थीं।

प्राँटेस्टेण्ट-सम्प्रदाय के उद्भव से पहले ईसाई-मज़हब के उद्यान के माली पोप थे। प्रारम्भिक सफलता से मदान्ध होकर पादरियों ने धीरे-धीरे लोगों के वैयक्तिक जीवन

में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया था। वे लोगों के पथप्रदर्शक बनने का प्रयत्न करने लगे। उनकी अनुमति के विरुद्ध किसी मज़हबी सुधार के लिए प्रयत्न करना, बाइबिल के सिवा अन्य किसी पुस्तक पर विश्वास करना एवं दार्शनिक तथा वैज्ञानिक कल्पनाओं पर विचार करना महापातक समझा जाने लगा। केवल इसी बात पर लाखों आदमियों को मृत्यु के मुख में प्रवेश करना पड़ा कि वे पोप की सत्ता को स्वीकार नहीं करते थे अथवा ईसाई-मज़हब पर पूर्ण विश्वास नहीं रखते थे।

यदि ईसाई-मज़हब के पृष्ठपोषक, जिज्ञासुओं के गले घोंटने के साथ-साथ, अपने संगठन में भी किसी प्रकार की त्रुटि न आने देते, तो सम्भव था कि उसका प्रभुत्व योरुप में कुछ समय तक और बना रहता। दोष यह था कि सुधारकों के दमन ने उनके अन्दर ऐसा घमण्ड पैदा कर दिया था कि वे अपने आपको बिलकुल पापमुक्त समझने लगे। विलासिता, कपट, द्वेष, भीरुता आदि जितने भी दुर्गुण हो सकते हैं धीरे-धीरे सभी उनमें प्रविष्ट होने लगे।

इन बुराइयों ने ईसाई-धर्म में क्या-क्या रूप धारण किये और उनको दूर करने के लिए कौन-कौन से प्रयत्न किये गये, उनका संक्षिप्त ब्योरा, तत्कालीन स्थिति को समझने के लिए, यहाँ देना उचित है।

पहला दुर्गुण जो ईसाई-धर्म के धार्मिक संगठन में आया, वह लोभ था। पादरियों को भोग-विलासमय जीवन व्यतीत

करने के लिए रुपये की सदा बड़ी ज़रूरत रहती थी और रुपया तब तक मिल नहीं सकता था जब तक अन्धविश्वासी भक्तों को ठगने का कोई ढँग न हो। कर्म-धर्मसंयोगेन उन्हें एक उपाय सूझा, जिसे वे 'क्षमा-पत्रों का बेचना' कहते थे। प्रत्येक पाप की क्षमा-प्राप्ति के लिए पाप-पुण्य के ठेकेदारों ने मूल्य निश्चित कर दिया था। विष खिलानेवाला पोप को अस्सी रुपये भेंट चढ़ाकर पाप से मुक्त हो सकता था और व्यभिचारी चालीस ही रुपये देकर छुट्टी पा जाता था। इस प्रकार हर एक पाप की दर निश्चित थी। धर्म की ओट में लूट की यह प्रथा इतनी फैल गई कि हज़ारों दलाल योरुप के गाँवों और शहरों में घूम-घूम कर क्षमा-पत्र बेचने लगे। इसके अतिरिक्त पुरोहितों में असहिष्णुता, अविद्या और अभिमान की मात्रा भी दिन प्रति दिन बढ़ने लगी।

परन्तु अब लोग इन अत्याचारों को शान्ति-पूर्वक सहन करने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने पोप की निरंकुश सत्ता के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया जिसके परिणाम में योरुप के शतवर्षीय युद्ध हुए।

मज़हबी सुधार

सबसे पहले मार्टिन लूथर ने जर्मनी में पोप की सत्ता के विरुद्ध आवाज़ उठाई और करोड़ों मनुष्य, जो केवल भय-त्राता की प्रतीक्षा में इन अत्याचारों को सहन कर रहे थे, उसके झण्डे के नीचे एकत्र हो गये। दूसरा सम्प्रदाय, जो पोप की सत्ता को तोड़ने के लिए संगठित हुआ, केलविन के

अनुयायियों का था। जॉन् कैलेविन बहुत ही गरम कोटि का सुधारक था। उस के सम्प्रदाय के लोग मज़हबी स्वतन्त्रता के पक्षपाती और अन्धविश्वास के कट्टर विरोधी थे। कैलविन-सम्प्रदाय का मानवी इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ा, इसका अनुमान केवल इस बात से हो सकता है कि फ्रांस के 'ह्युजनॉट' स्कॉटलेण्ड के 'कोवेनेन्टर' इँगलेण्ड के 'प्युरिटन' और 'यात्री-पिता' सभी केलविन के अनुयायी थे। पोप की सत्ता को भङ्ग करने के लिए एक और सम्प्रदाय चला जिसका प्रवर्तक ज़्विंगली था। उसके अनुयायी अधिकतर स्विट्ज़रलेंड में पाये जाते हैं।

विरोध के बादलों को चारों ओर से घिरते देखकर सुधारक दल के सर्वनाश और अपने पक्ष की पुष्टि के लिए पोप के अनुयायियों ने एक सुप्रसिद्ध मज़हबी सम्मेलन किया जो 'कौंसिल आव् ट्रेन्ट' के नाम से विख्यात है। इस सम्मेलन ने एक-स्वर से यह प्रस्ताव स्वीकृत किया कि पोप की सत्ता की हर प्रकार से रक्षा करना प्रत्येक सच्चे ईसाई का कर्त्तव्य है। चर्च में जो नैतिक कमज़ोरियाँ घुस गई थीं उन्हें भी दूर करने के लिए प्रस्ताव स्वीकृत किये गये। पादरियों और महन्तों को उसने सुधारक-दल का उन्मूलन करने की खुली आज्ञा दे दी।

अब तो शक्तियों में प्रत्यक्ष रूप से घोर संग्राम होने लगा। एक ओर तो केथॉलिक-सम्प्रदाय के लोग थे जो

संकुचित, मृतप्राय तथा जर्जरीभूत ईसाई-मज़हब में कोई परिवर्तन करने को तैयार न थे। दूसरी ओर वाक् और मज़हबी स्वतन्त्रता के पुजारी सुधारकगण उसमें नई जान फूँकना चाहते थे। इन दोनों शक्तियों में परस्पर जो युद्ध हुए यहाँ उनमें से केवल एक ही का वर्णन किया जायगा। इन संग्रामों का परिणाम यह हुआ कि लोग निडर, सत्यनिष्ठ एवं साहसी बन गये, और इस प्रकार नवीन योरुप का उदय हुआ।

नीदरलेण्ड में विद्रोह, उसके कारण

नीदरलेण्ड* के विद्रोह के कारणों को पढ़ते समय योरुप की तत्कालीन स्थिति को मन में अंकित कर लेना आवश्यक है। सम्राट् चार्लेस पाँचवाँ अपनी माँ जोना के अधिकार से, जो फ़र्डिनण्ड तथा इसबेला की लड़की थी, स्पेन का उत्तराधि-

* बेलजियम और हॉलेण्ड दोनों देशों को नीदरलेण्ड कहते हैं। ये दोनों देश भाषा, आचार और रहन-सहन में सदा से अलग रहे हैं। मज़हबी दृष्टि से भी ये कभी एक नहीं हुए। किन्तु विद्रोह के समय इन दोनों का राजनैतिक शासन एक था। दोनों चार्लेस पाँचवें और फ़िलिप दूसरे की सम्पत्ति थे और दोनों पर वे मनमाना अत्याचार करते थे। विद्रोह की प्रारम्भिक अवस्था में दोनों देशों ने मिलकर स्पेन की क्रूरता का विरोध किया। किन्तु पीछे बेलजियम ने स्पेन की दासता स्वीकार कर ली और हॉलेण्ड को अकेले ही युद्ध करना पड़ा।

हुआ था। अपने बाप के अधिकार से वह आस्ट्रिया तथा बरगण्डी का अधिकारी था। क्योंकि फ़िलिप का पिता मेक्सिमिलन आस्ट्रिया का सम्राट् था और उसकी माता मेरी बरगण्डी के राजा चार्लेस की लड़की थी।

नीदरलेण्ड के विद्रोह के मुख्य पाँच कारण थे—(१) आर्थिक व्यग्रता, (२) नास्तिकता के विरुद्ध घोषणा-पत्र, (३) धर्मविचार-सभायें, (४) नवीन मठों की स्थापना और (५) विदेशी सत्ता के प्रति घृणा।

चार्लेस पाँचवाँ, जो स्पेन का राजा और जर्मनी का सम्राट् था, वंशपरम्परा से नीदरलेण्ड का अधिपति भी हुआ। तुर्कों, जर्मन-राजाओं तथा पोप की राजनैतिक सत्ता के विरुद्ध उसे अनेक युद्ध करने पड़े।

आर्थिक व्यग्रता

इसलिए उसको रुपये की सदा बड़ी ज़रूरत रहती थी। नीदरलेण्ड को छोड़कर, साम्राज्य के दूसरे भागों से, दरिद्रता और अशान्ति के कारण, कुछ भी आर्थिक सहायता नहीं मिलती थी। उसके राज्य में नीदरलेण्ड ही एक ऐसा देश था जो व्यवसाय एवं व्यापार-कुशल होने से उसकी कुछ आर्थिक सहायता कर सकता था। वहाँ के साहूकारों से उसने बहुत सा क़र्ज़ लिया और मरने के बाद उसे अपने पुत्र फ़िलिप के सिर पर छोड़ गया। फ़िलिप को भी बाध्य होकर करोड़ों रुपये का ऋण नीदरलेण्डवासियों से लेना पड़ा। अपने पिता जैसा शूर-वीर न होने से फ़िलिप को करोड़ों रुपये घूँस देकर शत्रुओं को जीतना पड़ता था।

इसके लिए वह प्रायः सारा रुपया नीदरलेण्ड से लिया करता था। ऋण चुकाने में तो वह असमर्थ था परन्तु अत्याचार करने में बहुत तेज़, इसलिए नीदरलेण्डवासियों के असन्तोष का पहला कारण हुआ चार्लेस और फ़िलिप की आर्थिक नीति।

नास्तिकता के दमन करने की नीति में भी फ़िलिप अपने पिता के चरण-चिह्नों पर चलता रहा। चार्लेस ने अपने राज्य-काल में कई घोषणा-पत्र निकाले थे जिनमें १५५० का घोषणापत्र बहुत प्रख्यात है। इस घोषणापत्र के अनुसार लूथर, केलविन और ज़्विंजली की पुस्तकों को छापने, लिखने, नक़ल करने, बेचने, ख़रीदने और गिरजों में मुफ़्त बाँटने का बड़ा निषेध किया गया। प्रॉटेस्टेण्ट सम्प्रदायों के प्रचारार्थ अथवा बपतिस्मा देने के लिए सभायें करना भी नियमविरुद्ध घोषित कर दिया गया। पादरियों और महन्तों के सिवा किसी को बाइबिल पढ़ने या पढ़ाने का अधिकार न था। जो कोई इसके विरुद्ध आचरण करता, उसको कठोर दण्ड मिलता था। पुरुष और स्त्री दोनों ही यदि वे अपनी भूल को स्वीकार न करते तो ज़िंदा गाड़ दिये जाते अथवा अग्नि के भेंट कर दिये जाते थे। जिन पर स्वतन्त्र विचार रखने का रंचकमात्र भी संदेह होता था, उनकी सब सम्पत्ति हरण कर ली जाती और वे तत्काल फाँसी पर लटका दिये जाते थे। राज्य की ओर से ऐसे घूँसखोर रक्खे गये थे, जिनका काम ही धोखे से नास्तिकों को गवर्नमेण्ट के हवाले

नास्तिकता के विरुद्ध घोषणा-पत्र

करवा देना होता था। जो कोई किसी प्रॉटेस्टेण्ट-सभा के प्रति विश्वासघात करता, उसको पुरस्कार मिलता, और सभा के अन्य सदस्य चिता पर चढ़ा दिये जाते थे। फ़िलिप ने १५५० के घोषणा-पत्र में कोई नई बात बढ़ाई नहीं। उसने केवल नीदरलेण्ड के प्रान्तों के शासकों को यह आज्ञा दी थी कि उसका अक्षरशः पालन किया जाय।

धर्मविचार-सभायें

सबसे क्रूर शस्त्र, जिसका चार्लेस और फ़िलिप ने नीदरलेण्ड के विरुद्ध उपयोग किया, धर्म-विचार-सभायें थीं। ये सभायें एक प्रकार की कचहरियाँ थीं, जिनमें नास्तिकों के मुक़द्दमे होते थे और उनको दण्ड दिया जाता था। प्रारम्भ में इन सभाओं का उपयोग केवल यहूदियों तथा मूरों के विरुद्ध होता रहा, परन्तु जब कुछ लोग ईसाई-सिद्धान्तों को बुद्धि-ग्राह्य न समझ कर उन पर स्वतन्त्र टीका-टिप्पणी करने लगे, तब उनके विरुद्ध भी इस शस्त्र का प्रयोग होने लगा। इन सभाओं के विचार-पति पादरी होते थे। वे स्वेच्छानुसार दण्ड देने में पूर्ण स्वतन्त्र थे। कोई लौकिक शक्ति उनको ऐसा करने से नहीं रोक सकती थी। ह्रारकीनेड-नामक महन्त की अठारह वर्ष की महन्ती में १०,२२० जीवित मनुष्य जला दिये गये; ९७,३२१ मनुष्यों की सम्पत्ति हरण करके उन्हें देश-निकाला दे दिया गया। इस प्रकार एक ही पादरी ने १,१४,४०१ कुटुम्बों का सर्वनाश कर दिया।

नीदरलैण्ड में धर्म-विचार-सभायें पहले-पहल चार्लस ने स्थापित की थीं। पहले ये सभायें केवल तमाशा थीं। पादरी इन सभाओं-द्वारा अपनी क्रूरताओं को क़ानूनी चोला पहनाना चाहते थे। ये अत्याचार इतने कठोर हैं कि इनका वृत्तान्त पढ़ने से गला रुँध सा जाता है और आँखों से अश्रुधारा बहने लगती है।

इन सभाओं के विचारपतियों में सबसे अधिक बदनाम पीटर टाइटलमेन है। उसने सर्वसाधारण लोगों के हृदयों में आतंक पैदा करने के लिए बड़ी विचित्र कार्रवाइयाँ कीं, जिनका विस्तृत वर्णन यहाँ नहीं हो सकता। परन्तु एक घटना का वर्णन किये बिना लेखनी आगे नहीं चलना चाहती।

एक बार टाइटलमेन ने फ्लेण्डर्स निवासी रॉबर्ट ओज़ियर को सकुटुम्ब गिरफ़्तार करने की आज्ञा दी। उनका दोष केवल यह था कि वे अपने घर में ईश्वर की आराधना तथा संकीर्त्तन किया करते थे। प्रश्न करने पर रॉबर्ट ओज़ियर के नन्हें बच्चे ने सरलतापूर्वक कहा—"हम घुटने टेक कर परमात्मा से प्रार्थना यह करते हैं कि वह हमें ज्ञान दे और हमारे पापों को क्षमा करे। हम यह प्रार्थना भी करते हैं कि हमारे मजिस्ट्रेट और सम्राट् चिरंजीवी हों।" लड़के के सीधे-सादे और भोले-भाले वाक्यों को सुन विचारपतियों की आँखों में भी आँसू भर आये। परन्तु फिर भी उसका पिता और बड़े भाई उसके सामने ही अग्नि की भेंट कर दिये गये।

चिता पर बैठते समय बड़े लड़के ने परमात्मा से प्रार्थना की, "प्रभो, हमारी प्राणाहुति को स्वीकार करो।" एक महन्त, जो अग्नि प्रज्वलित कर रहा था, चिल्लाकर कहने लगा, "हरामज़ादे, तुम्हारा प्रभु ईश्वर नहीं, शैतान है! तुम इन शब्दों का उच्चारण करके परमपिता को क्यों बदनाम करते हो?" उस छोटे से बालक ने जब अपने पिता और बड़े भाई को चिता में जलते देखा तब वह अपने आप बोल उठा, "पिताजी, देखो आपके लिए स्वर्गद्वार खुल रहा है, दस हज़ार देवता आपका स्वागत करने के लिए तैयारी कर रहे हैं। पिताजी, आप प्रसन्न हों क्योंकि आप सचाई के लिए मर रहे हो!" आततायी पादरी ने फिर चिल्लाकर कहा, "दुष्ट, तुम्हारे पिता के लिए नरक का द्वार खुल रहा है और दस हज़ार शैतान तुम्हारे भाई तथा पिता को नरक में घसीट ले जाने के लिए आरहे हैं।" इस घटना के आठ दिन बाद वह नन्हा बच्चा भी माता की गोद में बिठला कर भस्मीभूत कर दिया गया।

ऐसी करुणाजनक घटनायें उस समय नीदरलेण्ड में प्रतिदिन हुआ करती थीं। परन्तु नीदरलेण्ड के निवासी घबराये नहीं, और न निरुत्साह हुए। जब कभी किसी को फाँसी मिलना होती थी, तब सहस्रों नर-नारियाँ और बच्चे अभियुक्त का तालियाँ बजाकर तथा देश-भक्ति-पूर्ण गीत गाकर अभिनन्दन करते थे। माटले ने ठीक कहा है कि ऐसी ही हृदय-विदारक घटनायें नीदरलेण्ड का तात्कालिक इतिहास बना है।

चिरकाल से समस्त नीदरलेण्ड में तीन प्रधान मठ चले आते थे, जो ईसाई-मज़हब के प्रचार की व्यवस्था करते थे। उन सबका ख़र्च नीदरलेण्डवासियों पर पड़ता था। फ़िलिप द्वितीय ने पोप की आज्ञा से मठों की संख्या तीन से अठारह कर देने का निश्चय किया। एक तो पहले ही से लोग पोप के अत्याचारों से तङ्ग हो रहे थे, मठों की संख्या-वृद्धि के प्रस्ताव ने मानो उनके घाव पर नमक छिड़क दिया। ये लाखों रुपये का ख़र्च इसलिए बढ़ाया गया कि मनमाने अत्याचारों के साथ ही साथ वे दरिद्र भी बनाये जायँ। फ़िलिप की इस आज्ञा का लोगों ने घोर विरोध किया। परन्तु उनकी सुनवाई कहाँ होती थी!

नवीन मठों की स्थापना

जब तक चार्लेस और फ़िलिप केवल टेक्स लेकर ही संतुष्ट रहे और लोगों के सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवन को कमज़ोर करने का उन्होंने प्रयत्न नहीं किया, तब तक तो चारों ओर शान्ति रही। परन्तु जब उन्होंने अपनी और पोप की सत्ता को स्थिर रखने के लिए लोगों के दैनिक जीवन में हस्तक्षेप करने का निश्चय किया तभी सारे नीदरलेण्ड से विरोध की आवाज़ें उठने लगीं। पहले तो सारा नीदरलेण्ड मिलकर स्पेन का विरोध करता रहा। परन्तु बाद में दक्षिणी नीदरलेण्ड (आधुनिक बेलजियम) ने स्पेन के साथ मिल कर उसका दासत्व स्वीकार कर लिया। किन्तु

विदेशी सत्ता के प्रति घृणा

उत्तरी नीदरलेण्ड अन्त तक स्पेन से लड़ता रहा और अन्त में उसने अपनी स्वतन्त्रता लेकर ही छोड़ी।

चार्लेस के राज्य-काल में नीदरलेण्ड

चार्लेस पाँचवाँ वंश-परम्परा से नीदरलेण्ड का राजा था। उसने कैसा राज्य किया, इसका अनुमान हम उसके घेन्ट-नगर के बर्ताव से लगा सकते हैं। घेन्ट-नगर पर चार्लेस ने एक बहुत भारी कर लगाया। 'हमारी सम्मति के बिना हम पर कोई कर नहीं लगाया जा सकता'—यह कह कर घेन्टवासियों ने टेक्स देने से इन्कार कर दिया। इस धृष्टता से चार्लेस आगबबूला हो गया। फ्रेंसिस प्रथम की सहायता से वह फ्रांस के मार्ग से घेन्ट पर चढ़ आया। उसने नगर के उन्नीस प्रमुख पुरुषों को फाँसी दे दी, और स्थावर तथा जंगम सभी सम्पत्ति हरण कर ली, नगर के सब अधिकार छीन लिये और जुर्माना-सहित कर वसूल कर लिये। घेण्ट चार्लेस के अत्याचारों को बहुत दिनों तक सहन न कर सका, उसने राजा की सब शर्तों को पूर्ण कर दिया। यह घटना १५०० में हुई थी।

राजनैतिक नीति के समान चार्लेस की मज़हबी नीति भी बड़ी क्रूर थी। नीदरलेण्ड में धर्म-विचार-सभाओं को स्थापित करनेवाला वही था। यद्यपि उसकी धार्मिक नीति सफल नहीं हुई, तथापि वह उसके चरित्र का भली भाँति दिग्दर्शन कराती है।

सन् १५५५ में स्वास्थ्य बिगड़ जाने से चार्लेस ने सिंहासन त्याग दिया। तत्पश्चात् सब सरदारों को ब्रुसल्स में बुलाकर राजसी ठाट-बाट के साथ फ़िलिप को राजमुकुट पहनाया। फ़िलिप ने सब लोगों की उपस्थिति में यह प्रतिज्ञा की कि मैं न्यायपूर्वक राज्य करूँगा और सबके अधिकार सुरक्षित रक्खूँगा।

फ़िलिप का सिंहासनारोहण (१५५६) और उसका व्यक्तिगत शासन

फ़िलिप भद्दे स्वभाव का आदमी था। मन ही मन वह विपक्षी को हानि पहुँचाने की युक्ति सोचा करता था। चार्लेस जितना निडर और बेधड़क था, फ़िलिप उतना ही भीरु तथा कायर था। इसी लिए उसके राज्यकाल में हत्याकाण्डों और षड्यंत्रों के सिवा और कुछ नहीं हुआ। वह कट्टर रोमन-केथॉलिक था। पोप की सत्ता को पुष्ट करने के लिए उसने सिरतोड़ परिश्रम किया। लेकिन उसमें एक बात अच्छी थी, वह अपने पिता की तरह विलासी नहीं था।

फ़िलिप बड़ा कपटी था। उसने फ़्रांस के साथ मेल करके सर्वदा के लिए नीदरलेण्ड से नास्तिक-वाद नष्ट करने का निश्चय किया। फ़्रांस भी स्पेन के साथ लड़ता-लड़ता थक गया था। दोनों शान्ति के इच्छुक थे। सेन्ट केन्टिन (१५५७) के घेरे के पश्चात्, जिसमें स्पेन सफल हुआ, दोनों ओर से शान्ति चाहनेवाले प्रतिनिधि केट्युकम्बेसिस नामक स्थान में इकट्ठे

हुए। इस सन्धि में फ़ांस और स्पेन दोनों देशों के राजाओं ने अपने-अपने देश से नास्तिक-वाद को दूर करने की प्रतिज्ञा की।

फ़ांस के राजा ने यह वचन भी दिया था कि नीदरलेण्ड से नास्तिकता दूर करने में मैं स्पेन की हर प्रकार से सहायता करूँगा। फ़ेंसिस ने अपने भोलेपन से इस सारे षड्यन्त्र को विलियम आव् ऑरेंज के सामने खोल दिया। विलियम केट्यु-केम्ब्रेसिस में फ़िलिप का प्रतिनिधि बन कर गया था। वह नीदर-लेण्ड का प्रमुख सरदार था और उत्तरकालीन डच-प्रजातन्त्र का कर्त्ता-धर्त्ता था। विलियम ने शान्त रूप से फ़्रेंसिस के इरादे सुने; उसकी बात-चीत में कोई हस्तक्षेप न किया। अतएव लोग उसे शान्त विलियम के नाम से पुकारने लगे। विलियम को तभी से स्पेन की सचाई में सन्देह होने लगा और उसने उसी समय अपने देश को विदेशी प्रभुत्व से मुक्त करने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

नीदरलेण्ड में इस समय तीन शक्तियाँ काम कर रही थीं। एक ओर फ़िलिप, कार्डिनल ग्रेनविल और उसके साथी थे, जो हर प्रकार से नीदरलेण्ड में पोप की सत्ता को स्थिर रखना चाहते थे। दूसरा दल नीदरलेण्ड के सरदारों का था। ये लोग थे तो केथॉलिक और पोप की सत्ता को माननेवाले, परन्तु दूसरे सम्प्रदायवालों को पूजापाठ की पूर्ण स्वतन्त्रता देना चाहते थे। ये इस बात के कट्टर विरोधी थे कि विदेशी सेनाओं-द्वारा नीदरलेण्ड में पोप की सत्ता दृढ़ की जाय। इस श्रेणी में वीरश्रेष्ठ एगमॉन्ट और नौ-सेनानायक हार्न भी थे। बुद्धिमान्

विलियम ऑरेंज भी पहले इसी दल के साथ था। परन्तु धीरे धीरे स्पेन की प्रामाणिकता और सचाई पर उसका विश्वास कम होता गया और वह पूर्ण स्वतन्त्रता का पक्षपाती बन गया। तीसरा दल केलविन-सम्प्रदायों के निडर अनुयायियों का था जो देश में पूर्ण स्वतन्त्रता—राजनैतिक और मज़हबी—स्थापित करना चाहते थे। इस दल में अधिकतर सर्वसाधारण श्रेणी के लोग थे।

नीदरलेण्ड को ऐसी विक्षोभ की अवस्था में छोड़ कर फ़िलिप ने स्पेन के लिए प्रस्थान किया और अपनी बहन मारगरेट आव् पारमा को अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया।

प्रारम्भ में ही मारगरेट को अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा। नीदरलेण्ड के सभी बड़े-बडे सरदारों ने राजा से अनेक बार प्रार्थना की थी कि वहाँ से विदेशी सैनिक हटा लिये जायँ। क्योंकि ये सैनिक लोगों पर बहुत अत्याचार करते थे, लूट-मार करने में इन्हें कोई संकोच नहीं होता था। पर ये धनलोलुप सिपाही तो नीदरलेण्ड में रोमन-केथॉलिक-मत और उसके प्रधान-प्रतिनिधि, पोप की सत्ता की रक्षा के लिए रक्खे गये थे। जो कोई उनके मार्ग में रुकावट खड़ी करता था उसका जीवित रहना कठिन हो जाता था। ऑरेंज और एगमाण्ट के अनेक वाद-प्रतिवाद करने पर भी जब विदेशी सैनिक न हटाये गये तब उन्होंने सेनापति-पद से

मारगरेट आव् पारमा; असन्तोष की वृद्धि

त्याग-पत्र दे दिया और राज्य-परिषद् के अधिवेशनों में जाना भी छोड़ दिया।

नीदरलेण्ड का वास्तविक शासक उस समय कार्डिनल ग्रेनविल था, यह एक मामूली पादरी से बढ़कर फ़िलिप के निरंकुश राज्य का स्तम्भ बन गया था। यही उस समय मारगरेट का सबसे बड़ा सलाहकार था। मन ही मन मारगरेट उससे बहुत द्वेष रखती थी। क्योंकि फ़िलिप ग्रेनविल की बातें मान लेता था किन्तु उसकी नहीं मानता था। इसलिए उस बेचारी को विवश होकर ग्रेनविल की सब घृणित कार्रवाइयों का समर्थन करना पड़ता था। कार्डिनल के अत्याचारों से लोग इतने व्याकुल हो गये थे कि जिस शहर में वह जाता वहाँ हड़ताल हो जाती थी और कोई उसका स्वागत करने तक को नहीं आता था।

धीरे-धीरे नीदरलेण्ड के सब सरदार कार्डिनल के प्राण-शत्रु बन गये। उन्होंने अपने कष्टों की निवृत्ति के लिए हार्न को अपना प्रतिनिधि बनाकर फ़िलिप के पास भेजा। उसने राजा के सामने सर्वसाधारण और सरदारों के कष्टों की सारी कथा कह सुनाई। फ़िलिप ने सब कुछ सुन तो लिया परन्तु कोई संतोष-प्रद उत्तर न दिया। बेचारा हार्न निराश होकर स्वदेश को वापस लौट आया। फिर ऑरेंज, एगमॉन्ट और हार्न ने फ़िलिप को एक संयुक्त पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने कार्डिनल के अत्याचारों का वर्णन किया और उसे स्पेन वापस बुलाने के लिए प्रार्थना की।

मारगरेट भी कार्डिनल से तङ्ग थी। वह अपने सरदारों को एक-दम अप्रसन्न नहीं करना चाहती थी। वह धर्म-विचार-सभाओं के अत्याचारों को एक-दम दूर नहीं तो कुछ कम अवश्य ही करना चाहती थी। उसकी इच्छा थी कि स्पेन के सिपाही वापस बुला लिये जायँ। नीदरलेण्ड-वासियों को असंतुष्ट करने के परिणाम वह भली भाँति जानती थी। फ़िलिप को साम्राज्य के अन्य सब हिस्सों की अपेक्षा नीदर-लेण्ड से अधिक आय होती थी। इसलिए नीदरलेण्ड को असंतुष्ट करने का पहला परिणाम यह होगा कि उसकी आमदनी बहुत कम हो जायगी। दूसरे, नीदरलेण्ड स्पेन से सदा के लिए अलग होकर एक स्वतन्त्र राष्ट्र बन जायगा। इससे स्पेन की राजनैतिक सत्ता को बहुत भारी धक्का पहुँचेगा।

इन सब बातों को विचार कर मारगरेट ने भी अनेक बार फ़िलिप से कार्डिनल को वापस बुलाने के लिए प्रार्थना की। अन्त में, जब फ़िलिप ने राज्य का सब काम-काज बिगड़ते देखा तब १५६२ में कार्डिनल को बुला लिया। कार्डिनल के चले जाने से लोगों को ऐसी प्रसन्नता हुई जैसी स्कूल के लड़कों को किसी दुष्ट अध्यापक से छुट्टी पाने के समय होती है।

कार्डिनल की विदाई से लोग, और विशेषकर सरदार, कुछ संतुष्ट होगये। उन्होंने मारगरेट के साथ मिलकर काम करना स्वीकार कर लिया। ऑरेंज और हार्न ने फ़िलिप को एक पत्र भेजा जिसमें अपनी राजभक्ति प्रकट

करते हुए उन्होंने यह लिखा कि यदि लोगों की मज़हबी स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप न किया जायगा तो वे मारगरेट के कार्य में पूर्ण योग देंगे।

परन्तु यह शान्ति स्थायी शान्ति थी। मज़हबी अत्याचारों का ज़माना फिर से आना था। १५६२ में ट्रेन्ट के मज़हबी सम्मेलन की अन्तिम बैठक हुई। १५६४ में फ़िलिप ने नीदरलेण्ड में कुछ आज्ञापत्र भेजे, जिनमें सबको ट्रेन्ट-सम्मेलन के व्यवस्था-पत्रों के अनुसार आचरण करने का आदेश दिया गया था। सरदारों ने उनका घोर विरोध किया। अन्तरङ्ग सभा ('प्रिवी कौंसिल') और राज्य-परिषद् में यह निश्चय हुआ कि सर्वसाधारण में आज्ञापत्रों की उद्घोषणा करने में जल्दी न की जाय और फ़िलिप से पुनः प्रार्थना की जाय कि वह उन्हें वापिस ले ले, क्योंकि वे देश के रीति-रवाज के विरुद्ध हैं। देश भर में आज्ञापत्रों, घोषणाओं और धर्म-विचार-सभाओं के विरुद्ध आन्दोलन होने लगे और यह निश्चय हुआ कि एगामान्ट देश के दुःखों की कथा सुनाने के लिए स्पेन भेजा जाय। उसने नीदरलेण्ड की स्थिति को संक्षेप में फ़िलिप के सामने उपस्थित किया। परन्तु निराशापूर्ण उत्तर पाकर बेचारे सीधा नीदरलेण्ड लौट आया।

इसके बाद देश भर में फिर घोर दमन-नीति का आरम्भ हुआ। एगमान्ट और आरेंज ने आज्ञापत्रों के अनुसार आचरण करने से इन्कार कर दिया। देश भर में असंतोष फैल गया। हज़ारों

आदमी नास्तिक समझ कर जीवित ही जला दिये गये। संशोधित ईसाई-मज़हब के अनुसार आचरण करने के लिए लोग हज़ारों की संख्या में खुले मैदानों और हरे-भरे खेतों में इकट्ठे होकर पूजा-पाठ करने लगे। यद्यपि इन सभाओं में जाना मृत्यु के मुख में पड़ना था; तथापि इन सभाओं की संख्या दिन-दूनी और रात-चौगुनी बढ़ती गई। लोगों में अब राज्य-बल का आतंक न रह गया था। वे मानो मृत्युञ्जय बन गये थे। कैथॉलिकों की जटिल पूजा-विधि की अपेक्षा उन्हें अपनी स्वाभाविक पूजा-विधि पर अधिक श्रद्धा एवं विश्वास था। खुले मैदानों और लहलहाते हुए खेतों में सभायें करना तत्कालीन सार्वजनिक विद्रोह की एक विशेषता थी। ऐसे सर्वव्यापी विद्रोह के समय कृषि, उद्योग-धंधे और व्यापार नष्ट होना स्वाभाविक था। पचास सहस्र पददलित भूखे-प्यासे नीदरलैंडवासी अपने देश में ईश्वर-पूजा की स्वतंत्रता न पाने के कारण इँग्लेण्ड के विभिन्न प्रान्तों में जाकर बस गये।

सभी सरदार मिल कर मारगरेट के पास गये और उससे शान्तिस्थापना के लिए प्रार्थना करने लगे। ऑरेंज आदि सरदार

'भिखारी चिरंजीवी हों'

जब मारगरेट के साथ बातचीत कर रहे थे तब एक चापलूस परामर्शदाता ने चौंक कर कहा, 'देवी, क्या आप इन भिखमंगों से डर गईं ?' कुलीन सरदारों ने जब अपने लिए भिखारी शब्द का प्रयोग होते देखा तब उनके आत्माभिमान को बहुत ठेस लगी। अपनी वास्तविक स्थिति को संसार के सामने रखने के लिए,

उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक "भिखारी" की उपाधि ग्रहण कर ली। उस समय से हज़ारों-लाखों नीदरलेण्डवासी भिखारियों के वेष में रहने लगे, देश को स्वतन्त्र करने के लिए उन्होंने कठोर दारिद्र-व्रत धारण कर लिया। स्थान-स्थान पर 'भिखारी चिरंजीवी हों!' आदि जय-जयकारों की दुन्दुभि बजने लगी। यही 'भिखारी' अन्त में उच्च-स्वतन्त्रता के सैनिक हुए और अपने घोर परिश्रम से संसार को दिखा दिया कि साधनविहीन भिखारी भी पृथ्वीतल पर चमत्कार कर सकते हैं!

नीदरलेण्डवासी धीरे-धीरे प्रत्यक्षरूप से स्पेन के विरुद्ध उपद्रव मचाने लगे। सरदारों की शान्तिस्थापना के प्रयत्नों का परिणाम यह हुआ कि अपराधियों को जीवित जलाने के बदले फाँसी का दण्ड दिया जाने लगा। इससे अधिक नरमी फ़िलिप लोगों पर नहीं कर सकता था। फ़िलिप और उसके प्रतिनिधि मारगरेट के व्यवहार से असंतुष्ट होकर लोगों ने मूर्तियों को भङ्ग करना, गिरजों को जलाना और उनकी सम्पत्ति को लूटना प्रारम्भ कर दिया (१५६६)। फ़िलिप और मारगरेट कैथॉलिक गिरजों का विध्वंस कैसे देख सकते थे? उन्होंने अपनी ओर से पहले से भी भयङ्कर अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया।

नीदरलेण्ड की प्रतिदिन बिगड़ती हुई हालत को देखकर फ़िलिप ने वहाँ एक प्रबल शासक भेजने की आवश्यकता का अनुभव किया। उसने मारगरेट आव् पारमा को वापस

बुला लिया और उसके स्थान में ऐलवा के ड्यूक को नीदरलैण्ड में अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा।

सन् १५६७ में ऐल्वा-ड्यूक के प्रतिनिधि बनने के साथ ही डच-स्वातन्त्र्य-युद्ध एक क़दम और आगे बढ़ गया। इसके पहले नीदरलैण्डवासियों ने स्पेन का संगठित विरोध कभी नहीं किया था। ड्यूक के पदार्पण के समय समस्त देश में विद्रोह की आग सुलग रही थी। वहाँ के निवासियों का संगठन सैनिकरूप धारण करता जाता था, वे मिलकर काम करना सीख रहे थे।

ऐल्वा का ड्यूक और उपद्रव का प्रज्वलित होना

फ़िलिप ने बहुत सोच-विचार के पश्चात् ऐसा किया था। वह जानता था कि नीदरलैण्ड को इस समय किसी अनिश्चयात्मक एवं दुर्बलप्रकृति के शासक की ज़रूरत नहीं है। मारगरेट की भूलें और त्रुटियाँ उसे स्मरण थीं। निरंकुश राजा की भाँति वह समझता था कि केवल दमन-नीति से ही वह नीदरलैण्ड में अपना आधिपत्य स्थिर रख सकता है। यह अनुमान तो वह कर ही नहीं सकता था कि प्रजावत्सल बनकर भी वह अपना राज्य अधिक सुदृढ़ कर सकता है।

वायसराय बनने से पहले ऐलूवा अनेक युद्धों में अपनी वीरता का परिचय दे चुका था। वह अपने निश्चय पर दृढ़ रहनेवाला मनुष्य था। रोमन-कैथॉलिक-सम्प्रदाय का वह अन्धा पुजारी था। क्रूरता और निर्दयता उसके बाँये हाथ के

खेल थे। नीदरलेण्ड में 'रक्त और तलवार' की नीति को प्रसन्नता से उपयोग में लानेवाला ऐलूवा से अच्छा आदमी फ़िलिप को दूसरा नहीं मिल सकता था।

ऐलूवा की सहायता के लिए फ़िलिप ने अपनी भारी सेना में से नौ हज़ार सुसज्जित सिपाही उसके साथ कर दिये। सेना की प्रसन्नता और नीदरलेण्डवासियों को आचार-भ्रष्ट करने के लिए दो हज़ार वेश्यायें भी उसने ऐलूवा के साथ कर दीं। कूट-नीति उस समय के राजनैतिक-शस्त्रागार में प्रधान शस्त्र था। विश्वासघात से किसी की जान लेना भी पातक नहीं समझा जाता था। जिन लोगों में कुछ बाहुबल होता था, वे इस शस्त्र का कम प्रयोग करते थे। परन्तु निस्तेज और निर्वीर्य लोगों को संसार में अपना प्रभुत्व जमाने के लिए कूट-नीति के सिवा अन्य कोई साधन नहीं मिल सकता था। फ़िलिप इसी श्रेणी के आदमियों में से था। ऐलूवा को विदा करते समय राजा ने उसे कूट-नीति के शस्त्र का उपयोग करने के लिए विशेष आदेश दिया। आरेञ्ज, एगमॉन्ट और हार्न की गुप्तहत्या के लिए उसने ऐलूवा को ख़ास तौर से समझा दिया। सुधारक-दल का उन्मूलन करने की भी राजा ने उसे पूरी स्वतन्त्रता दी।

नीदरलेण्ड में ऐलूवा का सबसे पहला काम विद्रोहियों का विध्वंस करना था। आरेंज को फ़िलिप की कपट-पूर्ण चालों का बरसों से ज्ञान था। इसलिए नीदरलेण्ड से भागने में ही उसने देश का कल्याण समझा और जर्मनी

चला गया। फ़िलिप की ओर से विश्वासघात होगा इसकी चेतावनी उसने एगमान्ट और हार्न को भी दे दी थी। परन्तु उन्होंने कुछ परवाह न की। इसलिए जर्मनी में पहुँचकर भावी स्वातंत्र्य-युद्ध के लिए आरेंज अपने भाई विलियम नस्सौ की सहायता से स्वयंसेवक और सैनिक भर्ती करने लगा।

आरेंज के चले जाने के पश्चात् नीदरलैण्ड में दो प्रधान सरदार शेष रह गये—एगमॉन्ट और हार्न। इन दोनों सरदारों ने अनेक युद्धों में फ़िलिप की सहायता की थी। तन, मन और धन—तीनों को इन्होंने फ़िलिप की सेवा में समर्पित कर दिया था।

एगमॉन्ट तथा हार्न की फाँसी

परन्तु जब स्वयं फ़िलिप की भलाई के लिए इन्होंने उसे शांति-स्थापना का परामर्श दिया, तब वे विद्रोही घोषित कर दिये गये। ऐलूवा ने एक दिन दोनों को अपने घर भोजन के लिए आमंत्रित करके गिरफ़्तार कर लिया। कहाँ एगमॉन्ट और हार्न का सम्मानित अतिथि बनकर जाना और कहाँ मध्यकालीन योरुप के जेलों में प्यास और भूख के मारे तड़पना! दोनों सरदारों ने अपनी निरपराधिता फ़िलिप और उसके सलाहकारों के सामने सिद्ध करने की बड़ी कोशिश की। परन्तु कौन सुननेवाला था? वहाँ तो सन्देह ने जड़ पकड़ ली थी। अन्त में दोनों निर्दोष सरदारों को ब्रुसल्स के एक बड़े चौराहे के बीच हज़ारों लोगों की उपस्थिति में फाँसी दे दी गई। इस प्रकार रक्तपिपासु ऐलूवा ने अपनी अभूतपूर्व क्रूरता का पहला परिचय दिया।

सरदारों की शक्ति को कमज़ोर करने के पश्चात् ऐल्वा ने संशोधित ईसाई-मज़हब के अनुयायिओं का सर्वनाश करने की ठानी। इस उद्देश से उसने संकट-सभा स्थापित की, जिसका नामकरण कुछ इतिहासवेत्ताओं ने रक्त-सभा भी किया है। खूनी-सभा का कर्त्ता-धर्त्ता और भाग्य-विधाता सब कुछ ऐल्वा था। इसकी करतूतों से सारा योरुप कम्पायमान होगया। इसके अनुग्रह से हज़ारों मनुष्य ज़िन्दा जला दिये गये अथवा फाँसी पर लटका दिये गये। कई बार तो मुक़द्दमा होने से पहले ही दण्ड का निर्णय हो जाता था।

रक्त-सभा

एक बार मुक़द्दमे के लिए किसी अभियुक्त का बुलावा हुआ। पर पूँछ-ताँछ से पहले ही उसे फाँसी हो चुकी थी। काग़ज़ात के उलटने-पलटने से पता चला कि वह निरपराधी था। इस पर ऐल्वा के साथी वेग्रस ने क्रूर-हास्य से कहा, "कोई हर्ज़ नहीं! यदि वह अभियुक्त निर्दोष होते हुए भी फाँसी पर चढ़ा दिया गया है तो और भी अच्छा हुआ। जल्दी स्वर्ग में पहुँचेगा।"

ऐल्वा ने अपने अल्प शासन-काल में अठारह सहस्र मनुष्यों के प्राण लिये और लाखों की सम्पत्ति हरण की। उसके राज्य-काल में नीदरलैण्ड की क्या अवस्था थी, इसका चित्र माटले ने खींचा है—"ऐल्वा के शासन-भार लेने के कुछ समय बाद ही सारी जाति में निराशा के चिह्न दिखाई देने लगे। जाति के श्रेष्ठतम और पराक्रमी नररत्नों को हज़ारों की संख्या

में फाँसी मिल चुकी थी। नेताओं में से वे जो ऐसे संकट-काल में पथप्रदर्शक और संरक्षक हो सकते थे बहुत से मर गये थे, कुछ जेलों में सड़ रहे थे और शेष देश से निर्वासित कर दिये गये थे। नीदरलेण्ड की अभागी प्रजा को शत्रु के सामने सिर झुकाने से कोई लाभ नहीं था, भागना उनके लिए असम्भव था, प्रत्येक दुःखी हृदय में अत्याचारियों से बदला लेने की उत्कट इच्छा हो रही थी। शोकातुर लोग बाज़ारों में भटकते दिखाई देते थे। कोई ऐसा विरला ही घर था जिसको अत्याचारी स्पेनवालों ने उजाड़ा न हो। गलियों और बाज़ारों में फाँसियाँ तैयार की गई थीं, जहाँ चौबीसों घण्टे मुर्दे लटकते रहते थे। बागों में भी कोई विरला ही ऐसा था जिसमें मुर्दों के ढेर सड़ते हुए दिखाई न देते हों।"

ऐल्वा की करतूतों का वर्णन करना व्यर्थ है। उसके अत्याचारों को नीदरलेण्डवासी प्रलय-पर्यन्त नहीं भूल सकते। आओ, अब हम यह देखें कि इस पददलित एवं मृतप्राय जाति को डच-इतिहास के प्रधान नायक विलियम आव् ऑरेंज ने स्वाधीन कैसे बनाया।

विलियम आव् ऑरेञ्ज

यहाँ तक हम विलियम आव् आरेंज के चरित्र में उसकी सहिष्णुता, स्वातंत्र्य-प्रेम और नीति-कुशलता को अधिक महत्त्व देते आये हैं। हम देख चुके हैं कि वह कट्टर केथॉलिक होते हुए भी कितने बल से बराबर स्पेन की मज़हबी नीति

का विरोध करता रहा है। स्पेन से अपने देश के दुःख-मोचन की कोई आशा न देखकर हमने उसको राज्य की सभी संस्थाओं से असहयोग करते हुए देखा है। जहाँ एगमान्ट जैसे वीर फ़िलिप की मीठी बातों में आगये, वहाँ ऑरेंज फ़िलिप की गुप्त कार्रवाईयों को सर्वदा सन्देह की दृष्टि से देखता रहा। उनमें सहयोग करना उसने अपने और देश के कल्याण के लिए हानिकारक समझा। यह था उसका स्वातंत्र्य-प्रेम।

उसकी नीति-कुशलता के कारण चार्लेस पाँचवाँ उस पर बचपन से ही मुग्ध था। केटूयु केम्बोसिस की संधि में उसने अपने इस गुण का ख़ूब परिचय दिया था। फ़िलिप को यदि किसी से डर था तो इस कूटनीतिज्ञ से। कई बार उसने ऑरेञ्ज के प्राण-हरण की कोशिश की, क्योंकि ऑरेञ्ज को वह अपने राज्य के लिए एक बहुत ही भयानक व्यक्ति समझता था।

ऐल्वा की क्रूर-नीति को भलीभाँति देखने के बाद हम ऑरेञ्ज को एक सर्वथा भिन्न रूप में देखते हैं। अब ऑरेञ्ज को अहिंसात्मक साधनों से देश के दुःख-निवारण की कोई सम्भावना नहीं दीखती थी। उसके लिए केवल एक ही कण्टकाकीर्ण कर्म-पथ शेष रह गया था। ईश्वर पर भरोसा रखके उसने उसी पथ पर चलने की ठानी। धर्म का पालन करते हुए उसके प्राण तक भी चले गये, परन्तु एक बार भी वह अपने कर्तव्य-पथ से नहीं डिगा।

ऑरेञ्ज के सामने सबसे पहला काम सेना-संगठन था। इस उद्देश की पूर्त्ति के लिए उसने जर्मन-राजाओं से अपील की पर उन्होंने प्रसन्नता से कुछ भी सहायता नहीं दी। ऑरेञ्ज ने अपने देशवासियों से भी धन, सेना और युद्ध-सामग्री के लिए अपील की। सेना-संगठन में उसका सबसे बड़ा सहायक लुइस नस्सौ था। लुइस को सैनिक-जीवन का बहुत अनुभव था। उसके झण्डे पर सर्वदा ये चिरस्मरणीय शब्द अंकित रहते थे—"पितृ-भूमि तथा आत्मा की स्वतन्त्रता।" सहस्रों लोग इस स्वातन्त्र्य-यज्ञ में अपनी आहुति चढ़ाने के लिए थोड़ा सा निर्वाह-मात्र लेकर ऑरेंज की सेना में स्वयंसेवक बन गये। जिससे जो कुछ बनता था, वह प्रेम-पूर्वक अपने आराध्य-देव ऑरेंज की भेट करता था। इस प्रकार विलियम ने अपनी स्थल-सेना का संगठन कर लिया।

अब प्रश्न रह गया जल-सेना का। उसके लिए ऑरेंज को विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ा। "समुद्री भिखारी", अर्थात् जिन्होंने स्थल पर अपने जीवन को सुरक्षित न देखकर समुद्र को अपना घर बना लिया था और जिनका निर्वाह स्पेन के जहाज़ों की लूट से चलता था, हर समय ऑरेंज की सहायता के लिए तैयार रहते थे। आज्ञा मिलते ही वे अपनी हलकी हलकी किश्तियों को लेकर उपस्थित हो जाते थे। यदि ये निडर समुद्री लुटेरे हॉलेण्ड के पास न होते तो हॉलेण्ड अपनी स्वतन्त्रता को कभी न पाता।

सैनिक दृष्टि से नीदरलेण्ड के इतिहास में तीन घटनायें बहुत प्रख्यात हैं, जिनसे डच लोगों के उत्साह, साहस और देशभक्ति का अपूर्व परिचय मिलता है। इन घटनाओं में करुण-रस और वीर-रस—दोनों का समावेश है। किन्तु हमें इन चित्ताकर्षक घटनाओं को पढ़ते समय उनके सूत्रधार ऑरेंज को कभी नहीं भूल जाना चाहिए। उनके पथप्रदर्शन के बिना कदाचित् ये अलौकिक घटनायें न होतीं।

युद्ध के आरम्भ होते ही ऑरेंज ने समुद्री भिखारियों को स्पेन के जहाज़ लूटने की आज्ञा दे दी थी। इसलिए ये लोग बेखटके समुद्रों में घूमते थे। एक बार इनका नौ-समूह बलात् किसी अँगरेज़ी बन्दर से निकाल दिया गया। लुटेरे होने के कारण उनके जहाजों को किसी ने अपने बन्दर में न आने दिया। कोई आश्रय न पाकर उन्होंने अकस्मात् हॉलेण्ड के 'ब्रिल', बन्दर पर जो उस समय स्पेन के हाथ में था, धावा बोल दिया और ऑरेंज के नाम से उस पर अधिकार कर लिया। इस सफलता ने इन भिखारियों को अपना कर्त्तव्य-पालन करने में और भी उत्तेजित और उत्साहित कर दिया। इन देश-भक्त भिखारियों ने एक-एक करके सभी बन्दर स्पेन के क्रूर हाथों से छीन लिये। ब्रिल की विजय हॉलेण्ड की भावी समुद्र-शक्ति का वास्तविक श्रीगणेश थी। उसने इँगलेण्ड की आँखें

ब्रिल का जीतना
हॉलेण्ड की समुद्र-शक्ति का आरम्भ
(१५७२)

भी खोल दीं जिससे वह भी अपनी समुद्र-शक्ति को बढ़ाने लगा।

ब्रिल की विजय का वृत्तान्त सुनकर स्पेन पर निराशा के बादल छा गये। अपनी शक्ति से मदान्ध जाति एक दास-जाति से पराजित होकर चुपचाप न बैठ सकती थी। उसने बदले की ठानी। प्रतीकार लेने के लिए उन्होंने हॉलेण्ड का सुन्दर हारलेम-नगर चुना।

हारलेम के घेरा और लूट
(१२७२-१५७३)

हारलेम नीदरलेण्ड के समृद्धिशाली नगरों में से था। परन्तु सैनिक-दृष्टि से वह अन्य शहरों से कमज़ोर था। उसकी चहारदीवारी पुराने ढर्रे की बनी हुई थी और रक्षा के लिए उसमें कोई साधन नहीं था। स्पेन हारलेम को जीतकर समूचे हॉलेण्ड पर अधिकार करना चाहता था। स्पेन ने पहले तो हारलेमवासियों को घूँस और लालच दिखाकर अपने वश में करना चाहा। इसके लिए उन्होंने नगर के भगोड़े मजिस्ट्रेट डी फ्रीस को उकसाया। देश-घातक डी फ्रीस उनकी बातों में आगया। उसने एक दूत-द्वारा हारलेमवासियों को अपना नगर स्पेन को सौंप देने का उपदेश किया। इस पर हारलेमवासियों के क्रोध का ठिकाना न रहा। उन्होंने सन्देश लानेवाले दूत के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। नगरवासियों ने दूत के प्रति जो बर्ताव किया, उससे

भलीभाँति विदित होता था कि वे किसी सूरत में स्पेनवालों से सन्धि नहीं करना चाहते थे।

जब घेरे की तैयारी हो गई तब एक बड़ी सेना के साथ ऐलूवा का लड़का डॉनफ्रेड्रिक वहाँ पहुँचा। उसकी सेना तीस सहस्र सिपाहियों से कम न थी। इस राजसी सेना का सामना करने के लिए सेना-समेत हारलेम की कुछ जन-संख्या चार हज़ार से अधिक न थी। सौभाग्य से उन दिनों हारलेम के चारों ओर बहुत घनी धुन्ध छा गई। आरेंज ने भी, जितनी खाद्य-सामग्री और सेना एकत्रित हो सकी, भेज दी। जब डॉनफ्रेड्रिक ने घेरा डाला तब नगर की रक्षा के लिए तीन हज़ार पुरुष और तीन सौ स्त्रियाँ सिपाही के रूप में खड़ी हुईं। स्त्री-सैनिकों का जत्था पुरुषों की अपेक्षा अधिक सुसज्जित और सुसंगठित था। जिस नगर की मातायें और बहनें देश-रक्षा के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने को तैय्यार हों, वह नगर और वह देश धन्य है! उस देश के पुरुषों का साहसी और शूरवीर होना बिलकुल स्वाभाविक है।

डॉनफ्रेड्रिक ने गोलाबारी करके नगर की चहारदीवारी में रास्ता बनाने का कई बार प्रयत्न किया। परन्तु ज्योंही वह राह बनाता, त्योंही सहस्रों बाल-वृद्ध स्त्री-पुरुष ईंटें, गारा, मिट्टी और बालू उठा उठाकर टूटे हुए हिस्से पर पहुँच जाते और शत्रु के आने से पहले ही उसकी मरम्मत कर

डालते। एक बार शत्रु ने दीवार में एक बड़ा रास्ता बना लिया। फ्रेड्रिक का अफ़सर रोमिश्रो उस पर अधिकार करने के लिए आगे बढ़ा। आपद्-काल समीप देखकर गिरजाओं के घण्टानाद ने सारे नगर में सङ्कट-ध्वनि फैला दी। थोड़ी ही देर में हज़ारों नगरवासी दीवारों पर खड़े होकर शत्रु पर तोप और आग बरसाने लगे। शत्रु-दल के सैकड़ों सिपाही भुन-भुनकर दीवार के पास गिरने लगे। शेष ने भयभीत होकर भागने में ही अपना कल्याण समझा। जब हारलेम वीरता-पूर्वक आत्मरक्षा कर रहा था तब आरेंज चुपचाप नहीं बैठा था। अपनी परिमित शक्ति को ध्यान में रखते हुए उसने नगर की रक्षा के लिए चार हज़ार सिपाही और भेजे। परन्तु स्पेन के हाथों उन्हें बुरी तरह से हार खानी पड़ी।

इधर डॉनफ्रेड्रिक भी निराश हो रहा था। उसके पास अब एक ही उपाय रह गया था। वह यह कि हारलेमवासियों को भूखा मार डालें। अतएव उसने इसी घृणात्मक-शस्त्र का प्रयोग किया। बहुत लम्बे घेरे के बाद फ्रेड्रिक ने हारलेम को अपने अधीन कर लिया। तत्पश्चात् वह अपनी राक्षसी प्रवृत्ति का परिचय देने लगा। तेईस सौ मनुष्य उसकी आज्ञा से फाँसी पर लटका दिये गये, और बचे हुए हर प्रकार से अपमानित एवं भयभीत किये गये।

हारलेम जीतने में स्पेन को हज़ारों सिपाहियों का रक्तपात करना पड़ा। वास्तव में, विजय का सेहरा हारलेमवासियों के

सिर बँधा, जिन्होंने सरदी-गरमी, भूख-प्यास की परवा न करके मरते दम तक नगर की रक्षा की। वास्तव में यह ठीक कहा गया है, स्पेन की यह विजय पराजय से कहीं ख़राब थी।

हारलेम में स्पेन की सेना का विध्वंस और डच लोगों की वीरता के समाचार सुनकर फ़िलिप ने ऐल्वा के शासन से असंतुष्ट होकर उसे वापस बुला लिया और उसकी जगह रेकेसन्स को अपना प्रतिनिधि नियुक्त करके वहाँ भेजा। रेकेसेन्स ऐल्वा से भिन्न प्रकृति का मनुष्य था। वह नीदरलेण्ड में यथाशक्ति शान्ति स्थापित करना चाहता था। उसकी नीति राजनैतिक-क़ैदियों को मुक्ति करके अथवा इसी प्रकार की कुछ रियायतें देकर लोगों को चरित्रहीन बनाने की थी। उसने सब नगरों से, जो स्पेन के अधीन थे, स्पेन की सत्ता स्वीकार करने के लिए कहा। परन्तु सबने इनकार कर दिया। तब दमन के सिवा और कोई साधन फ़िलिप की सत्ता को नीदरलेण्ड में स्थिर रखने का नहीं रह गया।

लीडन का घेरा और उसका छुटकारा (१५७३-१५७४)

इसके शासन-काल की चिरस्मरणीय घटना लीडन का घेरा और उसका छुटकारा है। लीडन के नागरिकों ने अपने प्यारे नगर की किस प्रकार रक्षा की, उन्हें कैसी-कैसी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं, विलियम ऑव् ऑरेंज ने कैसे समुद्र के भिखारियों

का बेड़ा भेजकर लीडन को मृत्यु के मुख से बचाया, यह सब वृत्तान्त पढ़कर चित्त में देश-प्रेम की तरंगें उठने लगती हैं।

समुद्रतट पर लीडन एक रमणीक शहर था। उसके चारों ओर लहलहाते हुए खेत और तरह तरह के फल-फूलों के बाग़ थे। राईन-नदी अनेक शाखाओं में विभक्त होकर यहाँ जल-कल्लोलें किया करती थी। धाराओं के बीच की भूमि बहुत ही उपजाऊ थी। धाराएँ बाज़ारों का काम देती थीं। उनके दोनों तटों पर सुन्दर दूकानें और मकान बने थे। एक बाज़ार से दूसरे बाज़ार में जाने के लिए किश्तियों के सिवा और कोई साधन नहीं था। इन प्राकृतिक नहरों के किनारे कई प्रकार के मेवों के पेड़ थे। ऐसे सुन्दर नगर के सर्वनाश के लिए फ़िलिप सारी शक्तियाँ लगा रहा था।

फ़िलिप के सेनापति ने शहर के चारों ओर एक ज़बरदस्त घेरा डाल दिया। नगर की रक्षा के लिए नागरिकों की टोलियों तथा पाँच-छः सौ समुद्री भिखारियों के सिवा और कोई नहीं था। ऑरेंज ने नगर को सहायता पहुँचाने का पूरा प्रयत्न किया, परन्तु वह कुछ बहुत नहीं कर सका।

एक उपाय था जिससे ऑरेंज लीडन के घेरे को हटा सकता था। हालैण्ड का धरातल समुद्रतल से नीचा है। समुद्र की लहरों से भूमि को सुरक्षित रखने के लिए वहाँ के निवासियों ने प्राचीनकाल में समुद्र-तट पर बड़ी-बड़ी दीवारें

खड़ी कर दी थीं, जिन्हें वे 'डाईक' या बाँध कहते हैं। आरेंज लीडन के आस-पास के बाँध तोड़कर उसके चारों ओर की भूमि को जलमय कर देना चाहता था। क्योंकि ऐसा करने से या तो स्पेनिश लोग घेरा उठा लेते या समुद्र-गर्भ में आने से अन्तिम शान्ति लाभ कर लेते। आरेंज जानता था कि बाँधों के तोड़ने से सर्वत्र समुद्र-जल फैल जायगा और इससे भूमि सदा के लिए निकम्मी हो जायगी। परन्तु इसके अतिरिक्त लीडन को शत्रु के पंजे से छुड़ाने का और कोई उपाय ही नहीं था। अतएव स्वतन्त्रता के लिए ऑरेंज ने मातृभूमि जैसी प्रियतम वस्तु का त्याग भी उचित समझा। "पराधीन सपनेहु सुख नाहीं" इस तत्त्व को वह भलीभाँति समझता था। इसलिए हानि की परवा न करके उसने बाँधों को तोड़ने की आज्ञा दे दी।

उधर लीडनवासियों की बड़ी दुर्दशा हो रही थी। महामारी और भूख ने लीडन भर में रौद्र रूप धारण कर लिया था। लोग भूख के मारे बिल्ली-कुत्तों तक को खा डालते थे। अकेली महामारी से लीडन में छः सहस्र आदमी मर गये। परन्तु बचे हुए लोग वीरता-पूर्वक महामारी और भूख से भी अधिक दुःखदायी विदेशी शत्रु का सामना दिन-प्रति-दिन बढ़ते हुए उत्साह के साथ करते रहे।

उस विख्यात घेरे की एक घटना लीडनवासियों के स्वदेश-प्रेम का स्पष्ट-रूप से परिचय दे रही है। उस समय जहाँ लीडन में सहस्रों मनुष्य ऐसे थे जो मातृभूमि के लिए प्रसन्नता-पूर्वक

कष्ट-सहन में अपना सौभाग्य समझते थे, वहाँ कुछ ऐसे भी थे जो निराश होकर नगर को शत्रु को सौंप देने के लिए उद्यत हो रहे थे। एक बार कुछ ऐसे ही भीरुओं ने नगर के प्रधान नागरिक एड्रियन वॉन डटवर्फ पर खुले बाज़ार में वार किया क्योंकि उसे वे अपनी सब विपत्तियों का मूल कारण समझते थे। एड्रियन के आस-पास थोड़ी ही देर में बहुत से लोगों का जमघट होगया। एक ऊँची जगह पर खड़े होकर उसने लोगों से शान्त होने के लिए कहा। जब चारों ओर सन्नाटा छा गया तब आश्वासन देते हुए उसने जो शब्द कहे, वे हॉलेण्ड के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं—

"मित्रो, तुम क्या चाहते हो? क्या तुम इसलिए गिड़गिड़ाते हो कि अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करके हम शहर को स्पेनवासियों के हवाले क्यों नहीं कर देते? पर आज-कल की अपेक्षा स्पेन की दासता अधिक कष्टप्रद होगी। मैं तुम्हें बतलाना चाहता हूँ कि मैंने शहर की रक्षा के लिए शपथ ली है और यदि परमात्मा ने सहायता की तो उसे पूर्ण करके छोड़ूँगा। चाहे तुम मुझे मार डालो और चाहे मुझे शत्रुओं के हाथ से मरना पड़े अथवा चाहे मेरी सहज मृत्यु हो लेकिन मर मैं एक ही बार सकता हूँ। मैं जानता हूँ कि यदि हमें सहायता न मिली तो हम भूखे मर जायँगे। परन्तु अपमान-जनक मृत्यु से भूखे मर जाना अच्छा है। तुम्हारी धमकियाँ मुझे डरा नहीं सकतीं। मेरा जीवन तुम्हारे हाथ में है। यह

लो ! मेरी कटार ! इससे मेरे सीने के टुकड़े-टुकड़े कर दो और मेरे मांस को परस्पर बाँटकर खा जाओ। मेरे शरीर से तुम अपनी क्षुधा को शान्त कर सकते हो। परन्तु जब तक मेरे तन में प्राण हैं, तब तक कदापि यह आशा न करो कि मैं शहर को शत्रु के हवाले करने दूँगा !"

लीडन की इस अग्नि-परीक्षा के समय ऑरेंज बराबर वहाँ के निवासियों को आश्वासन-पत्र लिखता रहा। वह उन्हें बार-बार यह स्मरण कराता था कि हॉलेण्ड का भाग्य-निर्णय लीडन के घेरे के परिणाम पर अवलम्बित है। उनको अपने भाग्य से असंतुष्ट न होना चाहिए। यदि वे अपने संकल्प पर डटे रहे तो संसार भर उनकी प्रख्याति और यश फैल जायगा।

लीडन की हृदय-विदारक घटनाओं का वृत्तान्त सुनकर समुद्री भिखारी कैसे चुप बैठ सकते थे। उनका उत्साह और क्रोध दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ता गया। उन्होंने बड़ी जल्दी बड़े-बड़े बाँध तोड़ डाले। शहर के चारों ओर समुद्र लहरें मारने लगा। कितने ही स्पेनिश सैनिकों को अपनी क़बरें इस जल में बनानी पड़ीं। शेष समुद्र-जीवन से अनभिज्ञ होने के कारण रण-क्षेत्र से भाग निकले।

अकस्मात् प्रकृति-देवी भी लीडन की सहायता के लिए पहुँच गई। समुद्री भिखारियों के खाद्य-सामग्री से परिपूर्ण जहाज़, जो अब तक पानी थोड़ा होने से नगर की ओर नहीं

बढ़ सकते थे, एकाएक वायु के झोंके से लीडन की चहार-दीवारी के पास जा लगे। लोगों को अन्न और वस्त्र की सहायता मिल गई। अपनी क्षुधा शान्त करके लीडनवासी इन समुद्री भिखारियों को शतशः धन्यवाद देने लगे। ऑरेंज ने लीडनवासियों की इस अनुपम वीरता की स्मृति में लीडन में एक विशाल विश्वविद्यालय स्थापित किया, जो कई पीढ़ियों तक विद्या का केन्द्र रहा।

सन् १५७६ में रेकेसेन्स की मृत्यु होगई। इसलिए स्पेनिश-सिपाही सारे नीदरलेण्ड में लड़ाई-झगड़े और लूट-मार करने लगे क्योंकि कई महीनों से उन्हें तनख्वाहें नहीं मिली थीं। एण्टवर्प जैसे रमणीक नगर को उन्होंने ऊजड़ ग्राम बना दिया। देश को विदेशियों के सर्वव्यापक अत्याचार से बचाने के लिए नीदरलेण्ड के सब प्रान्तों के प्रतिनिधि घेण्ट में एकत्र हुए। सबने देश को विदेशी डाकुओं से सुरक्षित रखने की शपथ खाई। वहाँ पर यह भी निश्चय हुआ कि सब प्रान्तों को मज़हबी विश्वास और पूजापाठ की पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाय। नीदरलेण्ड का यह ऐक्य इतिहास में "घेण्ट की शान्ति" के नाम से प्रसिद्ध है।

स्पेन की उन्मत्तता; घेण्ट का समझौता (१५७६)

परन्तु यह ऐक्य स्थायी न रह सका। रेकेसेन्स की मृत्यु के पश्चात् डान जान्ह आव् आस्ट्रिया को फ़िलिप ने अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा। उसकी नीति ठीक भेद-नीति

थी। उसने एक प्रान्त को दूसरे प्रान्त से और एक सम्प्रदाय को दूसरे सम्प्रदाय के साथ आपस में लड़वाकर नीदरलेण्ड को दो हिस्सों में बाँटने का प्रयत्न किया और इसमें उसे सफलता भी प्राप्त हुई।

डान जाह्न आव् आस्ट्रिया के पश्चात् सिकन्दर आ- पारमा वायसराय बन कर आया। उसने विद्रोही प्रान्तों के साथ अनेक लड़ाइयाँ लड़ीं। उसने 'फूट डालने और राज्य करने' की नीति को एक क़दम और आगे बढ़ाया। दक्षिणी नीदरलेण्ड में निराशा के चिह्न दिखाई देने लगे। एक-एक करके उसके दस प्रान्तों ने घेण्ट के ऐक्य को त्याग कर स्पेन की दासता स्वीकार कर ली।

उत्तर नीदरलेण्ड के सात प्रान्तों के प्रतिनिधि १५७६ में यूट्रेक्ट में इकट्ठे हुए और वे ऑरेंज को अपना सरदार बनाकर स्थायी ऐक्य की योजना करने लगे। इन सातों प्रान्त का मेल इतिहास में "यूट्रेक्ट का मेल" कहलाता है।

यह ऐतिहासिकों की कल्पना है, और इसमें बहुत कुछ सचाई भी मालूम होती है कि यदि नीदरलेण्ड के सत्रहों प्रान्त मिलकर रहते तो एक दिन वे फ्रांस और इँग्लेण्ड जैसे शक्तिशाली राष्ट्र में संगठित हो जाते। लेकिन ऐसा नहीं होना था। उत्तर नीदरलेण्ड (हालेण्ड) अन्त तक लड़ता रहा और उसने अपनी स्वतन्त्रता लेकर दम ली। किन्तु दक्षिणी नीदरलेण्ड (बेलजियम) पहले स्पेन का दास बना

रहा और फिर फ्रांस का। ऐसा मालूम होता है कि जाति की स्थिति में सहस्रों परिवर्तन होने पर भी उसकी विशेषतायें किसी न किसी रूप में प्रकट हो ही जाती हैं। उत्तरी नीदरलेण्ड के लोग ट्यूटनरक्त के थे। उनके अन्दर साहस, स्वाभिमान, स्वच्छन्दता आदि गुण आरम्भ ही से विद्यमान थे। इसलिए उन्होंने मरते दम अपनी स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने का यत्न किया।

किन्तु दक्षिणी नीदरलेण्ड के लोग केल्ट-रक्त के थे। केल्ट स्वभाव से ही विलासप्रिय और चंचल-वृत्ति होते हैं। इसलिए वे दो शत्रुओं तक का विरोध नहीं कर सकते; वे शीघ्र ही शत्रु की अधीनता स्वीकार कर लेते हैं। यही कारण है कि दक्षिणी नीदरलेण्डवासी बहुत दिनों तक परतन्त्र रहे। ट्यूटन-और केल्ट-जातियों की इन मौलिक भिन्नताओं ने दोनों की ऐतिहासिक प्रवृत्तियों को सर्वथा भिन्न भिन्न कर दिया है।

फ़िलिप ने सात प्रान्तों के सिवा शेष नीदरलेण्ड में विद्रोह की आग बुझा दी थी। उन प्रान्तों पर आधिपत्य

विलियम पर "दोषा-रोपण" और उसकी "क्षमा-याचना" (१५८०-१५८१)

जमाने में ऑरेंज ही उसकी राह में सबसे प्रधान अड़चन था। फ़िलिप ने ऑरेंज को हराने के लिए अच्छे से अच्छे सेनापति भेजे। परन्तु उसके सब प्रयत्न निरर्थक हुए। धन, मान, घूँस आदि उपायों से भी फ़िलिप ने ऑरेंज को अपने पक्ष में लाने की कोशिश की। पर देशभक्त ऑरेंज का सर्वदा

यही उत्तर होता था—"न धन के लिए, न प्राणों के लिए, न स्त्री के लिए और न बच्चों के लिए, मैं किसी के लिए भी देश के प्रति विश्वासघात नहीं कर सकता।"

जब किसी तरह भी फ़िलिप ऑरेंज को दबा न सका, तब उसने ऑरेंज के अपराधों का एक लम्बा-चौड़ा चिट्ठा प्रकाशित किया, और जगह-जगह डौंड़ी पिटवा दी कि जो कोई ऑरेंज का सिर काट कर लायेगा वह उसे पचीस हज़ार क्राउन (स्वर्ण-मुद्रायें) पुरस्कार में देगा।

ऑरेंज ने फ़िलिप के अपराधों का उत्तर अपने "ऑरेंज की क्षमायाचना" नामक पत्र में दिया। उसमें ऑरेंज ने उन सब अत्याचारों की एक लम्बी सूची दी थी, जो फ़िलिप ने मज़हब और प्रजावात्सल्य के नाम से प्रजा पर किये थे। ऑरेंज ने उन घृणास्पद प्रयत्नों का भी वर्णन किया जो कुटिल फ़िलिप उसके प्राण लेने के लिए कर रहा था। अन्त में उसने अपने देशवासियों से अपील की कि उसको देश-निकाला और मृत्यु की रत्ती भर परवा नहीं है यदि ऐसा करने से वह अपने प्यारे हालेण्ड को अत्याचारियों के पञ्जे से छुड़ाने में सहायक हो सके।

डच लोग बरसों से स्पेन के विरुद्ध युद्ध कर रहे थे। यद्यपि उनके पास की अपनी गवर्नमेंट थी और अपना ही प्रबन्ध, तथापि अभी तक उन्होंने यथाविधि अपने सम्बन्ध स्पेन से नहीं तोड़े थे। अब वे सशक्त होगये थे और संसार में उनकी

स्वाधीनता की घोषणा (२६ जुलाई, १५८१)

वीरता और आत्म-त्याग की धाक जम गई थी। इसलिए उन्होंने फ़िलिप को हालेण्ड की गद्दी से उतार दिया, और संसार में १५८१ का यह घोषणा-पत्र प्रकाशित किया। यह हालेण्डवासियों के लिए उतना ही पवित्र और प्रिय है जितना अमरीकावासियों को १७७६ का।

उस घोषणा के उपोद्घात में ये शब्द लिखे थे—"ईश्वर ने लोगों को राजाओं का दास नहीं बनाया और न वे उनकी सच्ची-झूठी आज्ञाओं का पालन करने के ही लिए बने हैं। ईश्वर ने राजाओं को लोगों की भलाई के लिए बनाया है। प्रजा के साथ उसका सम्बन्ध न्याययुक्त और प्रेमपूर्ण होना चाहिए, जैसा कि पिता का अपनी संतानों के साथ अथवा गड़रिये का अपनी भेड़ों के साथ होता है। इसलिए जब वे प्रजा पर प्रेम के बदले घृणा और न्याय के स्थान में अन्याय करते हैं, तब वे राजा नहीं, वरन् अत्याचारी कहलाते हैं। ऐसे राजा की सत्ता को न मानकर उसे सिंहासनच्युत करके आत्म-रक्षा के लिए नया राजा चुनने का लोगों को पूर्ण अधिकार है।"

फ़िलिप की डुगडुगी पिटवाने का परिणाम भी निकला। ऑरेंज का वध कराने में वह पाँच बार असफल हो चुका था। परन्तु अब की बार उसे काल का ग्रास बनना ही पड़ा। १० जुलाई, १५८४ को हत्यारे बालथेसर ज़ेरार्ड के हाथ से ऑरेंज

आरेंज का वध
(१५८४)

का वध हो गया। मरते समय उसने यही करुणापूर्ण शब्द कहे, "परमात्मा, तू इन दीनों पर दया कर!" हालेण्डवासी आज तक ऑरेंज के ये शब्द नहीं भूले।

विलियम आव् आरेंज के चरित्र के विषय में कुछ लिखना धृष्टता होगी। उसके देशवासी स्नेह से उसे "पिता विलियम" कह कर पुकारते हैं। बस, पिता शब्द में जिन दिव्य गुणों का समावेश होता है, वे सब ऑरेंज में विद्यमान थे। माटले के शब्द में हम यही कह सकते हैं—"जब तक वह जीवित रहा, तब तक वह राष्ट्र का पथप्रदर्शक ध्रुव-तारा रहा; और जब उसकी मृत्यु हुई, तब उसके शोकातुर देश-वासी बच्चों की तरह बाज़ारों में करुण-क्रन्दन करने लगे।"

विलियम की मृत्यु के बाद का इतिहास डच-प्रजातन्त्र के उत्थान की दृष्टि से इतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना पहले का है। स्वतंत्रता का मार्ग दिखानेवाले और उसे साफ़ करनेवाले का काम सदा ही बड़ा कठिन होता है। मार्ग बन जाने से, थोड़ी-बहुत अड़चनें होने पर भी, स्वतन्त्रता के सैनिक सहज में विजय प्राप्त कर लेते हैं। ऑरेंज के पश्चात् यही अवस्था हालेण्ड की थी। विलियम ने अपने देशवासियों को वह मार्ग दिखाकर उस पर चला दिया था। उसके उत्तराधिकारी सत्यता के साथ उस पर चलते रहे।

सन् १६०९ में स्पेन और हालेण्ड में एक अस्थायी संधि हुई, जिसमें स्पेन ने हालेण्ड की स्वाधीनता को स्वीकार कर लिया। इसके बाद १६४८ की वेस्टफेलिया की संधि के अनुसार स्पेन ने सर्वदा के लिए हालेण्ड से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया और उसकी राजसत्ता स्वीकार कर ली।

पाँचवाँ अध्याय

'राजाओं के दिव्य अधिकार'

योरुप में मज़हबी सुधार तथा मज़हबी युद्धों के बन्द हो जाने के बाद राज्यक्रान्ति का युग प्रारम्भ होता है। राज्यक्रान्ति के पहले प्रत्येक देश में राजा की अनियन्त्रित शक्ति इतनी बढ़ गई थी कि प्रजा ने तङ्ग आकर राजनैतिक अधिकार प्राप्त करने के लिए आन्दोलन शुरू किये। वास्तव में ये राजनैतिक आन्दोलन राजा की स्वेच्छाचरिता के अनिवार्य परिणाम थे या यों कहना चाहिए कि राजा की शक्ति का बढ़ना राज्यक्रान्ति के लिए बीज बोना था।

राज्यक्रान्ति की तैयारी

सत्रहवीं शताब्दी में योरुप में शासन-सम्बन्धी एक कल्पना बड़ा ज़ोर पकड़ने लगी। सभी राजा यह समझने लगे कि वे ईश्वर की ओर से लोगों पर राज्य करने के लिए नियुक्त किये गये हैं। फ़्रांस और इँग्लेण्ड में इस कल्पना का ख़ूब प्रचार हुआ।

राजाओं के दिव्य अधिकार की कल्पना

ऐसा मालूम होता है कि यह कल्पना पोप और सम्राट् के शासन के दावे की नक़ल थी। पोप पहले अपने आपको ईसा का प्रतिनिधि बताते थे। जब सम्राट् ने पोप

के साथ झगड़ा करना शुरू किया तब उन्होंने भी पोप के समान ऐसे ही दावे करना आरम्भ किया। इन दोनों ने परस्पर युद्ध करके अपनी अपनी शक्ति खो दी। इसलिए अब राजाओं ने अपने अपने देश में इस कल्पना के सहारे राज्य-अधिकार का दावा शुरू किया।

इसका अर्थ यह था कि जाति एक बड़ा परिवार है और उसमें राजा का पद पिता के समान है। इसलिए प्रजा का कर्त्तव्य है कि सन्तान की तरह वे राजा-पिता की आज्ञापालन करें। यदि राजा अत्याचारी या आचारभ्रष्ट है तो यह प्रजा का दुर्भाग्य है। किन्तु किसी अवस्था में भी उनको राजा के विरुद्ध उठने का अधिकार नहीं है। राजा केवल ईश्वर के सामने उत्तरदायी है, इसलिए प्रजा को उसकी भूलों का फल ईश्वर पर छोड़ देना चाहिए।

परिवार के उदाहरण को अपने सामने रखने वाले इँग्लेण्ड में फ़िल्मर और फ्रांस में बोसुए—नामक दो लेखक हुए, जिन्होंने राजा के दिव्य अधिकार को सिद्ध करने का प्रयत्न किया। उनका कहना था "राजा ईश्वर की ओर से नियुक्त होता है। इसलिए जैसा ईश्वरीय आदेश को न मानना पाप है, उसी प्रकार राजा के विरुद्ध आचरण करना भी पाप है। जनसाधारण के लिए राज्य के मामलों में हस्तक्षेप करना प्रकृति-विरुद्ध है। राजा इस पृथ्वी-तल पर ईश्वर के प्रतिनिधि हैं।"

पहले-पहल बाइबिल से राजाओं के दिव्य अधिकार की पुष्टि के लिए युक्तियाँ निकाली जाती थीं। तत्पश्चात् केवल बौद्धिक युक्तियाँ पेश होने लगीं। जैसे जो कुछ मनुष्य के लिए प्राकृतिक है, वही दिव्य है; राजा का होना मनुष्य के लिए प्राकृतिक है, इसलिए यह दिव्य है; प्राचीन यूनानियों, मिस्रियों और यहूदियों में राजा ईश्वर की ओर से ही राज्य करते थे। साथ ही यह तर्क भी उपस्थित किया जाता कि प्राचीन यूनान और इटली ने अनेक मनुष्यों के सम्मिलित शासन का अनुभव किया है किन्तु वे असफल हुए हैं।

वाद का इतिहास

योरुप में जब सुधार-आन्दोलन का आरम्भ हुआ तब कई राजाओं को पोप के विरुद्ध खड़ा होना पड़ा। पोप ने उनको मज़हब से बहिष्कृत करके उनकी प्रजाओं को यह आदेश दिया कि वे अपने राजाओं के विद्रोही हो जायँ। इस पर राजाओं को पोप के विरुद्ध यह कहना पड़ा कि वे ईश्वर-द्वारा नियुक्त किये गये हैं, इसलिए प्रजा उनकी आज्ञापालन से किसी प्रकार भी इन्कार नहीं कर सकती।

जिन राजाओं के हाथ में सारी राजनैतिक शक्ति आ गई वे इतने घमण्डी हो गये कि उन्होंने इस शक्ति का बड़ा भीषण दुरुपयोग किया। वे प्रजा को अपनी मनोरञ्जन-सामग्री समझने लगे और अपने इच्छानुसार देश के धन का अपव्यय करना उनके लिए साधारण बात हो गई। सत्रहवीं

स्वेच्छाचारी राजा और राज्यक्रांति से उनका संबन्ध

और अठारहवीं शताब्दी के योरुप में जो युद्ध हुए उनके अन्तस्तल में इन्हीं राजाओं की पारस्परिक ईर्ष्या काम कर रही थी। इन बातों ने लोगों के अन्दर राजाओं के प्रति घृणा उत्पन्न कर दी और उनका यह विचार होता गया कि किसी एक मनुष्य के हाथ में सारा अधिकार दे देना अति भयङ्कर होता है। ज्यों-ज्यों लोगों को इस बात पर विश्वास होता गया त्यों-त्यों योरुप से एकतन्त्र-शासन कम होता गया और उसका स्थान प्रजातंत्र शासन लेता गया।

छठवाँ अध्याय

लुइस चौदहवें के राज्य-काल में फ्रांस का उत्थान

लुइस चौदहवाँ, जो १६४३ में फ्रांस के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ, दिव्य-अधिकार-वाद की दृष्टि से एक आदर्श राजा था। अपने पिता लुइस तेरहवें की मृत्यु के समय वह केवल पाँच वर्ष का था। बाल्य-काल में उसकी माता रक्षक के रूप में राज्य करतीं थी।

लुइस चौदहवाँ; मेज़ेरिन का राज्य (१६४३-१६६१)

उसका मन्त्री कार्डिनल मेज़ेरिन ने, जो कार्डिन रिशलू की नीति का अनुकरण करता था, जर्मनी के तीस वर्षीय युद्ध के पश्चात् जिसके द्वारा रिशलू ने आस्ट्रिया के राजवंश को नष्ट करना अपना विशेष उद्देश मान रक्खा था, दस वर्ष तक स्पेन के विरुद्ध युद्ध जारी रक्खा। अन्त में १६५६ में स्पेन से दो प्रदेश ले कर मेज़ेरिन ने सन्धि की। कुछ समय के अनन्तर वह मर गया।

सन् १६६१ में लुइस ने राज्य की बाग-डोर अपने हाथ में ली। उसने अपने मन्त्रियों को आदेश दिया कि कोई काम उसकी अनुमति के बिना न किया जाय और किसी प्रकार के सरकारी कागज़ पर राजाज्ञा के बिना हस्ताक्षर न

लुइस का राजपाट अपने हाथ में लेना

किये जायँ। इस समय से लेकर लुइस आधी शताब्दी तक सिंहासन पर विराजमान रहा। फ्रांस की छोटी से छोटी बात भी उससे छिपी नहीं रहती थी। यद्यपि उसके साथ कई विद्वान् और योग्य मनुष्य थे तथापि सब कुछ करनेवाला वही था।

लुइस का अपने सम्बन्ध में वही विचार था जो तात्कालिक राजाओं का था। वह स्वयं कहा करता था "सोचना-विचारना निर्णय करना और उस पर आचरण कराना मस्तिष्क का काम है। राजा सर्वसाधारण का मस्तिष्क है, इसलिए उसे ही सारा अधिकार दे देना चाहिए। राजा अपनी प्रजा का अधिपति है, इसलिए वह अपने इच्छानुसार उनकी धन-सम्पत्ति का उपयोग कर सकता है। प्रजा का कर्त्तव्य है कि राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि समझ कर उसका आदर करे।" इन बातों को उसने एक वाक्य में प्रकट किया—"मैं राजा हूँ। फ्रांसीसी जाति का मैं ही एक व्यवस्थापक, न्यायाधीश और प्रबन्धक हूँ।"

अपने सामने उसने तीन बड़े उद्देश रक्खे थे; पहला, अपने आपको देश भर का एक अनियंत्रित शासक बनाना। उसने सरदारों, चर्च और पेरिस की पार्लियामेण्ट को अपना दास बना लिया था। उसकी यही इच्छा सभी जगह काम करती थी। दूसरा, फ्रांस

लुइस के उद्देश

को योरुप में सबसे अधिक शक्तिशाली जाति बनाना। इसी उद्देश से वह बहुत समय तक योरुप के साथ युद्ध करता रहा। तीसरा, स्पेन की तरह एक फ़्रांसीसी औपनिवेशिक साम्राज्य बनाना।

मेज़ेरिन ने मरते समय राजा से कोलबेर को मन्त्री बनाने की सिफ़ारिश की थी। लुइस के पहले दस वर्ष तक कोलबेर ही सारा राजकार्य करता था। उसके अन्दर एक बड़ा गुण, जो साधारण मनुष्य में नहीं होता, यह था कि काम तो वह स्वयं करता था किन्तु मान और नाम राजा को देता था। लुइस ने कोलबेर को अर्थ-सचिव बनाया था। इस काम को उसने बड़ी योग्यता से किया। उसने फ़्रांस के कला-कौशल और व्यापार को उन्नत किया, स्थान-स्थान में सड़कें और नहरें बनवाईं, और एक समुद्री बेड़ा बनाया। उपनिवेश बनाने का भी उसका विचार था, इसी लिए उसने १६६४ में 'फ़्रेञ्च ईस्ट इण्डिया कम्पनी' बनाई।

कोलबेर

लुइस को अब युद्ध का शौक़ पैदा हुआ। इसलिए उसने कोलबेर के परामर्श की कुछ भी परवा न की, इतना ही नहीं कृतघ्नता के साथ उसे पदच्युत भी कर दिया। अपने राज्यकाल में उसने चार बड़े युद्ध किये।

लुइस चौदहवें के युद्ध

सबसे पहला युद्ध स्पेनिश-नीदरलेण्ड्स के सम्बन्ध में था। मेज़ेरिन ने स्पेन के राजा की लड़की इनफेण्टा के साथ लुइस का विवाह करते समय यह प्रतिज्ञा की थी कि वह अपनी रानी के अधिकार के कारण स्पेन के किसी प्रदेश पर दावा नहीं करेगा। ज्योंही १६६५ में स्पेन का राजा फ़िलिप चौथा मरा, त्योंही लुइस ने नीदरलेण्ड्स पर आक्रमण कर दिया। हालेण्डवासी इससे डर गये और उन्होंने इँग्लेण्ड और स्वीडन को अपने साथ मिला कर लुइस का विरोध करके उसे विजित प्रदेश को छोड़ने पर बाध्य किया। किन्तु तो भी लुइस ने फ्रांसीसी सीमा पर के कुछ क़िले अपने स्वत्व में रख लिये।

स्पेनिश नीदरलेण्ड्स के सम्बन्ध का युद्ध (१६६७-१६७२)

लुइस का दूसरा युद्ध संयुक्त-नीदरलेण्ड्स के विरुद्ध था। लुइस को हालेण्डवासियों से बड़ी ईर्ष्या थी। उसने पहले इँग्लेण्ड और स्वीडन को घूस देकर हालेण्ड से पृथक् कर दिया और फिर एक लाख सेना के साथ हालेण्ड पर चढ़ाई कर दी। कई प्रदेश उसके अधीन हो गये। इस पर हालेण्डवासियों के दो दल हो गये। एक लुइस के साथ सन्धि करना चाहता था और दूसरा, जिसका नेता विलियम तृतीय था, अन्त तक विरोध करने के पक्ष में था। अन्त में विलियम 'आदेशक' बनाया

संयुक्त नीदरलेण्ड्स के साथ युद्ध (१६७२-१६७८)

गया। उसने अन्तिम शस्त्र उठाया, बाँधों को तोड़कर समस्त देश को समुद्र बना दिया और स्वयं साथियों के साथ नावों पर चढ़कर अन्यत्र चला गया। इससे आक्रमणकारी पीछे हट गये। कई वर्षों के पश्चात् दोनों पक्षों में सन्धि हुई, जिसके अनुसार लुइस को सारे विजित प्रदेश हालेण्ड को लौटाने पड़े।

पश्चिमी योरूप में अभी थोड़े ही वर्ष शांति के साथ बीते थे कि इतने में आस्ट्रिया के सम्राट् को तुर्कों के साथ युद्ध करना पड़ा। तुर्क आगे बढ़ते चले आते थे, १६८३ में उन्होंने बिएना-नगर को घेर लिया। इस पर पोलण्ड के राजा जाह्न सोएबिएस्की ने घेरे को उठाकर आस्ट्रिया के वंश की रक्षा की। इससे लुइस को सुयोग मिल गया और उसने दान, दण्ड और भेद के द्वारा राइन नदी की बाईं ओर के कई क़िले अपने अधीन कर लिये, जिनमें स्ट्रेस्बर्ग का नगर और क़िला बड़ा प्रसिद्ध था। इस प्रकार लुइस राइन का स्वामी बन गया।

स्ट्रेस्बर्ग-नगर पर आधिपत्य (१६८३)

लुइस ह्यूजनाटों से बड़ी घृणा करता था। वह हृदय से उनको एक प्रकार का राजद्रोही दास समझता था। उनको पीड़ित करने के लिए उसने उनके घरों पर सैनिकों का पहरा लगा दिया, इससे ह्यूजनाट-परिवारों को बड़ा कष्ट होता था। १६८५ में लुइस ने नेण्ट्स की राजाज्ञा को,

नेन्ट्स की राजज्ञा की वापसी (१६८५)

जिसके अनुसार ह्यूजनाट-दल को पूजा की स्वतन्त्रता प्रदान की गई थी, वापस ले लिया। इससे बहुत से लोगों ने अपने चर्च छोड़ दिये, ह्यूजनाट गिरजे बन्द होगये और उनके पादरी बलात् देश से बाहर निकाल दिये गये। इनके अतिरिक्त लाखों मनुष्यों ने देश छोड़ दिया, जिससे देश के कला-कौशल को बड़ा धक्का लगा। बहुत से दक्षिणी अफ़रीका में जाकर बस गये। इनकी सन्तानों ने वहाँ के ट्रान्स्वाल और ऑरेञ्ज फ्रीस्टेट नामक प्रजातन्त्रों को समर्थ बनाने में बड़ी सहायता की।

नेन्ट्स की राजाज्ञा को वापस ले लेने का एक और परिणाम हुआ। वह यह कि योरुप की प्रॉटेस्टेण्ट-जातियाँ लुइस के विरुद्ध होगईं। १६८६ में विलियम आव् ऑरेञ्ज ने सबको एकत्र करके 'आग्सवर्ग की लीग' बनाई। पहले तो इँग्लेण्ड इसमें सम्मिलित न हुआ किन्तु जब जेम्स को देश से भागना पड़ा और विलियम आव् ऑरेञ्ज ही उसके स्थान पर बैठा, तब इँग्लेण्ड स्वयं ही इसमें शामिल होगया। लुइस इस लीग को तोड़ने का बहाना ढूँढ़ रहा था। उसने अपनी साली का अधिकार प्रदर्शित करके उस पर आक्रमण कर हेडलबर्ग, स्पायर और वर्म्स के नगरों और क़िलों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

पेलीटिनेटे का युद्ध
(१६८८-१६९७)

लगभग दस बरस तक समस्त योरुप लुइस के विरुद्ध

उसी प्रकार युद्ध करता रहा जैसे बाद में उसे नेपोलियन के विरुद्ध करना पड़ा था। १६६७ में जब दोनों पक्ष थक गये तब सब कुछ ले-दे करके रिज़विक में सन्धि की गई।

तीन वर्ष पश्चात् योरुप की जातियाँ एक अन्य झगड़े में पड़ गईं। स्पेन के राजा चार्लेस द्वितीय का १७०० में देहावसान होगया। उसके कोई लड़का न होने से उसने लुइस के पोते फ़िलिप को उत्तराधिकारी बनाया। स्पेन और फ्रांस के मिल जाने से फ्रांस के विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा गया जिससे फ़िलिप को हटाकर आस्ट्रिया के ल्युपोल्ड प्रथम के दूसरे लड़के चार्लेस को सिंहासनारूढ़ किया जाय। तेरह वर्ष तक योरुप में लगातार युद्ध होता रहा, जिसमें इँग्लेण्ड के सेनानायक मार्लबरो के ड्यूक और युजेन के राजकुमार ने बड़ी वीरता दिखाई।

स्पेन के उत्तराधिकार के लिए युद्ध (१७०१-१७१४)

अन्त में एक मृत्यु ने युद्ध की समाप्ति कर दी। १७०५ में ल्युपोल्ड की मृत्यु के बाद उसका लड़का जोज़ेफ़ सम्राट् बना। लेकिन १७११ में वह भी मर गया और उसके भाई चार्लेस ने राज्य सँभाला। इससे परिस्थिति भयङ्कर होगई। क्योंकि यदि फ्रांस और स्पेन का एक शासन के अधीन होना भयावह था तो स्पेन और आस्ट्रिया का भी एक राजा के अधीन होना वैसा ही भयावह था। इसलिए वह बड़ा षड्यन्त्र टूट गया और १७१३ में युट्रेक्ट की सन्धि ने युद्ध की समाप्ति कर दी।

इस सन्धि के अनुसार फ़िलिप इस शर्त पर स्पेन का राजा माना गया कि फ़्रांस और स्पेन का राजमुकुट कभी एक न हो। क्रमशः जिबराल्टर और माइनॉर्का-द्वीप इँग्लेण्ड को, मिलन, नेपल्ज़, सार्डिना और कैथॉलिक नीदरलैण्ड्स आस्ट्रिया को और सिसली सेवाय के ड्यूक को दिये गये। इस प्रकार आधा स्पेन छीन लिया गया। फ़्रांस के न्यूफ़ौंडलेण्ड और हडसन बे टेरिटरी को भी अँगरेज़ी आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा।

लुइस की बड़ी इच्छा थी कि वह अमरीका में उपनिवेश बनाकर फ़्रांस के लिए एक साम्राज्य बनाये। इसलिए प्रति वर्ष वह मनुष्यों से भरे हुए जहाज़ उत्तरी अमरीका को भेजता था। १६८२ में लाकाल-नामक एक फ़्रांसीसी अन्वेषक ने मिसिस्पी-नदी के मुहाने तक के प्रदेश की खोज कर डाली। इस प्रदेश का पर्याप्त ज्ञान हो जाने पर फ़्रांस ने यह निश्चय किया कि सेण्ट लारेंस और पास की बड़ी बड़ी झीलों से लेकर ओहियो और मिसिस्पी-नदी के किनारे किनारे बहुत से क़िले बनाकर इँग्लेण्ड के उपनिवेशों को वहीं तक सीमाबद्ध कर दिया जाय। ज्योंही इँग्लेण्ड में अपने उपनिवेशों के घिर जाने का डर पैदा हुआ, त्योंही मानो उस बड़े युद्ध का बीज बो गया जिससे इस बात का निर्णय हुआ था कि अमरीका इँग्लेण्ड के अधीन रहेगा या फ़्रांस के।

लुइस चौदहवें के अधीन नया फ़्रांस

लुइस को साम्राज्य बनाने में सफलता प्राप्त न हुई। इसके

कई कारण थे। पहला, फ्रांस योरुपीय झगड़ों और युद्धों में लगा रहा, इसके विरुद्ध इँग्लेण्ड के सामने एक ही उद्देश्य था—अपने उपनिवेशों को समर्थ बनाना। दूसरा, फ्रांस का कनाडा-उपनिवेश विशेष उन्नति नहीं कर सकता था क्योंकि उसे किसी प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं थी। तीसरा, लुइस के मज़हबी पक्षपात ने भी कनाडा की उन्नति रोक दी, क्योंकि उसका द्वार केवल केथॉलिकों के लिए ही खुला था।

लुइस की मृत्यु (१७१५)

लुइस के मरने पर उसका प्रपोता, जिसकी आयु पाँच वर्ष थी, सिंहासन पर बैठा। उसका मृत्यु-समाचार सुनकर प्रजा बड़ी प्रसन्न हुई। उसके युद्धों में प्रजा को बहुत व्यय करना पड़ा था। युद्ध और दरबार के ख़र्चों ने लोगों पर करों का इतना बोझ डाल दिया था कि वे भूखे मरने लगे थे। उस समय के एक व्यंग्य-लेखक का कथन है—"लुइस की जीवितावस्था में ही लोगों ने इतने आँसू बहाये थे कि उसके मरने पर उनकी आँखों में आँसू ही न रह गये।"

लुइस का दरबार

लुइस को दरबार लगाने और उसे अतिशय शोभायमान बनाने का बड़ा शौक़ था। युद्धों के ख़र्च के अतिरिक्त उसका अधिकांश धन दरबार में ही व्यय होता था। अपने दरबार की प्रसिद्धि बढ़ाने के लिए लुइस कवियों, दार्शनिकों और लेखकों का बड़ा मान करता

था। इनमें से कॉर्नें, रासीन, मोलियर, डेकार्ट, पेस्कल और ला ब्रूएर बड़े प्रसिद्ध हो गये हैं।

लुइस के अवसान के साथ बोरबोन-वंश की प्रसिद्धि का भी अन्त होगया। जब हम लुइस चौदहवें का वर्णन समाप्त कर लुइस पन्द्रहवें की ओर आते हैं तब मानो पर्वत-शिखर से गिरकर अपने आपको कूएँ के अन्तस्तल में पाते हैं। लुइस पन्द्रहवें के राज्य-काल में फ़्रेञ्च-जाति बड़े वेग के साथ पतन के गर्त की ओर जा रही थी। पहले आठ बरसों में तो आरलीन्स का ड्यूक, जो महापतित एवं आचार-भ्रष्ट मनुष्य था, लुइस का रक्षक रहा। १७२३ में लुइस ने राज्य की बाग-डोर अपने हाथ में ली। उस पर गृबियों का बड़ा प्रभाव था। उनमें मेडम-डि-पॉम्पेडोर सबसे बड़ी थी। लुइस के नाम पर वही राज्य करती थी। यह समय फ़्रांस के लिए जातीय अपकर्ष का समय था।

लुइस पन्द्रहवां (१७१९–१७७४)

सातवाँ अध्याय

प्रशिया का उत्थान

पोलेण्ड में बाल्टिकसागर के तट पर एक छोटा सा राज्य था, जो अपने बोरस्सी-नामक क़बीले के कारण प्रशिया कहलाता था। १६११ में यह राज्य ब्रेंडेनबर्ग के साथ मिल गया। ब्रेंडेनबर्ग उन राज्यों में से था जिन्हें सम्राट् के चुनाव में मत देने का अधिकार प्राप्त था। दोनों के एक हो जाने से ब्रेंडेनबर्ग की शक्ति बढ़ने लगी।

प्रशिया का आरम्भ; फ्रेड्रिक विलियम (१६४०-१६८८)

फ्रेड्रिक विलियम के राज्य-काल में इस राज्य की बड़ी उन्नति हुई। उस समय के राजाओं के समान वह भी अपने दिव्य अधिकार का पक्षपाती था। वह सैनिक शक्ति पर बड़ा भरोसा रखता था। इसी लिए उसने अपने राज्य के लिए एक बड़ी सेना तैयार की थी।

विलियम का लड़का फ्रेड्रिक तृतीय अपने नाम में राजा की उपाधि लगाने का बड़ा इच्छुक था। इसे प्राप्त करने के लिए आस्ट्रिया के सम्राट् की स्वीकृति आवश्यक थी। किन्तु उसके रोमन-कैथॉलिक दरबारी किसी प्रॉटेस्टेण्ट शासक को ऐसी उपाधि प्रदान करने के विरोधी थे। लेकिन जब सम्राट् को स्पेन के उत्तराधिकार के

फ्रेड्रिक तृतीय (१६८८-१७१३)

सम्बन्ध में फ्रांस के साथ युद्ध करना पड़ा तब वह फ्रेड्रिक की सहायता का बड़ा इच्छुक हुआ। इसलिए परस्पर निश्चित हुआ कि फ्रेड्रिक को 'प्रशिया के राजा' की उपाधि दे दी जाय क्योंकि प्रशिया पोलेण्ड का अंश होने से आस्ट्रियन-साम्राज्य में सम्मिलित नहीं था। १७०१ में विधिपूर्वक फ्रेड्रिक का राज्याभिषेक हुआ और 'ब्रेडेनबर्ग का निर्वाचक' तथा 'प्रशिया का राजा'—इन दोनों उपाधियों से उसकी स्तुति की गई। इस प्रकार हेप्सबर्ग के वंश ने अपनी बराबरी में होएन्ज़ॉलेर्न का वंश खड़ा कर लिया। इस समय से आगे जर्मनी का इतिहास प्रशिया के राजाओं के उत्कर्ष की कथा है।

फ्रेड्रिक के पश्चात् उसका पुत्र फ्रेड्रिक विलियम प्रथम राजसिंहासन पर बैठा। उसका पिता तो विद्या और विद्वानों का बड़ा पक्षपाती एवं संरक्षक था किन्तु वह एक बड़ा अद्‌भुत मनुष्य था। वह विद्या और विद्वान् दोनों से घृणा करता था। उसका कहना था कि, "चुटकी भर व्यावहारिक ज्ञान ('कॉमनसेन्स') ही एक विद्वत्ता-पूर्ण विश्वविद्यालय के बराबर है।" उसका लेख बड़ा ख़राब होता था, इसी कारण उसके लिखे हुए आदेश कई बार ग़लत समझ लिये गये। पर आलस्य और अपव्यय से उसे बड़ी घृणा थी। वह अपने हाथ में एक लम्बा बेत रखता था और जहाँ कहीं उसे कोई आलसी या निरुद्योगी पुरुष, स्त्री या बच्चा मिलता, वह उसे वहीं बेत लगाना शुरू कर देता था।

फ्रेड्रिक विलियम प्रथम
(१७१३–१७४०)

उसे लम्बे और ऊँचे नवयुवकों की सेना भरती करने का बड़ा शौक़ था इतना अधिक कि वह उसके पीछे पागल सा हो गया था। अपने योरुप के विभिन्न भागों से उसने लम्बे लम्बे नवयुवक इकट्ठे किये। भरती के स्थानों पर ऊँचे ऊँचे नवयुवक घूमते दिखाई देते थे। इस मामले में वह अपनी सारी मितव्ययिता भूल जाता था। आयर्लैण्ड के एक युवक के वास्ते उसने नौ सौ पौण्ड दिये थे। हॉलेण्डवासियों ने उसके रङ्गरूट भरती करनेवाले दो एजण्टों को फाँसी दे दी। कुछ दिनों बाद उन्हें अपने विश्वविद्यालय के लिए एक प्रशियावासी अध्यापक की आवश्यकता हुई तब उसने कहा—"न लम्बे, ऊँचे नवयुवक, न विद्वान् अध्यापक।"

तात्कालिक अन्य राजाओं के समान वह भी यही समझता था कि राजा की शक्ति बढ़ने से ही प्रशिया अधिक समृद्ध हो सकता है। प्रशिया की शक्ति को स्थिर और केन्द्रीभूत करने के लिए उसने बड़ा प्रयत्न किया। मरते समय उसके पास अस्सी सहस्र सैनिक थे।

महान् फ्रेड्रिक

फ्रेड्रिक विलियम के देहावसान पर उसका बेटा फ्रेड्रिक द्वितीय, जो महान् फ्रेड्रिक भी कहलाता है, १७४० में सिंहासनारूढ़ हुआ। छियालीस वर्ष तक वह योरुप की घटनाओं का केन्द्र सा बना रहा। उसके स्वभाव की प्रवृत्ति अपने पिता से सर्वथा प्रतिकूल थी। इसी कारण बाल्यकाल में उसे अपने बाप के हाथ से कई दण्ड

सहने पड़े, जिससे उसका स्वभाव और भी अधिक गम्भीर बन गया। उसे युद्ध से विशेष प्रेम था। इसी अभिप्राय से उसके पिता ने उसके लिए दो सेनायें तैयार करवा रक्खी थीं। फ़्रेड्रिक ने दो बड़े युद्धों में भाग लेकर प्रशिया को योरुप में प्रथम श्रेणी की शक्ति बना दिया।

आस्ट्रिया के उत्तराधिकार के लिए युद्ध (१७४०-१७४८)

सम्राट् चार्ल्स ने अपनी मृत्यु से पहले ही सभी राज्यों से यह बात तय कर ली थी कि मेरे सारे राज्य—हङ्गरी, बोहेमिया और आस्ट्रिया—मेरी लड़की मारियाटारेसे को दिये जायँ। अतएव चार्ल्स की मृत्यु पर मारियाटारेसे हङ्गरी की राज्ञी बनी। प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करने पर भी बावेरिया, स्पेन, सार्डिनिया, और सेक्सनी ने विभिन्न भागों पर अपने अधिकार का दावा कर दिया। सबसे पहले फ़्रेड्रिक ने सिलेशिया पर आक्रमण करके उसे अपने अधीन कर लिया। मारियाटारेसे अपना एक सुन्दर प्रदेश खो देना कब सहन कर सकती थी, इसलिए वह एक हङ्गेरियन सेना लेकर युद्ध के लिए तैयार होगई। इँग्लेण्ड, हॉलेण्ड और रूस ने उसकी इस बात में सहायता की। यद्यपि आठ वर्ष तक युद्ध चलता रहा और न केवल योरुप में, वरन् अमरीका और भारतवर्ष में भी, योरुपीय जातियों में परस्पर युद्ध होते रहे, तथापि फ़्रेड्रिक अपनी बात पर अड़ा रहा। इसलिए १७४८ में सन्धि हो जाने पर सिलेशिया उसे मिल ही गया।

युद्ध के अनन्तर आठ वर्ष शान्ति से बीते। इस समय को फ्रेड्रिक ने अपनी सेना का सङ्गठन और नियमन पूर्ण करने एवं राज्य के द्रव्यसाधनों को उन्नति करने में लगाया और मारियाटेरेसे भी रूस, स्वीडन, फ्रांस आदि देशों को अपने साथ मिलाने का प्रयत्न करती रही। फ्रेड्रिक के पक्ष में अकेला इँग्लेण्ड ही रह गया।

सप्तवर्षीय युद्ध (१७५६-१७६३)

सन् १७५६ में फिर युद्ध छिड़ा जो सात वर्ष तक चलता रहा। भारतवर्ष और अमेरिका में भी इँग्लेण्ड और फ्रांस परस्पर लड़ते रहे। आरम्भ में फ्रेड्रिक की जीत होती रही और उसने फ्रांस, आस्ट्रिया और रूस की संयुक्त सेनाओं को कई स्थलों में पराजित किया। समस्त योरुप प्रशियन की वीरता देखकर दंग रह गया। किन्तु बाद में जब युद्ध करते करते वह थक गया, तब इँग्लेण्ड ने भी उसका साथ छोड़ दिया। हताश होकर वह इधर-उधर भागने लगा। वह सदैव अपने पास थोड़ा सा विष रखता था जिससे किसी भी समय उसे अपने उपयोग में ला सके। कई बार तो वह जङ्गलों में छिपता फिरा और कई बार वृक्षों की छाया में बैठकर उसने अपने शत्रु के विरुद्ध कवितायें बनाईं।

इस समय एक घटना ने फ्रेड्रिक की मानसिक अवस्था में बड़ा परिवर्तन उत्पन्न कर दिया। १७६२ में रूस की राज्ञी इलिज़बेथ के देहपात पर पीटर उसका उत्तराधि-

कारी बना। पीटर ने फ्रेड्रिक को सहायता की, उसकी सेनायें प्रशियन-सेनाओं के साथ मिल गईं। यद्यपि पीटर ने केवल छः मास तक ही राज्य किया किन्तु फ्रेड्रिक को इससे बड़ा लाभ हुआ। इँग्लेण्ड और फ्रांस ने तङ्ग आकर १७६३ में पेरिस में एक सन्धि कर ली, जिसके अनुसार सिलेशिया फ्रेड्रिक के ही अधिकार में रहा।

यह सप्तवर्षीय युद्ध संसार के निर्णायक युद्धों में गिना जाता है। इससे योरुप-सम्बन्धी दो बातों का निर्णय हो गया। पहली, यह कि भविष्य में आस्ट्रिया का स्थान जर्मनी का मुख्य राज्य प्रशिया ग्रहण करेगा; दूसरी यह कि नई दुनिया और पुरानी दुनिया दोनों में फ्रांस का नहीं, प्रत्युत इँग्लेण्ड का प्रभुत्व स्थापित होगा, दोनों में ब्रिटिश-साम्राज्य की विजय-पताका फहरायगी।

फ्रेड्रिक एक प्रतिद्वन्द्वी राजा के रूप में

पेरिस की सन्धि के दस बरस बाद रूस की रानी केथराईन और आस्ट्रिया की राज्ञी मारियाटेरेसे ने फ्रेड्रिक के साथ मिलकर पोल को पहले-पहल आपस में बाँट लिया, जिससे फ्रेड्रिक को पामेरेनियाँ तथा पूर्वी प्रशिया के प्रदेश और मिल गये।

अन्य राज्यों के समान फ्रेड्रिक की भी यही नीति थी कि प्रशिया के उत्कर्ष के लिए सभी बातें उचित हैं। अपने देश में वह बड़ा प्रजारंजक राजा माना जाता था। वह कहा करता था—"मैं राज्य का सबसे पहला नौकर हूँ...यदि मुझे एक जीवन

और मिल जाय तो मैं उसे भी अपने देश के हितार्थ व्यतीत कर दूँगा।" अपने व्यक्तिगत सुख के लिए राजकोष से उसने कभी एक पैसा भी नहीं लिया। अपने देश के लिए उसने बहुत से काम किये, नहरें खुदवाईं, सड़कें बनवाईं, कला-कौशल को उन्नत किया और शासन-व्यवस्था को हर तरह से उच्च बनाया।

फ़्रेड्रिक कवि भी था और अपने समय का एक बड़ा दार्शनिक भी। इसी कारण कवियों तथा दार्शनिकों से उसे बड़ा प्रेम था। विशेष कर फ़्रांस के प्रसिद्ध दार्शनिक वालटेयर से तो उसकी बड़ी मैत्री थी। उसके विचार बड़े स्वतन्त्र थे। वह कहा करता था—"इस देश में प्रत्येक मनुष्य अपने मार्ग से स्वर्ग प्राप्त कर सकता है।" उस समय के सभी नास्तिक और स्वतन्त्र विचारवाले मनुष्य उसके दरबार में रहते थे।

सन् १७८६ में वह मर गया। उसके तीन वर्ष बाद फ़्रांस की प्रसिद्ध राज्यक्रान्ति हुई।

आठवाँ अध्याय

स्टुअर्ट-वंश और इँग्लेण्ड में स्वातन्त्र्य-युद्ध

इलिज़बेथ की मृत्यु पर मेरी का लड़का जेम्स छठा, जो स्काटलेण्ड पर राज्य करता था, जेम्स प्रथम के नाम से इँग्लेण्ड के सिंहासन पर बैठा। इससे इँग्लेण्ड तथा स्काटलेण्ड दोनों एक राजा के अधीन हो गये और इँग्लेण्ड पर स्टुअर्ट-वंश शासन करने लगा, जिसका राज्य-काल स्वातन्त्र्य-युद्ध के लिए प्रसिद्ध है। इस आन्दोलन के साथ साथ इँग्लेण्ड में एक बड़ा भारी गृह-युद्ध हुआ, जिसमें जनता एक ओर थी और राजा और उसके साथी दूसरी ओर। जनता के सफल होने पर जेम्स का लड़का चार्लेस प्रथम फाँसी पर लटकाया गया। फिर कुछ वर्षों के लिए इँग्लेण्ड में प्रजातन्त्र का अनुभव किया गया। किन्तु इसमें सफलता न हुई। इसलिए फिर चार्लेस का बेटा राज्य-अभिषेक के लिए इँग्लेण्ड बुलाया गया। किन्तु चार्लेस द्वितीय और उसके भाई जेम्स द्वितीय के राज्य-काल में स्वातन्त्र्य-आन्दोलन फिर शुरू होगया। अन्त में इँग्लेण्ड में १६८८ में फिर राज्य-क्रान्ति हुई। जिससे जेम्स द्वितीय को भागना पड़ा और इँग्लेण्ड का शासन सदा के लिए प्रजा के हाथ में आगया।

भूमिका

जेम्स को अपने राज्य-पद का बड़ा अभिमान था। उसे भी 'राजाओं का दिव्य अधिकार' में विश्वास था। वह इतना आत्मप्रशंसक और घमण्डी था कि उसे लोगों ने "योरुप का बुद्धिमान् मूर्ख" की उपाधि दी थी। रूप की दृष्टि से वह बड़ा कुरूप और साहस की दृष्टि से वह उच्चकोटि का कायर था। यह इलिज़बेथ की तुलना में जो पुरुष समझी जाती थी, "राज्ञी जेम्स" कहलाता था।

जेम्स प्रथम
(१६०३–१६२५)

उसका कहना था—'जैसे इस बात पर वाद-विवाद करना कि ईश्वर क्या कर सकता है और क्या नहीं—नास्तिकता है, उसी प्रकार राजा की शक्ति पर भी आपत्ति करना नास्तिकता है।' इस मत के अनुसार राजा सब क़ानूनों तथा पार्लमेण्टों के ऊपर होता था; स्वेच्छानुसार जिस प्रकार चाहता क़ानून को बदल सकता था। तात्कालिक लोग भी राजा में कुछ चमत्कारक बल मानते थे। उदाहरणार्थ इँग्लेण्ड में यह प्रसिद्ध था कि राजा के करस्पर्श से कंठमाला-रोग दूर हो जाता है। इसी विश्वास के अनुसार जेम्स के लड़के चार्लेस ने लगभग एक लाख मनुष्यों को स्पर्श किया। सर्वसाधारण के लिए ऐसी बातें राजा के 'दिव्य अधिकार में विश्वास दिलाने के लिए पर्याप्त थीं।

परन्तु शासन के सम्बन्ध में इँग्लेण्डवासियों का राजा से सर्वथा भिन्न मत था। इँग्लेण्ड की पार्लमेण्ट देश पर शासन करने में अपने आपको राजा से बढ़कर समझती थी।

एक ही देश में ऐसी दो शक्तियों के होने से, जो अपने आपको एक दूसरे से बढ़कर समझती हों, भयंकर परिणाम निकलना स्वाभाविक है। इसी लिए इँग्लेण्ड में प्रजातन्त्र, क्रॉमवेल का राज्य तथा राज्य-क्रान्ति जैसी घटनायें संघटित हुईं।

बारूदवाला षड्यन्त्र (१६०५)

जेम्स के राज्य के दूसरे वर्ष में ही पार्लमेण्ट को बारूद से उड़ा देने के लिए एक षड्यन्त्र रचा गया। इसका नेता गुए-फ़ाक्स था। पार्लमेण्ट के निकट एक तलगृह में बारूद की कई बोरियाँ रक्खी गईं। किन्तु आग लगने से पूर्व षड्यन्त्र-सम्बन्धी एक पत्र के पकड़े जाने से उसका पता लग गया। षड्यन्त्रकारी सभी मनुष्य गिरफ़्तार कर लिये गये और उन्हें समुचित दण्ड दिया गया।

जेम्स और कॉमन-सभा-सदस्यों में झगड़ा

जेम्स और उसकी पार्लमेण्ट में परस्पर इतना मतभेद था कि जिन मामलों पर पार्लमेण्ट वाद-विवाद करना चाहती थी राजा उन्हें अपने अधिकार में समझता था। इसलिए वह बार-बार पार्लमेण्ट को बुलाता और हटा देता। एक बार जब उसके पास पार्लमेण्ट के बारह सदस्यों का एक डेपूटेशन गया तब उसने परिचारक को आदेश दिया—"इन बारह राजाओं के लिए कुर्सियाँ लाओ!" जेम्स ने जो बात व्यङ्ग से कही थी वास्तव में वह एक तथ्य होगई। राजा ऐसी कई आज्ञायें निकालता था जो एक प्रकार से आदेश

होती थीं किन्तु फिर उन पर आचरण कराने के लिए सज़ायें और जुर्माने करता था। पार्लमेण्ट के सदस्य ऐसी बातें उसके अधिकार के बाहर समझते थे।

अपने न्यायाधीशों से यह निर्णय करवा कर कि बन्दरगाह राजा के निजी द्वारों के समान हैं; जिनका खोलना या बन्द करना भी उसके अधिकार में है, उसने बन्दरों से महसूल इकट्ठा करना शुरू कर दिया। पार्लमेण्ट के सदस्य चाहते थे कि बिना किसी दण्ड या अभियोग के भय के, पार्लमेण्ट में उपस्थित होनेवाले मामलों पर स्वतन्त्रता-पूर्वक विवाद कर सकें। पर जेम्स उन्हें यह अधिकार देने के लिए तैयार न था। बल्कि वह उन्हें धमकी देता था कि यदि वे ऐसा करेंगे तो उनके शेष अधिकार भी छीन लिये जायँगे।

इन बातों से तङ्ग होकर १६२१ में पार्लमेण्ट ने एक विरोधात्मक प्रस्ताव किया, जिसमें लिखा था कि इस प्रकार के सब अधिकार पार्लमेण्ट के प्राचीन एवं जन्मसिद्ध अधिकार हैं, पार्लमेण्ट राज्य तथा चर्च के सभी मामलों पर विवाद कर सकती है। राजा ने अपने हाथ से वह प्रस्ताव फाड़ डाला और क्रोध के मारे केवल पार्लमेण्ट को भङ्ग ही नहीं किया वरन् कई सदस्यों को कैद करा लिया। इसी घटना से राजा और पार्लमेण्ट के बीच में होनेवाले युद्ध का सूत्रपात हुआ।

जेम्स के राज्यकाल में अँगरेज़-जाति उपनिवेशों-द्वारा संसार के सभी भागों में फैल गई। १६२० में 'सेपरेटिस्ट्स' या 'पिल्ग्रम्स' हालेंड से 'न्यु इँग्लेण्ड' (अमरीका) में जा बसे। इलिज़बेथ के समय में स्थापित 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' ने १६१३ में सूरत में अपना पहला कारखाना खोला, जिसके द्वारा पूर्वीय वर्तमान अँगरेज़ी साम्राज्य की नीव रक्खी गई। इसी समय आयर्लेण्ड में अल्स्य-प्रदेश बसाया गया।

उपनिवेश तथा व्यापारिक बस्तियाँ

जेम्स की मृत्यु पर उसका लड़का चार्लस शासनारूढ़ हुआ। दिव्य अधिकार के सम्बन्ध में इसका मत भी अपने पिता के समान था, इसलिए पार्लमेंट और राजा में नये सिरे से कलह आरम्भ हुआ।

चार्लस प्रथम (१६२५–१६४६)

चार्लस ने दो बार पार्लमेंट बुलाई और दोनों बार विसर्जित कर दी। पार्लमेंट राजा के प्रधान मन्त्री बकिङ्घम पर, जिसे वह सब बुराइयों का मूल समझती थी, मुक़दमा चलाना चाहती थी। किन्तु राजा उससे इतना प्रसन्न था कि उसने उल्टा पार्लमेंट को ही बन्द कर दिया। तत्पश्चात् उसने धन बटोरने के कई ढङ्ग निकाले। किन्तु वह सफल न हुआ और उसे फिर एक बार पार्लमेंट का अधिवेशन करना पड़ा।

पार्लमेंट ने उसे इस शर्त पर बहुत सा धन देने की प्रतिज्ञा की कि वह उनके अधिकारों के प्रार्थना-पत्र पर हस्ताक्षर कर दे।

अधिकारों के लिए प्रार्थना-पत्र (१६२८)

इँग्लेण्ड के विधायक इतिहास में 'मेगना चार्ट' के पश्चात् महत्त्व की दृष्टि से इस पत्र का दूसरा स्थान है। इसमें चार मुख्य बातें थीं—पार्लमेंट की आज्ञा के बिना राजा कर या कर्ज़-द्वारा धन एकत्र नहीं कर सकता था, बिना कारण बताये किसी को क़ैद नहीं कर सकता था, किसी के निजी घर पर सैनिक नहीं बैठा सकता एवं जूरी के बिना सैनिक क़ानून (मार्शल ला) की अदालत में किसी पर मुक़दमा नहीं चला सकता था। १६२८ में चार्लेस ने अपनी इच्छा के विरुद्ध प्रार्थना-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। यद्यपि स्टुअर्ट-वंशीय राजाओं के समय में ये शर्तें कई बार भङ्ग की गईं तथापि इससे बड़ा लाभ हुआ। सर्वसाधारण को अपने अधिकारों का ज्ञान हो गया, वे समझने लगे कि राजा उन पर कहाँ तक अपने अधिकार जमा सकता है।

कुछ समय के पश्चात् लोगों को यह पता लग गया कि प्रार्थना-पत्र पर आचरण करने का चार्लेस का कोई इरादा नहीं

पार्लमेंट के बिना चार्लेस का राज्य करना (१६२९–१६४०)

है क्योंकि उसने करों तथा ऋणों-द्वारा लोगों से धन लेना आरम्भ कर दिया। बकिङ्घम के मर जाने के बाद इस काम में चार्लेस के सबसे बड़े सहायक

स्ट्रेफ़र्ड का अर्ल, थॉमस ट्वेण्टवर्थ और विशप लार्ड थे। स्ट्रेफ़र्ड उसे सभी राजकीय कार्यों में और लार्ड उसे मज़हबी मामलों में सर्वथा स्वेच्छाचारी तथा अनियन्त्रित शासक बनाना चाहते थे। 'कौंसिल आव् दि नॉर्थ' 'स्टार चेम्बर' तथा 'हाई कमिशन कोर्ट'—इन तीन कौंसिलों को, जो अस्थायी-रूप से बनाई गई थीं और जूरी के विना अधिवेशन कर सकती थीं, उसको राजा ने अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए लोगों को दण्ड देने के वास्ते न्यायालयों का रूप दे दिया।

जाह्न हेंपडेन और जहाज़-कर (१६३७-१६३८)

प्रजा के स्वातन्त्र्य-आन्दोलन का मूल मन्त्र यह है कि स्वतन्त्रता का सबसे बड़ा साधन कोष पर स्वत्व का प्राप्त करना है। यदि गवर्नमेण्ट के पास कोई ऐसा साधन है जिसके द्वारा वह अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने तथा सेना रखने के लिए पर्याप्त धन प्राप्त कर सकती है तो उसे लोगों के समर्थन की कुछ भी परवा नहीं रहती।

इँग्लेण्डवासियों की सदैव यह एक विलक्षणता रही है कि उन्होंने राजा को कर वसूल करने का पूर्ण अधिकार कभी नहीं दिया। धन की आवश्यकता पड़ने पर राजाओं को सदा स्वतन्त्रता की रक्षक-सभा पार्लमेण्ट की सहायता लेनी पड़ी है।

जिन अनुचित करों को चार्लेस वसूल करने का प्रयत्न करता था उनमें से एक जहाज़-कर भी था। प्राचीन काल में जब राज्य किसी सङ्कट में पड़ जाता था तब राजा बन्दरों में रहनेवालों को यह आज्ञा देता था कि वे राज्य की आवश्यकतानुसार जहाज़ प्रस्तुत करें। पुराने कागज़ात को ढूँढ़ते समय चार्लेस को राजा के इस अधिकार का पता लगा, इसलिए उसने तुरन्त जहाज़ों पर कर लगा दिया, और बाद में यह कर नगरों पर भी लग गया। जाह्न हेम्पडेन-नामक एक मनुष्य ने कर देने से इनकार किया। उसका अभियोग बारह न्यायाधीशों के सामने उपस्थित किया गया। इस पर समस्त देश में इसकी खूब चर्चा हुई, सबकी आँखें उसी ओर लग गईं। अन्त में बहुमत से राजा के पक्ष में निर्णय हुआ।

पर जनता समझती थी कि राजा के भय से न्यायाधीशों ने ऐसा निर्णय किया है और यह अनुचित है। इस समय इँग्लेण्डवासी इतने आवेश में थे कि वे राजा के विरुद्ध राजद्रोह की तैयारियाँ करने लगे। इतने ही में राजा ने एक और मज़हबी भूल की अर्थात् स्कॉटलेण्ड के गिरजों में अँगरेज़ी-प्रार्थना-पुस्तक पढ़ना एक क़ानून बना दिया। स्कॉटलेण्डवासी अपनी मज़हबी स्वतन्त्रता में इस प्रकार का हस्तक्षेप सहन नहीं कर सकते थे। वहाँ की सभी श्रेणियों—सरदारों तथा

कृषकों—ने मिलकर प्रतिज्ञा की कि वे अपने गिरजा-घरों में अँगरेज़ी-प्रार्थना-पुस्तक कभी न पढ़ने देंगे। चार्लेस ने बलात् यह आज्ञा प्रचारित करना चाही किन्तु इसके लिए सेना की आवश्यकता थी, पर सेना बिना रुपये के एकत्रित नहीं हो सकती थी।

नवम्बर १६४० में उसने फिर पार्लमेण्ट की बैठक की। यह पार्लमेण्ट बारह वर्ष तक रही, इसी लिए इसका नाम 'लम्बी पार्लमेण्ट' पड़ गया है। इस पार्लमेण्ट में कुछ सदस्य ऐसे भी थे जो समझते थे कि इँग्लेण्ड की स्वतन्त्रता सङ्कट में है, इसलिए वे उसे बचाने के लिए उद्यत होगये।

लम्बी पार्लमेंट

इस पार्लमेण्ट का पहला काम स्ट्रेफ़र्ड पर मुक़द्दमा चलाकर उसे फाँसी का दण्ड देना हुआ। तत्पश्चात् इसने 'कौंसिल आव् दि नॉर्थ', 'स्टार चेम्बर' तथा 'कोर्ट आव् हाई कमिशन'—तीनों अदालतों को विसर्जित कर दिया। यह भी इसने एक क़ानून बनाया कि राजा उनकी इच्छा के विरुद्ध पार्लमेण्ट को विसर्जित नहीं कर सकता। जहाज़-कर को अनुचित ठहराकर इसने हेम्पडेनवाले निर्णय को भी रद्द कर दिया।

इधर पार्लमेण्ट और राजा में परस्पर झगड़ा हो रहा था, उधर आयर्लेण्ड ने इसे सुअवसर समझ कर इँग्लेण्ड से

राजद्रोह कर दिया। इसका कारण यह था। जेम्स प्रथम ने एक राजद्रोह के कारण आयर्लेण्ड से अल्स्टर का प्रदेश छीन कर वहाँ अँगरेज़ तथा स्कॉच लोग बसा दिये थे उद्देश यह था कि आयर्लेण्ड में अँगरेज़ आबादी की नीव पड़ जाने से उस देश को आङ्गल बनाने में सुभीता होगा। आयर्लेण्डवासी इस नीति से घृणा करते थे। इसलिए अवसर मिलते ही उन्होंने अल्स्टर-प्रदेश को नष्ट करने का निश्चय किया और सहस्रों अँगरेज़ तथा स्कॉचों का वध कर डाला। यहाँ तक कि बालक या स्त्रियाँ भी नहीं छोड़ी गईं।

आयर्लेण्ड में राजद्रोह (१६४१)

आयरिश-राजद्रोह के अनन्तर कॉमन लोगों ने एक लेख तैयार करके उसे 'महा-प्रबोधन' शीर्षक देकर प्रकाशित करवाया। पर राजा ने पार्लमेण्ट को प्रभावित करने के लिए एक ऐसी भूल की कि उससे मामला और भी बिगड़ गया। उसने हेम्पडेन, पिम आदि पार्लमेण्ट के पाँच सभ्यों पर राजद्रोह का अपराध लगा कर उन्हें पकड़ना चाहा। दूसरे दिन वह स्वयं सशस्त्र सेना लेकर पार्लमेण्ट में पहुँचा। वे पहले से ही वहाँ से खिसक दिये थे। उनको वहाँ न पाकर वह लौट आया।

पाँच सदस्यों की पकड़

पार्लमेण्ट के लिए यह बात सबसे अधिक अपमानजनक

हुई। सारा लन्दन-नगर आवेश में आकर राजद्रोह करने पर उतारू होगया। पाँचों सदस्य नावों में बैठाकर पार्लमेण्ट में लाये गये। सहस्रों मनुष्य उनके साथ थे। यह दृश्य देख कर राजा घबरा गया। लन्दन में अपने आपको अकेला देखकर वह यार्क को भाग गया। इसी घटना को (१० जनवरी १६४२) इँग्लेण्ड के गृह-युद्ध का प्रारम्भ समझना चाहिए।

गृह-युद्ध का आरंभ (१६४२-१६४६)

राजा के भाग जाने पर पार्लमेण्ट और उसके बीच में समझौते के लिए प्रयत्न किया गया। पार्लमेण्ट चाहती थी कि चर्च की प्रार्थना, सेना तथा राजा की सन्तानों की शिक्षा और विवाह पर उसका अधिकार हो। पर चार्लेस इनमें से एक बात भी स्वीकार नहीं करता था। इसलिए नॉटिङ्गम में उसने अपनी पताका खड़ी करके उन सबको जो उसके पक्ष में थे, सहायतार्थ बुला भेजा।

देश में दो दल हो गये। एक ओर सरदार तथा पादरी थे, जो राजपक्षावलम्बी कहलाते थे और दूसरी ओर पार्लमेण्ट के सहायक ग्रामीण और कृषक थे, इनके सिर के बाल गोल कटे होने के कारण ये 'गोलसिर' कहलाते थे।

युद्ध होते तीन वर्ष व्यतीत हो चुके थे। उस समय अपनी विशेष योग्यता के कारण ऑलिवर क्राँमवेल-नामक एक व्यक्ति

आगे बढ़ता गया। पहले वह पार्लमेण्ट की सेना के एक रिसाले में कर्नल था। उसकी रजमण्ट के सैनिक बड़े कट्टर मज़हबी थे। मद्यपान करना, शपथ लेना तथा अन्य ऐसे ही दुर्गुणों से, जो उस समय चर्च में पाये जाते थे, ये लोग मुक्त थे। आक्रमण करते समय ये बाइबिल के गीत गाया करते थे और इन्हें पराजय भी कभी नहीं हुई थी।

ऑलिवर क्रॉमवेल

क्रामवेल की रजमण्ट के अतिरिक्त पार्लमेण्ट की शेष सेना सुसङ्गठित न थी। सैनिक अपने अफ़सरों का हुक्म नहीं मानते थे, उन्हें वेतन भी समय पर नहीं मिलता था। उनके अन्दर न कोई देश-प्रेम था और न कोई मज़हबी जोश। सेना के अधिकांश अधिकारी पार्लमेण्ट के सदस्य थे, जो स्वयं कोई काम न करते थे। इसलिए पार्लमेण्ट ने यह आवश्यक समझा कि वे अपने आप अपने सैनिक-पद को त्याग दें। इक्कीस हज़ार नये सैनिक भरती किये गये। फ़ेयरफ़ेक्स सेना-नायक और ऑलिवर क्रामवेल उपसेना-नायक नियुक्त किये गये।

नई सेना का तैयार करना; नेज़बी का युद्ध (१६४२)

मज़हब की दृष्टि से सेना के अधिकारी प्युरिटन थे। उनके द्वारा प्रभावान्वित होने से सेना में एक नया मज़हबी आवेश भर गया। प्रत्येक छोटा-बड़ा यही समझने लगा कि मानो इस युद्ध के द्वारा ईश्वर की ओर से लड़ने के लिए निमन्त्रण मिला है। लड़ाई

से अवकाश पाने पर वे बाइबिल का पाठ किया करते थे। इन योग्य अधिकारियों के कारण ही इस सेना ने राजा को नेज़बी के रण-क्षेत्र में पराजित किया। चार्लेस मैदान छोड़ कर स्कॉटलेण्ड भाग गया और स्कॉचों से सहायता के लिए प्रार्थना करने लगा। स्कॉच राजा से कुछ मज़हबी शर्तों पर हस्ताक्षर कराना चाहते थे। इसके इनकार करने पर उन्होंने इसे पार्लमेण्ट के सुपुर्द कर दिया।

इस समय पार्लमेण्ट में कुछ सदस्य ऐसे थे जो चार्लेस को एक शर्त पर सिंहासन पर दुबारा बैठा देना चाहते थे। शर्त यह थी कि वह अँगरेज़ी विधान तथा क़ानून के अनुसार राज्य करे, क्रॉमवेल तथा उसके सैनिकों ने जब यह देखा कि ऐसा होने से उनका सारा परिश्रम और त्याग बिलकुल निष्फल जायगा तब उन्होंने यह निश्चय किया कि उन लोगों को ही पार्लमेण्ट से निकाल देना चाहिए जो राजा के पक्ष में हों।

चार्लेस पर अभियोग; उसकी मृत्यु (१६४६)

प्राईड-नामक क्रॉमवेल-पक्ष का एक अधिकारी पार्लमेण्ट के द्वार पर इसी लिए खड़ा किया गया कि वह ऐसे किसी सदस्य को उसमें प्रवेश न करने दे जिसे सेना नापसन्द करती हो। इस प्रकार केवल पचास सदस्य प्रविष्ट हो सके। वरन् यही पार्लमेंट मान ली गई। इसने तत्काल ही चार्लेस पर अभियोग चलाने का निश्चय किया, जिसके अनुसार

एक सौ पैंतालीस मनुष्यां की एक कचहरी बैठी और चार्लेस उसके सामने उपस्थित किया गया। पर राजा ने यह कह कर उसे स्वीकार न किया कि कोई भी पार्थिव शक्ति उसका न्याय नहीं कर सकती। अभियोग जारी रहा और एक सप्ताह के अन्दर उसे अत्याचारी, वधिक, देशघातक आदि उपाधियाँ दी गईं।

कुछ ही दिन बाद चार्लेस को मृत्यु का मुँह देखना पड़ा। बड़ो वीरता और साहस के साथ उसने उस भयंकर दण्ड को सहन किया। फाँसी के तख्ते पर खड़े होकर उसने ये शब्द कहे थे—"मैं लोगों के लिए हर प्रकार की स्वतन्त्रता चाहता हूँ। किन्तु मेरी समझ में यह स्वतन्त्रता केवल गवर्नमेंट के रहने से ही प्राप्त हो सकती है। लोगों के लिए अच्छा शासन होना चाहिए। इसमें उनके हस्तक्षेप करने से कुछ अर्थ नहीं निकल सकता।"

ज्योंही राजा का सिर कुल्हाड़े से कट कर नीचे गिरा और वधिक ने उसे उठा कर उच्च स्वर में कहा—"यह देशघातक का सिर है।" त्योंही दर्शकों के अन्दर एक प्रकार की खलबली सी मच गई। अँगरेज़ों ने अपने राजा का सिर वधिक के हाथ में अभी तक नहीं देखा था। लेकिन अब तो काम हो चुका था उसके कर्त्ताओं के हृदय भय से काँपने लगे।

चार्लेस को फाँसी देने के पश्चात् पार्लमेण्ट ने यह निश्चित किया कि राजा देश के लिए भार और स्वत-

न्त्रता के मार्ग में बाधक होता है इसलिए राजा और लार्ड-सभा—दोनों को हटा कर एक ही सभा बनाई जाय, जिसे 'कॉमन वेल्थ' अथवा पञ्चायती राज्य नाम दिया जाय और एक्ज़ीक्यूटिव या प्रबन्ध-विषयक अधिकार इकतालीस मनुष्यों की एक स्टेट-कौंसिल अथवा राजसभा के हाथ में दिये जायँ।

प्रजातन्त्र की दुबारा स्थापना और उसमें कठिनाइयाँ

प्रारम्भ में ही प्रजातन्त्र के सामने कई कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं। रूस, फ्रांस और हॉलेण्ड ने उसे अस्वीकार कर दिया। स्काटलेण्ड ने अपने कृत्य पर पछता कर चार्लेस के बेटे चार्लेस द्वितीय को राजा मान लिया। इँग्लेण्ड तथा आयर्लेण्ड में भी एक एक दल राजा के पक्ष में हो गये।

सबसे पहले क्रॉमवेल ससैन्य आयर्लेण्ड पहुँचा और १६४९ में डरॉचेडा के क़िले पर स्वत्व प्राप्त करके तीन सहस्र सैनिकों का उसने वध कर दिया। एक हज़ार साधारण मनुष्य भी जिन्होंने गिरजे की शरण ली थी वहीं क़तल कर दिये गये। इसी प्रकार अन्य कई क़िलों को अपने अधीन करके उसने लोगों को बड़ी निर्दयता के साथ मार डाला। जो शेष बचे उनको जहाज़ों में भर कर बारबेडोस भेज दिया। आयर्लेण्ड में किये गये अत्याचार क्रॉमवेल के नाम पर एक बड़ा धब्बा लगाते हैं।

आयर्लेण्ड (१६४९) स्काटलेण्ड (१६५०) और हालेण्ड (१६५२) के साथ युद्ध

आयर्लेण्ड की सबसे अच्छी भूमि वहाँ के लोगों से छीनकर इँग्लेण्ड तथा स्काटलेण्ड के प्रेसूबीटोरियनों को बसने के लिए दे दी गई। इससे आयर्लेण्डवासियों को इँग्लेण्ड से बड़ी घृणा होगई, जो किसी न किसी रूप में अभी तक चली आती है।

आगामी वर्ष क्रॉमवेल को स्कॉटलेण्ड जाना पड़ा। उसके नाम से ही सारा देश भयभीत हो गया था। डनबार के रण-क्षेत्र में प्युरिटन-सेना ने स्कॉच-सेना को पराजय कर दिया और दस सहस्र मनुष्य कैद कर लिये। १६५१ में क्रॉमवेल ने स्कॉचों पर एक और विजय पाई, जिससे समस्त स्कॉटलेण्ड उसके अधीन हो गया, इसलिए चार्लेस को नारमण्डी भागना पड़ा।

ब्रिटिश द्वीपों के कॉमन-वेल्थ को स्वीकार कर लेने पर क्रॉमवेल ने हॉलेण्ड से सन्धि करके अपने व्यापार को बढ़ाने का प्रयत्न किया। किन्तु डच लोगों ने इँग्लेण्ड की शर्तों को स्वीकार न किया। इस पर पार्लमेण्ट ने नेवीगेशन एक्ट नामक एक क़ानून पास किया, जिसके अनुसार इँग्लेण्ड के जहाज़ अपने देश की उपज या बनी हुई वस्तुओं के सिवाय अन्य देशों का माल लाने से रोक दिये गये।

उन दिनों हॉलेण्ड के जहाज़ दूर दूर देशों का माल इँग्लेण्ड में लाते थे, इसलिए दोनों देशों में परस्पर युद्ध छिड़ गया। तीन वर्ष तक समुद्र-युद्ध होता रहा। अन्त में जब दोनों ओर की पर्याप्त हानि हो गई तब दोनों ने सन्धि कर ली।

इँग्लेण्ड ने यह समुद्र-युद्ध सफलतापूर्वक समाप्त किया, इसका कारण यह था। सर हेनरीवेल ने, जो १६४९ से १६५३ तक अँगरेज़ी गवर्नमेण्ट का अग्रणी रहा था। सेना की शक्ति को आवश्यकता से अधिक बढ़ते देखकर उसकी बराबरी के लिए एक समुद्री बेड़ा तैयार किया था। परन्तु जिस बात का उसे डर था वह युद्ध-काल में हो ही गई।

पार्लमेण्ट और सेना में खुल्लमखुल्ला झगड़ा हो जाने पर क्रॉमवेल ने पार्लमेण्ट से अपनी बैठक को समाप्त करने के लिए कहा जिससे उसके स्थान में दूसरी पार्लमेण्ट चुनी जाय। पर उसने ऐसा करने से इनकार कर दिया, इस पर कुछ सेना लेकर स्वयं क्रॉमवेल पार्लमेण्ट में पहुँचा।

क्रामवेल का पार्लमेंट को भङ्ग करना (१६५३)

कुछ देर तक उनके भाषण सुनने के बाद वह कहने लगा—"अब तुम अपनी बकवाद रहने दो और यह स्थान छोड़ दो! ईश्वर ने तुम्हारा अन्त कर दिया है!" सैनिक अन्दर आ गये और हाल ख़ाली होगया। उन्हें बाहर निकाल कर सैनिकों ने वहाँ ताला लगा दिया। इस प्रकार बारह वर्ष तक कार्य करने के पश्चात् पार्लमेण्ट भङ्ग कर दी गई। सर्वसाधारण में उसके लिए कोई आदर न रह गया था, इसी लिए उसके भङ्ग होने पर किसी को कुछ शिकायत न हुई।

ऐसा प्रतीत होता है कि पार्लमेण्ट के भङ्ग होने पर क्रॉमवेल के मन में सीज़र के समान अपने आपको राजा

बनाने का विचार उत्पन्न हुआ। किन्तु साथ ही उसे यह डर भी लगता था कि ऐसा करने से सेना और प्रजातन्त्र-दल दोनों उसके विरोधी बन जायँगे। इसलिए उसने शीघ्र ही एक सौ छप्पन मज़हबी और धर्मभीरु मनुष्यों की एक नई पार्लमेण्ट बुलाई। उन्होंने पाँच मास में

छोटी पार्लमेण्ट और 'प्रोटेक्टोरेट' की स्थापना (१६५३)

इँग्लेण्ड के लिए एक नया विधान तैयार किया, जिसके अनुसार इँग्लेण्ड का शासन एक 'हौस' (सभा) अर्थात् पार्लमेण्ट और एक कौंसिल अर्थात् स्टेट-कौंसिल (राजसभा) के सुपुर्द कर दिया गया। कौंसिल के सभापति को सभी प्रबन्धविषयक ('एक्ज़ीक्यूटिव') अधिकार दिये गये और उसे "इँग्लेण्ड, स्कॉटलेण्ड, तथा आयर्लेण्ड के संरक्षक ('लार्डप्रोटेक्टर')" की उपाधि दी गई।

क्रॉमवेल को पहला संरक्षक बना कर पार्लमेण्ट ने उसे आदेशक एवं शासक भी बना दिया। इस समय इँग्लेण्ड पर उसका असीम अधिकार था। सारी जाति एक प्रकार से सैनिक क़ानून के अधीन थी। क्रॉमवेल पार्लमेण्ट को बुलाता था पर जब वह उसके इच्छानुसार कार्य करने को तैयार न होती थी तब उसका विसर्जन कर देता था।

पाँच साल तक उसने बिना किसी पार्लमेण्ट के ही राज्य किया। इस काल में इँग्लेण्ड की गवर्नमेण्ट सशक्त बन गई। अन्य सभी देश उससे डरने लगे और साथ ही आदर भी

करने लगे। क्रॉमवेल का उद्देश इँग्लेण्ड को एक वास्तविक शक्ति बनाना था। उसकी धारणा थी कि केवल मज़हबी मनुष्यों के राज्य तथा बाइबिल के अनुसार आचरण करने ही से ऐसा हो सकता है। क्रॉमवेल का यह भी ख़याल था कि केवल अँगरेज़ ही ईश्वर के दुलारे पुत्र हैं? अतएव बड़प्पन के योग्य हैं क्योंकि योरुप में केवल इँग्लेण्ड ही प्रॉटेस्टेण्ट-चर्च के महत्त्व की रक्षा कर रहा था।

प्रॉटेस्टेण्टों को वह किसी तरह भी कष्ट में नहीं देख सकता था। यहाँ तक कि उसने पोप से भी यह कहला भेजा कि यदि प्रॉटेस्टेण्टों को कहीं कुछ कष्ट हुआ तो उसका उत्तरदायित्व तुम पर होगा। इसके साथ ही यह बात भी स्मरणीय है कि उसने इँग्लेण्ड की भौतिक उन्नति अर्थात् व्यापार और कला-कौशल की उन्नति के लिए घोर परिश्रम किया। स्पेन की बराबरी के लिए फ्रांस से मैत्री करने में उसकी नीति यह थी कि स्पेन को निर्बल करके इँग्लेण्ड की नौ-शक्ति को बढ़ाना चाहिए। अपने राज्य-काल के अधिकांश में वह स्पेन के साथ युद्ध करता रहा क्योंकि वह इँग्लेण्ड तथा प्रॉटेस्टेण्ट-चर्च का शत्रु था। इस युद्ध में इँग्लेण्ड ने स्पेन के समय हिन्द-पश्चिमी द्वीप-समूह में के जमैका-द्वीप और डोवर के जल-डमरूमध्य में के डनकिर्क-बन्दर छीन लिये।

किन्तु इस दिखावटी सफलता के होते हुए भी क्रॉमवेल यह अनुभव करता था कि उसे अपने उद्देश में असफलता हो

रही है। उसकी इच्छा थी कि इँग्लेण्ड में पार्लमेण्ट का साथ है उसके ऊपर एक प्रभावशाली एवं बलवान् मनुष्य होना आवश्यक है एक स्थायी नियमबद्ध विधान होना चाहिए। किन्तु जब वह अपनी ओर देखता कि वह तो स्वयं एक सैनिक राज्यापहारी है, जिसे न वह स्वयं ही पसन्द करता है और न सर्वसाधारण ही, तब उसे सदा अपने वध का डर लगा रहता था। कार्याधिक्य और चिन्ताओं के कारण उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया और अन्त में उसे इस बात का भय होने लगा कि उसकी मृत्यु होते ही इँग्लेण्ड एक गड्ढे में जा गिरेगा। आख़िर सितम्बर १६५८ में उसने यह कहते हुए प्राण छोड़ दिये—"मेरा कार्य समाप्त हो गया है। ईश्वर आप लोगों का साथ दे!"

क्रॉमवेल की मृत्यु (१६५८); रिचर्ड क्रॉमवेल (१६५८–१६५९)

क्रॉमवेल के पश्चात् उसका बेटा रिचर्ड क्रॉमवेल उसका उत्तराधिकारी चुना गया। उसमें अपने बाप के कोई गुण नहीं थे और कुछ ही दिनों में सबसे पहले उसने स्वयं ही इस बात का अनुभव किया कि वह राजपद के योग्य नहीं। अतएव पद त्याग कर वह ग्राम्य जीवन व्यतीत करने लगा।

इसलिए कुछ मास तक इँग्लेण्ड में खलबली सी रही। सर्वसाधारण प्रजातन्त्र के प्रयोग से घबराये हुए से प्रतीत होते थे। सबकी यही इच्छा थी कि चार्ल्स का पुत्र वापस बुला लिया जाय। स्कॉच सेना का सेनापति

राजा का पुनरागमन (१६६०)

जेनरल मॉक लन्दन में आया और राज्य की बागडोर अपने हाथ में लेकर उसने पुरानी लम्बी पार्लमेण्ट का अधिवेशन किया जिसमें यह पास हुआ कि इँग्लेण्ड के प्राचीन तथा मौलिक क़ानून के अनुसार गवर्नमेण्ट राजा, लॉर्डों तथा कॉमनों के द्वारा होती रही है और होनी चाहिए।"

तदनन्तर चार्लस बुलाया गया। उसके स्वागत के लिए बड़ी तैयारियाँ की गईं। जहाँ कहीं वह जाता लोग हृदय से स्वागत करते। तब उसने कहा—"मुझे मालूम होता है कि यह मेरा ही दोष था जो मैं इतने समय तक देश से बाहर फिरता रहा।"

प्युरिटन-क्रान्ति की असफलता के कारण

प्युरिटन क्रान्ति असफल हुई। उसके कई कारण थे। प्युरिटन सारे सुधार एक साथ ही करना चाहते थे। उन्होंने न केवल राजा को हटाया वरन्, लार्ड-सभा और अँगरेज़ी चर्च को भी हटाना चाहा। इससे अँगरेज़ी जनता उनके विरुद्ध हो गई। इँग्लेण्डवासियों की प्रकृति तेज़ और गर्म कभी नहीं रही। किन्तु प्युरिटनों ने इस बात की परवा न कर के उन पर मज़हबी विधि-निषेधों में जकड़ कर उन्हें एक प्रकार से मक्कारी और धोखाबाज़ी सिखा दी। मज़हबी सिद्धान्तों की पाबन्दी में ये लोग यहाँ तक बढ़ गये थे कि रविवार के दिन साधारण खेल-तमाशों को भी उन्होंने मज़हब-विरुद्ध ठहरा दिया। जन-साधारण इससे बहुत तङ्ग होगये। प्रधानतः इसी लिए यह क्रान्ति असफल हुई।

किन्तु इसके साथ ही हमें यह न भूलना चाहिए कि प्युरिटन-आन्दोलन ने अँगरेज़-जाति पर अपनी स्थायी छाप लगा दी है। वर्त्तमान अँगरेज़ी-जीवन में हमें जो गुण दिखाई देते हैं अथवा ब्रिटिश-उपनिवेशों में जो बड़प्पन नज़र आता है वह सब इस प्युरिटन-क्रान्ति का फल है। प्युरिटन-क्रान्ति का वास्तविक चित्र हमें उस समय की दो पुस्तकों से एक मिल्टन (१६०८–१६७४) की "स्वर्ग का खोना और स्वर्ग का मिलना" और दूसरी बनियन (१६२८–१६८८) की "यात्री की उन्नति"—मिल सकता है।

चार्लेस एक "मौजी राजा" था। वह समझदार और सावधान काफी था, तथापि साथ ही बड़ा फ़िजूलख़र्च और आचार-भ्रष्ट था। काम और विचार के नाम से उसे घृणा थी। उसे स्वेच्छाचारी बनने की बड़ी लालसा थी। किन्तु वह डरता भी बहुत था, प्रायः कहा करता था—"मैं दुबारा देश-निर्वासित नहीं होना चाहता।"

चार्लेस द्वितीय
१६६०–१६८५

यद्यपि उसने सभी राजघातकों को क्षमाप्रदान की तथापि सर हेनरीवेन तथा अन्य न्यायाधीशों को, जिन्होंने उसके पिता को फाँसी की आज्ञा दी थी, बड़ी निर्दयता के साथ वध करवा दिया। जो मर गये थे वे क़ब्रों से निकालकर फाँसी पर लटकाये गये। सेना विसर्जित कर दी गई और अँगरेज़ी चर्च नये सिरे से स्थापित किया गया।

राज्य के आरम्भ में निम्नलिखित क़ानून पास किये गये—(१) सभा-क़ानून, जिसके अनुसार पाँच या पाँच से अधिक मनुष्यों को किसी घर में ऐसी प्रार्थना के लिए इकट्ठे होने पर, जो अँगरेज़ी चर्च के अनुसार न हो, क़ैद अथवा मौत का दण्ड दिया जा सकता था, (२) पाँच-मील क़ानून, जिसके अनुसार प्रत्येक प्रचारक पाँच मील के अहाते में भाषण करने से रोक दिया गया। इससे सैकड़ों मनुष्य नगरों को छोड़कर दूर स्थलों में जा बसे। स्कॉटलेण्ड में प्रेसबीटेरियन सम्प्रदाय के लोगों पर बड़े बड़े अत्याचार किये गये। अँगरेज़ी सैनिकों ने उनके पूजा-स्थान ढूँढ़ ढूँढ़ कर उन्हें जङ्गलों और पहाड़ों में भगा दिया।

सभा-क़ानून १६६४ और पाँच मील क़ानून १६६५

चार्लेस द्वितीय के राज्य-काल में दो और घटनायें हुईं। पहली यह कि हॉलेण्ड ने इँग्लेण्ड पर आक्रमण किया। उसके समुद्री बेड़े ने टेम्स-नदी के मुहाने में पहुँच कर कुछ अँगरेज़ी जहाज़ों में आग लगा दी। दूसरी यह कि लन्दन में ऐसी प्लेग फैली कि उससे छः मास के अन्दर लगभग एक लाख मनुष्यों के प्राण चले गये। इसके एक वर्ष बाद १६६६ में लन्दन में आग लग गई, जिससे तेरह सहस्र से अधिक मकान भस्मीभूत हो गये। लेकिन लन्दन के लिए यह आग भी लाभप्रद सिद्ध हुई; एक तो प्लेग वहाँ से सदा के लिए

हालेण्ड के साथ युद्ध, प्लेग और आग (१६६४–१६६७)

दूर हो गई और दूसरे गन्दे मकानों के स्थान में अच्छे और हवादार मकान बनाये गये।

चार्लेस ने यह प्रतिज्ञा की थी कि वह सदैव अँगरेज़-जाति तथा पार्लमेंट का आदर करेगा किन्तु अपने ही राज्य-काल में वह फ्रांस के राजा लुइस चौदहवें के साथ अपने देश की स्वतन्त्रता और मज़हब के विरुद्ध कपट-प्रबन्ध करने लगा।

लुइस चौदहवें के साथ कपट-प्रबन्ध

मज़हब की दृष्टि से वह रोमन-केथॉलिक था। इसलिए उसने लुइस के साथ यह गुप्त-सन्धि की कि फ्रांस की सहायता से वह इँग्लेण्ड को रोमन-केथॉलिक बनायेगा और लुइस से धन लेकर वह हॉलेण्ड के विरुद्ध फ्रांस की सेना से सहायता करेगा।

लेकिन यह गुप्त-सन्धि सबको ज्ञात हो गई। इसे पार्लमेंट ने 'टेस्ट-एक्ट' पास किया, जिसके अनुसार रोमन-केथॉलिक चर्च लार्ड-सभा की सदस्यता से वञ्चित कर दिया गया। चार्लेस का भाई जेम्स खुले तौर से रोमन-केथॉलिक था। इसलिए पार्लमेंट का एक पक्ष जेम्स को सिंहासन पर बैठने से रोकना चाहता था। यह पक्ष, जिसमें 'गोल-सिरों' की सन्तानें थीं, 'ह्विग' कहलाता था। और, इसके विरोधी पक्ष को, जो जेम्स के पक्ष में था, 'टोरी' कहलाता है। आगे चलकर इन्हीं का नाम क्रमशः उदार ('लिबरल') और अनुदार (कानज़रवेटिव) पड़ गया है।

इस समय देश में एक आवेश सा उत्पन्न हो गया था और इस आवेश के कारण सर्वसाधारण में यह मिथ्या समाचार फैल गया कि फ्रांस के समान इँग्लेण्ड में भी सब बड़े प्रॉटेस्टेण्ट क़त्ल कर दिये जायँगे और जेम्स सिंहासन पर बैठाया जायगा। षड्यन्त्र के विषय में कई मुख़बिर पैदा हो गये और बहुत से रोमन-केथॉलिकों को दण्ड दिया गया। इसके अतिरिक्त पार्लमेंट ने १६७६ में 'हबियस कारपस' (शरीर को उपस्थित करनेवाला) क़ानून पास किया, जिसके द्वारा अँगरेज़ों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा की गई।

केथॉलिक षड्यन्त्र १६७८
'हबियस कारपस-क़ानून' १६७९

सन् १६८५ में चार्लेस मर गया और उसके भाई जेम्स का अभिषेक हुआ। इसे भी अपने राज-पद का वैसा ही ख़याल था जैसा इसके बाप और दादा को था। वह जब चाहता तब पार्लमेंट को विसर्जित या भङ्ग कर देता। उसने खुल्लमखुल्ला केथॉलिक-प्रार्थना का श्रवण आरम्भ कर दिया और कई केथॉलिकों को सैनिक-पद प्रदान किये। लुइस चौदहवें से पेंशन लेना स्वीकार करके उसने एक प्रकार से अपनी प्रजा के मज़हब के विरुद्ध लुइस के साथ षड्यन्त्र रचा।

जेम्स द्वितीय और उसका राज्य
१६८५—१६८८

इँग्लेण्ड के सभी दल जेम्स के शत्रु हो गये। इसने अँग-

रेज़ो चर्च के विरोधियों (नान-कनफार्मिस्टों) को प्रकट-रूप से प्रसन्न करने के लिए एक घोषणा-द्वारा उनके विरोधी क़ानूनों को हटा लिया। इस घोषणा को पढ़ने का आदेश सभी गिरजा घरों में दिया गया। लेकिन सबने ऐसा करने से इनकार किया। सात बिशपों ने तो राज-दरबार में एक प्रार्थना-पत्र भेजा कि राजा को ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं है। इस पर सातों पकड़कर क़िले में बन्द कर दिये गये और उन पर मानहानि का अभियोग चलाया गया।

समस्त देश में आवेश की एक तरङ्ग बह गई, जूरी तथा न्यायाधीश इस आवेश से ऐसे प्रभावित हुए कि उन्होंने सातों बिशपों को मुक्त कर दिया। इस सुसंवाद को सुनकर सर्वसाधारण के अतिरिक्त सैनिक भी उनमें सम्मिलित हो गये। राजा यह देख रहा था कि किस ओर की हवा चल रही है।

लोग ये सब बातें इसलिए सहन कर रहे थे क्योंकि जेम्स की प्राटेस्टेण्ट लड़की मेरी को, जो हालेण्ड के राजकुमार विलियम आव् आरेञ्ज के साथ ब्याही गई थी, पिता के पश्चात् सिंहासन पर बैठना था। किन्तु १६८८ में जेम्स के यहाँ एक लड़का उत्पन्न हो गया। इससे उसके शत्रु वह कार्य उठाने पर तैयार हो गये, जिसको उन्होंने अभी तक टाल रक्खा था। उन्होंने विलियम आव् आरेञ्ज को बुला भेजा कि वह दलबल-सहित आकर इँग्लेण्ड

१६८८ की राज्य-क्रान्ति

के स्वातन्त्र्य और मज़हब की रक्षा करे। सभी लोग उसकी सहायता करने के लिए तैयार थे।

इधर सारी जाति खुले विरोध के लिए तैयारियाँ कर रही थी, उधर जेम्स अन्धाधुन्ध अपने रास्ते पर चला जा रहा था। जब डच-जहाज़ इँग्लेण्ड के तट पर पहुँचे, तब उसे अपने सङ्कट का ज्ञान हुआ। उसने तुरन्त प्रजा को प्रसन्न करने के लिए अँगरेज़ी चर्च को स्थित रखने और विधान के अनुसार आचरण करने की प्रतिज्ञा की। किन्तु समय निकल गया था। प्रजा और सेना विलियम की तरफ़ हो गई। राजा के लिए भागने के सिवा और कोई चारा न रह गया। अपनी रानी तथा शिशु को फ्रांस भेजकर वह भागने की तैयारी करने लगा।

लोग तो यही चाहते थे। इसलिए उन्होंने भागने की राह छोड़ दी। जाते समय वह अपनी सेना को भङ्ग करता गया। इस पर उसका सैनिक-दल इधर-उधर घूमने लगा, जिससे फिर खलबली मचने का भय हो गया। किन्तु अँगरेज़-जाति के स्वाभाविक आत्म-निग्रह तथा शान्ति-प्रियता ने सैनिक आवेश पर विजय पाई।

अधिकारों की प्रतिज्ञा, विलियम ऑरेञ्ज का राज्य (१६८९-१७०२)

विलियम ने लन्दन में प्रवेश करते ही एक सभा की। उसने २२ जनवरी १६८९ को यह निर्णय किया कि जेम्स के भाग जाने से इँग्लेण्ड का सिंहासन ख़ाली है। इसलिए ऑरेञ्ज और मेरी को राजा और रानी बनाया जाय। साथ ही उसने उस प्रसिद्ध "अधिकारों के प्रतिज्ञापत्र"

तैयार किये, जिसमें अँगरेज़ों के पुराने अधिकार तथा स्वतन्त्रता की शर्तें दुहराई गई हैं; अर्थात् राजा प्रजा पर कोई कर नहीं लगा सकता, कोई सेना नहीं रख सकता, और पार्लमेण्ट के बाद स्वातन्त्र्य को छीन नहीं सकता। विलियम तथा मेरी ने इस पर हस्ताक्षर किये और वे (१३ फ़रवरी, १६८६) में इँग्लेण्ड का राजा और रानी बनाये गये।

इस प्रकार इँग्लेण्ड में वह बड़ी क्रान्ति हो गई जिसकी ओर वह इस शताब्दी के आरम्भ ही से झुका हुआ था। इस क्रान्ति ने सदा के लिए इस प्रश्न का निर्णय कर दिया कि इँग्लेण्ड पर शासन करनेवाली शक्ति राजा के नहीं बल्कि प्रजा के हाथों में होगी। जेम्स को राज्य-च्युत कर देना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि इँग्लेण्ड का राजा राजवंश में जन्म लेने ही से देश पर राज्य नहीं करता और न उसे ईश्वर की ओर से कोई अधिकार प्राप्त होते हैं वरन् प्रजा की इच्छा से ही वह राज्य करता है।

"अधिकारों की प्रतिज्ञा" की सब बातें एक क़ानून के रूप में पार्लमेंट के सामने पेश हुईं और पास की गईं। इसके द्वारा राजा को उन सब अधिकारों से वञ्चित कर दिया गया जो स्टुअर्ट-वंशीय राजा लेना चाहते थे। इँग्लेण्ड की स्वतन्त्रता के साथ इस बात का भी निर्णय कर दिया गया कि इँग्लेण्ड के सिंहासन पर रोमन-केथॉलिक राजा नहीं बैठ सकता।

जेम्स ने लुइस की सहायता से आयर्लेण्ड में एक दल

बनाकर राज्य वापस लेने का प्रयत्न किया किन्तु एक ही युद्ध में उसकी पराजय होगई और आयर्लेण्ड ने विलियम की अधीनता स्वीकार कर ली।

"अधिकारों की प्रतिज्ञा" को कार्यरूप में परिणत करने के लिए पार्लमेंट ने दो और क़ानून पास किये। पहला यह था,

आय का निर्णय (१६९०)

राज्य की साधारण आय, जो पहले सिंहासन पर बैठते ही राजा को दे दी जाती थी, केवल एक वर्ष के लिए राजा और रानी (अर्थात् विलियम और मेरी) को दी जाय और बाद में प्रतिवर्ष पार्लमेंट को दी जाय। यद्यपि इस क़ानून के पास हो जाने पर विलियम कुछ अप्रसन्न हुआ तथापि इससे अँगरेज़ी-विधान की जड़ मज़बूत होगई। सारे धन पर कॉमन-सभा का अधिकार हो जाने से राजा के लिए आय का कोई स्थायी साधन न रह गया और उसके लिए पार्लमेंट की बैठकें करना अनिवार्य हो गया। रुपये पर पार्लमेंट का अधिकार हो जाने से पार्लमेंट ही इँग्लेण्ड की वास्तविक स्वामिनी बन गई।

दूसरा क़ानून 'राजद्रोह-क़ानून' था। इसके अनुसार सैनिक कोर्ट-मार्शल के द्वारा राजद्रोहियों को दण्ड देने का

राजद्रोह-क़ानून

अधिकार राजा को केवल एक वर्ष के लिए दिया गया। प्रतिवर्ष इसे पार्लमेंट दुहराती थी। इससे एक तो पार्लमेंट सेना की स्वामिनी बन गई और दूसरे उसके सदस्यों को एकत्र होने का सुयोग मिल गया।

नवाँ अध्याय

अमरीका कैसे स्वतन्त्र हुआ ?

भूमिका

आज अमरीका का नाम संसार में प्रसिद्ध हो रहा है। क्या कला-कौशल की दृष्टि से, क्या धन-सम्पत्ति की दृष्टि से और क्या समृद्धि की दृष्टि से—सभी बातों में अमरीका संसार के अन्य देशों से बहुत आगे निकल गया है। अमरीका ने जो आश्चर्यजनक उन्नति की है, वह केवल गत तीन-चार शताब्दियों के प्रयत्नों का फल है। आज से लगभग चार शताब्दी पहले अमरीका को कोई जानता भी न था। किसी को यह ख़याल भी न था कि पश्चिम की ओर योरुप और एशिया के बीच में कोई और महाद्वीप है भी या नहीं।

योरुप और एशिया के स्थल-मार्ग

इससे पहले योरुप, एशिया और अफ़रीका के उत्तरी भागों के रहनेवालों में परस्पर स्थल तथा जल-मार्गों-द्वारा व्यापार होता था। योरुपवासी इटली के बन्दरों (जनेवा और वेनिस) से चलकर तीन मार्गों से एशिया में पहुँचा करते थे। पहला, भूमध्यसागर में होते हुए सिकन्दरिया से लालसागर और वहाँ से हिन्दूमहासागर के रास्ते कराची में; दूसरा, भूमध्यसागर में से गुज़रकर और सीरिया को स्थल-मार्ग से तय करके फ़ारस की खाड़ी के रास्ते भारतवर्ष में; तीसरा, भूमध्य-

सागर और लालसागर में से गुज़रते हुए थोड़ा सा स्थल-मार्ग तय करके हिन्दसागर को पार करके स्थल-मार्ग-द्वारा भारतवर्ष में। इन मार्गों से योरुप और भारतवर्ष के बीच में बड़ा व्यापार होता था।

जल-मार्ग ढूँढ़ने का ख़याल

जब पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य में तुर्कों ने पूर्वी योरुप में अपना शासन स्थापित कर लिया और जब इन स्थल-मार्गों का बहुत सा भाग उनके क़ब्ज़े में चला गया तब योरुप के ईसाई व्यापारियों का इन मार्गों-द्वारा भारतवर्ष में आना जाना असम्भव सा हो गया। स्वभावतः इस समय योरुपवासियों को यह धुन लगी हुई थी कि किसी प्रकार भारतवर्ष जाने के लिए कोई और सुरक्षित मार्ग मालूम करना चाहिए। तात्कालिक कई भूगोल-ज्ञान-विशारदों का मत था कि अफ़्रीका के पश्चिमी तट से दक्षिण की ओर जाते हुए भारतवर्ष का समुद्री मार्ग मिल जायगा। इसी प्रयत्न में कई मनुष्य अफ़्रीका के किनारे-किनारे दक्षिण-दिशा में गये भी। परन्तु किसी को भूमध्यरेखा से आगे बढ़ने का साहस न हुआ।

कोलम्बस

इस समय कोलम्बस-नामक एक जनेवावासी को यह सूझा कि पृथ्वी गोल होने के कारण हमको योरुप से पश्चिम की ओर जाते-जाते एशिया के पूर्वी तट पर पहुँच ही जाना चाहिए। उसने यह बात ज्योतिषियों से भी पूछी। उन्होंने उसकी बात

मान ली और कहा कि योरुप के पश्चिम में जाने से मनुष्य किसी न किसी समय अवश्य ही एशिया के पूर्वी तट पर जा पहुँचेगा। १३ अगस्त, सन् १४९२ को कोलम्बस स्पेन के राजा की सहायता से तीन जहाज़ों में नव्वे मनुष्यों को साथ लेकर समुद्र में निकल पड़ा।

वे मनुष्य कैसे साहसी होंगे, जो अपनी जानें हथेली पर रखकर केवल भारतवर्ष में पहुँचने के विचार से भयानक एवं अथाह समुद्र में छोटे छोटे जहाज़ों पर चल पड़े थे। इनको केवल एक ही धुन लगी हुई थी कि हम किसी प्रकार भारतवर्ष में पहुँचकर वहाँ के सोना, चाँदी, हीरे और जवाह-रात पाकर मालामाल हो जायँ। संसार में यदि किसी जाति अथवा देश ने उन्नति ही की है तो वह केवल ऐसे मनुष्यों के साहस एवं परिश्रम की बदौलत। ये अपनी बात को पूरा करने के लिए प्राण तक देने के लिए तैयार रहते हैं।

यह सत्य है कि भारतवर्ष का असीम धन प्राप्त करने की लालसा उनके दिल को उभार रही थी तथापि इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि उस समय योरुप के साथ व्यापार करने से भारतवर्ष को भी बहुत लाभ होता था। परन्तु किसी भारतवासी के मन में यह विचार कभी उत्पन्न नहीं हुआ कि पुराने मार्गों के बन्द हो जाने से योरुप जाने के लिए कोई नये मार्ग मालूम करना चाहिए। पुराने आर्यों को समुद्र के सब मार्गों का ज्ञान

था या नहीं—यह दूसरा प्रश्न है। यदि था तो फिर इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि उन्होंने उचित समय पर अपने ज्ञान से किसी प्रकार का कोई लाभ नहीं उठाया, और योरुप के उन लोगों ने, जो उस समय इनसे कम सभ्य समझे जाते थे, केवल अपनी वीरता और साहस से वह काम कर दिखाया, जिससे संसार का समस्त इतिहास ही पलट गया।

लगातार पैंतीस दिन यात्रा करने के पश्चात् कोलम्बस और उसके साथियों को भूमि दृष्टिगोचर हुई। उनके हर्ष की कोई सीमा न रही। उन्होंने सोचा कि अब हम धन-सम्पत्ति-परिपूर्ण हुई भारत-भूमि पर पहुँच गये हैं। लेकिन थोड़ी ही देर में निराशा और चिन्ता ने उनके हर्ष का स्थान ले लिया, क्योंकि समृद्धिशाली नगरों के स्थान में उन्हें वहाँ पर केवल सूनसान और बियाबान जङ्गल ही मिले। पर तो भी उनके मन में किसी प्रकार का सन्देह नहीं हुआ प्रत्युत यह दृढ़ विश्वास हो गया कि वे एशिया के किसी भाग में पहुँच गये हैं। जब वे स्पेन वापस लौटे तब लोगों ने उनकी बातें बड़े आश्चर्य एवं शौक से सुनीं, और जब कोलम्बस दूसरी बार फिर जाने के लिए तैयार हुआ तब बहुत से मनुष्य उसके साथ हो लिये। किन्तु धन न पाने के कारण वे बहुत निराश हुए और कोलम्बस का बड़ा अनादर हुआ।

सन् १४९५ में वासको-डे-गामा नाम का एक पुर्तगीज़ दक्षिण दिशा में अफ़रीक़ा के किनारे-किनारे होता हुआ

आशा-अन्तरीप का चक्कर लगाकर अन्त में हिन्दमहासागर को पार करके भारतवर्ष में पहुँच ही तो गया। और चार बरस के पश्चात् रेशम, कमख़ाब और हीरे-जवाहरातों से लदे हुए जहाज़ों के साथ लेकर अपने देश को वापस गया। अब लोगों को निश्चय हुआ कि वास्तव में जहाँ से वास-कोडे-गामा होकर लौटा है। वह भारतवर्ष ही है।

वास-कोडे-गामा की यात्रा

इधर अविश्रान्त प्रयत्नों के पश्चात् लोगों को यह मालूम हो गया कि कोलम्बस ने जिस देश को मालूम किया था वह एक सर्वथा नवीन संसार ही है। कोलम्बस के पश्चात् अमेरिगोवेस्पुस्सी नामक एक नाविक ने इस नये संसार को मालूम करके उसका विवरण प्रकाशित किया, और इसलिए उस देश का नाम अमेरिका पड़ गया।

वास्तव में अमरीका सारे महाद्वीप को कहते हैं। किन्तु साधारणतया जब अमरीका का उल्लेख किया जाता है तब उसका अभिप्राय केवल अमरीका के संयुक्त राज्यों से होता है। हम भी आगे संयुक्त-राज्यों के लिए अमरीका शब्द का ही प्रयोग करेंगे।

अमरीका का प्रारम्भिक इतिहास

यह बात ध्यान देने योग्य है कि कोलम्बस और उसके पीछे आनेवाले यात्रियों का अमरीका में स्थायी-रूप से बसने का विचार न था, उनका एक-मात्र उद्देश धन-प्राप्ति

था। कोलम्बस के बहुत दिनों बाद भी जो लोग वहाँ गये उनका उद्देश केवल लूट मार रहा। वे वहाँ के मूल-वासियों को अनेक प्रकार से सताकर और उन्हें उल्लू बनाकर वापस लौट आते थे। बस्तियाँ बसाने के लिए थोड़ा-बहुत प्रयत्न उन्होंने किया अवश्य, पर उसमें वे सफल न हुए।

सोलहवीं शताब्दी के अन्त में इँग्लेण्ड में एक महान् परिवर्तन हो रहा था। देशनिर्वासित 'सेपेरेटिस्ट'-दल ने हॉलेण्ड में रहना उचित न समझा क्योंकि ऐसा करने से उनकी सन्तति अपनी मातृ-भाषा खो बैठती और वह अँगरेज़ी शिक्षा से वञ्चित हो जाती। उन्होंने सोचा—वे कुछ ही वर्षों में हॉलेण्ड के निवासियों में मिल जायँगे। अतएव उन्होंने अमरीका में अपनी बस्तियाँ बसाने का निश्चय किया।

"यात्री-पिता"
(१६२०)

सन् १६२० में एक सौ सेपेरेटिस्ट, जिनमें बालक और स्त्रियाँ भी सम्मिलित थीं, 'मेफ्लावर' नामक एक छोटे से जहाज़ पर सवार होकर अमरीका की ओर रवाना हुए। संसार के इतिहास में यह पहली घटना है, जिसमें थोड़े से मनुष्य, अपने सिद्धान्तों की रक्षार्थ, अपने घरबार को तिलाञ्जलि देकर एक अज्ञात देश के लिए जाते हुए दिखाई देते हैं। संसार में यदि किसी जाति ने कोई काम करके दिखाया है तो ऐसे ही मनुष्यों के द्वारा, जो अपने सिद्धान्तों की रक्षा के लिए, अपने आपको स्वतन्त्र रखने के लिए जान व माल की परवा न करके

वीरता से अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। इँग्लेण्डवासियों में इस प्रकार के मनुष्य हैं और यही कारण है कि उनका संसार में इतना आधिपत्य है।

दो मास की कष्ट-पूर्ण समुद्र-यात्रा के पश्चात् यात्री-दल अमरीका के उत्तरी तट पर जा उतरे। उन वीरों के सामने तकलीफ़ें ही तकलीफ़ें थीं। सख़्त सरदी के दिनों में वे एक अज्ञात-भूमि पर पड़े हुए थे। सरदी तथा भूख के कारण उनमें से आधे से अधिक तो मृत्यु का ग्रास हो गये। उनकी भोज-सामग्री समाप्त हो चुकी थी, इसलिए उन्हें समुद्र की मछलियों पर गुज़र करना पड़ा। एक समय वह आया जब उनमें से केवल सात मनुष्य ऐसे रह गये जो दूसरों की सेवा-शुश्रूषा कर सकते थे। किन्तु धन्य है उनका साहस कि इतने विपद्ग्रस्त होते हुए भी उन्होंने कभी इँग्लेण्ड को लौटने का नाम न लिया, वरन् वीरता के साथ विपदाओं को सहन करते रहे।

वहाँ मकान आदि बनाने के पश्चात् उन्होंने परस्पर मिलकर यह प्रतिज्ञा की—"हम देवपाद महाराज जेम्स की आज्ञाकारी प्रजा हैं और ईश्वर के नाम पर, ईसाई-मज़हब के प्रचारार्थ एवं अपने राजा तथा देश की उन्नति के लिए इस देश में आये हैं। ईश्वर को सर्वव्यापक समझकर हम प्रतिज्ञा करते हैं कि इन सिद्धान्तों को सुरक्षित रखने के वास्ते हम जो क़ानून बनायेंगे हम उनके अधीन रहेंगे।" उनमें से हर एक ने गम्भीरता के साथ यह प्रतिज्ञा उठाई।

यहाँ पर यह बता देना अनावश्यक न होगा कि इस प्रतिज्ञा से अमरीका का शासन एक भ्रान्त सिद्धान्त के अनुसार प्रतिष्ठित हो गया। अमरीका में जो लोग बसने लगे थे उन्हें इँग्लेण्ड के राजा से कोई सहानुभूति न थी। उनको चाहिए था कि अपने शासन को इँग्लेण्ड के अधीन न करके प्रजातन्त्र-सिद्धान्त को अपने सामने रखते हुए आरम्भ से ही अपने स्वतन्त्र-शासन की नींव रखते। आरम्भ में ऐसा करना आसान बात भी थी। इसी भूल के कारण बाद में इँग्लेण्ड ने अमरीका पर अपना स्वत्व करना चाहा, जिससे बहुत सी गड़बड़ पैदा हुई। पर असल में उनके अन्दर अभी इँग्लेण्ड की याद बिलकुल ताज़ा थी। यद्यपि वहाँ उन पर बड़े अत्याचार हुए थे फिर भी वे उसके साथ प्रेम करते थे। इँग्लेण्ड के राजा से भी, जिसकी आज्ञापालन का उनके पास कोई हेतु न था, वे राजद्रोही नहीं हुए। उनका उद्देश केवल मज़हबी स्वतन्त्रता थी और जब उनको वह प्राप्त होगई तब फिर उन्हें किसी बात का ख़याल ही न रह गया।

उनकी राजनीतिक भूल

इसी बीच में अमरीका के अन्य भागों में और उपनिवेश आबाद होने शुरू हुए। १६२९ में, राजा चार्लेस की अनुमति तथा राजाज्ञापत्र (चार्टर) के अनुसार एक कम्पनी बनाई गई। प्युरिटन-दल के कुछ लोगों ने उसके साथ मिल कर मेसाचुसेट्स-

मेसाचुसेट्स-उपनिवेश

नामक एक उपनिवेश आबाद किया। उनके पास बहुत सा सामान होने तथा उनकी पीठ पर इँग्लेण्ड का हाथ होने से उन्हें अधिक कष्ट नहीं सहन करने पड़े। इसलिए थोड़े ही समय में वे अपने नये उपनिवेश में सुख से रहने लगे।

प्युरिटन-दल अपनी मज़हबी स्वतन्त्रता सुरक्षित रखने के लिए यहाँ आया था। जिस मनुष्य के उन जैसे मज़हबी विचार नहीं होते थे वह मेसाचुसेट्स का नागरिक नहीं बन सकता था। यह उनका क़ानून था। इस मज़हबी संस्था को चलाने के लिए हर एक मनुष्य को चन्दा देना पड़ता था, मानो उनके लिए शासन और मज़हब एक ही बात थी। उनमें कई एक विद्वान् भी थे। बालकों के शिक्षार्थ उन्होंने पाठशालाएँ स्थापित कीं, जिनमें अधिकतर मज़हबी शिक्षा प्रदान की जाती थी।

उनमें कई स्वतन्त्र विचार के मनुष्य भी पहुँचे, जिन्होंने प्युरिटन-दल के मज़हबी मामलों में हस्तक्षेप करना शुरू किया।

रोड आइलेण्ड-उपनिवेश

किन्तु वे लोग, जिन्होंने अपने मज़हब के रक्षार्थ अपना सर्वस्व-त्याग दिया था, इस बात को कैसे सहन कर सकते थे। उन्होंने ऐसे मनुष्यों को अपने उपनिवेश से बाहर निकालना आरम्भ किया। इस पर रॉजर लिलियम नामक एक निर्वासित मनुष्य ने कुछ साथियों की सहायता से रोड आइलेण्ड-नामक एक अन्य उपनिवेश आबाद किया। वहाँ पर हर एक के लिए मज़हब और अन्तःकरण के अनुसार चलने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी।

यह बात कुछ आश्चर्यजनक प्रतीत होती है कि जो लोग स्वयं मज़हबी स्वतन्त्रता के लिए इतने कष्ट सहन करके आये हों, वे दूसरों को मज़हबी स्वतन्त्रता देने से इनकार करें। किन्तु इसके साथ यह बात भी ध्यान में रखना चाहिए कि मेसाचुसेट्स-वासियों ने इसलिए कष्ट सहन किये थे कि वे स्वतन्त्रता-पूर्वक उस मज़हब के अनुसार आचरण कर सकें, जिसे वे स्वयं सत्य समझते थे। इसलिए वे यह भी नहीं देख सकते थे कि कोई दूसरा उनके मज़हब को अस्वीकार करे।

ये उपनिवेश इँग्लेण्ड के अधीन थे अवश्य लेकिन नाममात्र अमरीकावासियों का शासन प्रजातन्त्र मूलक था। वे स्वयं अपने प्रतिनिधि चुनते थे। राजा और मेसाचुसेट्स की कम्पनी में परस्पर अनबन हो जाने पर १६२९ में यह कम्पनी इँग्लेण्ड से अमरीका में आगई। इसलिए इँग्लेण्ड के साथ उनका कोई विशेष सम्बन्ध न रह गया। उन्हें अपने शासन के संचालन के लिए कर देने पड़ते थे। इसलिए स्वभावतः उनमें इस प्रकार के विचार उत्पन्न होने लगे कि उनका धन किस प्रकार ख़र्च होता है। शनैः शनैः राजनैतिक मामलों में उनकी रुचि बढ़ने लगी। उन्होंने स्वयं अपने क़ानून बनाये।

अमरीका में लोगों की प्रारम्भिक राजनीतिक अवस्था

उपनिवेशों या राज्यों को उत्तर से फ़्रांसीसियों और दक्षिण से डचों का भय लगा रहता था। इनके अतिरिक्त वे

वहां के मूलनिवासियों से भी बहुत डरते थे। शत्रुओं का मिलकर सामना करने के लिए मेसाचुसेट्स, कॉनेक्टिकट्न्यु, हेवेन और प्लाइमौथ ने परस्पर एक संघ ('फेडरेशन') बना लिया। वास्तव में यह मिलाप भीतरी न था, बाहरी था। क्योंकि हर एक राज्य अपना-अपना काम भलीभाँति चला सकता था, इसलिए परस्पर मिलकर रहने का उन्हें स्वभाव नहीं पड़ा था। किन्तु राष्ट्र के निर्माण से सम्बन्ध में ऐतिहासिक दृष्टि-कोण से यह बात स्मरण रखने योग्य है, क्योंकि यही प्रारम्भिक मेल-मिलाप काल की गति से अन्त में पक्का हो गया।

राज्यों का संघ (१६४३)

अँगरेज़ी क़ानूनों में थोड़ा-बहुत परिवर्तन करके अपना काम चलाने के लिए उन्होंने कई क़ानून बनाये। यद्यपि ऐसा करने में उनका पहले उद्देश मज़हबी था, तथापि उसका परिणाम यह निकला कि शनैः शनैः लोग एक दूसरे के साथ आबाद होते गये और इस प्रकार धीरे-धीरे नगर बसने लगे। उन दिनों दास रखने की भी प्रथा थी। ये दास अफ़रीका से लाकर अमरीका में बेचे जाते थे।

क़ानून

सबसे पहले अमरीका में आनेवालों ने अमरीका को ही भारतवर्ष समझा था। इसलिए उन्होंने वहाँ के मूलवासियों को भारतीय कहना आरम्भ कर दिया। उनके शरीर प्रायः लाल होने से

रेड इण्डियन लोग

बाद में उनका नाम रेड इण्डियन पड़ गया। वे सघन जङ्गलों में रहते थे। शस्त्र आदि होने के कारण वे शत्रु का सामना कर सकते थे। पर शारीरिक परिश्रम न कर सकने के कारण अफ़रीका के हबशी-दासों से काम लिया जाने लगा। यह प्रथा यहाँ तक बढ़ी कि यह एक लाभप्रद व्यापार बन गया और अनेक मनुष्य उन्हें भेड़-बकरियों के समान अफ़रीका से जहाज़ों में लाद लादकर अमरीका में बेच जाने लगे। स्वामी लोग इनसे बड़ी निर्दयता के साथ काम लेते थे। रेड इण्डियन लोगों के साथ अमरीकावासियों का हर समय लड़ाई-झगड़ा ही लगा रहता था। उनमें पारस्परिक जातिगत द्वेष और शत्रुता की कोई सीमा नहीं थी।

ऊपर दिये हुए संक्षिप्त वर्णन से हमें अमरीका की प्रारम्भिक अवस्था का, आनेवाली घटनाओं को समझने के लिए, पर्याप्त ज्ञान हो जाता है। हमारा उद्देश यह देखना है कि अमरीका में प्रजासत्तात्मक शासन कैसे स्थापित हुआ और उसने इँग्लेण्ड से कैसे अपना पल्ला छुड़ाया। इससे पहले कि हम उसकी राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने की घटनाओं की ओर जायँ यह बताना आवश्यक प्रतीत होता है कि इँग्लेण्ड का शासन क्योंकर अमरीका में सुदृढ़ हुआ।

इँग्लेण्ड के साथ राजनीतिक सम्बन्ध

हमने ऊपर बताया है कि आरम्भ में जो लोग इँग्लेण्ड से अमरीका में आये वे केवल यही चाहते थे कि उनको

इच्छानुसार ईश्वर-प्रार्थना आदि करने का अधिकार हो। यदि इँग्लेण्ड में उनको यह अधिकार प्राप्त होजाता तो वे लोग कदापि वहाँ से न निकलते। उनके अन्दर अमरीका में आ जाने पर भी अपने पुराने स्वदेश के लिए प्रेम तथा आदर का भाव बना रहा। अमरीका में रहते हुए भी वे अपने-आपको इँग्लेण्ड के राजा की प्रजा समझते थे। एक बात और भी थी। उन्हीं दिनों योरुप की जातियों ने यह एक क़ानून बनाया था कि यदि कोई मनुष्य किसी अज्ञात देश को मालूम करके वहाँ पर अपने राजा की पताका गाड़ देगा या केवल उस भूमि पर अपनी एक दृष्टि ही डाल देगा तो वह देश उस देश के राजा की सम्पत्ति होगा, जहाँ का वह खोज करने-वाला निवासी होगा। इन्हीं कारणों से इँग्लेण्ड का राजा अमरीका पर अपना अधिकार जताता और उसके शासन के मामलों में हस्तक्षेप करता था। यद्यपि अमरीका के अति दूर होने तथा इँग्लेण्ड के राजाओं की शक्ति कम होने के कारण वे अधिक हस्तक्षेप नहीं कर सकते थे तथापि अमरीका के शासन पर उनका अधिकार बना रहा।

उपर्युक्त सब राज्यों में से मेसाचुसेट्स सबसे बड़ा था। उस पर इँग्लेण्ड की अधीनता नाम-मात्र थी, वास्तव में यह राज्य स्वाधीन था। क्योंकि यह स्वयं अपने क़ानून बनाता था, स्वयं अपने कर वसूल करता था, उसने स्वयं अपना सिक्का जारी किया था। वह इँग्लेण्ड को राजस्व भी नहीं देता था। जब

इँग्लेण्ड में चार्लेस प्रथम को राज्यच्युत करके प्रजातन्त्र स्थापित किया गया तब इस राज्य ने कोई परवा न की। यह अपनी प्रजासत्ता को पार्लमेण्ट से उतना ही सुरक्षित रखता था जितना राजा से। १६६१ में इँग्लेण्ड में जब फिर प्रजासत्तात्मक पार्लमेण्ट निर्बल होगई और चार्लेस प्रथम का पुत्र चार्लेस द्वितीय सिंहासनारूढ़ हुआ तब इन्होंने, इच्छा न होते हुए भी, एक सभा करके चार्लेस को अपना राजा घोषित किया।

अमरीका में इँग्लेण्ड के शासन के कारण

अमरीका में इँग्लेण्ड के अधिकार सुदृढ़ हो जाने के कई कारण थे। इँग्लेण्ड में प्युरिटन-दल का ज़ोर बिलकुल कम होगया था। इसलिए अमरीका के प्युरिटन लोगों को इँग्लेण्ड से सहायता की आशा कम होती जाती थी। अमरीका में भी उनकी शक्ति कम हो रही थी, क्योंकि भाँति-भाँति के विचारों के लोग वहाँ पर आते-जाते थे। विभिन्न प्रकार के मज़हबी विचारों के माननेवाले अपनी-अपनी मज़हबी स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने के लिए इँग्लेण्ड की सहायता के इच्छुक होते थे। इससे इँग्लेण्ड के राजा का प्रभुत्व बराबर बढ़ता जाता था।

अमरीकन लोगों में केकर-नामक एक मज़हबी सम्प्रदाय था। इस पर प्युरिटन-दल ने बड़े अत्याचार किये। ऐसा-

चुसेट्स और हेवेन—बस्तियों ने यह क़ानून बनाया था कि केवल उन्हीं के ही धर्मवालों को राय देने अथवा उच्च-पद प्राप्त करने का अधिकार होगा। विवश होकर कुछ केकरों ने इँग्लेण्ड में जाकर राजा से मेसाचुसेट्स के विरुद्ध शिकायतें करना आरम्भ कीं। चार्लेस ने घोषित कर दिया कि मेसाचुसेट्स के न्यायालयों को केकरों को दण्ड देने का कोई अधिकार नहीं था। किन्तु मेसाचुसेट्स ने इसकी कुछ भी परवा न की। इस पर १६६२ में चार्लेस द्वितीय ने मेसाचुसेट्स को डराने के लिए न्युहेवेन की बस्ती छीनकर कॉनेक्टिकट-बस्ती में, जहाँ पर सबके लिए मज़हबी स्वतन्त्रता थी, सम्मिलित कर दिया। मेसाचुसेट्स में कई ऐसे मनुष्य थे, जो प्युरिटन-शासन के अधीन नहीं रहना चाहते थे, इसलिए उन्होंने राजा की सहायता करना आरम्भ कर दी।

मेसाचुसेट्स और इँग्लेण्ड के राजा में झगड़ा

यह झगड़ा बहुत बढ़ता गया। अन्त में १६८४ में चार्लेस द्वितीय ने मेसाचुसेट्स कम्पनी का राजाज्ञापत्र ('चार्टर') रद्द कर दिया, और इस प्रकार यह राज्य अपने सब अधिकार खोकर राजा के अधीन होगया। परन्तु चार्लेस अभी पूर्ण प्रबन्ध नहीं कर पाया था कि १६८५ में उसकी मृत्यु होगई। उसके पश्चात् उसका भाई जेम्स द्वितीय उत्तराधिकारी नियत हुआ। उसने सर एडमण्ड एण्ड्रूज़-नामक एक अफ़सर को समस्त देश अर्थात् सारे राज्यों पर 'वायसराय' बनाकर

यहाँ भेजा। उसने पुराने क़ानूनों को हटा नये बड़े कड़े कड़े क़ानून बनाये, कर वसूल करना राजद्रोहियों को दण्ड देना आरम्भ किया।

यदि वायसराय अपने इन्हीं अत्याचारों को कुछ समय के लिए और जारी रखता तो अमरीका में अवश्य ही बलवा हो जाता। लेकिन इसी बीच में इँग्लेण्ड में जेम्स सिंहासन से उतारा गया और उसके स्थान में विलियम तृतीय राजा बना। जब यह समाचार अमरीका में पहुँचा तब लोग वायसराय के विरुद्ध होगये। अपने प्राण सुरक्षित न देखकर वह वहाँ से भाग निकला।

वायसराय और अमरीकावासी

विलियम ने अमरीकावासियों के बहुत से कष्ट निवारण किये। उसने उन्हें अपना शासन निर्वाचित प्रतिनिधियों-द्वारा चलाने का अधिकार दे दिया। परन्तु इसके साथ उन्हें अपने से भिन्न मज़हबी विचार रखनेवाले मनुष्यों को भी सम्मति देने का अधिकार दे देना पड़ा। इन बातों को तो बहुसंख्या ने स्वीकार कर लिया। केवल एक बात ऐसी थी जिसे उन्होंने अस्वीकार किया। विलियम ने समस्त राज्यों पर शासन करने के लिए इँग्लेण्ड से एक अँगरेज़-वायसराय भेजा। अमरीका-वासी अपने ही किसी निर्वाचित मनुष्य को वायसराय बनाना चाहते थे, किन्तु इस मामले में उनकी एक भी न चली और अँगरेज़-वायसराय अमरीका में पहुँच ही गया। परिणाम-स्वरूप

लोगों और वायसराय में झगड़ा शुरू होगया। इसलिए वायसराय चाहे कितना ही अच्छा क्यों न होता फिर भी लोग उसे पसन्द न कर सकते थे। एक मनुष्य के विरुद्ध सब राज्यों का सम्मिलित विरोध करने से अमरीकावासियों में पारस्परिक ऐक्य बढ़ने लगा।

दक्षिणी तथा मध्य अमरीका के उपनिवेश

उत्तर के समान अमरीका के दक्षिणी भाग में भी उपनिवेश बन रहे थे। सबसे पहले वरजिनिया का उपनिवेश आबाद हुआ। यहाँ के निवासी बड़े आराम-पसन्द थे; वे स्वयं अपना कार्य न करना चाहते थे। इसलिए यहाँ दासों से काम लेने का रिवाज़ पड़ गया और कुछ समय के पश्चात् दास रखने की रीति गहरी जड़ पकड़ गई। यह बात ध्यातव्य है कि जो लोग अपने लिए प्रतिक्षण स्वतन्त्रता, स्वतन्त्रता चिल्लाते रहते थे और जिन्होंने बाद में अपनी स्वतन्त्रता के लिए इँग्लेण्ड के साथ युद्ध भी किया, वे अफ़रीकन हबशियों को क्यों इस निर्दयता के साथ आयुपर्य्यन्त दास बनाये रखते थे। उन पर विभिन्न प्रकार के अत्याचार होते थे। अमरीका के श्वेताङ्गों का कहना था कि काले मनुष्यों को क्या अधिकार है कि हम इनका आदर करें? कोई स्वामी यदि अपने दास को मार देता था तो कोई पूछ-ताँछ करनेवाला नहीं होता था, क्योंकि समझा यह जाता था कि दास उसकी सम्पत्ति है, वह उसे अपने इच्छानुसार उपयोग में ला सकता है।

राजनैतिक-दृष्टि से ये लोग ऐसे प्रजासत्तात्मक विचारों के नहीं थे जैसे इनके उत्तरीय देश-बान्धव। यहाँ के श्वेताङ्ग दो श्रेणियों में विभक्त थे:—एक तो बड़े-बड़े ज़मींदार और दूसरे उनके अधीन निर्धन कृषक। ये लोग उत्तरी अमरीकनों की अपेक्षा इँग्लेण्ड के राजा के अधिक आज्ञाकारी थे और मज़हब की भी अधिक परवा नहीं करते थे।

मध्य अमरीका में पेन्सलवेनिया तथा न्युयार्क-नामक उपनिवेश आबाद हुए, और दक्षिण में मेरीलेण्ड, केरोलीना तथा जॉर्जिया। उत्तरी अमरीका की अधिक जन-संख्या अँगरेज़ी नस्ल से थी। उनकी रीति-नीति प्रायः अँगरेज़ी थी। मध्य में हर प्रकार के लोग बसे हुए थे। किन्तु भाषा सबकी अँगरेज़ी ही थी। सभी राज्यों की शासन-प्रणाली अँगरेज़ी थी, प्रत्येक राज्य में एक गवर्नर और दो सभायें या कौंसिलें थीं।

आरम्भ ही से इँग्लेण्ड और अमरीका में परस्पर ऐसे सम्बन्ध थे, जिनसे यह प्रकट होता था कि अवश्य ही एक न एक दिन ऐसा आयगा जब अमरीकावासी इँग्लेण्ड के शासन के विरुद्ध उठ खड़े होंगे। विलियम तृतीय के पूर्व-शासक अर्थात् चार्लेस प्रथम, चार्लेस द्वितीय और जेम्स द्वितीय ने इन उपनिवेशों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। विलियम तृतीय के राज्य-काल में पार्लमेण्ट की शक्ति बढ़ गई।

इँग्लेण्ड की व्यापारिक-नीति

इसलिए राजा के स्थान में पार्लमेण्ट अमरीका पर शासन करने लगी।

अब हमारे लिए यह देखना आवश्यक है कि इस समय इँग्लेण्डवासियों के उपनिवेशों के विषय में क्या विचार थे। उनका खयाल था कि ये उपनिवेश इँग्लेण्ड का व्यापार उन्नत करने के लिए आबाद किये जाते हैं। वे इन उपनिवेशों पर अपना कोई अधिकार नहीं समझते थे और ऐसे क़ानून बनाते थे कि जिनसे पारस्पारिक व्यापार के द्वारा इँग्लेण्ड का लाभ हो। उदाहरणार्थ, उपनिवेश अपनी उपज—तम्बाकू, चावल, नील आदि—इँग्लेण्ड को छोड़कर अन्य किसी देश को नहीं भेज सकते थे और इँग्लेण्ड के सिवा वे किसी अन्य देश से एक गज़ भी वस्त्र नहीं ख़रीद सकते थे। इन्हें सारा व्यापार अँगरेज़-व्यापारियों के ही साथ करना पड़ता था। ये अपने देश में किसी प्रकार का कोई कारख़ाना नहीं चला सकते थे क्योंकि इससे अँगरेज़ी कारख़ानों की उपज की खपत नहीं हो सकती थी। जैसे वे ऊन तो पैदा कर सकते थे, लेकिन उसका कपड़ा बनवाने के लिए उन्हें ऊन इँग्लेण्ड में भेजना पड़ती थी। इसी प्रकार अँगरेज़ी कृषकों के रक्षार्थ ऐसे क़ानून बनाये गये, जिनके अनुसार अमरीका से इँग्लेण्ड जानेवाले अन्न पर कर लगाया गया, जिससे अमरीकावासी अँगरेज़-कृषकों की बराबरी न कर सकें।

इन क़ानूनों के बनाने का उद्देश यह था कि हर प्रकार से

इँग्लेण्ड के व्यापार को उन्नत किया जाय। ये क़ानून चार्लस द्वितीय के समय से बनने आरम्भ हुए, किन्तु उस समय इनका प्रयोग इतनी सख़्ती से नहीं हो सका। क्योंकि एक तो अमरीका में इँग्लेण्ड का अधिकार अधिक नहीं हुआ था और दूसरे, उस समय तक फ़्रांसीसियों का अमरीका में काफ़ी ज़ोर था। परन्तु १७५६ से १७६३ तक इँग्लेण्ड और फ़्रांस में सप्तवर्षीय युद्ध होता रहा, जिसमें फ़्रांस की पराजय हुई और अमरीका में फ़्रांस की शक्ति का अन्त हो गया। उसके पश्चात् शनैः शनैः अमरीका में इँग्लेण्ड की शक्ति बढ़ती गई। अतएव १७६१ में इन क़ानूनों को सख़्ती से वर्तना आरम्भ हो गया।

इँग्लेण्ड ने अमरीका में फ़्रांस के साथ युद्ध करने में बहुत सा धन ख़र्च किया था। पार्लमेण्ट का कहना था कि इन युद्धों से अमरीका को लाभ हुआ है, इसलिए पार्लमेण्ट को अधिकार है कि युद्ध का कुछ ख़र्च उससे वसूल कर ले। इसके साथ ही अमरीका की रक्षा के लिए भी पार्लमेण्ट अमरीका से कुछ रुपया वसूल करना चाहती थी।

इँग्लेण्ड और अमरीका में परस्पर कलह

सन् १७६५ में अँगरेज़ी पार्लमेण्ट ने "स्टेम्प-एक्ट" पास किया, जिसके अनुसार अमरीका में क़ानूनी दस्तावेज़

और तिजारती हुण्डियाँ केवल एक विशेष प्रकार के सरकारी काग़ज़ों पर ही लिखी जा सकती थीं। समाचार-पत्र भी इन्हीं काग़ज़ों पर प्रकाशित हो सकते थे। अमरीकावासियों को यह एक निराला क़ानून मालूम हुआ।

अमरीका में इस समय तेरह राज्य थे और हर एक राज्य में एक कौंसिल थी। अमरीका के विचारानुसार केवल इन्हीं कौंसिलों को लोगों से कर वसूल करने का अधिकार था। इँग्लेण्ड में यह एक पक्का सिद्धान्त बन गया था कि लोगों पर कर लगाने का अधिकार केवल उनके प्रतिनिधियों को ही हो सकता है। अमरीकावासी भी इसी बात पर ज़ोर देते थे। वे अँगरेज़ी पार्लमेण्ट में अपने प्रतिनिधि नहीं भेजते थे, इसलिए पार्लमेण्ट के कोई अधिकार नहीं था कि वह उन पर किसी प्रकार का कर लगाये। इसके अतिरिक्त वे यह भी नहीं चाहते थे कि उनके देश में इँग्लेण्ड के अधीन कोई सेना रक्खी जाय। क्योंकि उन्हें भय था कि इँग्लेण्ड आवश्यकता पड़ने पर उसे अमरीका के ही विरुद्ध उपयोग में लायगा और इस प्रकार उनकी स्वतन्त्रता कुचलने के लिए इँग्लेण्ड के पास बहुत सी शक्ति हो जायगी।

अमरीकावासियों ने इन क़ानूनों के विरुद्ध बहुत सी सभायें कीं और उनमें अपना विरोध प्रकट किया। तदनन्तर जब इँग्लेण्ड से छपे हुए काग़ज़ों के बहुत से सन्दूक़ आये तब उन्होंने कई सन्दूक़ खोलकर जला दिये। वकीलों ने यह

निश्चय किया कि यदि किसी काग़ज़ पर अँगरेज़ी छाप नहीं लगी होगी तो वे उसे नियम-विरुद्ध नहीं ठहरायँगे। पत्र-प्रकाशकों ने बिना छापवाले काग़ज़ों पर ही समाचार-पत्र प्रकाशित करके बेचना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार अमरीका को एकमत देखकर इँग्लेण्ड को हार स्वीकार करनी पड़ी और पार्लमेण्ट ने १७६६ में "स्टेम्प-एक्ट" हटा लिया।

परन्तु यह अवस्था बहुत दिन नहीं चली। इँग्लेण्ड के राजा के लिए यह बात असह्य थी। वह अमरीका पर शासन करना चाहता था। इसलिए उसके आग्रह से १७६७ में पार्लमेण्ट ने एक नया क़ानून पास किया, जिसके अनुसार अमरीका में जानेवाले माल, जैसे चाय, काँच का सामान, काग़ज़ आदि, पर कर लगाया गया। और इसके द्वारा जो धन प्राप्त होता था, उससे इँग्लेण्ड की ओर से अमरीका में नियुक्त हुए गवर्नरों, न्यायाधीशों तथा अन्य ऐसे ही अफ़सरों को वेतन दिये जाते थे, जिससे ये अफ़सर कौंसिलों से मुक्त होकर पार्लमेण्ट के अधीन हो जायँ। इसके साथ इन रुपयों से पार्लमेण्ट के अधीन एक अँगरेज़ी सेना भी रक्खी जाती थी, जिसे इँग्लेण्ड जब चाहता अमरीका के विरुद्ध काम में ला सकता था। इस प्रकार इँग्लेण्ड को अमरीकावासियों पर पूर्ण अधिकार हो जाता।

अमरीकावासी ये बातें समझते थे। उन्होंने इनका

विरोध करने का निश्चय करके ऐसी सभायें बनाईं, जिनमें लोगों से कर अदा न करने की प्रतिज्ञा ली जाती थी। मेसाचुसेट्स-राज्य ने अन्य राज्यों के नाम एक गश्ती चिट्ठी भेजी, जिसमें उनसे अनुरोध किया गया था कि वे इस अँगरेज़ी क़ानून का विरोध करें। राजा जार्ज तृतीय को मेसाचुसेट्स की इस कार्रवाई पर बड़ा क्रोध आया और उसने मेसाचुसेट्स के गवर्नर को आदेश दिया कि वह कौंसिल-द्वारा गश्ती चिट्ठी को रद्द करवाये और यदि कौंसिल ऐसा न करे तो उसका विसर्जन कर दे। कौंसिल की अस्वीकृति पर वह तथा अन्य कई कौंसिलें, जिन्होंने उसके साथ सहानुभूति प्रकट की थी, विसर्जित कर दी गईं। इसी समय से अमरीका और इँग्लेण्ड का पारस्परिक सम्बन्ध बिगड़ना शुरू हुआ। इँग्लेण्ड की पार्लमेण्ट इस बात पर ज़ोर देती थी कि उसे अपने इच्छानुसार अमरीका पर कर लगाने का अधिकार है। अमरीका इसे स्वीकार नहीं करता था।

फल यह हुआ कि जार्ज तृतीय ने १७६८ में अमरीका में क़ानून को स्वीकार कराने के लिए इँग्लेण्ड से एक सेना भेजी। १७७० में बॉस्टन में झगड़ा हो गया, जिसमें अँगरेज़ी सैनिकों ने अमरीकन समूह पर गोलियाँ चलाईं। कई अमरीकन—घायल हुए और पाँच मारे गये। इस घटना से अमरीकावासियों में बड़ा जोश फैल गया। लोगों ने अँगरेज़ी

बॉस्टन में फ़साद
(१७७०)

सेना के इस अत्याचार के विरुद्ध सभायें कीं, जिनमें गवर्नर ने अँगरेज़ी-सैनिकों को नगर से निकालने का आग्रह किया। उनका ज़ोर बढ़ने से सैनिकों को बलात् निकलना पड़ा।

इस घटना का समाचार जब इँग्लेण्ड पहुँचा तब राजा बहुत घबराया। अमरीकावासियों ने अँगरेज़ी माल को बहिष्कार करके, उसे अपने बन्दरों में आने की अनुज्ञा न देकर अँगरेज़ी व्यापार को बड़ा धक्का पहुँचाया। अन्त में अमरीका का सम्मिलित प्रयत्न सफल हुआ। १७७० के आरम्भ में पार्लमेण्ट को अमरीका से कर हटा लेने पड़े।

परन्तु इँग्लेण्ड के राजा के दिमाग़ में अभी तक घमण्ड समाया हुआ था। वह इस बात से जल-भुन गया। उसने पार्लमेण्ट की कार्रवाई से अपनी मानहानि समझी। इसलिए उसने इस बात पर ज़ोर दिया कि चाय पर कर जारी रक्खा जाय, जिससे उसका प्रभाव पूर्ववत् बना रहे। वह इसी सिद्धान्त पर आग्रह करता था कि इँग्लेण्ड को अपने इच्छानुसार अमरीका पर कर लगाने का अधिकार है। शक्ति में यह विशेषता होती है कि अभिमान और घमण्ड उसके साथ ही साथ रहते हैं। संसार के इतिहास में ऐसे अनेक युद्ध हुए हैं, जिनका कारण केवल शक्तिशाली राज्यों का झूठा घमण्ड था। इँग्लेण्डवासी भी अपने प्रभुत्व को पूर्ववत् अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए बड़ा ज़ोर देते थे।

पार्लमेण्ट ने जब चाय पर कर स्थिर रखने का क़ानून पास किया तब अमरीका में एक तहलका मच गया। लोगों ने चुङ्गीघरों पर हमले किये और वहाँ के अफ़सरों को मार-पीट दिया। कई का मुख काला करके उनका बड़ा अनादर किया गया। कई की कृत्रिम मूर्त्तियाँ बनाकर फाँसी पर लटकाई गईं। अँगरेज़ी राज्य के हितैषियों को बड़ा कष्ट पहुँचाया गया। वे बड़े हैरान किये गये। जिन व्यापारियों ने इँग्लेण्ड से माल मँगवाया था वे अपना माल वापस भेजने या जला देने पर विवश किये गये। साधारण बैठकें करके इँग्लेण्ड के विरुद्ध खुलमखुल्ला राजद्रोह फैलाया गया।

चाय के जहाज़ों का मामला (१७७३)

चाय के लिए अमरीका इँग्लेण्ड पर आश्रित था। क़ानून के अनुसार वह इँग्लेण्ड के अतिरिक्त अन्य किसी देश से चाय नहीं मँगवा सकता था। परन्तु उन्होंने इँग्लेण्ड को कर के नाम से एक कौड़ी भी न देने का निश्चय कर लिया था, इसलिए वे चाय के बिना ही गुज़र करने के लिए तैयार हो गये।

सन् १७७३ में इँग्लेण्ड ने चाय के कुछ जहाज़ अमरीका भिजवाये। यह उसकी एक चाल थी। चाय ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी की थी, जो भारतवर्ष से लाई जाती थी। इँग्लेण्ड में इस पर महसूल लगाया जाता था। अब यह महसूल हटा दिया गया और इस प्रकार ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के

व्यापारी इस चाय को बड़े सस्ते भाव से बेच सकते थे। यदि अमरीकावासी किसी अन्य देश से गुप्त-रूप से भी चाय मँगवाते तो भी उन्हें वह चाय इतनी सस्ती न पड़ती।

चाय के जहाज़ों ने बॉस्टन के बन्दर में पहुँच कर लङ्गर डाल दिया। उस समय यह क़ानून था कि जहाज़ के एक बार बन्दर के अन्दर प्रविष्ट होने के पश्चात् यदि उसका माल न लिया जावे तो महसूल दिये बिना वह वापिस नहीं किया जा सकता था, साथ ही महसूल के लिए माल को तट पर लाना आवश्यक था। यदि बीस दिन के अन्दर व्यापारी स्वयं माल तट पर न लाते तो चुङ्गी के अफ़सरों को यह अधिकार होता था कि वे बलात् माल को निकालकर तट पर लाकर महसूल वसूल कर लें।

बॉस्टन के नागरिकों ने एक सभा करके यह निश्चय किया कि हम चाय को तट पर ही नहीं आने देंगे, क्योंकि यदि एक बार चाय तट पर आ जाती तो वहाँ से व्यापारी उसे आसानी से ले जा सकते और उन्हें रोकना कठिन हो जाता। बॉस्टन के पास अपने राज्य की सहायता के अतिरिक्त अन्य राज्यों की सहानुभूति भी थी। उन्होंने जहाज़ों के स्वामी को चाय उतारे बिना जहाज़ों को वापस ले जाने के लिए प्रेरित किया। वह तो मान गया किन्तु गवर्नर ने उसे क़ानून-विरुद्ध बताया। इस पर लोग बड़े क्रोध और आवेश में आये। उन्होंने सोचा कि एकाध दिन के बाद अँगरेज़ी अफ़सर चाय को उतरवा

लेंगे और फिर उनका ज़ोर नहीं चलेगा। इसलिए कुछ नागरिक रेड-इण्डियनों का वेष बदलकर जहाज़ों में गये और सन्दूकों को तोड़कर चाय को समुद्र की भेंट कर दिया।

अमरीका के इतिहास ही में नहीं, वरन् संसार के इतिहास में यह घटना बड़ी महत्त्व-पूर्ण है। चाय के सन्दूकों को समुद्र में डाल कर बॉस्टन के नागरिकों ने इँग्लेण्ड के शासन का विरोध किया। बॉस्टन के साथ समस्त अमरीका की सहानुभूति थी। वे उनकी सहायता करने को तैयार थे। इसलिए यह विरोध केवल बॉस्टन की ओर से ही नहीं, प्रत्युत समस्त अमरीका की ओर से किया गया। वास्तव में इस घटना से अमरीका और इँग्लेण्ड के बीच युद्ध ही आरम्भ हो गया।

जब इस घटना का समाचार इँग्लेण्ड में पहुँचा तब वहाँ सनसनी फैल गई। यह स्वाभाविक बात थी कि यदि इस समय इँग्लेण्ड के शासक कुछ न करते तो उसका यह अर्थ होता कि वे पराजित हो गये। बॉस्टन का चाय फेंकना इँग्लेण्ड के शासन का खुल्लम-खुल्ला विरोध था।

पार्लमेण्ट ने यह निश्चय किया कि अमरीका की इस धृष्टता के लिए बॉस्टनवालों को दण्ड दिया जाय। एप्रिल १७७४ में

अमरीका के विरुद्ध दो क़ानून और उनका विरोध

पार्लमेण्ट ने "बॉस्टन पोर्ट-बिल" बनाकर बॉस्टन का बन्दर उस समय तक के लिए बन्द कर दिया, जब तक बॉस्टन चाय फेंकने का हरजाना

न दे दे। इस प्रकार बॉस्टन का बन्दर बन्द हो जाने से वहाँ के लोगों को किसी प्रकार का माल नहीं पहुँच सकता था और वे हार मान सकते थे। एक दूसरे क़ानून के अनुसार मेसाचुसेट्स का अधिकारपत्र ('चार्टर') रद्द कर दिया गया और वहाँ पर एक सैनिक गवर्नर नियत किया गया, जिसे सब अधिकार दे दिये गये। इस प्रकार इँग्लेण्ड की पार्लमेण्ट का यह विचार था कि अमरीका उसकी अधीनता स्वीकार कर लेगा।

परन्तु अमरीका को पार्लमेण्ट न पहचान सकी। उन्होंने दफ़्तर और कचहरियाँ बन्द कर दीं, सरकारी कोष में रुपया देना बन्द कर दिया और नये गवर्नर के साथ हर प्रकार का सम्बन्ध तोड़कर उसे निकम्मा बना दिया। अन्य राज्यों ने मेसाचुसेट्स के साथ बड़ी सहानुभूति प्रकट की। उन्हें डर हुआ कि कहीं मेसाचुसेट्स के समान उनके भी अधिकार-पत्र न छीन लिये जायँ, इसलिए प्रत्येक राज्य ने अपनी-अपनी समितियाँ बनाईं। ये समितियाँ तात्कालिक घटनाओं पर विचार करने के पश्चात् लोगों को उचित परामर्श देती थीं।

जब पार्लमेण्ट ने अन्य निर्दयता-पूर्ण क़ानून पास किये तब सब समितियाँ परस्पर मिलकर काम करने के लिए एक

सार्वदेशिक "कांग्रेस" का पहला अधिवेशन (१७७४)

सार्वदेशिक "काँग्रेस" में सम्मिलित होगईं। इसके लिए प्रत्येक राज्य ने अपना-अपना प्रतिनिधि भेजा। १७७४ में फ़िलडेलफ़िया-नगर

में इसका प्रथम अधिवेशन हुआ, जिसके द्वारा अमरीका ने संसार को यह बतला दिया कि अमरीकावासी परस्पर मिले हुए हैं और शत्रुओं का विरोध करने के लिए एक हैं।

आरम्भ में काँग्रेस के बहुत थोड़े अधिकार थे। उसे कर लगाने या सेना के लिए भरती करने का अधिकार नहीं था। वह केवल अपनी आवश्यकतायें राज्यों को बता सकती थी। फिर भी काँग्रेस ने अमरीका में एक जातीय पद प्राप्त कर लिया। उसने अपनी एक सेना भी तैयार कर ली जिससे आवश्यकता पड़ने पर वह इँग्लेण्ड का विरोध कर सके।

राज्यों के पारस्परिक ऐक्य के कारण

यह बात विचारणीय है कि इतनी छोटी सी बात से इतना बड़ा झगड़ा क्योंकर होगया। वास्तव में चाय का मामला साधारण न था। झगड़ा एक सिद्धान्त के कारण था। वह यह कि जाति या राज्य ("स्टेट") पर कर लगाने का अधिकार केवल उसके प्रतिनिधियों को ही हो सकता है। इसी सिद्धान्त के अनुसार अमरीकावासी चाय-कर के विरुद्ध थे। किन्तु इसके साथ ही उन्हें यह सोच भी था कि यदि उन्होंने कर का विरोध किया तो धीरे-धीरे इँग्लेण्ड उन पर और कर लगाता जायगा और इस प्रकार कुछ समय के अनन्तर वे इँग्लेण्ड के अधीन हो जायँगे। मेसाचुसेट्स के अधिकार-पत्र के छिन जाने से अन्य राज्यों को भी डर हुआ। इसलिए इसी समय से उनमें

पारस्परिक ऐक्य बढ़ना आरम्भ होगया। इसका दूसरा कारण यह भी था कि सभी राज्यों को इँग्लेण्ड के विरुद्ध कोई न कोई शिकायत थी।

मेसाचुसेट्स ने अपनी औपनिवेशिक काँग्रेस बनाकर उसके सभापति-पद पर जाह्न हेनकॉक-नामक एक व्यापारी को नियुक्त किया। उन्होंने अपने राज्य के लिए सेना और युद्ध-सामग्री भी एकत्र करना आरम्भ कर दी। १७७५ में गवर्नर को इँग्लेण्ड से यह आज्ञा मिली कि जाह्न हेनकॉक और सेमुएल एडम्स, जो एक सार्वजनिक भाव का नवयुवक था, गिरफ़ार करके इँग्लेण्ड भेज दिये जायँ, जिससे उन पर अभियोग चलाये जायँ। गवर्नर ने दोनों नेताओं को पकड़ने के लिए आठ सौ मनुष्य रवाना किये और उन्हें आज्ञा दी कि उनको पकड़ने के पश्चात् युद्ध-सामग्री पर भी अपना स्वत्व कर लें।

इँग्लेण्ड और अमरीका में युद्ध (१७७६)

गुप्त-रूप से इस आज्ञा की सूचना एक अमरीकन नवयुवक को भी मिल गई। उसने घोड़े पर चढ़कर समस्त नगर में इसकी घोषणा कर दी। सब लोग युद्ध के लिए तैयार होगये। अँगरेज़ी-सेना वहाँ पहुँची तो उसे सशस्त्र सेना का सामना करना पड़ा। यद्यपि युद्ध में सात अमरीकन मारे गये तथापि अन्त में अँगरेज़ी सेना पराजित हुई। बॉस्टन से लौटते समय लोगों ने तीन सौ अँगरेज़ मार डाले। इस घटना

से समस्त अमरीका में जोश फैल गया और बॉस्टन में बाहर के बहुत से मनुष्य इकट्ठे होगये।

अमरीकन सैनिकों ने टिकॅनडेरोगा और क्रौन पॉइण्ट-नामक दो क़िलों पर आक्रमण करके उन्हें अपने अधीन कर लिया। उसी दिन फ़िलडेलफ़िया में सार्वदेशिक कॉंग्रेस का दूसरा अधिवेशन हुआ। जाह्न हेनकॉक उसका सभापति बनाया गया। कॉंग्रेस ने बॉस्टन-सेना का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया और उसे बढ़ाने के लिए अन्य स्थानों से सैनिक भर्ती करना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार यह सेना अमरीका की जातीय सेना बन गई। कॉंग्रेस ने जार्ज वाशिङ्गटन को इस सेना का सेनानायक नियुक्त किया।

इधर ये कार्रवाइयाँ हो रही थीं, उधर इँग्लेण्ड से कुछ और सेना अमरीका में भेजी गई। उस समय अमरीका में लगभग दस हज़ार अँगरेज़ी सैनिक थे। नई सेना के साथ विलियम-हो सेनानायक बनकर आया। उसने बॉस्टन के पास की बङ्कर-हिल्स-नामक एक पहाड़ी पर चढ़ाई करके उसे अपने अधीन कर लिया। अमरीकन सेना ने उसको महत्त्वपूर्ण समझकर रात में धावा करके उसे अँगरेज़ों से छीन लिया। हो ने फिर दो बार घेरा डाला किन्तु दोनों बार उसे पीछे हटना पड़ा। तीसरे धावे में यद्यपि अँगरेज़ सफल होगये परन्तु नैतिक विजय अमरीकावासियों की ही हुई।

अँगरेज़ों को मालूम होगया कि अमरीकावासियों में भी

कुछ बल है। वे समझ गये कि यदि अमरीका ने सभी स्थलों में ऐसा ही मोर्चा लिया तो अन्त में उन्हें पराजय का मुँह देखना पड़ेगा। बड़ी आश्चर्यजनक बात तो यह थी कि युद्ध का अनुभव न होते हुए भी अमरीकावासियों ने अँगरेज़ों के साथ ऐसा युद्ध किया। इससे तो यही समझना चाहिए कि उनमें अपने देश को स्वतन्त्र करने के प्रबल भाव भड़क रहे थे। इसी से उन्हें उत्तेजना मिलती थी।

सन् १७७५ में काँग्रेस ने इँग्लेण्ड के राजा को एक प्रार्थना-पत्र भेजा, जिसमें सारी घटनाओं का उल्लेख करके सन्धि के लिए प्रार्थना की गई। अमरीकावासी चाहते थे कि यदि राजा अपनी ज़िद छोड़ दे तो युद्ध बन्द कर दिया जाय। परन्तु राजा के सिर में तो घमण्ड भरा था। उसने अपनी राजद्रोही प्रजा की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया और युद्ध के लिए तैयारी करना आरम्भ कर दी।

उसने बीस हज़ार सैनिक तैयार किये। उधर अमरीकन सेना-नायक ने मार्च १७७६ में अँगरेज़ी सेना पर आक्रमण करके उसे बॉस्टन-नगर से निकाल दिया। अँगरेज़-सेनानायक ने वहाँ से हटकर हेलीफ़ेक्स में डेरे डाले और वहाँ से न्यूयार्क-नगर पर स्वत्व करने की तैयारियाँ करने लगा। वाशिङ्गटन भी न्यूयार्क की ओर बढ़ा और नगर को बचाने के उपाय सोचने लगा।

इसी समय अमरीका के इतिहास में सबसे महत्त्व-पूर्ण

घटना हुई। २ जुलाई १७७६ को तीसरी सार्वदेशिक कांग्रेस में यह प्रस्ताव उपस्थित और स्वीकृत किया गया—"ये संयुक्त-राज्य स्वतन्त्र हैं, अतएव इँग्लेण्ड से इनका हर प्रकार का राजनैतिक सम्बन्ध तोड़ा जाता है।" ४ जुलाई को काँग्रेस ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी और एक विज्ञापन प्रकाशित किया, जो संसार के इतिहास में अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है। इस विज्ञापन में सबसे पहले मानवी समता के सिद्धान्त पर ज़ोर दिया गया कि प्रत्येक मनुष्य को स्वतन्त्रता का अधिकार प्राप्त है। उसके बाद इँग्लेण्ड के राजा के अत्याचारों एवं अन्याय-पूर्ण कार्रवाइयों का और तत्पश्चात् अमरीका की स्वतन्त्रता का उल्लेख किया गया।

स्वतन्त्रता की घोषणा
(१७७६)

ऊपर कहा गया है कि अँगरेज़ी सेना के आक्रमण से बचाने के लिए वाशिङ्गटन न्यूयार्क गया हुआ था। अगस्त १७७६ में सेना-नायक हो ने न्यूयार्क पर धावा किया, इसमें वाशिङ्गटन की पराजय हुई। लेकिन हो के आलस्य से लाभ उठाकर वाशिङ्गटन ने दो स्थानों पर अँगरेज़ी सेना को पराजित किया। इन धावों से अमरीकन सेना का उत्साह बढ़ गया और तभी से योरुपीय देशों में उनकी वीरता का डङ्का बजने लगा। अन्त में अँगरेज़ी सेनानायक में भी जोश आया। वह ब्रेण्डीवाईन के रण-क्षेत्र में वाशिङ्गटन को पराजित करके फ़िडेलफ़िया-नगर में प्रविष्ट

स्वतन्त्र-युद्ध
(१७७६-१७८३)

हो गया। वाशिङ्गटन ने भी अँगरेज़ी सेना पर एक छापा मारा। यद्यपि वह उसमें असफल हुआ तथापि उसने अँगरेज़ों के साथ ऐसा युद्ध किया कि उनके छक्के छूट गये। अँगरेज़ी सेनानायक विलियम हो ने जब देखा कि उसे जय मिलने की आशा नहीं है तब वह इँग्लेण्ड चला गया। उसके स्थान में सर हेनरी क्लिनटन जनरल नियुक्त हुआ।

शरद्-ऋतु बिताने के लिए वाशिङ्गटन सेना-सहित वेलीफ़ॉर्ज गया। वहाँ उसकी सेना ने बड़े कष्ट उठाये, क्योंकि काँग्रेस की ओर से उनका कुछ अच्छा प्रबन्ध नहीं हुआ था। लगातार कई दिनों तक उन्हें पशु-भोजन और रोटी के बिना रहना पड़ा। पर्याप्त वस्त्र न होने के कारण उन्हें कई सरदी की रातें आग के पास बैठ कर व्यतीत करनी पड़ीं। उनके पाँव में बूट भी न थे इसलिए बरफ़ पर उनके पाद-चिह्न रक्त से रँग जाते थे। परन्तु इन नरसिंहों ने ये सब कष्ट स्वदेश की स्वतन्त्रता के लिए चुपचाप सहन कर लिये और उलहना का एक शब्द भी मुँह से न निकाला।

इन्हीं दिनों उन्होंने सैनिक शिक्षा प्राप्त की और शत्रु का सामना करने के लिए पहले से अधिक तैयार होगये। उनके अन्दर साहस, देश-प्रेम और वीरता का भाव वाशिङ्गटन ने पूर्ववत् ही बनाये रक्खा। उसने घोर प्रयत्न और सतत परिश्रम करके और विरोध की परवा न करते हुए अपने

आपको और अपनी सेना को सुदृढ़ बना रक्खा; भारी आपत्तियों में भी उसका मन विचलित न हुआ।

अमरीका में सफलता होते न देखकर अँगरेज़ों ने अमरीका के उत्तर अर्थात् कनाडा से संयुक्त-राज्यों पर आक्रमण करने का निश्चय किया। कनाडा से बरगवाइन-नामक एक जनरल को और अमरीका से जनरल क्लिनटन को अपनी-अपनी सेनाओं के साथ एक निश्चित स्थान पर पहुँचना था। अँगरेज़ों के दुर्भाग्य से क्लिनटन को कनाडावासी सेना से मिलने की सूचना देर से मिली। इसलिए बरगवाइन को पराजित होकर १६ अक्तूबर १७७७ को हथियार डाल देने पड़े। उधर मानमॉथ के के रणक्षेत्र पर वाशिङ्गटन ने क्लिनटन के दाँत खट्टे किये।

उत्तर तथा दक्षिण दोनों में इँग्लेण्ड को असफलता

बरगवाइन की पराजय का परिणाम अमरीका के लिए बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ। इस घटना के पश्चात् १७७८ में फ़्रांस अमरीका के साथ मिल गया। जब से इँग्लेण्ड ने फ़्रांस को अमरीका से निकाल दिया था। तब से वह अमरीका में इँग्लेण्ड के विरुद्ध प्रयत्न करता रहता था। अब फ़्रांस ने यह सुयोग पाकर अँगरेज़ों के विरुद्ध अमरीका से सन्धि कर ली, जिससे अमरीका को युद्ध-सामग्री एवं मनुष्यों की बड़ी सहायता प्राप्त हुई। इँग्लेण्ड को विपद्ग्रस्त देखकर उसके अन्य शत्रु भी उसके विरुद्ध उठ खड़े हुए। स्पेन और हालेण्ड दोनों ने

इँग्लेण्ड के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस प्रकार अमरीका के सौभाग्य से इँग्लेण्ड पर एक साथ अनेक विपत्तियाँ आपड़ीं, जिनके कारण उसका सफल होना असम्भव हो गया।

उत्तर में जय की आशा न रहने पर भी अँगरेजों ने दक्षिण अमरीका को अपने स्वत्व में करना चाहा। क्योंकि दक्षिण के लोग इँग्लेण्ड के इतने विरुद्ध नहीं थे जितने कि उत्तर के। क्लिनटन की अँगरेज़ी सेना ने दक्षिण की ओर मुँह फेरा। १७८० में उसने एक प्रसिद्ध नगर चार्लेसटन पर स्वत्व प्राप्त कर लिया। पर इतने में क्लिनटन एक आवश्यक कार्य के लिए उत्तर में बुला लिया गया। इसलिए वह जनरल कार्नवालिस को दक्षिण की सारी सेना का चार्ज दे गया। कार्नवालिस ने केमडेन के रणक्षेत्र में अमरीका को पराजित किया, तदनन्तर जनरल ग्रीन पर, जो वाशिङ्गटन के पश्चात् अमरीकन सेना का सेनानायक बना था, विजय पाई। किन्तु जनवरी १७८१ में कऊपेन्स में अँगरेज़ों को फिर पराजय का मुख देखना पड़ा।

उत्तर में अँगरेज़ों की बड़ी नाजुक हालत हो गई थी। उन्हें अपने हाथ से न्यूयार्क के निकल जाने का भय था, इसलिए क्लिनटन ने कार्नवालिस को भी उत्तर में बुला भेजा। कार्नवालिस ने विरजिनिया के यॉर्कटाऊन-नगर पर स्वत्व प्राप्त करके अपनी सेना वहाँ पर खड़ी कर दी। यह स्थान समुद्र के भीतर चला गया था। यदि समुद्र पर अँगरेज़ों का ज़ोर होता तो यह स्थान बड़ा अच्छा था। किन्तु इँग्लेण्ड के विरुद्ध फ्रांस, स्पेन

और हालैण्ड, इन तीनों देशों के मिल जाने से समुद्र में उसका ज़ोर बिलकुल कम होगया था। इस प्रकार वह एक जाल में फँस सा गया। यदि शत्रु उसके विरोध में आ जाता तो कार्नवालिस को अपनी सेना निकालने के लिए भी राह न मिलती। वाशिङ्गटन इसे सुयोग समझ चटपट अपनी सेना एकत्र करके यार्कटाऊन की ओर बढ़ा। कार्नवालिस ने पराजय खाकर १९ अक्तूबर १७८१ को हथियार डाल दिये।

कार्नवालिस की पराजय ने अमरीका को विजय-माला पहना दी। इँग्लेण्ड का बलवान् शत्रुओं से सामना हुआ था, इसलिए वह अमरीका के विरुद्ध अपना पूरा ज़ोर नहीं लगा सकता था। परिणाम—स्वरूप अमरीका पूर्णरूप से स्वतन्त्र होगया।

परन्तु अमरीका तब तक इँग्लेण्ड के साथ कोई सन्धि नहीं कर सकता था जब तक फ्रांस भी इस बात पर राजी न हो जाता, क्योंकि फ्रांस और अमरीका के बीच में इसी प्रकार की एक सन्धि हुई थी। यार्कटाऊन के युद्ध के पश्चात् इँग्लेण्ड लगभग दो वर्ष तक फ्रांस के साथ युद्ध करता रहा। अन्त को ३ सितम्बर १७८३ को फ्रांस की राजधानी पेरिस में सन्धि हुई, जिसमें अमरीका की स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली गई।

पेरिस की सन्धि (१७८३)

उस समय से अमरीका सदा के लिए स्वतन्त्र हो गया।

आरम्भ में अमरीकन राजनीतिज्ञों को देश को एक एवं शक्ति-सम्पन्न बनाने के मार्ग में बड़ी रुकावटें उपस्थित हुईं। किन्तु वे साहस और धैर्य के साथ अपने कार्य पर डटे रहे। अन्त में उनका परिश्रम फलीभूत हुआ और अमरीका संसार में सर्वोच्च पद पर पहुँचने के योग्य होगया।

पेरिस की सन्धि के अनन्तर अमरीका के राजनीतिज्ञों के सामने जो कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं, उनमें सबसे बड़ी यह थी कि प्रत्येक राज्य केवल अपने आपको सुदृढ़ बनाने में लगा हुआ था; समस्त देश की ओर कोई ध्यान नहीं देता था। इन राज्यों में स्थायी ऐक्य नहीं था। जो थोड़ा-बहुत ऐक्य युद्धकाल में होगया था सन्धि के पश्चात् वह भी कम होने लगा। परन्तु वाशिङ्गटन तथा अन्य राजनीतिज्ञों के परिश्रम से, जिन्होंने अपना सर्वस्व स्वदेश पर बलिदान कर दिया था, देश की अवस्था शनैः शनैः सुधरने लगी।

विधान-स्थिरीकरण ("कानस्टीट्यूशन कॉनवेनशन") (१७८७)

अन्त में १४ मई १७८७ को फ़िलडेलफ़िया-नगर में सभी राज्यों के प्रतिनिधि वाशिङ्गटन के सभापतित्व में एकत्र हुए। उन्होंने लगातार चार मास तक बैठकर शासन-विधान निर्माण किया। इसके अनुसार एक प्रतिनिधि-सभा ("कौंसिल आव् स्टेट") बनाई गई, जिसके सदस्य समस्त देश से चुने जाते थे। क्योंकि यह सभा समस्त देश की थी, इसलिए इसे

समस्त देश पर कर लगाने का अधिकार था। इस प्रकार ऐक्य-मार्ग की सबसे बड़ी रुकावट दूर होगई। जब सब लोग एक ही केन्द्रस्थ शक्ति को कर देने लगते हैं तब स्वभावतः उनमें ऐक्य चिरस्थायी हो जाता है।

प्रतिनिधि-सभा के अतिरिक्त एक दूसरी कौंसिल "सेनेट" बनाई गई; इसमें प्रत्येक राज्य से बराबर बराबर सदस्य चुने जाते थे। इन दोनों सभाओं को मिलाकर "कॉंग्रेस" नाम दिया गया। इस प्रकार कॉंग्रेस का व्यापार, मुद्रा, निर्यात आदि पर पूर्ण अधिकार हो गया। राज्यों में परस्पर जो व्यापार होता था, उस पर से महसूल हटा लिये गये। इससे राज्यों का पृथक्त्व भाव और भी कम हो गया। कॉंग्रेस का एक राष्ट्रपति नियत किया गया, उसे कई अधिकार दिये गये और शासन-चालन का कार्य अधिकतर उसी को सौंप दिया गया। सभी राज्यों में छोटी और बड़ी अदालतें ("सूप्रीम" तथा "इनफ़ीरियर कोर्ट्स") स्थापित की गईं। सबके ऊपर पुनर्विचार समिति ("रीविजन कौंसिल") बनाई गई, जिसका काम यह देखना होता था कि विभिन्न कौंसिल तथा कॉंग्रेस के निर्णीत क़ानून एक दूसरे के अनुकूल हैं अथवा नहीं। इसकी अनुमति के बिना कोई क़ानून पास नहीं हो सकता था। इस समिति की नियुक्ति का परिणाम यह हुआ कि विभिन्न राज्यों के निर्णीत क़ानून विरोधात्मक नहीं रह गये। इस प्रकार ऐक्य स्थायी होगया।

३० एप्रिल १७८९ को संयुक्त-राज्यों ने वाशिङ्गटन को अमरीका की काँग्रेस का प्रथम राष्ट्रपति नियुक्त किया। जिस मनुष्य ने अपना समस्त जीवन स्वदेश के लिए परिश्रम एवं प्रयत्न करने में लगा दिया था उसे अपना पथप्रदर्शक बनाकर अमरीकावासियों ने उसके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की।

अमरीका का प्रथम राष्ट्रपति (१७८९)

दसवाँ अध्याय

फ्रांस की राज्य-क्रान्ति

फ्रांस की राज्यक्रान्ति वर्तमान युग के इतिहास की सबसे पहली और सबसे बड़ी क्रान्ति है। पुराने समाज को नये समाज के रूप में परिवर्तित करने में इसका सबसे बड़ा भाग है। चाहे यह अपने तात्कालिक उद्देश्य में सफल न भी हुई हो, फिर भी इसने अपने सिद्धान्तों को भू-पट पर रक्त से इस प्रकार लिख दिया कि वे कभी मिट नहीं सकते। जो सिद्धान्त वर्तमान संसार को उन्नति में अग्रसर कर रहे हैं उन्हीं सिद्धान्तों के लिए फ्रांस की राज्य-क्रान्ति हुई और उन्हीं की पुष्टि के लिए फ्रांसीसियों ने युद्ध करके उन्हें सदा के लिए संसार के सामने रख दिया।

राज्यक्रान्ति के सिद्धान्त

फ्रांसवासी बड़े जोशीले और कुशाग्र-बुद्धि होते हैं। उनमें वाक्-चातुर्य भी है। वे सिद्धान्तों के लिए लड़ने-मरने पर तैयार हो जाते हैं। किसी आदर्श के लिए सारी जाति का आवेश से भर मिटना और संसार भर में खलबली मचा देना एक साधारण काम नहीं है। किन्तु ऐसे ही लोग संसार में परिवर्तन किया करते हैं और उन्नति के कारण बनते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि स्वतन्त्रता, समता और भ्रातृत्व के

नाम पर फ्रांसवासियों ने आवेश की तरङ्ग में बह कर कई प्रकार के अत्याचार किये। परन्तु उनके कारण सारी क्रान्ति के आन्तरिक भाव को कलङ्कित करना उचित नहीं। १७८९ में फ्रांस उन्हीं सिद्धान्तों के लिए लड़ा, जिनके लिए इँगलेण्ड पहले दो बार लड़ चुका था और अमरीका ने १७७६ में युद्ध किया था। योरुप में जो काम पुनर्जागृति ("रनेसाँस") और सुधार ("रिफ़ॉर्मेशन") ने आरम्भ किया था उसे फ्रांसीसी राज्य-क्रान्ति ने पूर्ण कर दिया। इस क्रान्ति से योरुप की सामाजिक अवस्था में एक आदरणीय परिवर्तन हो गया। इसने न केवल फ्रांस की राजनैतिक शक्ति में परिवर्तन किया, प्रत्युत सारी जाति ("नेशन") का रूप बदल दिया।

समाज की अवस्था

राज्य-क्रान्ति से पहले फ्रांस की सामाजिक बनावट मध्य-युग की सी थी। समाज कई ऐसी श्रेणियों में बँटा हुआ था, जिनमें परस्पर ईर्ष्या और द्वेष था। प्रथम सरदार थे जो भूमिपति थे। वे अपनी शक्ति और धन के नशे में चूर रहते थे। यद्यपि वे निर्बल हो चुके थे तथापि उनका ठाट-बाट पूर्ववत् ही बना हुआ था। दूसरे पादरी थे, जो अपने आपको ईश्वर के 'विशेष मनुष्य' समझते थे। सरदारों के समान वे भी बड़ी-बड़ी जागीरों के स्वामी थे और चढ़ावे के धन से आनन्द करते थे। तीसरे जनता या "सर्वसाधारण" थे, जो दासों से कुछ अच्छे थे। यह श्रेणी संख्या में सबसे अधिक थी। यही फ्रांस के वास्तविक वासी थे और यही बड़े थे।

योरुप के बहुत से भागों में कई शतकों तक जागीरदारी प्रथा ("फ्युडल सिसटम") जारी रही। परन्तु किसी का यह साहस न हुआ कि उसके विरुद्ध उँगली उठाये। नहीं, उन्हें यह भी मालूम न था कि उनके साथ अन्याय हो रहा है। वे अपने दासत्व में मस्त थे। उनके विचार से सामाजिक ऊँच-नीच ईश्वरेच्छा के अनुसार होता था। वे अपनी अवस्था में ही मस्त थे और इसके लिए ईश्वर को धन्यवाद देते रहते थे।

सबसे बड़ा दासत्व वह होता है जिसमें दास अपने दासत्व को अनुभव नहीं करता, अपने आपको दास नहीं समझता। ऐसा दासत्व सदा उसकी गरदन पर सवार रहता है और वह उस जूए को कभी उतार नहीं सकता। आप किसी जाति की एक भारी श्रेणी को दास नहीं बनाता। प्रकृति ने न तो किसी श्रेणी को शासन करने के लिए उत्पन्न किया है और न किसी को शासित होने के लिए। जब तक शासित जाति के मस्तिष्क में यह विचार नहीं उत्पन्न होता कि वह शासित है और दासत्व मृत्यु से भी बुरा है तब तक वे दास ही बने रहते हैं। किन्तु जब यह अनुभव करने लगते हैं कि दासत्व कितना बुरा है और यह निश्चय कर लेते हैं कि वे स्वतन्त्र हो कर रहेंगे तब संसार की कोई शक्ति उनको दासत्व की अवस्था में नहीं रख सकती।

जब कभी किसी समाज में सुधार की आवश्यकता होती है तभी ऐसे सामान पैदा हो जाते हैं या ऐसे मनुष्य उत्पन्न

हो जाते हैं जो उस आवश्यकता को अनुभव करके सुधार-कार्य को आरम्भ कर देते हैं। अठारहवीं शताब्दी में फ्रांस में

फ्रांसीसी दर्शन में क्रान्तिकारी भाव

अनेक लेखक और दार्शनिक उत्पन्न हुए, जिन्होंने देश में नवजीवन का सञ्चार किया। उनमें से मॉनटेस्कये, वॉलटेर, रूसो और डीडरो बड़े प्रसिद्ध हुए हैं।

रूसो ने (१७७२-१७७८) जो एक बड़ा दार्शनिक था, फ्रांस में स्वतन्त्रता और समता का प्रचार किया। उसने यह बताया कि प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्र उत्पन्न होता है; प्रकृति सबको स्वतन्त्र और एक समान बनाती है, किन्तु परिस्थितियाँ उसे दास बना देती हैं। उसने "सामाजिक विधान-बन्धन" ("सोशल कॉनट्रेक्ट") नामक पुस्तक में फ्रांस के निर्धन कृषकों की दुर्दशा का एक करुणाजनक चित्र खींचा है और उसी तरह सरदारों के भोग-विलास का नक़शा भी बाँधा है। गवर्नमेण्ट या शासन पर वाद-विवाद करते हुए वह लिखता है कि किसी मनुष्य अथवा श्रेणी को दूसरों के ऊपर शासन करने का कोई अधिकार नहीं है। गवर्नमेण्ट एक पारस्परिक समझौता है, जिसमें कोई किसी का दास नहीं। गवर्नमेण्ट सर्वसाधारण की इच्छाओं या सम्मतियों का समूह है। गवर्नमेण्ट शासक नहीं होती, वरन् लोगों के हित के लिए उनकी प्रतिनिधि-मात्र होती है। वह लोगों की सेवक और रक्षक है। इस छोटी सी पुस्तक को देख कर सरदार उसकी हँसी उड़ाया

करते थे। परन्तु किसी ने खूब ही कहा था कि "जिस पुस्तक की ये आज हँसी उड़ाते हैं एक दिन उसकी जिल्दें इनकी सन्तानों के चमड़े से बाँधी जायँगी।"

इस समय शेष योरुप की सम्भवतः फ्रांस से भी बुरी अवस्था थी। किन्तु किसी अन्य देश में राज्य-क्रान्ति नहीं हुई। इसका कारण था फ्रांस का दर्शन और विज्ञान।

यह काल योरुप के स्वेच्छाचारी राजाओं का था। फ्रांस का राजा लुइस चौदहवीं उसका एक नमूना था। हर

बोरबोन स्वेच्छाचारी राजा

एक मनुष्य की जान व माल राजा के हाथ में थी; वह जब चाहता तब उसकी सम्पत्ति छीन उसे जेल में डाल देता था। अपने अधिकार से कर लगाता, और उसे दरबार के सुख-चैन, भोग-विलास और फ़िज़ूल-ख़र्चियों में उड़ाया करता था। उसका उत्तराधिकारी लुइस पन्द्रहवाँ अपनी सारी आय ललनाओं पर निछावर करता था। लुइस सोलहवाँ साधु स्वभाव और सुधार-इच्छुक था, किन्तु वह निर्बल और निश्चयात्मक-शक्ति से हीन था। उसकी साधुता के कारण ही कहा जाता है कि उसे किसी गिरजे का पादरी बनना चाहिए था।

राज्य-क्रान्ति के दो ही कारण होते हैं—अशान्ति और निराशा। जिस समय किसी देश के निवासियों पर

अन्य कारण

इतना अत्याचार होता है कि वे तङ्ग होकर क्रोध और आवेश से भर जाते हैं तब

दासत्व की ज़ञ्जीरें उन्हें बोझ मालूम होती हैं। फ़्रांसवासियों की दशा दूसरों से कुछ अच्छी हो रही थी इसलिए उनके अन्दर यह जीवन भी आ रहा था। वे समझने लग गये थे कि अपने शरीरों पर दासत्व को रखना स्वाभिमान के विरुद्ध है।

जब किसी देश में कोई सुधार-आन्दोलन आरम्भ होता है तब कोई भी शक्ति उसे नहीं रोक सकती। बल्कि स्वयं ऐसे सामान पैदा हो जाते हैं जो उसकी चाल को तेज़ करने में सहायक होते हैं। परन्तु मनुष्य की प्रकृति बड़ी अद्भुत है। जब किसी मनुष्य या जाति के हाथ में कोई शक्ति आ जाती है तब वह उसका दुरुपयोग करना आरम्भ कर देता है। इसके बजाय कि उसे अपने देश तथा जाति के हित के काम में लाये वह उसको दूसरों पर अन्याय तथा अत्याचार करने में युक्त करता है। शक्ति एक ऐसी वस्तु है जो मनुष्य को अन्धा बना देती है।

भाग्यवान् हैं वे मनुष्य जो अपनी शक्ति का संसार के हित के लिए उपयोग करते हैं और पापी हैं वे जो उससे अन्धे होकर दूसरों पर क्रूरतायें करके सुख-चैन की सामग्री उत्पन्न करते हैं। पर साथ ही वे लोग भी पापी हैं, जो उन्हें अपने ऊपर अत्याचार करने की अनुमति सी देते हैं। वे भाग्यवान् होंगे जो अत्याचार को अत्याचार अनुभव करके सुधार के लिए तैयार हो जाते हैं। वे शक्तिसम्पन्न भाग्यवान् होंगे जो समय को समझकर देशकालानुकूल अपने आपको बदल लेते हैं।

यदि अत्याचारी पददलितों की आवाज़ सुनते रहें और उनके इच्छानुसार आचरण करते जायँ तो संसार में महान् परिवर्तन और सुधार बिना जोश-ख़रोश के होते रहें। ऐसी अवस्था में ऐतिहासिकों को संसार एक सीधे मार्ग पर जाते दिखाई देगा। परन्तु अभी तक जातियों के इतिहास में ऐसा समय कभी नहीं आया। जातियाँ किसी सीधी रेखा पर एक सीधी चाल के साथ नहीं चलतीं। सशक्त अपनी शक्ति को दूसरी शक्ति के छुड़ाये बिना हाथ से नहीं छोड़ते। संसार में अभी तक शक्ति के सिवाय किसी और वस्तु का राज्य नहीं हुआ।

स्वतन्त्रता की सीढ़ी तक पहुँचने के लिए जाति को कष्टों की अग्नि में से गुज़रना आवश्यक है, चाहे वह अग्नि हिंसात्मक क्रान्ति की हो और चाहे सहिष्णुता की। किसी जाति को जगाने या होशियार करने के लिए एक हिलानेवाली क्रान्ति अत्यावश्यक होती है। इस भट्टी में से निकलने पर वह जाति संशोधित हो जाती है और कई वर्षों के लिए चौकन्नी हो जाती है।

फ्रांस की राज्य-क्रान्ति में से गुज़रने पर सारे योरुपीय समाज में एक नवजीवन आ गया, समाज की नींव नये सिद्धान्तों पर रक्खी गई। फ्रांस में जिन लोगों के अधिकार स्वीकार नहीं किये जाते थे और जिनके लिए फ्रांस में तूफ़ान आया था, या तो उन्हें अपने अधिकार प्राप्त

होगये या वे उन्हें लेने के योग्य बन गये। विभिन्न श्रेणियों का पारस्परिक मतभेद और शत्रुता दूर होगई। जिन लोगों के हाथ में अधिक शक्ति आगई थी और जो उसका उपयोग करना नहीं जानते थे, उनके हाथ से वह शक्ति वा अधिकार छिन गया। अनियमित शासन के स्थान में क़ानून का शासन होगया। कृषि, कलाकौशल और व्यापार के लिए जितने कृत्रिम बन्धन थे वे सब दूर हो गये। समाज की नीव जागीरदारी से हटकर प्रजासत्तात्मक होगई और फ्रांस-वासी एक जातीयता के बन्धन से बँध जाने से सुदृढ़ होगये।

लुइस का सिंहासनारोहण (१७७४) धन का अभाव

यों तो फ्रांस चिरकाल से स्वेच्छाचारी राजाओं के अधीन था। किन्तु आरम्भ में राजा प्रजा का प्रतिनिधि माना जाता था। जागीरदारी के समय में सरदारों की शक्ति इतनी बढ़ गई कि सर्वसाधारण के साथ राजा भी निर्बल होगये। धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों बलवान् राजा आते गये त्यों-त्यों सरदारों और साधारणों के अधिकार घटते गये। यहाँ तक कि बोरबोनवंशी राजा लोगों को बिना दोष बताये ही क़ैद कर सकते थे। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि बोरबोन बड़े अपव्ययी थे, इसलिए फ्रांस का कोष खाली हो गया था और फ्रांसीसी गवर्नमेण्ट दिवालिया पन की ओर जाने लगी। यद्यपि प्रकट रूप से राजा की शक्ति बढ़ती मालूम होती थी, पर वास्तव में ऐसा न था।

लुइस सोलहवाँ जब सिंहासन पर बैठा तब सिंहासन की नीव बिलकुल हिल चुकी थी, क्योंकि गवर्नमेण्ट का दिवाला निकलनेवाला था। सबसे बड़ी समस्या, जो उसके सामने उपस्थित हुई वह धन की थी। राजा ने कई नौकरों आदि को क्रमशः इस समस्या के हल करने के लिए प्रधान मन्त्री बनाया। किन्तु ये राजनीतिज्ञ भी कुछ न कर सके। रोग इतना पुराना हो चुका था कि वैद्य उसका इलाज ही न कर सकते थे। राजा का अपव्ययी स्वभाव और सरदारों का स्वार्थ इतना ज़ोर पकड़ता गया कि न करों में सुधार हो सकता था, न ख़र्च में कमी। परिणाम-स्वरूप फ़्रांस दिन-प्रति-दिन अधिक ऋणी होता गया।

विवश होकर राजा ने सभी सरदारों और पादरियों की एक सभा की कि उसमें आर्थिक कठिनाई पर उनसे परामर्श ले। परन्तु उन भाग्य-हीन परामर्श-दाताओं ने तात्कालिक समस्या को हल करने में ज़रा भी सहायता न दी। न वे अपने अधिकारों को छोड़ने के लिये तैयार थे और न कर देने के लिए। हाँ ग़रीबों का सिर कुचल डालने में उन्हें कोई आपत्ति न दिखाई देती थी, वरन् कुछ आनन्द आता था।

सरदारों और पादरियों की बैठक (१७८७)

अन्त में राजा को जनता से सहायता माँगनी पड़ी। वे ग़रीब लोग, जिन पर न राजा अत्याचार करने से डरता

था और न सरदार ही ज़ुल्म करने से परहेज़ करते थे, देश और गवर्नमेण्ट के आश्रय थे। उनसे रुपया माँगने के लिए राजा को स्टेट्स-जनरल-नामक एक सभा करना पड़ी। इस सभा में सरदार, पादरी और साधारण—तीनों श्रेणियों के प्रतिनिधि एकत्र होते थे। गत पौने दो सौ वर्षों से राजा को इसका अधिवेशन करने की आवश्यकता ही न पड़ी थी।

स्टेट्स-जनरल सभा का चुनाव

कोई राज्य धन के बिना नहीं चल सकता। राजा प्रजा से धन कर के रूप में इकट्ठा करता है। जब तक लोगों के मन में यह विचार उत्पन्न नहीं होता कि वे क्यों कर देते हैं और उनका दिया हुआ धन किस प्रकार ख़र्च होता है तब तक तो राजा जो चाहे सो करे। परन्तु जब प्रजा यह अनुभव करने लग जाती है कि हमारा धन हमारे हित में नहीं लगाया जाता और हमारी इच्छा के विरुद्ध उसे ख़र्च करने का किसी को अधिकार नहीं है और इसलिए जब कर देने से इनकार कर देती है तब गवर्नमेण्ट तथा राजा की जान के लाले पड़ जाते हैं। संसार में जितनी भी राज्य-क्रान्तियाँ हुई हैं, उन सबके अन्तस्तल में यही सिद्धान्त काम करता रहा है कि लोगों पर कर उनके प्रतिनिधियों की इच्छा के बिना नहीं लगाया जा सकता।

दिसम्बर १७८० में राजा ने यह राजाज्ञा प्रकाशित की

कि स्टेट्स-जनरल के लिए लोग अपने-अपने प्रतिनिधि चुन कर भेजें। इसका अर्थ यह था कि फ्रांस में स्वेच्छाचारी शासन के असफल होने से जनता को शासन में सम्मिलित करने की आवश्यकता हुई। पिछली दो शताब्दियों में जो राजा अपने आपको ईश्वर का प्रतिनिधि समझता था, प्रजा की परवा नहीं करता था, उसी राजा को सरकारी कोष ख़ाली हो जाने से उसका दिव्य अधिकार जाता रहा और प्रजा के सामने हाथ फैलाने पड़े। अब लोगों ने यह माँग शुरू की कि हम सभा में अपनी संख्या के अनुसार शेष दो श्रेणियों के बराबर प्रतिनिधि भेजेंगे अर्थात् सरदार और पादरी यदि तीन तीन सौ प्रतिनिधि भेजेंगे तो हमारे छः सौ होंगे। प्रधान-मन्त्री नेकर को उनकी यह माँग स्वीकार करना पड़ी।

जनता के प्रतिनिधि अधिकतर मध्य श्रेणी के देश-भक्त, जैसे वकील और मजिस्ट्रेट थे। पादरी प्रतिनिधि भी अधिकतर सत्य-निष्ठ एवं परिश्रमी थे। जिन्होंने उन्हें चुन कर भेजा था वे उनके हित को समझते थे। जाति के अन्दर जब स्वतन्त्रता की इच्छा उत्पन्न हो जाती है तब वह अपने-आप स्वतन्त्रता के योग्य सिद्ध भी करती है।

स्टेट्स-जनरल के अधिवेशन के लिए ५ मई की तारीख़ निश्चित हुई। मानो इसी दिन से राज्य-क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ। क्रान्ति के लिए सामग्री तैयार थी, स्टेट्स-जनरल ने दियासलाई का काम किया।

अधिवेशन की कार्रवाई के शुरू होते ही 'वोट' या मत-दान के तरीक़े पर विभिन्न श्रेणियों में झगड़ा होगया।

स्टेट्स-जनरल जातीय-सभा में परिवर्तित

राजा और सरदार तो यह चाहते थे कि हर एक श्रेणी पृथक् पृथक् मत दे और जनता का यह कहना था कि यदि वोट श्रेणी की दृष्टि से लिये जायँ तो उनकी संख्या दुगुनी होने का कुछ भी अर्थ नहीं रहता। यह झगड़ा लगातार पाँच सप्ताह तक जारी रहा।

विवश होकर जनता के प्रतिनिधियों ने एक बड़ा साहसपूर्ण क़दम उठाया। उन्होंने यह घोषणा कर दी कि हम किसी एक श्रेणी के प्रतिनिधि नहीं हैं वरन् सारी जाति के हैं। स्टेट्स-जनरल को जातीय सभा ("नेशनल एसम्बली") बनाकर वे शासन और क़ानून के स्वामी बन बैठे। उन्होंने शेष दोनों श्रेणियों को सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रण देने के साथ यह भी कह दिया कि यदि सरदार और पादरी ऐसा न करेंगे तो हम स्वयं निर्णय करके फ्रांस के शासन को जारी रक्खेंगे। राजा, सरदार और पादरी इससे डर गये। राजा ने विवश होकर सभा विसर्जित कर दी और द्वार पर सेना बुला भेजी। इस पर जनता-प्रतिनिधि-दल को बड़ा क्रोध आया। वह वहाँ से उठकर एक 'टेनिस-कोर्ट' में जा बैठा। वहाँ पर उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक हम फ्रांस का विधान ('कॉन्स्टीट्यूशन') न बना लेंगे तब तक हम एक दूसरे से

पृथक् नहीं होंगे। वहाँ से भी निकाले जाने पर वे एक गिरजे में चले गये, जहाँ कुछ सरदार और अनेक पादरी भी उनमें सम्मिलित होगये। इससे उनका साहस और भी बढ़ गया।

तीनों श्रेणियों की एक बार फिर बैठक हुई। हाल के बाहर सेना खड़ी थी। केवल सदस्य अन्दर जा सकते थे। राजा अपने राजसी ठाट-बाट के साथ हाल में प्रविष्ट हुआ, किन्तु पहले जैसा सम्मान न हुआ। अपने भाषण में उसने जनता को आदेश दिया कि तुम सब मिलकर काम करो और जैसा मैं चाहता हूँ वैसा क़ानून पास करो, नहीं तो मैं तुम्हें बाहर निकाल दूँगा और स्वयं जैसा चाहूँगा वैसा करूँगा। तत्पश्चात् उसने तीन श्रेणियों को अपने अपने कमरे में चले जाने के लिए कहा और स्वयं बाहर चला गया। सरदार और पादरियों ने उसकी आज्ञाका पालन किया किन्तु जनता के प्रतिनिधि चुपचाप वहीं बैठे रहे।

इस पर एक दरबारी ने आकर राजाज्ञा दुहराई। तब उन में से मीराबो-नामक एक नेता उठा और बोला—"जाओ, अपने स्वामी से कह दो कि हम यहाँ फ्रांसवासियों के आज्ञानुसार एकत्र हुए हैं और हम यहीं बैठें रहेंगे जब तक कि तलवार न उठायेगी।" तत्पश्चात् सीएयेस-नामक एक अन्य नेता ने उन्हें प्रोत्साहन दिया और वे परस्पर वाद-विवाद करने लगे।

फ्रांसवासियों की यह सबसे बड़ी विजय थी। फ्रांस का शासन एक-दम 'एक-राज-तन्त्र' से प्रजासत्तात्मक होगया। यदि

फ़्रांस का राजा यहीं मान जाता तो सम्भवतः क्रान्ति का आवेश थम जाता। किन्तु शासकों को जो वस्तु सबसे अधिक ख़राब करती है वह उनका रोब-दाब है। अपना रोब बनाये रखने के लिए शासक अन्धाधुंध अत्याचार किया करते हैं।

फ़्रांस की जातीय सभा की अग्नि-परीक्षा का समय बाक़ी था; अभी तो कश-मकश शुरू ही हुई थी। थोड़ी देर में कुछ सरदार और पादरी इनमें सम्मिलित हो गये। जातीय सभा अब फ़्रांस की तीनों श्रेणियों की प्रतिनिधि-सभा होगई। यह इस बात को सूचित करता है कि फ़्रांस श्रेणीगत ऊँच-नीच से ऊपर उठ गया था। अब फ़्रांस एक नया फ़्रांस था; वह 'एक जाति' थी, न कि तीन श्रेणियों का समूह।

लामारटीन-नामक एक फ़्रांसीसी दार्शनिक का कथन है कि फ़्रांस की जातीय सभा "फ़्रांस के इतिहास में ही नहीं, वरन् संसार भर में एक परम गम्भीर संस्था थी।"

जातीय सभा के प्रमुख पुरुष

इसके सदस्य फ़्रांस के योग्य एवं चुने हुए मनुष्य थे, उन्हीं की योग्यता और साहस के कारण फ़्रांस इतनी कठिनाइयों सामना कर सका।

सरदारों में लाफ़ेयेट एक प्रसिद्ध देश-भक्त था। इसने अमरीका के स्वातन्त्र्य-युद्ध में लड़ने के लिए अपना नाम सैनिकों में भरती कराया था। इसकी सेवाओं के कारण अमरीकावासी इसका बड़ा आदर करते थे। दूसरा मीराबो भी, जो एक अमीर घराने से था, जनता का प्रतिनिधि था। इसका

सिर बहुत बड़ा था। यद्यपि यह विलासप्रिय और निर्द्वन्द्व मनुष्य था तथापि इसमें वाक्चातुर्य, नीतिज्ञता तथा अन्य कई गुण थे। इसको अपने ऊपर इतना विश्वास था कि यह यहाँ तक समझने लगा कि मेरे सिवा क्रान्तिकारियों का अन्य कोई पथप्रदर्शक हो ही नहीं सकता। परन्तु लोग इस पर विश्वास न करते थे। फिर भी इसने लोगों पर अपना सिक्का यहाँ तक जमा लिया कि वह जातीय सभा का सभापति नियत कर दिया गया। साधारण प्रतिनिधियों में रोबेसपायर का नाम भी उल्लेखनीय है। सीएयेस एक और योग्य पुरुष था, जिसमें क़ानून बनाने की बड़ी योग्यता थी।

ऐसे योग्य तथा दूरदर्शी नेताओं की बदौलत ही फ़्रांस इतने भारी तूफ़ान से गुज़र सका। ऐसी क्रान्तियों में कई प्रकार की लहरें चलती हैं और कई तरह के काम करने पड़ते हैं। मानो पुरानी इमारत को गिराकर नये सिरे से नई इमारत की नीव रखकर उसका निर्माण करना पड़ता है। ऐसे कठिन कार्य के वास्ते कमाल दर्जे की लियाक़त और हिम्मत की ज़रूरत होती है। यदि जातीय सभा में केवल आवेग तथा आवेश की ही शक्ति काम करती होती तो क्रान्ति का फल विनाश होता। परन्तु असाधारण मनुष्यों की उपस्थिति से जातीय सभा ने फ़्रांस के शासन को नई नीव पर खड़ा करके और अशान्ति के कारणों को दूर करके अपने कार्य को दृढ़ करना आरम्भ कर दिया।

इसी बीच में पेरिस की म्युनिसिपल-कमिटी में भी राज्य-शासन के समान परिवर्तन होने लगे। पेरिस के नागरिकों ने क्रान्तिकारी म्युनिसिपलिटी बनाकर रचनात्मक कार्य आरम्भ कर दिये।

पेरिस-नगर की क्रान्तिकारी म्युनिसिपलिटी

क्रान्ति के कारण लोगों में बड़ा आवेश था। जातीय सभा के हाल को सैनिकों ने चारों ओर से घेर रक्खा था। इसी प्रकार पेरिस-नगर के गिर्द भी सैनिक खड़े थे। लोग बड़े अशान्त-चित्त हो रहे थे। जातीय सभा ने राजा से सेना के हटाने की प्रार्थना की। इस पर उसे उत्तर यह मिला, "जब मेरी इच्छा होगी तब मैं इन्हें हटा लूँगा। तुम हाल को छोड़कर अन्यत्र चले जाओ।"

यह उत्तर सुनकर लोग बड़े उत्तेजित हुए। एक ओर समाचारपत्र लोगों में जोश फैला रहे थे, दूसरी ओर स्थान स्थान पर व्याख्यान हो रहे थे। जिस बाग़ में जातीय सभा के अधिवेशन हुआ करते थे वहाँ हर समय सहस्रों लोग बैठे रहते थे। एक दिन लोगों ने एक 'होटेल' को तोड़कर वहाँ से सारे शस्त्र निकाल लिये। सभा को न दबाने के कारण राजा ने अपने प्रधान मन्त्री नेकर को पदच्युत कर दिया। यह समाचार सुनकर लोग आग-बबूला होगये। सभी जोश से भरे थे, लेकिन किसी को यह नहीं मालूम था कि क्या करना चाहिए।

इतने में केमल डेसमोसन-नामक एक नवयुवक पिस्तौल हाथ में लिये हुए मेज़ पर खड़ा होकर कहने लगा—"यह काम करने का समय है। नेकर की पदच्युति की भयसूचक-घण्टी मानो देश-भक्तों को जगा जगाकर कह रही है कि लड़ो और मरो! आज ही हम लोगों को राजा की सेना मार डालेगी। इसलिए अब इसको छोड़ और कोई चारा नहीं कि हम भी शस्त्र उठाकर युद्ध के लिए तैयार हो जायँ।" लोग इस भाषण को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए; उनका जोश बढ़ गया। केमल के कहने से उन्होंने हरे रङ्ग के बिल्ले (आशा-चिह्न) लगा लिये, जिससे राजपक्ष-वालों से वे आसानी से पहचाने जा सकें।

फिर जनता का समूह राजप्रासाद की ओर चल पड़ा। सेना ने उसका विरोध किया; उसे तितर-बितर करना चाहा, जिससे कई निर्दोष मनुष्यों का खून हो गया। सेना का एक दल इस दृश्य को न देख सका। उसने लोगों पर गोली चलाने से इनकार कर दिया। पीछे वह जनता के पक्ष में सम्मिलित भी होगया। धीरे-धीरे शेष सेना ने भी इसका अनुसरण किया। सैनिकों की सहानुभूति प्रायः जनता के साथ होती है। किन्तु वे भय के कारण उसके साथ नहीं मिलते। प्रायः सभी क्रान्तियों में ऐसा ही हुआ है कि जनता की शक्ति को देख कर सैनिक भी उसके साथ मिल गये हैं।

इस समय पेरिस की म्युनिसिपलिटी ने जातीय रक्षक-दल के लिए स्वयंसेवकों की अपील की। सहस्रों मनुष्य जातीय

सेना में भर्ती होगये। उनके पास केवल शस्त्रों की कमी थी, इसलिए उन्हें जो कुछ मिला, वही उठा लिया। जनता की रक्षा के लिए एक रक्षा-समिति भी बनाई गई। अन्त में सब एक स्थान में इकट्ठा हुए जिससे आवश्यकता पड़ने पर वे सब जगह बाँटे जा सकें।

जातीय रक्षक-दल का बनना, 'बेस्टील' को गिराना (१७८६)

सब तैयारियाँ कर चुकने के बाद जन-समूह बेस्टील नामक पुराने क़िले की ओर बढ़ा। क़िले के अफ़सरों से प्रतिज्ञा ली गई कि वे गोली नहीं चलायेंगे। परन्तु जनता बड़ी अधीर और अशान्त थी। वे बार बार चिल्लाते थे—'हम बेस्टील को ले लेंगे!' इतने में दो उग्रस्वभाव मनुष्यों ने पुल को गिराना आरम्भ कर दिया। अफ़सरों ने गोलियाँ चलाईं और लोग बिखर गये। वे दुबारा इकट्ठे हुए और क़िले को सर कर लिया। फिर अन्दर घुसकर उन्होंने अफ़सरों का वध कर डाला।

वहाँ से 'जीत लिया!' 'जीत लिया!' की जयध्वनियाँ करते हुए लोग फिर जातीय सभा के हाल की ओर चले और प्रतिनिधियों को अपनी विजय का समाचार सुनाया। जातीय रक्षक-दल ने अब समस्त नगर पर अधिकार कर लिया और उसकी रक्षा का प्रबन्ध भी अपने हाथ में ले लिया।

ये घटनायें देखकर सभा और भी दृढ़प्रतिज्ञ होगई। बाहरी तूफ़ान ने भीतरी आन्दोलन की चाल को और भी तेज़ कर

दिया। दो उदारचित्त सरदारों का अनुकरण करके सरदारों ने स्वयं ही अपने-अपने अधिकारों का त्याग करना आरम्भ कर दिया। सभा रात भर होती रही। एक रात में फ़्रांस में ऐसा परिवर्तन हुआ कि अगले दिन फ़्रांस की कायापलट हो गई। सब मनुष्य बराबर हो गये।

अधिकार-त्याग (१७८९)

सभा-विसर्जन से पहले सभा ने यह पास किया कि राजा लुइस की मूर्त्ति स्थापित होना चाहिए जिससे भविष्य में वह स्वतन्त्रता का स्मारक हो। जातीय सभा के इस निर्णय से यह प्रकट होता है कि लुइस से उनका कोई व्यक्तिगत द्वेष या शत्रुता न थी। यदि शत्रुता थी तो केवल तात्कालिक शासन-प्रणाली के साथ।

दूसरा बड़ा काम जो जातीय सभा ने किया वह मनुष्य-अधिकारों की घोषणा करना था। स्वतन्त्रता की पहली शर्त यह थी कि मनुष्य के प्राकृतिक अधिकारों में कोई भी हस्तक्षेप न किया जावे। यदि गवर्नमेण्ट को प्रजा के राजनैतिक अधिकार छीन सकने का अधिकार होगा तो प्रजा की राजनैतिक स्वतन्त्रता कदापि सुरक्षित नहीं रह सकती। अतएव उसके लिए स्वतन्त्रता का प्रख्यापन करना आवश्यक था, जैसा कि कुछ वर्ष पहले अमरीकावासियों ने किया था। फ़्रांस के स्वतन्त्रता के प्रख्यापन में ये महत्त्व-पूर्ण बातें थीं (१) मनुष्यों की समता—'सभी मनुष्य

मनुष्य-अधिकारों की घोषणा (१७८९)

समान और स्वतन्त्र उत्पन्न होते और रहते हैं'; (२) जनता का शासन—'राजनैतिक अधिकार सारी जाति के हैं, न कि किसी एक मनुष्य अथवा श्रेणी विशेष के'; (३) महत्त्व-पूर्ण प्रकृति-नियम—'नियम (क़ानून) जनता की इच्छा का प्रकाशन है और वह सबके लिए एक समान होना चाहिए' और (४) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप—'नियम के विरुद्ध' कोई मनुष्य पकड़ा या क़ैद नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार फ़्रांस में स्वतन्त्रता के मूल-सिद्धान्तों की नीव रक्खी गई। जातीय सभा अब इतना ज़ोर पकड़ गई कि फ़्रांस का सारा शासन उसी के हाथ में आ गया। जातीय रक्षक-दल उसके अधीन थे और समस्त देश उसे अपना राजा समझने लगा था। अब उसने नये शासन के लिए नये नियम बनाने आरम्भ किये।

राज-परिवार पेरिस में (१७८९)

इधर सभा नियम बना रही थी, उधर राजा अपने प्रासाद में बैठा हुआ सभा की शक्ति भङ्ग करने के लिए षड्यन्त्र रच रहा था। सेना को अपनी ओर करने के लिए राजा उसे निमन्त्रण देने लगा। एक भोज में नया जातीय झण्डा भी पाँव तले रौंदा गया।

जाति-अपमान के इस समाचार को सुनकर पेरिस के नागरिक बड़े क्रुद्ध हुए। वैसे ही वे पेट की ज्वाला से तंग थे। एक वृद्धा ने गले में ढोलक डाली और उसे बजाती तथा 'रोटी,'

'रोटी' चिल्लाती हुई राजप्रासाद की ओर चल पड़ी। सहस्रों स्त्रियाँ उसके पीछे हो लीं। यह महान् जुलूस राजद्वार तोड़-कर महलों में प्रविष्ट होगया। यदि कहीं घटना-स्थल पर लाफ़ेयेट न पहुँच जाता। तो वह सारे राज-परिवार का वध कर डालता।

फिर जन-समूह ने यह कहा कि राजा को पेरिस ले जाकर जातीय सभा के अधीन रखना चाहिए। राजा को लेकर वे आनन्द मनाते हुए पेरिस की ओर चल पड़े। वे यही कहते जाते थे—"अब रोटी तो क्या, रोटी पकानेवाले का सारा परिवार ही हमारे साथ है।" यह दशा देखकर बहुत से सर-दार फ़्रांस से भाग गये।

जातीय सेना ने पेरिस में इतनी शान्ति कर दी और राजा की नज़रबन्दी से जनता को इतना सन्तोष हुआ कि दो बरस तक पेरिस में कोई विद्रोह या हलचल न हुई। इधर जातीय सभा अपने रचनात्मक-कार्य में जुटी हुई थी। सबसे पहले चर्च की सम्पत्ति जातीय सम्पत्ति घोषित कर दी गई, जिससे लगभग एक अरब फ़्रेङ्क (एक फ़्रेङ्क आठ आने के बराबर होता है) की सम्पत्ति जाति के हाथ में आगई। इससे पहले पादरी-दल इस सम्पत्ति से मज़े उड़ाया करता था, अब यह जाति-हित में ख़र्च होने लगी।

चर्च-सम्पत्ति का जातीयकरण

तत्पश्चात् पादरियों का चुनाव हुआ। सभी को शासन के प्रति आज्ञाकारी होने की प्रतिज्ञा उठानी पड़ी।

राज-परिवार गुप्तरूप से फ्रांस से बाहर भागने का प्रयत्न कर रहा था। जो सरदार पहले निकल गये थे वे राजा को साथ लेकर फ्रांस पर चढ़ाई करना चाहते थे। एक दिनरात में राजा, रानी और उनके बच्चे भेस बदलकर सीमा की ओर चल पड़े। राह में किसी ने राजा को पहचान लिया इसलिए सब गिरफ़्तार करके फिर पेरिस वापस लाये गये। इस बात से राजा से लोगों का विश्वास उठ गया। अभी तक प्रजा-तन्त्र स्थापित करने की किसी की भी इच्छा नहीं थी। लेकिन अब सब प्रजातन्त्र का विचार करने लगे।

इसी बीच में जातीय सभा के कई दल हो गये। पेरिस में कुछ क्लब ऐसे थे, जो क्रान्ति की आग को तेज़ रखना चाहते थे। धीरे-धीरे सभा की शक्ति इन्हीं क्लबों के हाथों में जा रही थी।

नई व्यवस्थापिका सभा
(१७९१–१७९२)

अब सभा ने नये नियमों को कार्य में लाने के लिए जातीय सभा का अन्त करके एक व्यवस्थापिका सभा बनाई। उसके लिए सात सौ पैंतालीस प्रतिनिधि चुने गये। ये अनुभव-हीन और अपरिपक्व नवयुवक होने के कारण छोटी-छोटी बातों पर विवाद करने लग जाते। सबसे पहले यह बात निर्णीत हुई कि राजा 'महाराज' की उपाधि से सम्बोधित न किया जाय

और राजा का स्वर्ण-सिंहासन हटाकर उसके स्थान में एक साधारण कुर्सी रक्खी जाय। तत्पश्चात् यह तय हुआ कि राजा के आगमन से कोई सदस्य खड़ा न हो। अन्त में राजा बुलाया गया। उसके आने में कुछ विलम्ब होने के कारण सभी अप्रसन्न होगये। लेकिन जब राजा ने एक विवेकपूर्ण तथा शान्तिकर भाषण किया, तब सब प्रसन्न होगये।

आस्ट्रिया और प्रशिया के साथ युद्ध का आरम्भ (१७९८)

योरुप के अन्य राजा फ्रांस की ओर आँखें लगाये बैठे थे। लुइस के उद्देश को वे अपना उद्देश समझते थे। क्योंकि वे जानते थे कि यदि फ्रांस-वासी अपने देश के राजा की शक्ति को उखाड़कर प्रजा-तन्त्र स्थापित कर लेंगे तो अन्य देशों के राजाओं के परम्परागत अधिकारों का भी यही हाल होगा? पुराने राजवंशों के प्रतिनिधियों ने परस्पर यह निश्चय किया कि ऐसे आन्दोलन को, जो राज-अधिकारों का विरोधी है, दबाना चाहिए। आस्ट्रिया के राजा ने जर्मनी (प्रशिया) के राजा से सन्धि की कि इस मामले में वे एक दूसरे की सहायता करेंगे।

यह देखकर क्रान्तिकारियों ने युद्ध की घोषणा कर दी। आस्ट्रिया तथा प्रशिया की सेनाओं ने फ्रांस के निर्वासित सरदारों के साथ मिलकर १७९२ में फ्रांस पर आक्रमण किया। यह श्रीगणेश था उस बड़े युद्ध का जो लगभग पचीस वर्ष तक जारी रहा, इस युद्ध में फ्रांस को अकेले सारे योरुप का

सामना करना पड़ा। इसमें फ्रांस ने वही चमत्कार दिखाये जो स्वतन्त्रता के लिए लड़नेवाले प्रायः दिखाया करते हैं। जब किसी जाति के अन्दर स्वतन्त्रता की इच्छा इतनी दृढ़ हो जाती है कि उसके लिए वे व्याकुल और बैचेन हो जाते हैं तब वे ऐसे त्याग और क़ुर्बानी के साथ लड़ते हैं कि उनकी ऐसी शक्ति को देख कर लोग आश्चर्य करते हैं।

आरम्भ में आस्ट्रिया और जर्मनी की सेनाओं की विजय होती रही और पेरिस पर चढ़ाई करके वे ख़ूब तेज़ी के साथ आगे बढ़ रही थीं। जर्मनसेना-नायक ने फ्रांसवासियों को यह आज्ञा भी दी कि वे राजा की अधीनता स्वीकार करें। साथ ही यह धमकी भी दी कि यदि कोई मनुष्य राज-परिवार पर हाथ उठायेगा तो समस्त पेरिस में सर्व-वध की आज्ञा दे दी जायगी।

स्विस सेना पर विजय
(१७९२)

ऐसी असभ्य और अपमानजनक आज्ञा को सुनकर फ्रांस-वासी जल-भुन गये। सहस्रों मनुष्य मरने-मारने के लिए उठ खड़े हुए। कई उद्दीपक गीत बनाये गये और उनके द्वारा लाखों मनुष्य देश पर बलिदान होने के लिए उत्तेजित किये गये।

संगीत में वह उद्दीपन-शक्ति है जो किसी अन्य वस्तु में नहीं। वह मनुष्य के सारे शरीर को हिला देती है; उससे एक प्रकार की बिजली दौड़ जाती है। मारसेल्स से छः सौ नवयुवक प्रसिद्ध क्रान्तिकारी 'मारसेल्स' नामक गीत गाते हुए

आगे बढ़े। उन्होंने फ्रांस को विदेशियों के साथ युद्ध करने में बड़ी सहायता दी। सहस्रों फ्रांसीसी नवयुवकों ने इकट्ठा होकर पहले राजा के महलों को शत्रु के हाथ से छुड़ाने का प्रयत्न किया। वहाँ स्विट्ज़रलेण्डवासियों की सेना नियुक्त थी। फ्रांसीसी वीरों ने उन्हें पराजित करके शत्रु को देश से बाहर निकाल दिया।

सितम्बर का संहार

अब तो राजा के रहे-सहे अधिकार भी छीन लिये गये और नियमों पर पुनर्विचार करके उनमें संशोधन किया गया।

मित्रों की सेनाएँ अभी वेरडङ्ग-नगर में खड़ी हुई आगे बढ़ने के लिए सोच रही थीं कि पेरिस में जोश उमड़ा। क्रान्तिकारियों के नेता डॉनटन ने ललकार कर कहा—"शत्रु को रोकने के लिए राजा के सभी पक्षपातियों का संहार कर दो!" बस तत्काल ही राजा के सभी सरदार तथा राज-भक्त जेल में डाल दिये गये। फिर उनका वध आरम्भ हुआ। सहस्रों क़त्ल कर दिये गये। समस्त फ्रांस में राज-भक्तों का एक प्रकार से सर्व-वध हो गया। २१ सितम्बर के इस अत्याचार का कलङ्क क्रान्ति-कारियों के माथे पर सदा लगा रहेगा।

इसके बाद जनरल डूमूरे ने मित्र-सेनाओं को वालमी के रणक्षेत्र में पराजित करके वहाँ फ्रांस की स्वतन्त्रता का झण्डा फहराया।

राष्ट्रीय महासभा ने ('नेशनल कॉनवेनशन') जिसका पहला नाम व्यवस्थापक-सभा था, अपने जन्मकाल ही में

स्वेच्छाचारिता का उच्छेद करके देश में प्रजातन्त्र की स्थापना की। उसी दिन से (२२ सितम्बर १७९२) फ्रांस का नया संवत् आरम्भ होता है, क्योंकि यह दिन फ्रांस के लिए स्वतन्त्रता का जन्म-दिन था। राजा और सरदारों की सारी उपाधियाँ उड़ा दी गईं। सब बिना किसी भेद-भाव के नागरिक कहलाने लगे। इस आन्दोलन को स्वेच्छाचारिता से इतनी चिढ़ थी कि इसके आज्ञानुसार ताश के पत्तों पर से भी राजा, रानी और गुलाम के चित्र हटाकर स्वतन्त्रता, समता और भ्रातृत्व के देवताओं के चित्र बनाये गये।

राष्ट्रीय महासभा (१७८२–१७९५)

इसके अतिरिक्त अन्य योरुपीय देशों में भी प्रजा-सत्तात्मक विचारों का प्रचार करने के लिए प्रबन्ध किया गया। प्रजा-तन्त्र-वादियों ने अन्य देशों के निवासियों से भी कहा कि तुम भी अपने-अपने राजा का विरोध करके स्वातन्त्र्य-युद्ध में हमारे साथ सम्मिलित हो। यह देखकर योरुप के राजाओं ने परस्पर संधि करके फ्रांस-प्रजा-तन्त्र के विरुद्ध दुबारा युद्ध करने का निश्चय किया।

इतने में राष्ट्रीय महासभा ने राजा पर यह अपराध लगाया कि उसने फ्रांस के शत्रुओं के साथ षड्यन्त्र किया है। अभियोग का निर्णय यह हुआ कि लुइस का वध हो। २१ जनवरी, १७९३ को लुइस सूली पर खड़ा किया गया। उसके चारों ओर लाखों मनुष्य

राजा पर अभियोग और वध (१७९३) फ्रांस के विरुद्ध सन्धि

थे। उसकी गरदन पर 'गूइलोटीन' के गिरते ही आवाज़ें उठीं—"प्रजातन्त्र चिरञ्जीवी हो!" "प्रजातन्त्र चिरञ्जीवी हो।"

लुइस का वध सुनकर योरुप के सभी राजाओं को जान के लाले पड़ गये। प्रजा-तन्त्र के भाव को विनष्ट करने के लिए सारे राजाओं ने फिर सन्धि की। इँग्लेण्ड, आस्ट्रिया, जर्मनी, हालेण्ड, पुर्तुगाल, सार्डिनिया, टस्कनी, नेपल्स, और पवित्र रोमन-साम्राज्य के राजाओं ने मिलकर एक भारी सेना तैयार की और फ्रांस को चारों ओर से घेर लेने का निश्चय किया। फ्रांस को अब एक ओर तो भीतरी शत्रुओं तथा द्रोहियों को दबाना था और दूसरी ओर बाहरी आक्रमणकारियों से युद्ध करना। यह क्रान्तिकारियों की परीक्षा का समय था। इस समय उनके लिए स्वतन्त्रता को स्थिर रखना स्वतन्त्रता को प्राप्त करने से अधिक कठिन हो गया।

भीतरी शत्रुओं का नाश करने के लिए एक क्रान्तिकारी अदालत बनाई गई। यह अदालत क्या थी, अत्याचार को एक क़ानूनी रूप देने का ढङ्ग था। ऐसे अवसरों पर प्रायः ऐसे न्यायालय बना लिये जाते हैं, जहाँ न्याय के नाम से अन्याय किया जाता है। असली उद्देश तो द्रोहियों को नष्ट करना और विरोधी आन्दोलन को दबाना होता है। परन्तु अत्याचारी भी खुल्लमखुल्ला अत्याचार करने

घोर त्रास-राज्य (१७९३-१७९४) क्रान्तिकारी अदालत (१७९३)

से डरते हैं। इसलिए न्याय का ढोंग रचने के लिए अदालतें खड़ी कर ली जाती हैं और जान-बूझ कर अथवा अज्ञातरूप से यह विचार बाँध लेते हैं कि सारी कार्रवाई नियमपूर्वक हो रही है। पर आश्चर्य की बात तो यह है कि ये लोग, जो स्वतन्त्रता के यज्ञ में प्राणों की आहुतियाँ दे रहे थे, किस प्रकार उसी स्वतन्त्रता के लिए निर्दयता और अन्याय से लोगों के प्राण हरने लगे। स्वेच्छाचारिता के अत्याचार के स्थान में अब स्वतन्त्रता का अत्याचार होने लगा।

इसके साथ ही राष्ट्रीय महासभा के नौ सदस्यों की एक प्रबन्धकारिणी समिति भी बनाई गई। उसका नाम जनता-रक्षण-समिति रक्खा गया। उसे राजा के सभी अधिकार प्राप्त थे। फ्रांसीसी प्रजा-तन्त्र ने स्वतन्त्रता को स्थिर रखने के लिए स्वेच्छाचारिता को एक नया रूप दे दिया। ज्यों-ज्यों बाहरी शत्रुओं का भय बढ़ता गया, भीतरी शत्रुओं का डर तो पहले ही से था, त्यों-त्यों उस समिति के अधिकारों में बढ़ती होती गई, उसका नाम महा-समिति पड़ गया। नौ के बजाय सदस्यों की संख्या भी बारह कर दी गई। उसे हर एक मनुष्य के जान व माल पर पूर्ण अधिकार था। उसका सबसे प्रसिद्ध सदस्य रोबेसपायर था।

इस समिति का शासन-काल 'घोर त्रास-काल' कहलाता है। इसकी विशेषता को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम उन मनुष्यों के चरित्र और दृष्टि-कोण को

समझें, जो इसके लिए उत्तरदायी थे। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि इस समिति के सभी सदस्यों के चरित्र उच्च थे। वे सत्य-निष्ठ और योग्य भी थे, सदैव अपने सिद्धान्तों पर प्राण तक निछावर करने के लिए उद्यत रहते थे। इसके साथ ही वे बड़े शान्ति-प्रिय भी थे, अशान्ति के इच्छुक नहीं थे। फिर भी इनका विश्वास था कि राज्य-क्रान्ति का विरोध एक ऐसा अपराध है, कि उसका दण्ड मृत्यु से कम नहीं हो सकता। स्वतन्त्रता पर बलिदान होनेवाले स्वतन्त्रता के शत्रुओं को किस तरह अपने मार्ग में रुकावट बनाने की अनुमति दे सकते थे? उनका मत था कि फ्रांस को अशान्ति और अत्याचार से बचाने और बाहरी आक्रमणकारियों के पञ्जों से सुरक्षित रखने का यही एक उपाय है कि देश के भीतर जो कोई भी स्वतन्त्रता का शत्रु हो वह नष्ट कर दिया जाय। फ्रांस की जनता भी इसी विचार से सहमत थी।

क्रान्तिकारियों के अत्याचार

सबसे पहले क्रान्तिकारी-दल की दृष्टि राजवंश के रहे-सहे मनुष्यों पर गई। लुइस के वध के पश्चात् मित्र-राजाओं ने उसके आठ वर्षीय पुत्र को राजा स्वीकार कर लिया था। इसलिए राजवंश के प्रत्येक मनुष्य का अस्तित्व क्रान्तिकारियों के लिए भयावह था। रानी मेरी एण्टॉनेट ठीक उसी स्थान पर, जहाँ कुछ काल पहले उसका पति वध किया गया था, 'गुइलोटीन' की भेंट कर दी गई।

इसी 'गुइलोटीन' पर फ्रांस का सर्वोत्तम रक्त बहाया गया। पहले विरोधी-दल के नेताओं का संहार किया गया। तत्पश्चात् सहस्रों मनुष्यों के रक्त से उसकी प्यास बुझाई गई। एक प्रसिद्ध स्त्री मेडेम रोलेण्ड केवल इसी अपराध के कारण मार डाली गई कि वह विरोधी-दल से मैत्री रखती थी। कहा जाता है कि जब उसका सिर तख्ते पर था तब उसकी दृष्टि स्वतन्त्रता-देवीकी मूर्त्ति पर जा पड़ी। उसने एकाएक कहा—"हे स्वतन्त्रते, देखो तेरे नाम पर कैसे कैसे अत्याचार हो रहे हैं ?"

ठीक है ! शायद संसार में जितने अत्याचार स्वतन्त्रता, सत्यता, न्याय और धर्म के नाम पर होते हैं उतने किसी अन्य वस्तु के नाम पर नहीं होते।

इधर क्रान्तिकारी अदालत प्रजा-तन्त्र के शत्रुओं का विध्वंस कर रही थी, उधर राष्ट्रीय महासभा फ्रांस की सामाजिक-अवस्था सुधारने में लगी हुई थी। उसके सदस्य पुराने ज़माने के रीति-रिवाज मिटा कर एक-दम नव-युग लाने का प्रयत्न कर रहे थे।

अन्य परिवर्तन

क्रान्ति के पश्चात् जब पुनर्निर्माण का समय आता है तब सबसे आवश्यक कार्य सुधार का होता है। परन्तु आवेश के इस युग में सुधार करनेवाले इतने आगे बढ़ जाते हैं कि वे सभी पुरानी वस्तुओं को नष्ट कर देना चाहते हैं, चाहे वह अच्छी हो अथवा बुरी। सुधार के इसी आवेश में आकर राष्ट्रीय सभा ने अपना काम शुरू किया। तौलने और मापने

के माप बदल दिये गये। समय के माप की नई विधि निकाली गई। संवत् बदल डाला गया। यहाँ तक कि नये 'केलेण्डर' में मासों के नाम तक बदल डाले गये।

सामाजिक सुधार के अनन्तर मज़हबी सुधार आरम्भ हुआ। लोगों का दिल पादरियों के पाखण्डों और मज़हबी मूर्त्ति-पूजा से इतना ऊबा हुआ था कि अब उनके मन में मूर्त्ति-भङ्ग करने की तरङ्ग बड़े वेग से चलने लगी। सभा ने राजा की क़ब्र को गिरा देने का आदेश दे डाला। लोगों ने पुराने ज़माने के असमता के सभी स्मारकों को मटियामेट कर दिया। सरदारी और राजत्व के चिह्नों को चकनाचूर कर दिया।

पृथ्वी के राजा को सिंहासन से उतारने के बाद उनका ध्यान आकाश के राजा को सिंहासन से उतारने की ओर गया। ईसाई-मज़हब को ही फ्रांस से हटा देने का प्रयत्न किया गया। विरोध के भय से केवल यह निर्णय हुआ कि हरएक को मज़हबी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। गिरजे आदि बन्द कर दिये गये और उनकी सम्पत्ति राष्ट्र की सम्पत्ति हो गई। गिरजों के घण्टे और मसीह तथा मरियम की धातु-मूर्त्तियों को गला कर क्रान्तिकारी नेताओं की मूर्त्तियाँ बनाई गईं। सलीब ('क्रॉस') के स्थान में 'गुइलोटीन' रक्खी गई।

ये सुधार शायद किसी हद तक ठीक हों किन्तु यहाँ भी उनकी समाप्ति नहीं हुई। एक नये प्रकार की मूर्त्ति-पूजा का

आविष्कार हुआ। पेरिस के सबसे बड़े गिरजे—नाटकडेम के कैथिड्रल—में बुद्धि की पूजा आरम्भ हुई। सभी गिरजे इस देवी की पूजा के मन्दिर बन गये। उस समय चारों ओर परिवर्तन ही परिवर्तन था। क्रान्तिकारी-आवेश और हर्ष की कोई सीमा न थी। सभी स्वतन्त्रता के गुण-गान करते थे। वे अब उस राज्य में पहुँच गये थे "जहाँ न पृथ्वी का राजा और न आकाश का राजा उन्हें दुःख दे सकता था।"

विभिन्न दल

अब विभिन्न दलों के आपस के झगड़े शुरू हुए। क्रान्तिकारियों के तीन दल थे, जिनके नेता क्रमशः डॉनटन, हेबेर और रोबेसपायर थे। डॉनटन एक साहसी, निर्द्वन्द्व और अतिशय अत्याचार का विरोधी था। हेबेर एक निष्कृष्ट एवं ईश्वरनिन्दक पत्र का सम्पादक था। यह बड़ा चालाक था और इसलिए शीघ्र ही बड़े से बड़े राज-समूह को अपने पीछे लगा लेता था। पेरिस की जनता को उकसाने में सबसे अधिक इसी का हाथ था। रोबेसपायर डॉनटन की नरमी और हेबेर की सख्ती का विरोधी था। अपने आपको सबसे ऊपर करने के लिए इसने दोनों दलों को दबाने का प्रयत्न किया। पहले डॉनटन-दल के साथ मिल उसने हेबेर का वध करवा दिया। तदनन्तर डॉनटन का नम्बर आया। इस प्रकार रोबेसपायर सर्वोपरि हो गया। किन्तु उसका अन्त भी निकट था।

रोबेसपायर ने शक्ति के प्राप्त होते ही एक नया

मज़हब जारी किया। ७ मई, १७९४ को राष्ट्रीय महासभा में उसने नीति और मज़हब पर एक व्याख्यान दिया और यह प्रस्ताव किया कि, (१) फ्रांसवासी ईश्वर के अस्तित्व और आत्मा के अमरत्व को स्वीकार करते हैं, (२) परमात्मा की वास्तविक उपासना मानव-धर्म का पालन करना है और (३) उनका कर्त्तव्य है कि वे अत्याचार तथा अधर्म से घृणा करें, अत्याचारियों तथा द्रोहियों को दण्ड दें, अत्याचार-पीड़ितों की सहायता करें और सबके साथ भलाई करें, बुराई किसी के साथ न करें। सभा ने यह प्रस्ताव स्वीकार करके उसे फ्रांस में जारी कर दिया।

पेरिस में घोर त्रास-राज्य की पराकाष्ठा (१७९४)

रोबेसपायर ने अब रक्षा-समिति के अत्याचारों को बन्द करने का निश्चय किया। समिति के सदस्यों ने उसका विरोध किया। उसने उनके विरुद्ध षड्यन्त्र करना आरम्भ कर दिया। समिति को इस बात का पता लग गया। इसलिए उसने रोबेसपायर को कुछ दिन जेल में रखने के बाद उसे गुइलोटीन की भेंट चढ़ा दिया। 'घोर त्रास-राज्य' की यह अन्तिम पराकाष्ठा थी।

इस कठोरता का फल यह निकला कि समस्त देश एकमत होकर अपने काम पर डट गया। स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने के लिए लोगों का आवेश पूर्ववत् बना रहा, और देश सारे आन्तरिक सङ्कटों से मुक्त होगया।

किन्तु फ्रांस के बाहर अन्य देशों में इस अत्याचार का प्रभाव बहुत बुरा हुआ, सर्वसाधारण क्रान्ति के विरुद्ध होगये; इतना ही नहीं, वे इससे घृणा करने लगे। कवियों ने इसके विरुद्ध कवितायें बनाना आरम्भ कर दीं।

विदेशों से युद्ध; फ्रांस की विजय

प्रजातन्त्र की सेनायें बाह्य आक्रमणकारियों के साथ तन्मय होकर युद्ध कर रही थीं। वे एल्प्स तथा पेरेनीस के पर्वतों तक जा पहुँचीं और इटली तथा स्पेन पर आक्रमण करने की तैयारियाँ करने लगीं। उत्तर में उन्होंने बेलजियम तथा हालैण्ड पर स्वत्व प्राप्त कर लिया। पूर्व में उन्होंने आस्ट्रिया और जर्मनी की सेनाओं को पीछे हटा दिया था।

फ्रांस के प्रजातन्त्र की सेनायें स्वतन्त्रता के भाव से लड़ रही थीं और उनकी पवित्र कामना ने उनके अन्दर ऐसा बल उत्पन्न कर दिया था कि सभी स्थानों पर उन्होंने राज-भक्तों की धन के लिए लड़नेवाली सेनाओं पर विजय पाई। इसका परिणाम यह हुआ कि मित्रों को फ्रांस के साथ सन्धि करना पड़ी और उसके प्रजातन्त्र को स्वीकार करना पड़ा। परन्तु अभी तक वह अपने घरेलू झंझटों से पूर्णरूपेण मुक्त नहीं हुआ था।

प्रजातन्त्र का जोश ठंढा हो रहा था। विभिन्न दल आपस में लड़कर उसे नष्ट कर चुके थे। असल में शासन

को कुछ समर्थ मनुष्यों के हाथ में सौंपने का समय आगया था। इसके लिए राष्ट्रीय महासभा ने एक नया नियम बनाया, जिसके अनुसार पाँच सदस्यों की एक समिति ('डायरेक्टरी') बनाई गई। शासन का सारा प्रबन्ध (एक्जीक्यूटिव कार्य) उसके सुपुर्द किया गया। इसके अतिरिक्त दो कौंसिलें—'एक पाँच सौ की कौंसिल' और दूसरी 'प्राचीन लोगों की कौंसिल'—भी बनाई गईं।

प्रबन्धकारिणी समिति (१७९५)

राष्ट्रीय महासभा के एक निर्णय से बिगड़कर पेरिस के एक जनसमूह ने, जिसमें अधिकतर जातीय सैनिक ही थे, उस पर धावा कर दिया। इसी समय कारसिका-द्वीप का एक नवयुवक रण-क्षेत्र में उतरता है। उसका नाम नेपोलियन बोनापार्ट था। उसकी सीधी-सादी शक्ल को देखकर कोई नहीं कह सकता था कि वह एक दिन फ्रांस का राजा होगा और संसार को जीतने का निश्चय करेगा। किन्तु काल और परिस्थिति ने अपने आप एक ऐसा मनुष्य बना दिया जिसकी उस समय फ्रांस को अत्यन्त आवश्यकता थी।

नेपोलियन का महासभा को बचाना—

नेपोलियन ने पेरिस के जन-समूह का ऐसा अच्छा मुकाबला किया कि जातीय सैनिकों को पीछे हटना पड़ा और राष्ट्रीय महासभा बच गई। इस साहस से प्रसन्न होकर

नई प्रबन्धकारिणी समिति ने नेपोलियन को सेना का सेना-नायक बना दिया।

इधर फ्रांस की सेनायें सभी जगह विजय प्राप्त कर रही थीं। फ्रांस की विजय फ्रांस के सिद्धान्तों की विजय थी। इँग्लेण्ड और आस्ट्रिया के सिवा फ्रांस ने शेष सब देशों को जीत लिया था। आस्ट्रिया को जीतने के लिए तीन जनरल भेजे गये, दो जर्मनी की सीमा पर और बोनापार्ट इटली में, जिससे वहाँ से आस्ट्रियावासी निकाल दिये जायँ।

जिस वीरता, साहस, योग्यता और तेज़ी से नेपोलियन ने एल्पस-पर्वतों को पार किया, वह एक दैवी चमत्कार से कम न था। नेपोलियन स्पेन के हेनीबाल जनरल से बाज़ी ले गया। इटली में पहुँचते ही उसने कई स्थलों पर आस्ट्रियावासियों को पराजित किया। इटली को विजित करने के पश्चात् वह आस्ट्रिया पर चढ़ाई करने को ही था कि वहाँ के राजा ने फ्रांस से सन्धि के लिए प्रार्थना की।

नेपोलियन का इटली पर आक्रमण (१७९६-१७९७)

इटली से लौटते समय इटलीवासियों ने नेपोलियन को मान-पत्र दिया, जिसके उत्तर में उसने कहा—"हमने तुमको स्वतन्त्रता प्रदान की है। देखो, इसे खो न बैठना! कई शताब्दियों के दासत्व से लुब्ध होने के कारण तुम स्वयं स्वतन्त्रता

इटली से वापसी पर पेरिस में स्वागत

प्राप्त करने के अयोग्य हो गये थे। किन्तु हमें विश्वास है कि इस नई स्वतन्त्रता से थोड़े ही वर्षों में तुम इतने समर्थ हो जाओगे कि कोई तुम्हारी स्वन्त्रता न छीन सकेगा। जब तक तुम निर्बल हो तब तक हमारी जाति तुम्हारी रक्षा करेगी।"

फ़्रांस में पहुँचने पर फ़्रांसवासियों ने नेपोलियन का बड़े समारोह के साथ स्वागत किया। उन्होंने उस दिन त्योहार मनाया और एक सार्वजनिक सभा की। उसमें नेपोलियन ने आस्ट्रिया का सन्धि-पत्र पढ़कर सुनाया।

अब केवल इंग्लेण्ड बाक़ी रह गया। नेपोलियन ने उसे छेड़ने के लिए एक विचित्र ढङ्ग निकाला। उसने सोचा कि इँग्लेण्ड पर सीधा आक्रमण करना सफल न होगा। इसलिए यदि मिस्र पर आक्रमण कर उसे विजित कर लिया जाय तो पूर्व का व्यापार फ़्रांस के हाथ में आ जायगा और इँग्लेण्ड के पूर्व के विजित प्रदेश उससे पृथक् हो जायँगे। चार सौ जहाज़ों का बेड़ा लेकर नेपोलियन मिस्र के लिए रवाना हुआ और मार्ग में माल्टा पर अपना अधिकार किर लिया।

मिस्र पर आक्रमण (१७९८–१७९९)

सिकन्दरिया बन्दर को विजय करने के पश्चात् नेपोलियन ने कैरो पर चढ़ाई की। जब वह ख़ुश्की पर घोर युद्ध कर रहा था तब समुद्र में इँग्लेण्ड का नौ-सेनानायक नेलसन

उसके बेड़े का विध्वंस कर रहा था। कैरो की विजय के बाद ही उसे इसकी सूचना मिली। वह मिस्र में ठहरकर उसका शासन-प्रबन्ध करने लगा। तुर्कों ने अँगरेज़ों से मिलकर मिस्र लेने का निश्चय किया। नेपोलियन सेना लेकर सीरिया में उनको दबाने के लिए गया। परन्तु आकेर-नामक स्थान में उसे पराजय मिली, जिसका परिणाम यह हुआ कि योरुपीय शक्तियाँ फिर उसके विरुद्ध होगईं। सीरिया से लौटकर वह फिर मिस्र आया। यहाँ फिर उसकी पराजय विजय में परिवर्तित होगई।

प्रतिक्रिया—प्रबन्ध-कारिणी समिति का निपातन (१७९९)

अभी वह मिस्र में ही था कि उसे यह समाचार मिला कि फ्रांस धीरे धीरे अपने विजित प्रदेश खो रहा है और लोग प्रबन्धकारिणी समिति के विरोधी हो रहे हैं। क्योंकि उसने नेपोलियन जैसे श्रेष्ठ सेनानायक को, जो शत्रुओं का दमन कर सकता था, इतना दूर भेज दिया है। नेपोलियन को फ्रांस वापस जाना पड़ा। फ्रांसवासी यह अनुभव कर रहे थे कि अब उन्हें एक आदेशक की आवश्यकता है। प्रबन्धकारिणी के एक सदस्य सीएयंस, और क़ानूनी कौंसिल के कुछ सदस्यों ने नेपोलियन से मिल कर एक षड्यन्त्र रचा और एकाएक प्रबन्धकारिणी समिति को उलट दिया। परिणाम-स्वरूप बोनापार्ट फ्रांस का स्वामी बन गया। इस प्रकार फ्रांस में प्रजातन्त्र के साथ साथ राज्य-

क्रान्ति का भी अन्त हो गया। अब फ्रांसीसी साम्राज्य का इतिहास प्रारम्भ होता है। किन्तु इस साम्राज्य का इतिहास एक मनुष्य के जीवन का इतिहास है, जो एक सितारे के समान आकाश-पटल पर चमक कर थोड़ी ही देर में छिप जाता है।

ग्यारहवाँ अध्याय

नेपोलियन का साम्राज्य तथा योरुपीय जातियों का स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन

इँग्लेण्ड की क्रान्ति शान्ति से सफल हुई थी, किन्तु फ्रांस की क्रान्ति, यद्यपि वह उससे बड़ी थी और उसके परिणाम भी महान् थे, अपने उद्देश में असफल हुई। असफलता का एक बड़ा कारण यह था कि फ्रांस के क्रान्तिप्रिय शासन ने अपने सिद्धान्तों को समस्त योरुप में फैलाने का निश्चय किया और इस उद्देश की पूर्ति के लिए उसे योरुप के अन्य शासकों से युद्ध करने पड़े। जिन युद्धों को उसने अन्य देशों में प्रजातन्त्र स्थापित करने के लिए आरम्भ किया था उन्होंने न केवल फ्रांस में प्रजातन्त्र का अन्त कर दिया, प्रत्युत योरुप के अन्य देशों में भी एक राजतन्त्र शासन सुदृढ़ कर दिये। फ्रांस की प्रबन्धकारिणी समिति के शासन ने जिन सैनिकों को इटली में स्वतन्त्रता और समता के सिद्धान्त प्रचलित करने के लिए रवाना किया, उनके सामने उनके सेनानायक नेपोलियन ने युद्ध का एक नया चित्र खींचा। उसने उनसे कहा—"सैन्यवीरो, मैं जानता हूँ कि तुम भूखे और नंगे हो, किन्तु

फ्रांस की राज्य-क्रान्ति की असफलता

जिस देश में मैं तुम्हें ले जाना चाहता हूँ उसमें अनेक धन-धान्य-पूर्ण नगर हैं, उन्हें विजित करने से तुम्हें धन तथा मान प्राप्त होगा। केवल साहस रखना तुम्हारा काम है।"

फ्रांस के सैनिकों का जोश सिद्धान्तों के प्रचार के लिए न था, बल्कि अपने देश तथा सेनानायक की प्रसिद्धि बढ़ाने के लिए। इटली और आस्ट्रिया को नीचा दिखाने के बाद नेपोलियन के सामने एक ही बड़ा शत्रु रह गया। वह था इँग्लेण्ड। जब नेपोलियन अपनी सेना के साथ मिस्र को रवाना हुआ तब उसका उद्देश पहले से भी अधिक स्पष्ट होगया। वह मिस्र को विजित करके इँग्लेण्ड के भारतीय साम्राज्य के समान एक फ्रेञ्च-साम्राज्य बनाना चाहता था। पर उसके मिस्र और सीरिया में चले जाने से फ्रांस का शासन निर्बल हो गया और योरुप की संयुक्त शक्ति ने उसके स्थापित किये हुए प्रजातन्त्र-राज्य का अन्त कर दिया। जब उसे अपने घर की अशान्ति की ख़बर लगी तब उसने अपने मन में एक बड़ा निश्चय किया, जो उसके एक वाक्य से स्पष्ट हो जाता है—'वकीलों के शासन का युग अब समाप्त होता है'।

विमर्शदाता तथा सैनिक निर्देशक

वह स्वदेश लौटा और एक ही ठोकर से प्रबन्धकारिणी समिति का विध्वंस कर दिया। क्रान्ति समाप्त हो गई और बोना-पार्ट फ्रांस का स्वामी बन गया। यद्यपि नये विधान के अनुसार जो क्रमानुसार फ्रांस का चौथा विधान था, फ्रांस के शासन की

सारी शक्ति तीन विमर्शदाताओं ('कॉनसल') के हाथ में चली गई, परन्तु वास्तव में एक ही विमर्शदाता था। उसी के हाथ में सभी अधिकार थे और वही फ्रांस का सैनिक निर्देशक था। निर्देशक के अतिरिक्त और चार सभायें भी थीं, जिसके सदस्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कॉनसल चुनते थे—राज-सभा ('कौंसिल आव् स्टेट'), न्याय-सभा ('ट्रिब्नेट'), व्यवस्थापिका सभा ('लेजिस्लेचर') और सेनेट।

बोनापार्ट से इँग्लेण्ड की शत्रुता के कारण

शक्ति के आते ही नेपोलियन आस्ट्रिया और इँग्लेण्ड के साथ सन्धि के लिए तैयार होगया। आस्ट्रिया के लिए केवल यही शर्त थी कि वह लम्बार्डी-प्रदेश से अपना अधिकार हटा ले। पर उसने इस शर्त को अस्वीकार किया। इस समय इँग्लेण्ड का प्रधान मंत्री छोटा पिट था। वह नेपोलियन को पसन्द नहीं करता था क्योंकि वह उसे राज्य-क्रान्ति के जेकोबिन (वह क्लब जिसका नेता रोबेसपायर था) दल का प्रतिनिधि समझता था। उसका यह विचार भी था कि नेपोलियन का शासन अधिक समय तक नहीं टिकेगा क्योंकि फ्रांस में अधिक समय तक युद्ध करने का सामर्थ्य नहीं है। परन्तु इँग्लेण्ड के वैर का वास्तविक कारण थी फ्रांस की शक्ति से उसकी एक विशेष प्रकार की ईर्ष्या। फ्रांस नीदरलेण्ड पर अधिकार कर चुका था और इँग्लेण्ड को भय था कि कहीं एण्टवर्प लंदन के बराबरी का व्यापार-केन्द्र न बन जाय।

इसके साथ ही नेपोलियन भूमध्यसागर पर स्वत्व प्राप्त करके इँग्लेण्ड के व्यापारिक महत्त्व और उपनिवेशों के विस्तार को रोक सकता था। इसलिए इँग्लेण्ड फ्रांस के साथ सन्धि नहीं कर सकता था।

नेपोलियन ने जब सन्धि होते न देखी तब उसने पहले आस्ट्रिया पर दो ओर से आक्रमण किया—एक राइन-नदी के मार्ग से और दूसरा स्वयं सेना लेकर इटली से। सन् १८०० के वसन्त-ऋतु में एल्प्स पर्वतों को पार करके वह चालीस हज़ार सेना लिये पीडमॉण्ट पहुँचा और मिरेंगो-रणक्षेत्र में संख्या में अपनी सेना से कहीं बड़ी आस्ट्रियन-सेना को पराजित किया।

आस्ट्रिया के साथ युद्ध (१८०१)

उधर जनरल मोरो ने भी आस्ट्रियन-सेना पर विजय पाई और विएना की ओर बढ़ा। सम्राट् फ्रैंसिस सन्धि के लिए विवश हो गया। उसने आस्ट्रियन नीदरलेण्ड को फ्रांस के सुपुर्द कर दिया और राईन-नदी को फ्रांस की पूर्वी सीमा मानने के साथ साथ चारों प्रजातन्त्र-राज्यों को स्वीकार कर लिया। पर सबसे बड़ी शर्त जर्मनी का नये सिरे से विभाजन करना था।

इँग्लेण्ड ने भी मार्च १८०२ में आमियङ्स नगर में फ्रांस से सन्धि कर ली, जिसके अनुसार इँग्लेण्ड ने वे बस्तियाँ, जो फ्रांस और उसके मित्र, नीदरलेण्ड और स्पेन ने विजित की थीं, वापस कर दीं और माल्टा-द्वीप से

आमियङ्स में इँग्लेण्ड से सन्धि (१८०२)

भी निकल जाने की प्रतिज्ञा की। फ्रांस ने नेपल्स और पोप के राज्य से अपनी सेनायें हटा लीं।

तत्पश्चात् नेपोलियन ने फ्रांसीसी औपनिवेशिक साम्राज्य बनाने की ओर ध्यान दिया। टस्कनी की डची स्पेन को देने के बाद उसने लुइसियाना फ्रांस के साथ सम्मिलित कर लिया। हिन्द-पश्चिमी द्वीपसमूह की बस्तियाँ इँग्लैण्ड की सन्धि के अनुसार वापस कर दी गईं।

इसके बाद बोनापार्ट ने फ्रांस के लिए वह कार्य किया, जो उसे संसार का एक बड़ा भारी सामाजिक सुधारक बना देता है। उसका केवल यही कार्य फ्रांस के स्थायी हित के लिए हुआ। इस दृष्टि से हम बोनापार्ट को क्रान्ति की उत्पत्ति नहीं कह सकते बल्कि उसकी उन राजाओं में गणना करते हैं, जिन्होंने अपने अनियन्त्रित शासन के द्वारा अपने देश की उन्नति करने का प्रयत्न किया है। उसने देश-निर्वासित मनुष्यों को वापस बुला लिया। चालीस हज़ार परिवार फ्रांस में लौट आये। सभी बन्दियों को रिहा कर दिया और ये पुराने सभी जख़्मों को भुला देने का प्रयत्न किया।

नेपोलियन एक व्युत्पन्न राजा के रूप में; फ्रांस का पुनर्जनन; सिविल क़ानून

अब फ्रांस में कोई दल न रह गया, वरन् सभी फ्रांसीसी हो गये। पर नेपोलियन के सामने एक बड़ी समस्या थी। मज़हबी दृष्टि से जाति दो मज़हबी दलों में बँटी हुई थी। पादरियों को

वेतन नहीं मिलता था और बहुत से गिरजों में विवाह की साधारण कार्रवाई भी नहीं होती थी। बोनापार्ट ने १५ जुलाई, १८०१ को पोप के साथ एक सन्धि की। उसके अनुसार उसने दोनों दलों में से बिशप और आर्चबिशप नियुक्त करने का कार्य अपने ज़िम्मे ले लिया, पादरियों को सरकारी कोष से वेतन दिये जाने लगे और पोप फ़्रांस के चर्च का प्रमुख स्वीकार किया गया। इस सन्धि से मज़हबी दृष्टि से फ़्रांस फिर एक देश होगया।

बोनापार्ट ने फ़्रांस की उन सड़कों और नहरों को जो क्रान्ति-युग में बिलकुल ख़राब हो गई थीं, नये सिरे से बनवाया। पुराने स्मारक और नई इमारतें बनवाईं। फ़्रांस की सुन्दरता को बढ़ाया और फ़्रांस में विश्वविद्यालय स्थापित किया।

परन्तु उसका सबसे बड़ा कार्य एक दीवानी क़ानून ('सिविल') नियम-संहिता तैयार करना था। पाँच प्रसिद्ध क़ानून-दलों का एक कमीशन नियुक्त किया गया। उसकी वह स्वयं भी सहायता करता था। चार वर्ष के परिश्रम के पश्चात् उन्होंने फ़्रांस की पुरानी रीति-रस्मों, रोमन-क़ानून तथा पेगन और ईसाई कथाओं को एकत्र करके और उन्हें क्रान्ति के सिद्धान्तों के अनुसार ढालकर एक ऐसी नियम-संहिता बनाई कि नेपोलियन को उस समय का 'जस्टिनियन' कहना उचित होगा। अब इसी क्रान्ति के सिद्धान्तों ने स्थायी रूप धारण कर लिया। इससे क़ानून की दृष्टि में धनी और निर्धन एक समान

हो गये। इटली, स्पेन, जर्मनी, हालैण्ड आदि देशों के कानूनों पर भी इसने बड़ा प्रभाव डाला।

अगस्त, १८०२ में फ्रांस ने एकमत से यह निश्चित किया कि नेपोलियन को जीवन भर के लिए पहला

जीवनपर्यन्त 'कान्सल'

दिमर्शदाता बनाया जाय, जिससे वह देश के सुधार को जारी रख सके। नेपोलियन की मानसिक अवस्था उस समय कैसी थी, यह उस सभा से प्रकट होती है, जो उसने जागीरदारी ('फ्यूडल') के नमूने पर बनाई थी और जिसका नाम उसने 'माननीय चमू' ('लीजन आव् हॉनर') रक्खा था। इस सभा में फिर से पुराने बिल्ले इस्तेमाल किये जाने लगे। कई लोग नेपोलियन की इस संस्था को समता-सिद्धान्त के विरुद्ध समझते थे और जब वे इन बिल्लों को बालकों के खिलौने समझकर उनकी हँसी उड़ाते थे तब बोनापार्ट कहा करता था: "इन्हीं खिलौनों से मनुष्य वश में किये जा सकते हैं। ये वस्तुएँ लोगों के लिए निरर्थक नहीं हैं।"

सन् १८०४ में राज-भक्त-दल के कुछ मनुष्यों ने नेपोलियन का वध करने और बोरबोन राजकुमार आङ्गि आङ्ग के

नेपोलियन के विरुद्ध षड्यन्त्र; आङ्गि आङ्ग के ड्यूक का वध (१८०४)

ड्यूक को सिंहासन पर बैठाने के लिए एक षड्यन्त्र रचा। उसमें कुछ अँगरेज़ अफ़सर भी सम्मिलित थे। नेपोलियन को इसका पता लग

गया। एक सैनिक-अदालत के निर्णय के अनुसार आधी रात को सैनिकों ने अभियुक्तों का वध करके उन्हें भूमि में गाड़ दिया। नेपोलियन की यह एक ऐसी भूल थी, जो उसके पतन का एक कारण हुई। इस षड्यन्त्र का परिणाम यह हुआ कि समस्त देश में नेपोलियन के शत्रुओं के विरुद्ध एक जोश सा पैदा हो गया।

सेनेट ने लोगों के सामने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि नेपोलियन को सम्राट् बनाया जाय। बहुमत (३५,७२, ३२६ पक्ष में और २,५६६ विपक्ष में) से यह स्वीकृत हुआ और २ दिसम्बर, १८०४ को पोप पायस सातवें ने नाटर-डेम के गिरजे में नेपोलियन का राज्याभिषेक किया। बोनापार्ट राजा बनकर बोरबोन-वंश का उत्तराधिकारी नहीं बनना चाहता था, प्रत्युत शार्लेमन और सीज़र का। कुछ ही दिनों के भीतर पादरी नवयुवकों को यह शिक्षा देने लगे कि सम्राट् ईश्वर का मन्त्री और छाया है; उसकी आज्ञा का पालन करना और उसका आदर करना ईश्वर का आदर करना है।

नेपोलियन ने ट्यूलेरी के राजप्रासादों में वास करना आरम्भ किया। फ्रांस के प्रजातन्त्र के स्थान में अब फ्रेंच-साम्राज्य स्थापित हो गया। उसके दो वर्ष के बाद तीन प्रजातन्त्रों को राज्यों का रूप दे दिया गया। इटली के प्रजातन्त्र का शासन भी नेपोलियन ने

प्रजातन्त्रों का राज्यों में परिवर्तन; पुराने राजाओं को भय होना

अपने हाथ में ले लिया। उसने भी शार्लमेन के समान लम्बार्डी का लौहमुकुट मिलन-नगर में अपने सिर पर रक्खा। कुछ समय के पश्चात् लाइग्युरियन प्रजातन्त्र भी, जिसमें जनेवा और पेडमोण्ट सम्मिलित थे, फ्रेंच साम्राज्य में मिला लिया गया। अगले वर्ष बटेवियन प्रजातन्त्र के स्थान में अपने भाई लुइस को हालैण्ड का राजा बना दिया। इस प्रकार क्रान्ति का राजनैतिक कार्य और स्वतन्त्रता का अन्त होगया। नेपोलियन ने स्वयं कहा है—"जब क्रान्ति ने मेरे मार्ग में रोड़ा अटकाया तब मैंने उसे एक ओर हटा दिया।"

योरुप के सभी पुराने राजा नेपोलियन के इस नये साम्राज्य को देखकर काँपने लगे। सबसे अधिक भय इँग्लेण्ड को हुआ। इसलिए उसने बहुत सा धन व्यय करके कई सन्धियाँ कीं, पहले इस विचार से कि फ्रांस को दबाया जाय और फिर इस विचार से कि कहीं नेपोलियन योरुप की शान्ति को भङ्ग न कर दे।

इसलिए आमीं-अङ्गस की सन्धि थोड़े ही दिन चली। दोनों ओर से युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। इँग्लेण्ड पर आक्रमण करने के लिए नेपोलियन ने १८०३ के आरम्भ से ही बोलोन में एक सेना एकत्र करके बहुत ही भावें बनाना आरम्भ कर दिया था। फ्रांस का 'प्रेस' (समाचार-पत्र)

इँग्लेण्ड के साथ युद्ध की तैयारी (१८०३-१८०५)

खूब चिल्ला रहा था, "कॉर्थेज का विध्वंस कर देना चाहिए!" स्वयं नेपोलियन ने कहा था—"यदि केवल छः घंटे के लिए हम अँगरेज़ो चेनल के स्वामी होगये तो हम सारी दुनिया के स्वामी बन जायँगे।"

नेपोलियन की तैयारी का पहला काम यह था कि उसने लुइसिनिया को अमरीका के हाथ पन्द्रह लाख डालर में बेच दिया। इसे बोनापार्ट ने कुछ ही समय पहले स्पेन से प्राप्त किया था। पर समुद्री सेना की पर्याप्त-संख्या न होने से वह इसकी रक्षा न कर सकता था। परन्तु ये सारी बातें इँग्लेण्ड पर नहीं बल्कि आस्ट्रिया पर आक्रमण करने के लिए की जा रही थीं।

कहा जाता है कि फुल्टन-नामक एक अमरीकन आविष्कारक ने बाष्प से जहाज़ चलाने की युक्ति नेपो-लियन के सामने रक्खी थी। यदि वह इससे लाभ उठाता तो वह सब कुछ कर सकता था। किन्तु उसने उस समय उसकी कुछ भी परवा न की।

नेपोलियन के आक्रमण की तैयारी से इँग्लेण्ड को बड़ा डर लगा। प्रधान मन्त्री पिट भी फ्रांस के विरुद्ध सन्धि करने का प्रयत्न कर रहा था। रूस और आस्ट्रिया इँग्लेण्ड के साथ मिल गये। जब बोनापार्ट को इसकी ख़बर लगी तब उसने अपनी सेना बोलोन से हटाकर और राईन-नदी को पार करके आस्ट्रिया की सेना का एक बड़ा भारी भाग जा पकड़ा और

आस्ट्रिया पर आक्रमण (१८०५)

विएना में से 'मार्च' करता हुआ आस्टरलिट्ज़ के रण-क्षेत्र में जा पहुँचा। यहाँ उसने आस्ट्रिया और रूस को पराजित किया। आस्ट्रिया के वेनिस से हटने पर उसने उसे इटली के नये राज्य में सम्मिलित कर लिया। इसके अतिरिक्त आस्ट्रिया से टाइरोल आदि प्रदेश प्राप्त करके वे बावेरिया के साथ मिला दिये गये।

आस्टरलिट्ज़ की पराजय का समाचार सुनकर पिट को बड़ा खेद हुआ। उसने अपने नौकर से कहा—"योरुप का मानचित्र लपेट दो। अब कुछ समय के लिए इसकी आवश्यकता नहीं रहेगी।" थोड़ी देर के पश्चात् पिट का देहावसान होगया। अनुमान से कहा जाता है कि पिट की मृत्यु का एक कारण यही आस्टरलिट्ज़ था।

जर्मनी का पुनःसंङ्गठन; राईन का 'कान्फेडरेशन' पवित्र साम्राज्य का अन्त (१८०६)

अब नेपोलियन ने जर्मन-साम्राज्य को पुनः सङ्गठित करना प्रारम्भ किया। ऐसा करने से बोनापार्ट का उद्देश कुछ जर्मनी की उन्नति करना न था, प्रत्युत उसे दृढ़ता से अपने वश में रखना था। एक ओर फ्रांस था और दूसरी ओर आस्ट्रिया तथा प्रशिया। दोनों के बीच 'बफ़र' राज्य का काम देने के लिए वह पश्चिमी जर्मनी के राज्यों की संख्या कम करना चाहता था। इसलिए तीन सौ से अधिक जर्मन राज्यों को घटाकर उसने केवल चालीस रहने दिये। बावेरिया और वरटेम्बर्ग के राज्यों का अधिक

विस्तार करके उसने उनके शासकों को राजा की उपाधियाँ दे दीं और उनके साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित किये।

अब सोलह बड़े-बड़े राज्यों ने अपने आपको पवित्र रोमन साम्राज्य से मुक्त बताया और नेपोलियन के अधीन एक 'लीग' बनाई, जिसका नाम उन्होंने 'राईन कानफ़ेड्रेशन' रक्खा। नेपोलियन ने अपने सभी अधिकृत राज्यों को रोमन साम्राज्य के आज्ञापालन की प्रतिज्ञा से मुक्त कर दिया। फ़्रेंसिस द्वितीय ने यह समझकर कि उसका पद हटा दिया गया है, अपने आपको फ़्रेंसिस प्रथम, आस्ट्रिया का सम्राट् कहना आरम्भ कर दिया।

इस प्रकार सीज़र और शालेमेन के रोमन-साम्राज्य का अस्तित्व और नाम—दोनों मिट गये। पर जर्मनी के इस नये सङ्गठन से एक नई जर्मन-जाति और नया जर्मन-साम्राज्य उत्पन्न हुआ। जर्मनी के अन्दर वह देशप्रेम पैदा हुआ, जिसका फल हम आज वर्तमान युग में देख रहे हैं। राईन-कानफ़ेड्रेशन के राज्यों में नेपोलियन ने अपना नया क़ानूनी ज़ाब्ता जारी किया, 'सर्फडम' या दासता-प्रथा को दूर कर दिया, धनवान् और निर्धन में बराबरी पैदा कर दी और वे सब सामाजिक सुधार किये जो पहले फ्रांस में किये गये थे।

जर्मनी के पुनर्सङ्गठन के सुपरिणाम

इस समय में नेपोलियन के लिए एक दुर्घटना हुई। वह यह थी कि अँगरेज़ नौ-सेनानायक लार्ड नेलसन ने,

जिसने कुछ वर्ष पहले नील-नदी के युद्ध में नेपोलियन के बेड़े को पराजित किया था, अब दूसरी बार २१ अक्टूबर, १८०५ को स्पेन के तट पर ट्रफ़ैलगार के निकट फ्रांस और स्पेन की सम्मिलित नौ-सेना को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

ट्रफ़लगार में पराजय (१८०५)

यद्यपि इसमें लार्ड नेलसन की मृत्यु हुई। अन्तिम समय में उसने कहा था "ईश्वर को धन्यवाद है कि मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया है", तथापि यह एक निर्णायक युद्ध था। इससे इँग्लेण्ड का समुद्र पर पूर्ण अधिकार होगया।

आस्ट्रिया के पश्चात् नेपोलियन ने अपना मुख प्रशिया की ओर फेरा। प्रशिया का राजा फ्रेड्रिक विलियम तृतीय अभी तक नेपोलियन के विरुद्ध सन्धि करने के लिए नहीं बढ़ा। जब आस्ट्रिया को बार-बार पराजय हो रही थी तब वह चुपचाप मौनावलम्बन से लाभ उठा रहा था। आस्टरलिट्ज़ के युद्ध के पश्चात् वह नेपोलियन के शत्रुओं के साथ मिल गया। परन्तु महान् फ्रेड्रिक की मृत्यु के अनन्तर प्रशिया का सैन्य-बल बहुत कमज़ोर हो गया था। येना और ओएरस्टेट के दो युद्धों में नेपोलियन ने प्रशिया की सेना को पराजित कर दिया। प्रशियन सेनाधिकारी बड़े भीरु सिद्ध हुए। नेपोलियन की सेना ने विजेता के रूप में जर्मनी में प्रवेश किया। इस प्रकार उसने एक मास में वह कर दिखाया जो योरुप की संयुक्त शक्तियाँ

प्रशिया पर आक्रमण, रूस की पराजय (१८०७)

सात वर्ष के युद्ध में न कर सकी। महान फ़्रेड्रिक की खड्ग और अनेक विजय-चिह्न बर्लिन से पेरिस भेज दिये गये।

पर रूस के सम्राट् ने जो सेना प्रशिया की सहायता के लिए भेजी थी वह अब भी युद्ध-क्षेत्र में खड़ी थी। १८०७ में नेपोलियन ने आइलौ और फ्रीटलाण्ट के स्थलों पर उसे पराजय करके रूस को भी सन्धि के लिए विवश कर दिया।

टिलसिट की सन्धि (१८०७) संसार का विभाजन

टिलसिट पर ज़ार अलकज़ाण्डर और नेपोलियन में कई बार भेंट हुई, उनका विषय यह था कि किस प्रकार संसार का विभाजन करके पश्चिमी और पूर्वी साम्राज्य स्थापित किये जायँ—पश्चिमी फ़्रांस के अधीन हो और पूर्वी रूस के। इस अभिप्राय से दोनों ने स्थायी मैत्री करके इँग्लेण्ड का उच्छेद करने का निश्चय किया। दोनों ने एक-दूसरे को अपने साथ आवश्यक प्रदेश सम्मिलित करने में सहायता करने की प्रतिज्ञा की—रूस ने फ़्रांस को आइओनियन द्वीप प्राप्त करने तथा इँग्लेण्ड के लिए रूस के सभी बन्दर बन्द करने की प्रतिज्ञा की और नेपोलियन ने पोलैण्ड के देश-भक्तों की आशाओं पर पानी फेरकर, जो वे नेपोलियन से बाँधे हुए थे, पोलेण्ड को रूस के सुपुर्द कर देने की प्रतिज्ञा की।

पर नेपोलियन प्रशिया का उन्मूलन करना चाहता था, पर अलकज़ाण्डर अपने और फ़्रेञ्च-साम्राज्य के बीच में एक अवरोध

के तौर पर उसे रहने देना चाहता था। फ्रेड्रिक विलियम की देश-भक्त और रूपवती रानी ने व्यक्तिगत रूप से नेपोलियन से प्रार्थना की और इस प्रकार प्रशिया के लिए कुछ सेना रखने की अनुज्ञा प्राप्त की। प्रशिया से पोलेण्ड लेने के अतिरिक्त नेपोलियन ने एल्ब-नदी का पश्चिमी प्रदेश भी लिया और उसके वेस्टफेलिया का एक राज्य बनाया और उसे अपने भाई जेरोम को दे दिया।

टिलसिट की सन्धि के पश्चात् नेपोलियन को केवल एक ही शत्रु—इँग्लेण्ड का उन्मूलन करना शेष रह गया था। इस अभिप्राय से उसने जहाज़ी नाका-बन्दी करने का निश्चय किया जिसका अर्थ यह था कि योरुप को इँग्लेण्ड के साथ व्यापार बन्द करने के लिए विवश किया जाय।

योरुप में जहाज़ी नाका-बन्दी; बर्लिन और मिलन के निर्देश (१८०६-१८०७)

इसके सिवा इँग्लेण्ड की विजय का उसके लिए कोई मार्ग ही न था। इसलिए नेपोलियन ने बर्लिन और मिलन से दो निर्देश निकाले कि योरुप को इँग्लेण्ड के लिए अपने सारे बन्दर बन्द कर देना चाहिए। जिससे इँग्लेण्ड का योरुप की अन्य जातियों के साथ कोई सम्बन्ध न रह जाय।

पर नेपोलियन की यह नीति इँग्लेण्ड के बजाय फ्रांस के लिए ही अहितकर सिद्ध हुई। क्योंकि नेपोलियन के पास

नौ-सेना पहले ही से कम थी और रही-सही का नेलसन ने ख़ातमा कर दिया था। इसलिए वह नाकाबन्दी की चाल में सफल न हो सका। इसके विपरीत अँगरेज़ी माल गुप्त-रूप से अत्यधिक मात्रा में विभिन्न देशों में पहुँचने लगा और अधिक मूल्य पर बिकने के कारण इँग्लेण्ड को पहले से अधिक लाभ होने लगा। कहा तो यहाँ तक जाता है कि नेपोलियन के सैनिकों के बूट और वर्दियाँ भी इँग्लेण्ड की बनी हुई थीं।

नेपोलियन पर इसका यह प्रभाव पड़ा कि योरुप के जिन व्यापार-केन्द्रों का व्यापार नष्ट हो गया था वहाँ के निवासी नेपोलियन से जलने लगे। दर्जनों राजाओं को सिंहासनों से उतार देने से बोनापार्ट के विरुद्ध इतनी घृणा उत्पन्न न हो सकती थी जितनी इस नाकाबन्दी ने कर दी।

इँग्लेण्ड का डेनमार्क के जहाज़ों पर अधिकार (१८०७)

टिलसिट की सन्धि में एक गुप्त शर्त यह भी थी कि डेनमार्क और पुर्तगाल (यद्यपि वे इँग्लेण्ड के शत्रु न थे) के जहाज़ों पर अधिकार करके उन्हें नाकाबन्दी के लिए प्रयुक्त किया जाय। ये दोनों देश अभी तक तटस्थ थे। इँग्लेण्ड को इस शर्त का ज्ञान हो गया, इसलिए उसने पहले से ही डेनमार्क के जहाज़ी बेड़े पर अपना स्वत्व करना चाहा। डेनमार्क-गवर्नमेण्ट इस पर राज़ी न थी। पर इँग्लेण्ड ने कोपनहेगन पर आक्रमण करके उसके जहाज़ों को जा दबाया। इस

प्रबलता ने डेनमार्क को इँग्लेण्ड के विरुद्ध कर दिया और वह नेपोलियन के साथ जा मिला।

नेपोलियन का पुर्तुगाल पर अधिकार (१८०७), स्पेन में राजद्रोह (१८०८)

पुर्तुगाल की अँगरेज़ों से मैत्री थी। इसलिए नेपोलियन ने पुर्तुगाल में एक सेनानायक भेजकर उसे अपने राज्य में मिला लिया। पुर्तुगाल का राजवंश अपने बेड़े को साथ लेकर ब्राज़ील चला गया।

पुर्तुगाल के पश्चात् नेपोलियन ने स्पेन के निर्बल बोर्बोन वंश के राजा चार्लेस चौथे को भी यह परामर्श दिया कि तुम अपने मुकुट को मेरे हवाले कर दो। नेपोलियन ने स्पेन का मुकुट अपने भाई जोज़फ़ के सिर पर रख दिया था और जोज़फ़ के स्थान में अपने सेनानायक मोरो को नेपल्ज़ का राजा बना दिया। इसे स्पेनवासियों ने अपना अपमान समझा और वे सब नेपोलियन के विरुद्ध उठ खड़े हो गये। पुर्तुगाल भी उनके साथ होलिया। इँग्लेण्ड ने इस सुयोग से लाभ उठाकर वेलिङ्गटन के ड्यूक को सेना देकर उनकी सहायता के लिए भेजा। स्पेन में पहली बार फ़्रांसीसी सेना को पराजय मिली। जोज़फ़ को आठ ही दिन के बाद अपना नया सिंहासन छोड़कर भागना पड़ा। जनरल मोरो को भी पराजित होकर पुर्तुगाल ख़ाली करना पड़ा। तब नेपोलियन ने यह अनुभव किया कि अपने अधिकार को पूर्ववत् बनाये रखने के लिए उसे स्वयं स्पेन जाना चाहिए।

परन्तु उसके लिए स्पेन जाने से पहले ज़ार के साथ एक बार मिलना आवश्यक था। इसलिए एरफ़र्ट के स्थल पर नेपोलियन ने राजाओं की एक कांग्रेस की, जहाँ ज़ार की सन्धि फिर दुहराई गई। इसी स्थान पर नेपोलियन की प्रसिद्ध जर्मन-कवि गेटि से भेंट हुई। वह सम्राट् की 'आदरणीय चमू' का सदस्य बना।

एरफ़र्ट पर कांग्रेस नेपोलियन स्पेन में (१८०८)

नवम्बर १८०८ में नेपोलियन स्वयं एक लाख सेना ले कर स्पेन की राजधानी मेड्रिड में प्रविष्ट हुआ और स्पेन का राज-मुकुट दुबारा अपने भाई जोज़फ़ के सिर पर रक्खा। तत्पश्चात् उसने अँगरेज़ी सेना का पीछा करना आरम्भ किया।

लेकिन इस समय उसे एक यह संवाद प्राप्त हुआ कि आस्ट्रिया का सम्राट् फ्रेंसिस युद्ध के लिए तैयारी कर रहा है। अतएव अँगरेज़ी सेना को वहीं छोड़ कर वह पेरिस आया। दो-एक लड़ाइयों के पश्चात् आस्ट्रिया फिर उसके चरणों में आ गिरा। फ्रेंसिस ने एड्रियाटिक सागर के किनारे के केरनियोला और इस्ट्रिया के प्रदेश नेपोलियन को दे दिये।

नेपोलियन का आस्ट्रिया पर तीसरा आक्रमण (१८०९); पोप के राज्य का साम्राज्य में अन्तर्गत होना।

पोप पायस सातवें ने नाकाबन्दी के आज्ञानुसार

आदरण नहीं किया था, इसलिए नेपोलियन ने उसका राज्य छीनकर अपने राज्य में मिला लिया और पोप के सभी दफ़्तर रोम से उठवाकर पेरिस भिजवा दिये। क्योंकि वह चाहता था कि पेरिस को चर्च का केन्द्र बनाकर मैं ही स्वयं राजनैतिक और मज़हबी संसारों का प्रमुख बन जाऊँ।

नेपोलियन का दूसरा विवाह (१८१०) साम्राज्य का विस्तार (१८११)

आस्ट्रिया के तीसरे युद्ध के अनन्तर नेपोलियन ने अपनी पहली रानी जोज़फ़ाइन से सम्बन्ध-त्याग कर दिया और आस्ट्रिया की राजकुमारी मेरी लुइसी का पाणिग्रहण उसने इसलिए किया कि अपना सम्बन्ध एक पुराने राजवंश से स्थापित करके अपनी सन्तति में राजवंशीय रक्त उत्पन्न करे। इस सम्बन्ध से जर्मनी में आस्ट्रिया के राजा का पद नीचा हो गया। इस समय से प्रशिया जर्मनी के शेष राज्यों में अगुआ बनने लगा।

तदनन्तर नेपोलियन ने हॉलेण्ड और जर्मनी के तटवर्ती प्रदेश को अपने राज्य में सम्मिलित करके अपने साम्राज्य का विस्तार मानो पूर्ण कर दिया। इसका साम्राज्य लुबेक से लेकर रोम के परे तक और फ़्रांस, नीदरलेण्ड, जर्मनी, पश्चिमी इटली और नेपल्ज़ के ऊपर तक फैला हुआ था। उसके आत्मीय योरुप के कई राज्यों के स्वामी थे। वह स्वयं राइन के कान्फ़ेडेरेशन और स्विटज़रलेण्ड का स्वामी था और आस्ट्रिया और प्रशिया

उसके अधीन थे। शार्लेमन के बाद नेपोलियन के समान विस्तीर्ण साम्राज्य अन्य किसी सम्राट् का नहीं हुआ।

साम्राज्य में पतन के बीज

परन्तु इस साम्राज्य में पतन के अंकुर विद्यमान थे क्योंकि यह साम्राज्य केवल एक मनुष्य की योग्यता और बल पर आश्रित था। इसके विभिन्न अङ्गों में परस्पर इतना मतभेद एवं विरोध था कि उसके मृत्यु पर इसके संयुक्त रहने की कोई आशा न थी। इसके अतिरिक्त नाकाबन्दी के विधान ने नेपोलियन के विरुद्ध एक भारी अशान्ति उत्पन्न कर दी और उसे स्पेन के युद्ध में लगा दिया। यह फ्रांस के लिए बड़ा अहितकर सिद्ध हुआ। फ्रांस में अब नवयुवकों की भी कमी हो रही थी। नई भर्ती में फेल लड़के ही प्रविष्ट होने लगे थे। एक बात और थी। पोप के साथ सद्व्यवहार न करने से रोमन केथॉलिक हर जगह नेपोलियन से अप्रसन्न होगये थे। नेपोलियन के शत्रु स्थान-स्थान पर उसके विरुद्ध घृणा फैलाने लगे।

नव शक्ति—जातीयता का भाव—और नेपोलियन का साम्राज्य

परन्तु जिस नई शक्ति ने नेपोलियन के साम्राज्य को गिराकर योरुप को उसके दासत्व से मुक्त किया वह योरुपीय देशों में देश-प्रेम की नई लहर थी। स्पेन पर आक्रमण करने से पहले नेपोलियन ने केवल राजवंशों के विरुद्ध युद्ध किये थे। स्पेन में उसे एक नई शक्ति से सामना पड़ा। यह जातीयता की शक्ति थी। नेपोलियन

के साम्राज्य ने विभिन्न जातियों को ध्वंस करने का प्रयत्न किया ; फलस्वरूप यह हुआ कि जातीयता की नई शक्ति ने

भाषणों के पश्चात् जर्मन-जाति से कभी ऐसी करुणाजनक अपील नहीं की गई थी। फ़िश्टे का मत था कि जर्मन-जाति की राजनैतिक और नैतिक अवस्था को उन्नत करने का एक-मात्र उपाय है जातीय शिक्षा। जर्मन-नवयुवकों को देश पर बलिदान होने के साथ-साथ यह भी सिखाना चाहिए कि जो आनन्द देश की सेवा करने से उत्पन्न होता है संसार में उससे बढ़कर कोई आनन्द नहीं। इस उपदेश से सहस्रों जर्मन-नवयुवकों में अपनी जाति और राष्ट्र के लिए वह प्रेम उत्पन्न हो गया, जिसने जर्मन-जाति के भविष्य को उज्ज्वल बना दिया।

फ़िश्टे की राष्ट्रीय शिक्षा के आन्दोलन का यह परिणाम हुआ कि बर्लिन में एक विश्वविद्यालय स्थापित किया गया। इसकी नीव रखते हुए फ्रेड्रिक विलियम तृतीय ने अपने भाषण में कहा—"राष्ट्र को नैतिक शक्ति की वृद्धि के द्वारा अपनी राजनैतिक और दैहिक निर्बलताओं को दूर करना चाहिए।" जर्मनी के बड़े-बड़े देशभक्त इस विश्वविद्यालय के लिए काम करते थे। इस नये विश्वविद्यालय का आन्तरिक भाव का पता हमें इस बात से लगता है कि जब १८१३ में स्वातन्त्र्य-युद्ध हुआ तब उसके दो-तीन सौ विद्यार्थियों में से केवल अठाईस विद्यार्थी उसमें रह गये।

तीसरी बड़ी शक्ति जर्मन-कवियों, दार्शनिकों और व्याख्याताओं की थी। इनकी अपीलें जर्मनों के अन्दर नवजीवन

का सञ्चार करती थीं। इस 'लाइन' में सबसे अधिक कार्य स्टीन-नामक एक देश-भक्त राजनीतिज्ञ ने किया था। उसने देखा कि जर्मनी की दो-तिहाई अछूत आबादी से जो कृषकदास-सर्फ़- है, सच्ची देश-भक्ति की आशा नहीं की जा सकती। इसलिए अक्टूबर १८०७ में उसने "उद्धार की राजाज्ञा" के अनुसार सर्फ़डम को हटाकर सारे देशवासियों को एक समान कर दिया। स्टीन के कथनानुसार अब प्रशिया का राजा "सर्फ़ों के स्थान में स्वतन्त्र मनुष्यों का राजा" था।

सामाजिक सुधारों के साथ-साथ प्रशिया में एक नई जातीय सेना भी तैयार की जा रही थी। प्रशिया के राजा को नेपोलियन ने केवल बारह सहस्र सेना रखने की आज्ञा दी थी। इसलिए कुछ समय के पश्चात् सेना को तबदील करके नई भर्ती की जाती थी। इस प्रकार प्रशिया में प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य भर्ती जारी करके सारी जाति को सैनिक शिक्षा दे दी गई। स्टीन और हारडेनबर्ग जैसे देश-भक्त राज-नीतिज्ञों ने प्रशिया को एक जाति और एक राष्ट्र बना दिया, फिर नेपोलियन के साथ स्वातन्त्र्य-युद्ध करने में जर्मन-जाति ने पथप्रदर्शक का काम किया। प्रशिया का उठना नेपोलियन की शक्ति के लिए स्पेन के पश्चात् दूसरा वज्रपात सिद्ध हुआ।

इसी बीच में रूस का राजा अलक्ज़ाण्डर भी नाकाबन्दी से तंग आकर नेपोलियन के विरुद्ध एक षड्यन्त्र में सम्मिलित

हो गया । नेपोलियन ने अपने स्वभावानुसार रूस को नीचा दिखाने का निश्चय किया । सभी अधिकृत राज्यों से चार लाख से अधिक सेना एकत्र करके उसने रूस पर चढ़ाई कर दी ।

नेपोलियन का रूस पर आक्रमण (१८१२-१८१३)

रूसियों ने अपनी रक्षा का वही उपाय किया जो पुराने सिपियन किया करते थे । एक स्थल पर नेपोलियन का मुक़ाबला शुरू करके रूसी सेना पीछे हट जाती थी । अन्त में मास्को से सत्तर मील की दूरी पर दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ, जिसमें दोनों की हानि हुई । विजय के पश्चात् जब नेपोलियन ने नगर में प्रवेश किया तब उसे ऊजड़ ग्राम पाकर वह बड़ा आश्चर्यान्वित हुआ । अगले दिन नगर के चारों ओर से आग भड़क उठी जो पाँच दिन तक जलती रही और नगर का बहुत सा भाग जल गया ।

नेपोलियन की इच्छा थी कि अलक्ज़ाण्डर उसके साथ सन्धि कर ले । किन्तु उसका एक ही उत्तर था कि जब तक फ़ांस का एक भी सैनिक रूस में रहेगा तब तक वह सन्धि की बात तक नहीं सुन सकता । नेपोलियन सन्धि की आशा में कई मास वहीं ठहरा रहा । यह विलम्ब उसके लिए अत्यन्त हानिकर सिद्ध हुआ । फ़ांस की सेना अभी आधी दूर भी नहीं लौटी थी कि रूस की भयानक ठंढक ने उसे आ दबाया । हज़ारों सरदी से जम गये । एक रात में दो-तीन सौ

सैनिक मर जाते थे। रूस के जङ्गली कृषकों और कॉसकों ने भी, जो दिन-रात उनके पीछे पड़े रहते थे, सहस्रों का वध कर डाला।

यह जानकर कि समस्त साम्राज्य का अस्तित्व मेरे अस्तित्व के ऊपर निर्भर है नेपोलियन सेना को एक जनरल के नियुक्त करके स्वयं पेरिस चला गया। तदनन्तर उसका जनरल भी वहाँ पहुँच गया, किन्तु चार लाख सेना में से केवल डेढ़ लाख वापस लौटी। इस सेना के साथ नेपोलियन का भाग्य भी मानो रूस में ही रह गया।

स्वातन्त्र्य-युद्ध; "जातियों की लड़ाई" लीपज़िग की लड़ाई अक्टूबर १६,१९, १८१३

नेपोलियन को सङ्कट में देखकर योरुपीय शक्तियों ने सोचा कि अब हम उसे आसानी से दबा लेंगे। इसलिए छठी बार रूस, प्रशिया, इँग्लेण्ड, स्वीडन और आस्ट्रिया ने परस्पर ऐक्य करके युद्ध के लिए तैयारी शुरू कर दी।

नेपोलियन भी अपने सङ्कट को भली भाँति समझ गया था। इसलिए उसने भी अपने इस अन्तिम प्रयत्न के लिए खूब ज़ोर से तैयारियाँ कीं। १८१३ के वसन्त में उसकी सेना फिर तीन लाख के लगभग होगई। यद्यपि उसमें अधिक संख्या लड़कों की ही थी, तथापि लिट्ज़ेन और बाट्ज़ेन के रणक्षेत्रों में उन्होंने रूस और प्रशिया के संयुक्त सेनाबल को पराजित कर दिया।

तत्पश्चात् लीपसिग के रणक्षेत्र में एक बड़ी भारी लड़ाई हुई। इसमें योरुप की सभी जातियाँ इकट्ठी हो गई थीं। इसी लिए यह 'जातियों की लड़ाई' भी कहलाती है। इसमें तीन दिन लड़ने के बाद नेपोलियन को पराजय का मज़ा चखना पड़ा; वह फ्रांस को वापस लौट गया। अब फ़्रांस के शत्रु उसके ऊपर जा चढ़े। वेलिङ्गटन स्पेन से सेना लिये हुए दक्षिण फ्रांस में पहुँचा, स्वीडनवाले नीदरलेण्ड की ओर से और ब्लूशर ने, जिसके पास प्रशिया, रूस और आस्ट्रिया की सेनाएँ थीं, राईन की ओर से आक्रमण किया।

नेपोलियन को इनके विरुद्ध किसी प्रकार की सफलता प्राप्त न हुई। पेरिस ने (३१ मार्च, १८१४) मित्रों की अधीनता स्वीकार कर ली। फ़्रांस की सेनेट ने नेपोलियन को सम्राट्-पद से च्युत कर दिया और एक बोरबोन-वंशज को सिंहासनारूढ़ करके उसे एल्बा-द्वीप में निर्वासित कर दिया।

अब मित्रों ने लुइस सोलहवें के भाई लुइस अठारहवें के साथ सन्धि की। इसके अनुसार फ़्रांस की सीमाएँ सन् १७९२ की सीमाओं के बराबर हो गई। लुइस ने शक्ति पाते ही अनियन्त्रित राजा के समान काम करना आरम्भ कर दिया। वह क्रान्ति के सारे प्रभावों को मिटा देना चाहता था। इससे फ़्रांस में उसके विरुद्ध घोर अशान्ति फैलने लगी। लोगों को यह भय होने लगा कि वह क्रान्ति के सारे अच्छे

वाटरलू का युद्ध (१८१५) नेपोलियन का अन्त

परिणामों को भी नष्ट-भ्रष्ट कर देगा। अतएव वे पुनः नेपोलियन को वापसी चाहने लगे।

उधर नेपोलियन भी एक छोटे से द्वीप में चुपचाप नहीं बैठ सकता था। वास्तव में उस जैसे सम्राट् के लिए वह स्थान था भी थोड़ा। मार्च १८१५ में, जब कि फ्रांसीसी कमीशन मित्रों के लिए विभिन्न देशों की सीमाएँ निश्चित कर रहा था, उसे यह ख़बर मिली कि नेपोलियन फिर फ्रांस में आ गया है। पहले तो दिल्लगी समझकर उन्होंने इस बात पर विश्वास ही न किया। केवल आठ सौ सवारों के साथ नेपोलियन फ्रांस के एक दक्षिणी बन्दर पर उतरा था और उसने केवल एक ही उद्दीपक भाषण से समस्त देश में आग लगा दी थी। नेपोलियन की व्यक्तिगत आकर्षण-शक्ति और फ्रांसवासियों की आवेग-शीलता ने मिलकर जादू का काम किया।

उसकी पेरिस-यात्रा एक भारी जुलूस बन गई। एक के बाद एक रेजीमेण्ट अपनी ताज़ी प्रतिज्ञाएं भुलाकर नेपोलियन के साथ मिल गई। उसके पुराने सैनिकों और सेनानायकों के हर्ष की कोई सीमा ही न थी। जो मार्शल नेपोलियन को पिँजरे में बन्द करके पेरिस लाने के लिए रवाना किया गया था, उसने स्वयं अपने प्राण तथा तलवार नेपोलियन के चरणों में रख दी और उसके अङ्क में जा मिला।

लुइस सिंहासन छोड़कर भाग गया। नेपोलियन योरुप के राजाओं से सन्धि करना चाहता था, परन्तु वे अब उसके हाथ

में शक्ति नहीं देखना चाहते थे। पाँच लाख सेना फ्रांस की सीमाओं पर एकत्र होगई। नेपोलियन ने पहले अँगरेजी और प्रशियन सेनाओं का नीदरलेण्ड में एक लाख सेना के साथ सामना किया। प्रशियन हार गये और वाटरलू के रणक्षेत्र में वह वेलिङ्गटन के आसने-सामने जा पहुँचा। सारे दिन फ्रेञ्च वीर अँगरेजों पर आक्रमण करते रहे, किन्तु वे सफल न हो सके। वेलिङ्गटन अपने हृदय-मन्दिर में ईश्वर से प्रार्थना कर रहा था कि या रात हो जाय या 'ब्लूशर' उसकी सहायता को पहुँच जाय।

अन्त में ब्लूशर तीस सहस्र सैनिक लिये हुए समय पर आ पहुँचा। लड़ाई का रुख बदल गया। नेपोलियन ने अमरीका को भागने का प्रयत्न किया, किन्तु अँगरेजी जहाजों ने रास्ता बन्द कर दिया था। तब उसने अँगरेजों को आत्मसमर्पण कर दिया। इँग्लेण्ड ने उसे ैद करके सेण्टहेलेना-द्वीप में भेज दिया, यहाँ बावन वर्ष की आयु में (१८२१) उसकी मृत्यु हो गई।

———

बारहवाँ अध्याय

इटली की मुक्ति और एकीकरण

जिस ज़माने में इटली टुकड़े-टुकड़े होकर विदेशियों से पदाक्रान्त हो रहा था उस समय भी इटली में ऐसे मनुष्य उत्पन्न हुए थे जिनको इस बात का दृढ़ विश्वास था और जो इसका स्वप्न भी देखते थे कि एक बार फिर इटली एक संयुक्त शासन के अधीन होकर संसार का पथप्रदर्शक बनेगा। प्रसिद्ध कवि डाँटे (१२६५-१३२१) की यह प्रबल इच्छा थी कि एक दफ़ा फिर टाइबर-नदी के तट पर रोम किसी साम्राज्य का केन्द्र बने। उसकी दृष्टि में इटलीवासी ईश्वर के मनुष्यविशेष थे, जो अपने या दूसरों के पापों के कारण मार्ग भूल गये थे, परन्तु जो उसे दुबारा अवश्य पा लेंगे। जिस प्रकार रोमन-सम्राटों के समय में तथा पोप के समय में रोम ने संसार का रूप परिवर्तित कर दिया था, उसी प्रकार वह फिर एक दिन अपने नैतिक बल से दुनिया का नक़शा पलट देगा।

इटली का 'मिशन'

इटली का दूसरा बड़ा सुपुत्र माक्यावेली (१४६९-१५२७) हुआ, जो निकट-भविष्य ही में इटली को एक राजा के अधीन एक संयुक्त देश के रूप में देखा करता था। इस बात के लिए

वह सदा प्रयत्नशील भी रहता था कि जितनी जल्दी हो सके कोई ऐसा मनुष्य उत्पन्न किया जाय। वह अपने देशबान्धवों से अपील करता था कि शीघ्रातिशीघ्र तुम किसी ऐसे मनुष्य को चुनो जो तुमको अपने निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचा सके। उसने अपनी पुस्तक 'प्रिंस' या 'शासक' के अन्त में सर्वसाधारण से एक प्रकार की प्रार्थना की है। उसमें एक प्रकार का भविष्य-द्वचन भी है। वह लिखता है—"हमें उस सुयोग को हाथ से न खोना चाहिए, जो इटली को अपनी चिरकाल की प्रतीक्षा के बाद अपने रक्षक मिलने के समय होगा। मैं यह वर्णन नहीं कर सकता कि किस प्रेम तथा आवेश से उन प्रान्तों में उसका हार्दिक स्वागत किया जायगा जो विदेशी शासन के अधीन कष्ट सहन करते हैं, किस प्रकार लोग उसके चरणों पर गिरेंगे, किस पूर्ण विश्वास के साथ वे उसका अनुगमन करेंगे और उसको देख वे किस हर्ष से उत्फुल्ल होकर अश्रुधाराएँ बहाएँगे, उसे देखकर वे किस प्रकार अपने शत्रु के प्रति प्रतीकार की इच्छा से परिपूर्ण हो जायेंगे। क्या कोई इटलीवासी उसके पीछे चलने से इनकार करेगा? क्या कोई ऐसा होगा जो ईर्ष्या-वश होकर उसका विरोध करेगा? क्या कोई ऐसा भी होगा जो ऐसे रक्षक का सम्मान न करेगा? नहीं, कदापि नहीं! विदेशियों के नृशंस शासन-मल से हमारी नाकें सड़ रही हैं!"

फ्रांस की राज्य-क्रान्ति का इटली पर भी बड़ा

गहरा प्रभाव पड़ा। फ्रांस की क्रान्ति के तीन आधारभूत सिद्धान्त थे। समता को तो क्रान्तिकारी एक मज़हबी सिद्धान्त मानते थे। नेपोलियन का क़ानूनी ज़ाब्ता इसी सिद्धान्त के अनुसार बनाया गया था और उसके राज्यकाल में जर्मनी, स्विट्ज़र्लैण्ड या इटली में, जहाँ कहीं भी यह प्रचलित किया गया वहाँ प्राचीन मतभेदों और विरोधों को मिटाकर इसने सब को एक समान कर दिया। क्रान्ति ने नये नियम या क़ानून ने शासन में भी सभी मनुष्यों को उसी प्रकार समान कर दिया, जैसा कि पहले वे ईश्वर की दृष्टि में समझे जाते थे। क्रान्ति का दूसरा सिद्धान्त प्रजा का शासनाधिकार था। इस सिद्धान्त के अनुसार शासन शासितों के इच्छानुसार होना चाहिए और सारे नियम प्रजा की रज़ामन्दी से बनाये जाना चाहिए। अधिकारियों और अफ़सरों को अपने आपको लोगों का नौकर समझना चाहिए और अपने कार्य के लिए उनके प्रति उत्तरदायी रहना चाहिए। तीसरा सिद्धान्त जातीयता या राष्ट्रीयता का था, जिसका अर्थ यह है कि राष्ट्र और जाति दोनों एक ही हैं। प्रत्येक जाति को अपनी शासन-विधि चुनने की और अपने मामलों का स्वयं निर्णय करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। यही तीन बड़े सिद्धान्त, जो जीवन और जीवन-शक्ति से परिपूर्ण हैं; फ्रांस की राज्यक्रान्ति ने मानो संसार को अपनी बरासत में दिये हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी का इतिहास विभिन्न देशों तथा जातियों की राजनैतिक तथा सामाजिक संस्थाओं में इन्हीं

सिद्धान्तों के प्रसार-मात्र का इतिहास है। इस विचार ने, कि सब मनुष्य जन्म से स्वतन्त्र एवं एक-समान हैं, समाज की निचली श्रेणियों की त्रुटियों को दूर करके उन्हें दूसरों के समान बनाने में बड़ा काम किया है। इसी प्रकार जहाँ राज्य-क्रान्ति से पहले प्रत्येक देश में एक स्वेच्छाचारी शासक अथवा उसी से मिली जुली किसी स्वेच्छाचारी सभा का शासन था, वहाँ अब सर्वत्र जनसाधारण की ओर से निर्वाचित सभाओं को शासन का पूर्ण अधिकार प्राप्त होने लगा। जिस प्रकार इस उद्देश को पूरा करने के लिए इस शताब्दी में अनेक महात्माओं ने बड़ा काम किया है, उसी प्रकार जातीयता या राष्ट्रीयता के विचार ने भी कई राज्यों का उच्छेद करके नई जातियों के लिए नये राष्ट्र बनाने में बड़ा काम किया है। परन्तु इन उच्च विचारों की उन्नति के मार्ग में अनेक अवरोध भी उपस्थित हुए और उन्हें दूर करने के लिए हिंसा और युद्ध से काम लिया।

विएना की कांग्रेस और इटली (१८१४-१८१५)

योरुप के गत महासमर के पश्चात् योरुप को नये सिरे से सङ्गठित करने के लिए जिस प्रकार विभिन्न राष्ट्रों के राष्ट्र-सङ्घ-नामक एक कानफ़रेंस बहुत समय तक होती रही थी, एक शतक से कुछ वर्ष पहले नेपोलियन के युद्धों के पश्चात् भी विएना में इसी प्रकार की कांग्रेस बैठी (सितम्बर १८१४ जून १८१५)। इस कांग्रेस में फ्रांस

का ओर से कूटनीतिज्ञ टेलिरण्ड, जो पहले नेपोलियन का परराष्ट्र-मन्त्री और पीछे सेनेट का सदस्य था, इँग्लेण्ड की ओर से पहले कासल रे और पीछे वेलिङ्गटन, प्रशिया की ओर से हारडेनबर्ग और विलियम हम्बोल्ट और आस्ट्रिया की ओर से उसका परराष्ट्र-मंत्री मेटरनिश प्रतिनिधि रूप से सम्मिलित हुए थे। इसका उद्देश योरुपीय देशों का नये सिरे से राजनैतिक सङ्गठन करना था। किन्तु वास्तव में उसका एक यही विचार तथा उद्देश मालूम होता था कि हर एक वस्तु को क्रान्ति से पहले का रूप दे दिया जाय।

काँग्रेस ने क्रान्ति के तीनों सिद्धान्तों की परवा न करके अपने सामने बिलकुल नये सिद्धान्त रक्खे। पहला सिद्धान्त न्यायता ('लेजिटिमेसी') का था। इसके अनुसार उन्होंने उन सारे नये वंशों को, जिनका आरम्भ नेपोलियन से हुआ था, परे हटा कर फिर से पुराने वंशों को उनका स्थान दे दिया। दूसरी समस्या यह थी कि वे प्रदेश जो नेपोलियन से मिले थे, किस प्रकार न्याय्य-वंशों में बाँटे जायँ। बहुत सोच-विचार के पश्चात् वे इस प्रकार बाँटे गये—बेलजियन तथा डच प्रदेशों को एक करके नीदरलेंड्स का राज्य बना दिया गया; नॉरवे डेनमार्क से छीनकर स्वीडन को दे दिया गया; फ़िनलेण्ड तथा बेसेरेविया रूस के अधीन रहे और पोलेण्ड ज़ार के अधीन कर दिया गया; प्रशिया को सेक्सनीर का आधा राज्य दिया गया; नीदरलेण्ड्स छिन जाने से आस्ट्रिया को लम्बार्डी और वेनेशिया

दिये गये; जर्मनी के बयालीस राज्यों में से उनतालीस का, जिनमें आस्ट्रिया तथा प्रशिया भी सम्मिलित थे, एक कानफेडेरेशन बना दिया गया; इटली का उत्तरी भाग आस्ट्रिया को देकर उसका शेष भाग छोटे छोटे राज्यों में विभक्त कर दिया गया; स्विट्ज़रलैण्ड को जेनेवा के अतिरिक्त दो अन्य प्रदेश भी दिये गये; इसी प्रकार ग्रेट ब्रिटेन को भूमध्यसागर, माल्टा तथा मारेशस-द्वीप फ्रांस से और आशा अन्तरीप तथा ब्रिटिश गायना हॉलेण्ड से छीनकर दिये गये, जिससे उसका समुद्री एवं औपनिवेशिक अधिकार पहले से अधिक हो गया।

यहां यह कह देना अनुचित न होगा कि तात्कालिक कूट-नीतिज्ञों और राजाओं के मस्तिष्क में उस समय यही बात समाई हुई थी कि वे, मनुष्यों का नहीं, पशुओं का बाँट कर रहे हैं। सम्भवत: वे यह नहीं जानते थे कि लोगों में, जो परस्पर रक्त, भाषा, और परम्परागत कथाओं आदि के बन्धनों से बँधे होते हैं, ऐसी आध्यात्मिक-सत्ता और आत्मा होती है, जो उन लोगों को एक राजा के शासन से निकाल कर दूसरे के अधीन कर देने से किसी प्रकार मर नहीं सकती।

इटलीवासियों ने पहले पहल नेपोलियन को अपना मुक्तिदाता समझा था। परन्तु यह उनकी भूल थी। इसके कारण उन्हें बड़ी निराशा भी हुई। अब वे यह समझने लगे कि विएना की काँग्रेस उन्हें एक बनादेगी। पर इससे भी उन्हें निराश होना पड़ा। क्योंकि इसने इटली के टुकड़े-टुकड़े

करने के अतिरिक्त उसके उत्तरी प्रदेश आस्ट्रिया को सौंप दिये।

विएना-काँग्रेस के अन्दर काम करनेवाली प्रधान शक्ति आस्ट्रिया का प्रधान-मन्त्री मेटेरनिश था। क्रान्ति के सिद्धान्त उसे शैतानी सिद्धान्त प्रतीत होते थे।

प्रतिप्रादन-भाव का मूर्त्तिमान् मेटेरनिश

उसका यह दृढ़ विश्वास था कि जनसाधारण के हाथ में शासनाधिकार देने का उसका परिणाम अशान्ति के सिवा और कुछ नहीं हो सकता, संसार में शान्ति केवल अनियंत्रित राजाओं के राज्य होने से ही रह सकती है। इसलिए उसने आस्ट्रिया, रूस और प्रशिया को मिलाकर एक लीग बनाई, जिसका बाहरी उद्देश तो योरप में शान्ति-स्थापन था पर वास्तविक तथा आन्तरिक उद्देश था स्वतन्त्रता के सिद्धान्तों को कुचल कर स्वेच्छाचारी शासन स्थापित करना। इसलिए इसका नाम 'पवित्र सन्धि' रक्खा गया।

विएना-काँग्रेस ने ज़माने की लहर की ओर से आँखें बन्द कर ली थीं। उसने स्वेच्छाचारिता की जर्जर शक्ति को फिर से दृढ़ करने, उसमें जीवन डालने का प्रयत्न किया। परन्तु उसमें वह असफल हुई। उसका काम १८१५ में ही समाप्त होगया। फिर लोगों तथा समय की शक्तियों ने अब अपना-अपना काम आरम्भ किया, जिसके परिणाम-स्वरूप योरुप में १८२०, १८३० और १८४८ की राज्य-क्रान्तियाँ हुईं।

फ्रांस की राज्यक्रान्ति ने इटलीवासियों के अन्दर आशाएँ उत्पन्न कर दी थीं। इटली को नेपोलियन के समय में स्वतन्त्र संस्थाएँ प्राप्त हुईं। परन्तु जब फ्रांस में स्वेच्छाचारी शासन हो गया तब इटली भी दासत्व के दलदल में फँस गया। पर स्वतन्त्रता के सिद्धान्त सर्वसाधारण के हृदय में इतने धस गये थे कि विएना-काँग्रेस इटली को भय की दृष्टि से देखने लगी। इसी लिए पुराने प्रजातन्त्र-राज्यों में स्वतन्त्र संस्थाओं के मार्ग में रुकावटें डाली गईं। आस्ट्रिया को वेनेशिया तथा लम्बार्डी का स्वामी बनाने में भी इसी नीति से काम लिया गया था कि उत्तर में बैठा हुआ आस्ट्रिया इटली के छोटे राज्यों को अत्याचार करने में सहायता दे। टस्कनी, मॉडिना, परम और लूका राज्यों पर हेस्टबर्ग-वंशीय राजा शासन करते थे और नेप्ल्स बोरबोन-वंश के शासन के अधीन था।

नेपोलियन के पतन के समय इटली

इटली में इटलीवासियों के केवल दो राज्य थे—एक पोप का, दूसरा विक्टर इमेनुएल का (सार्डिनिया-द्वीप)। विक्टर इमेनुएल वास्तव में पीडमॉण्ट का राजा था। नेपोलियन की चढ़ाई के समय उसने सार्डिनिया में जाकर आश्रय लिया था। अब उसे पीडमॉण्ट वापस दे दिया गया और साथ ही जनेवा भी जोड़ दिया गया। इटली में पुराने वंशों के

स्वेच्छाचारिता की पुनरावृत्ति

हाथ में शासन देने का अर्थ अत्याचार और विदेशी शासन की नींव मज़बूत करना था। इसीलिए फ़्रांस की स्वतन्त्र संस्थाएँ इटली से हटा दी गईं।

पोप ने भी अपने राज्य में दुबारा मज़हबी अत्याचार करना शुरू कर दिया तथा मुद्रण पर 'सेन्सर' लगा दिया और फ़्रांस के विरुद्ध इतनी घृणा प्रकट की यहाँ तक कि टीका लगाना और गलियों में लम्प जलाना, जो फ़्रांसीसी विशेषताएँ समझी जाती थीं, बन्द कर दीं। विक्टर ने इससे भी आगे दो-चार क़दम रक्खे। उसने प्रत्येक फ़्रांसीसी बात को उलटने का प्रयत्न किया। वे मठ, जो फ्रांसीसी राज्य-काल में कालेज, कारख़ाने और अस्पताल बना दिये गये थे फिर मॉकों के सुपुर्द कर दिये गये। महलों का फ़्रेञ्च सामान निकाल कर बाहर फेंक दिया गया और राजकीय बाग़ों में भी फ़्रेञ्च पेड़ों का उन्मूलन कर दिया गया।

ये सब बातें आस्ट्रिया की आज्ञा तथा भय से की गई थीं। यद्यपि सहस्रों देश-भक्त इटलीवासियों के हृदय-पटल में स्वतन्त्रता के बीज अङ्कुरित हो रहे थे। उनमें देश के स्वातन्त्र्य तथा एकीकरण की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो रही थी, फिर भी दासत्व की ज़ञ्जीरों में जकड़ा हुआ इटली आस्ट्रिया की नीति के अनुसार आचरण करने लगा।

सर्वसाधारण का झुकाव स्वतन्त्रता की ओर होने से

नये शासक ज्यों-ज्यों अधिक अत्याचार करते थे त्यों-त्यों इटली में अधिक अशान्ति फैलती जाती थी। स्वातन्त्र्य के बीज अन्याय और अत्याचार से दब जाने के बजाय और भी अधिक परिपुष्ट होते हैं। इस राजनैतिक अशान्ति के केन्द्र स्वरूप एक गुप्त समिति बनाई गई। इसके सदस्य अपने आपको 'कर्बनेरी' (कोयला जलानेवाले अथवा चिनगारी लगानेवाले) कहते थे।

'कर्बनेरी' १८२०--१८२१ की हलचल

सन् १८२० में स्पेन में भी एक राज्य-क्रान्ति के समान आन्दोलन हुआ, इसके प्रभाव से इस समिति ने नेप्ल्स में राजद्रोह किया तथा अपने राजा को इस बात के लिए विवश कर दिया कि अपनी प्रजा के लिए नया विधान बनाया जाय। फ़र्डिनेण्ड ने ईश्वर के नाम से नेप्ल्स और सिसली में एक नया विधान प्रचलित किया। मेटेरनिश इसे एक बला समझकर इससे डरने लगा। उसने इसे वहीं दबा देने का बहुत प्रयत्न किया। उसने कर्बनेरी को एक सूचना दी कि आस्ट्रिया तथा इटली में शान्ति-भङ्ग होने के तुम उत्तरदायी हो, और यदि तुम नई स्वतन्त्र फ़ौजी कम्पनियों को हटा न लोगी तो मैं आस्ट्रिया, रूस तथा प्रशिया की सहायता से नेप्ल्स में उपस्थित हूँगा।

नेप्ल्सवासियों ने इसे आस्ट्रिया का अनुचित हस्तक्षेप समझकर आज्ञापालन की अपेक्षा मृत्यु को अधिक पसन्द किया। नेप्ल्स में साठ हज़ार आस्ट्रियन सेना आ खड़ी हुई और

उसने स्वातन्त्र्य-सेना का ध्वंस कर डाला। तत्पश्चात् उसने पुनः फ़र्डिनेण्ड को सिंहासन पर आरूढ़ कर दिया।

इसके साथ ही साथ पीडमॉण्ट में भी एक राज्यक्रान्ति हुई, जिसका उद्देश यह था कि आस्ट्रिया को लम्बार्डी से निकाल कर सार्डिनिया के राज्य में सम्मिलित कर दिया जाय और इस प्रकार इटली की स्वतन्त्रता, मुक्ति और एकीकरण एक क़दम आगे बढ़ जायगा। जब आस्ट्रियन सेना नेप्लस में थी तब पीडमॉण्ट में भी एक राजद्रोह होगया। विक्टर इमेनुएल ने सर्वसाधारण की इच्छा के अनुसार आचरण करना उचित न समझ कर अपना सिंहासन अपने भाई के हवाले कर दिया। साथ ही आस्ट्रियन सेना के बुलाने की धमकी देकर जनसाधारण की हलचल को वहीं दबा दिया।

इस तरह दस वर्ष तक समस्त इटली चुपचाप पड़ा रहा। १८३० और १८३१ में फ्रांस में फिर एक राज्य-क्रान्ति हुई।

१८३०–१८३१ की क्रान्ति

इससे इटली में एक नई उमंग और एक नई आशा उत्पन्न होगई। १८३० में पोप की मृत्यु हुई, जिससे अनुचित लाभ उठा कर लोगों ने पोप के राज्य में एक राजद्रोह किया। पोप के राज्य का अन्त होने पर वहीं एक नई गवर्नमेण्ट क़ायम हुई और एक सभापति निर्वाचित करके राज्य का नाम इटालियन प्रान्त रख दिया। परन्तु जहाँ-कहीं आग भड़कती थी आस्ट्रियन सेनाएँ वहाँ अवश्य बुला ली जाती थीं। अतएव एक नया पोप

चुनकर आस्ट्रियन सेनाएँ मध्य इटली में जा उपस्थित हुईं और इस हलचल को ठंढा कर दिया।

इस प्रकार जब दो बार आस्ट्रिया ने इटली की एकता को भङ्ग किया तब इटलीवासियों के हृदय में उनके विरुद्ध ऐसी घोर घृणा उत्पन्न हुई कि इटली के लोगों को परस्पर मिलानेवाला एक सिंहनाद मिल गया। वह यह कि "पहले आस्ट्रिया का विनाश करो।"

तीन दल

यद्यपि इटलीवासी आस्ट्रिया से घृणा करने में एक थे, परन्तु जातीय सङ्गठन के सम्बन्ध में उनमें बड़ा मत-भेद था। एक दल विभिन्न राज्यों का कॉनफेड्रेशन बनाने के पक्ष में था। दूसरा दल विधायक स्वेच्छाचारिता के पक्ष में था, जिसका प्रमुख वे सार्डिनिया के राजा को बनाना चाहते थे। तीसरी वह समिति थी, जो इटली को प्रजातन्त्र बनाने के पक्ष में थी। इस समिति का नाम था 'तरुण इटली'। इसका प्रवर्तक उन्नीसवीं शताब्दी का महापुरुष, भविष्यवक्ता और इटली का परम देशभक्त जोज़फ़ मात्सीनी था।

जोज़फ़ मात्सीनी का बचपन से लेकर मरणपर्यन्त तक का जीवन इतना सुन्दर, देश-प्रेम तथा त्याग-परिपूरित, शिक्षाप्रद और मनोरञ्जक है कि संसार में उसकी बराबरी करनेवाला कोई दूसरा मिलना कठिन है।

देश-भक्त मात्सीनी

यद्यपि योरप ने मात्सीनी के जीवनकाल में उसका आदर नहीं किया तथापि आज वह उसे एक स्वर से उन्नीसवीं शताब्दी

के महापुरुषों का प्रमुख बताता है और इटली में तो उसकी पूजा होती है। जब तक इटली और इटलीवासी संसार में रहेंगे तब तक मात्सीनी का काम और नाम भी अमर रहेगा।

"वह देश, जहाँ के निवासी स्वतन्त्रता का शब्द भी अपने शब्द-कोष से निकाल चुके थे, जहाँ फूट ने दृढ़ता से अपना अड्डा जमा लिया था, जहाँ लोगों को एक दूसरे से कोई सहानुभूति ही न थी, प्रत्युत एक भाग के वासी दूसरे भाग के निवासियों को अपना शत्रु समझते थे, जहाँ मज़हब के नाम पर अक्षम्य पाप किये जाते थे, जहाँ दासत्व तथा भीरुता अपना घर कर चुके थे, जो विदेशियों के शिकार बने हुए थे, जहाँ विदेशी सैनिक सैनिकता-प्रदर्शन में लगे रहते थे, वही आज एक सुलेखक और एक क्षत्रिय-वीर की बदौलत स्वतन्त्र है, एक है; उसके सभी जातीय दोष एवं त्रुटियाँ दासत्व के साथ ही साथ लुप्त हो गई हैं।"

यह उच्च पद इटली को अपने सहस्रों सुपुत्रों की प्राणाहुति से प्राप्त हुआ। मातृ-भूमि को मुक्त कराने के लिए सहस्रों नहीं, वरन् लाखों जीव नष्ट हो जाते, तो भी शायद वह सुपरिणाम न निकलता, यदि ईश्वर मात्सीनी और गारीबाल्डी को इटली के मार्ग-प्रदर्शक बनाकर न भेजता। निस्सन्देह बिस्मार्क ने जर्मनी के विभिन्न राज्यों या प्रान्तों को एक करके एक शक्तिशाली साम्राज्य खड़ा किया था। किन्तु यह स्मरण रहना चाहिए कि

बिस्मार्क के पास राज्य के सभी साधन प्रस्तुत थे, उसके पास सेना थी, द्रव्य था, मनुष्य थे, सब कुछ था जो जर्मनी जैसे बड़े देश में प्राप्त हो सकता है। परन्तु मात्सीनी के पास क्या था? केवल वाक्, लेख और विश्वास की तीन शक्तियाँ थीं। पर इससे मनुष्य पर्वतों तक को कम्पायमान कर सकता है।

बाल्यकाल ही में मात्सीनी ने अपनी जाति पर सङ्कट को समझकर यह निश्चय किया था कि मैं अपने दिल-दिमाग़ को अपने देश के दासत्व को दूर करने में लगाऊँगा। बस, फिर क्या था, संसार का कोई प्रलोभन, कोई प्रेम या कष्ट उसे अपने निश्चित कार्य से इधर या उधर डुला न सका। माता का प्रेम, पिता का क्रोध, विवाह का विचार, भोजन का कष्ट, वस्त्रों की कमी, मित्रों का विश्वासघात, साथियों की निराशा सब विभिन्न रूपों में उसके सामने आये, इस कार्य में उसे अनेक बार शत्रु से पराजित भी होना पड़ा, परन्तु उसने किसी की कुछ परवा न की।

जनेवा-प्रान्त के एक क़सबे में मात्सीनी का जन्म जून १८०५ को हुआ था। उसका शरीर नाज़ुक और कमज़ोर था। पर बुद्धि ऐसी तीक्ष्ण थी कि चार बरस की आयु ही में सुनते-सुनते उसने पढ़ना सीख लिया। तेरह वर्ष की आयु में उसने जनेवा के विश्वविद्यालय में प्रवेश किया। वहाँ उसने अपने देश की दुर्दशा पर विचार करके काले वस्त्र पहनने आरम्भ

कर दिये और आयुपर्यन्त वही काला वेश जारी रक्खा। वकालत पढ़ी किन्तु वकालत करने का उसने कभी विचार नहीं किया। गुप्त समिति—कर्वनरी—का सदस्य होने के कारण १८३० में पुलिस ने उसे गिरफ़ार कर लिया।

जेल में रहते हुए उसने 'तरुण इटली'-नामक एक समिति बनाने का विचार किया। देश में प्रजातन्त्र की स्थापना के लिए प्रयत्न करने के अतिरिक्त उसका उद्देश पोप के दासत्व को हटाकर देश में मज़हबी स्वतन्त्रता क़ायम करना भी था। छः मास की क़ैद के पश्चात् वह निर्वासित कर दिया गया। तब वह फ़्रांस के उस इटालियन दल से जा मिला, जो फ़्रांस के राजा की सहायता से इटली पर आक्रमण करना चाहता था। राजा ने उनको अपने देश से निकाल दिया। वहाँ से चलकर मात्सीनी ने मारसिलेज में अपनी समिति की नीव रक्खी और एक मासिक पत्र निकाला। उसकी कई प्रतियाँ वह इटली में भी भेजता था, लोग अपने आप को जोखिम में डालकर भी उसे पढ़ा करते थे। इसी कारण रोम तथा अन्य कई स्थानों में राजद्रोह होना शुरू हो गये।

समिति के दृढ़ होने पर पीडमॉण्ट-राज्य उसके पीछे पड़ गया। उसने फ़्रांस को दबाने के लिए सहायता के लिए प्रार्थना की। पुलिस को मात्सीनी का पता लग गया। परन्तु समिति के एक सदस्य ने उसके बजाय अपने आपको पुलिस के हवाले कर दिया और मात्सीनी स्विटज़रलेण्ड में जा निकला। किन्तु जब

स्विट्ज़रलेण्ड की गवर्नमेंट पर दबाव डाला गया तब मात्सीनी ने १८३६ में इँग्लेण्ड की शरण ली। तब उसके सब मित्र उसे छोड़ रहे थे। उसके लिए यह समय बड़ा निराशाजनक था। एक बार तो उसे यह सन्देह हुआ कि कहीं मैं भूल तो नहीं कर रहा हूँ, व्यर्थ ही कई अपराधियों के खून का बोझ तो अपने सिर पर नहीं ले रहा है। घड़ी भर के लिए इस विचार ने उसे दीवाना सा बना दिया।

एक दिन जीवन-समस्या पर विचार करते हुए उसे अपनी भूल समझ में आगई और वह इस नतीजे पर पहुँचा कि "मैं भूल करता था जो यह समझता था कि जिन लोगों के लिए हम कष्ट भोग रहे हैं वे हमारी प्रशंसा करें। सच्चा प्रेम तो वह है, कि हम उसके प्रतिफल-स्वरूप कोई सांसारिक आशा न करें। निराशा तो उस मनुष्य को हो जिसे संसार की अनश्वरता में विश्वास न हो। मुझमें इस विश्वास की कमी थी इसी कारण ऐसा हुआ। वास्तव में यह मानव-जीवन जीवन-क्रम का एक अंग है, एक जन्म के कष्टों से निकलकर मनुष्य दूसरे जन्म की यातनाओं में प्रवेश करता है।"

इँग्लेण्ड में मात्सीनी बड़ी दरिद्रता से रहा। उसके तीन साथियों का स्वभाव उसके विपरीत था। ज़रा सी तकलीफ़ आने पर वे बड़बड़ाने लगते थे। जो रुपया उसकी माँ भेजती थी वह उसे सबमें बाँट देता था। उसने पत्रों में लेख लिखकर भी कुछ कमाया। एक समय तो वह इतना

लाचार हो गया कि उसे अपने कपड़े और बूट गिरवी रखकर भोजन करना पड़ा। ऐसे समय में इँग्लेण्ड की गवर्नमेंट ने एक अत्यन्त निन्द्य कार्य किया। आस्ट्रिया की गवर्नमेंट के साथ मिलकर उसने मात्सीनी के व्यक्तिगत पत्र खोलने आरम्भ कर दिये और आस्ट्रिया को उस पत्र-व्यवहार के विषय में बाक़ायदा सूचित करने लगी। इसके कारण उसके कई मित्रों को प्राण देने पड़े।

मात्सीनी ने आजीवन विवाह नहीं किया। एक बार जब उस प्रेमिका ने, जिसे वह प्यार करता था, विवाह के लिए कहा तब मात्सीनी ने एक महापुरुष का सा उत्तर दिया, "मैंने एक विवाह अपने देश के साथ कर लिया है, अब दूसरा विवाह करना मेरे धर्म में नहीं है।" उसकी प्रेयसी उसके प्रेम में ही मर गई परन्तु वह डगमगाया नहीं। वैसे तो बहुत से मनुष्यों में देश-प्रेम होता है, कई देश के लिए प्राण देने को तैयार होते हैं, कई प्राण दे देते हैं। परन्तु ऐसे मनुष्य, जो सारी उमर दरिद्र रहकर, क़ैद तथा निर्वासन के कष्ट सहकर दिन-रात, क्षण प्रतिक्षण देश के ध्यान में व्यतीत कर दें, ऐसे विरले ही हैं।

मात्सीनी न केवल एक उच्च कोटि का देश-भक्त था, प्रत्युत धार्मिक दृष्टि से भी उसके विचार बड़े उच्च थे। ईसाई-मज़हब की सङ्कीर्णता से वह बहुत ऊपर था। वह आत्मा की असीम उन्नति को स्वीकार करता था। उसके कथन तथा

लेख उस विचित्र एवं अद्भुत विश्वास के प्रमाण हैं, जो उसे अपने स्रष्टा और उसकी सृष्टि में था। वह ईश्वर और उसके जीवों के बीच में और किसी प्रकार के कृपालु को स्वीकार नहीं करता था, चाहे वह कृपालु मज़हबी हो या राजनैतिक। उस का कहना था कि जो जाति अपने निर्माता तथा अपने सदस्यों की पवित्रता पर विश्वास रखती है, वह योग्य होने से स्वतन्त्रता तथा उन्नति को प्राप्त कर लेती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि उसके विचारों पर वेदान्त तथा उपनिषदों के सिद्धान्तों का बहुत प्रभाव पड़ा था। वह सारी मानव-शक्ति का आधार साहचर्य ('एसोसिएशन') या संघ-शक्ति को मानता है। उसका मत था कि भविष्य का मज़हब मनुष्यता ('ह्युमेनिटी') होगा। एक स्थल पर उसने लिखा है—मरने के पश्चात् ईश्वर तुमसे यह नहीं पूछेगा कि तुम ने मेरे लिए क्या किया है? क्योंकि उसे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। वरन् यह कहेगा कि तुमने मनुष्यों के लिए क्या किया है? ईश्वर का सच्चा पूजन मनुष्य की सेवा करना ही है।

मात्सीनी इटली को विदेशी शासन से मुक्त करके उसे विभिन्न राज्यों के एक संयुक्त प्रजातन्त्र-राज्य के रूप में देखना चाहता था। इसके वह दो साधन समझता था—राष्ट्रीय शिक्षा तथा शस्त्र-प्रयोग। मात्सीनी समझता था कि विना विचार-स्वातन्त्र्य के कोई राज्य-क्रान्ति सफल नहीं हो सकती।

"महान् कार्यों से पहले उच्च भाव होने आवश्यक हैं।" इसीलिए वह जनसाधारण में एक नया बौद्धिक तथा नैतिक जीवन भरना चाहता था। उसका कथन है—"जाओ, इटलीवासियों को उठा कर उज्ज्वल भूत का ज्ञान कराओ, उन्हें स्वतन्त्रता और स्वाध्याय की शिक्षा दो! उन्हें बताओ कि तुम्हारे भाई फ्रांस, बेलजियम, पोलेण्ड तथा हङ्गरी में क्या कर रहे हैं! अल्प्स-पर्वत की ओर उँगली करके उनके कानों में आवाज़ लगाओ कि इटली की वास्तविक सीमा यहाँ पर है। इसलिए कोई विदेशी उसके भीतर न रहने पाये।"

मात्सीनी शस्त्रों के प्रयोग में भी विश्वास करता था। परन्तु इस शर्त पर कि वे किसी उच्च भाव के लिए चलाये जायँ। राजद्रोह के लिए पहले गुरिल्ला-दलों से काम लेना चाहिए; बाद में लोगों की बाक़ायदा सेनाएँ बन जायँगी, जो अत्याचारियों के सिंहासन को हिला देंगी।

मात्सीनी की राष्ट्रीयता सङ्कीर्ण न थी। वह कहा करता था कि लोग न केवल इटली में, वरन् स्पेन, पुर्तगाल, हङ्गरी, पोलेण्ड, रूस आदि में अत्याचार-पीड़ित हैं। सबको मिलकर इस निर्वाण के लिए प्रयत्न करना चाहिए। फ्रांस की राज्य-क्रान्ति मनुष्यों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, समता तथा भ्रातृत्व के लिए थी। अब जातियों की स्वतन्त्रता, समता तथा भ्रातृत्व के लिए क्रान्ति होनी चाहिए। इस क्रान्ति के लिए इटली संसार का पथ-दर्शक होगा। इटली में अभी जीवन शेष

है, जो उसे दुबारा नेता बनायगा। पहले इटली के रोमन लोग संसार के नेता रहे, पीछे पोप नेता बने, अब इटली का प्रजातन्त्र नेता होगा। पहला रोम सीज़रों का रोम था, दूसरा रोम पोपों का रोम था, अब रोम इटलीवासियों का रोम होगा।

सन् १८३० से लेकर १८४८ की स्मरणीय वर्ष तक इटली अत्याचारियों की एड़ी तले तड़पता रहा, परन्तु कुछ कर न सका।

१८४८–१८४९ की राज्य-क्रान्ति

उसी वर्ष योरुप में फिर प्रजातन्त्र का एक आन्दोलन चला, जिससे इटली के देश-भक्तों को भी मुक्त होने का साहस हुआ। इटली के प्रायः सभी स्थानों में लोग विदेशी अफ़सरों के विरुद्ध उठ खड़े हुए और उन्हें शासन में सुधार करने के लिए विवश किया।

सार्डिनिया के राजा चार्लेस एल्बर्ट ने अपने राज्य के लिए एक बड़ा स्वतन्त्र विधान तैयार किया, जो एकीकृत इटली की मुक्ति के लिए चार्टर के तौर पर था। इस राजा में यद्यपि देश-भक्ति थी, तथापि उसके स्वभाव का चिड़चिड़ापन बड़ा दोष था। आस्ट्रिया में भी कुछ द्रोह हुए। इस सुयोग से चार्लेस ने लाभ उठाना चाहा और अपनी सेना लम्बार्डी पर चढ़ाई करने के लिए भेज दी। आरम्भ में उसे विजय हुई और लम्बार्डी तथा वेनेशिया उसके हाथ आगये। परन्तु बाद में आस्ट्रियन सेना ने उसे ऐसा पराजित किया कि उसने स्वयं गद्दी छोड़कर

अपने लड़के विक्टर इमेनुएल द्वितीय को राजसिंहासन दे दिया कि वह कुछ अच्छी शर्तों पर सन्धि कर सकेगा। पुर्तगाल में जाकर वह जल्दी ही मर गया।

सन् १८०३ में गारीबाल्डी का जन्म हुआ। वह अभी बालक था कि उसे नौविद्या का शौक़ हुआ। १८३१ में उसे यह समाचार मिला कि पीडमाण्ट के राजा ने आस्ट्रियन गवर्नमेण्ट के आज्ञानुसार इटली के बहुत से देश-भक्तों का वध कर दिया है। इससे उसे बड़ा दुःख हुआ और मात्सीनी से भेंट करने के पश्चात् वह उसकी समिति में प्रविष्ट होगया। उसने नाविकों को देशसेवा के लिए तैयार करना आरम्भ किया। गवर्नमेण्ट को इसका पता लग जाने पर उसे भागकर प्राणों की रक्षा करना पड़ी। वह दक्षिणी अमरीका में जा पहुँचा और वहाँ लगातार पन्द्रह वर्षों तक छोटे-छोटे प्रजातन्त्रों की स्वतन्त्रता के लिए जल और स्थल पर युद्ध करता रहा। इसी बीच में उसने एक सुन्दरी से विवाह कर लिया। वीर रमणियों के समान वह युद्ध में भी अपने पति का साथ देती रही। गारीबाल्डी की अमरीका की कथाएँ अति मनोरञ्जक हैं।

वीर गारीबाल्डी

सन् १८४८ में अमरीका में उसे पोप पायस नवें के स्वतन्त्र विचारों की ख़बर मिली। वह सत्तर इटालियन युवकों को साथ लेकर देश-सेवा के निश्चय से इटली लौटा। स्वयंसेवकों की एक सेना बनाकर वह मिलन-नगर में प्रविष्ट

हुआ। वहाँ की गवर्नमेण्ट ने आस्ट्रिया से सन्धि कर ली थी, इसलिए गारीबाल्डी-दल को वहाँ से निकलना पड़ा।

कुछ ही दिन बाद रोम में क्रान्ति होगई। मात्सीनी के अनुयायियों ने पोप को निकालकर राज्य को प्रजातन्त्र बना दिया। गारीबाल्डी मकरीना-नगर में था कि रोम की पार्लमेण्ट का पहला निर्वाचन हुआ। पादरी-दल गारीबाल्डी और उसके साथियों को लुटेरे और वधिक कहकर सर्वत्र उनका अपमान करता था। फिर भी वह नगर की ओर से पार्लमेण्ट का सदस्य चुना गया। ८ फ़रवरी, १८४८ को जोड़ों में दर्द होने के कारण वह एक मनुष्य के कन्धों पर बैठकर सेनेट-हाल में दाखिल हुआ। रात के ग्यारह बजे यह निर्णय हुआ कि प्रजासत्तात्मक शासन बनाया जाय।

उधर आस्ट्रिया तथा फ़्रांस पोप की सहायता के लिए सेनाएँ तैयार करने लगे, इधर गारीबाल्डी रोम की स्वतन्त्रता का रक्षक नियत किया गया। उसके पास कुल दो हज़ार सैनिक थे—चालीस उसके अपने साथी, चार सौ विश्वविद्यालय के नवयुवक विद्यार्थी, तीन सौ उच्च घरानों के लड़के और तीन सौ वे इटालियन जो बाहर से युद्ध करने के लिए आये थे। एक बड़ी संख्या में फ्रेञ्च सेना ने रोम पर चढ़ाई की। गारीबाल्डी के वीरों ने शत्रु पर विजय पाई। तत्पश्चात् वे आनन्द मनाने लगे।

फ़्रांसीसी सेनानायक ने सँभलने के लिए सन्धि की बात-चीत शुरू कर दी। गारीबाल्डी युद्ध को जारी रखना चाहता था परन्तु माल्सीनी धोखे में पड़ गया। कपटी सेनानायक ने मौक़ा पाकर रात को नगर पर हमला कर दिया। कई दिन तक युद्ध होता रहा, जिसमें अनेक धर्मपरायण क्षत्रिय वीर-गति को प्राप्त हुए और फ़्रांसीसी सेना ने नगर में प्रवेश कर लिया।

गारीबाल्डी वेनिस की ओर रवाना हुआ। आस्ट्रियन सेना स्थान-स्थान पर उसका पीछा करती थी। राह में उसकी गर्भवती धर्मपत्नी को बुख़ार आया और वह परलोक सिधार गई। गारीबाल्डी उसे बिना दफ़नाये ही भाग गया। सार्डिनिया के राजा ने उसे निर्वासन का आदेश दिया। ट्यूनिस से वह जिबराल्टर पहुँचा। इँग्लेण्ड की आज्ञा के अनुसार वहाँ से वह अमरीका गया, और वहाँ बत्तियों के कारख़ानों में मज़दूरी करने में अपना समय व्यतीत करने लगा। बाद में वापस आने पर आस्ट्रिया और पीडमॉण्ट के युद्ध तक कापरेरा-द्वीप में ज़मीन लेकर काश्तकारी से निर्वाह करता था।

कुछ ही समय में इटली का स्वतन्त्र-दल सर्वत्र कुचल दिया गया। उसके नेता निर्वासित कर दिये गये, क़ैद और फाँसी पर चढ़ा दिये गये, इटली के स्वातन्त्र्य का तीसरा प्रयत्न एक स्वप्न के समान गुज़र गया। किन्तु उससे

सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि स्वतन्त्रता के इच्छुक दल को अपने बल और त्रुटियों का ज्ञान होगया। अब उन्होंने पारस्परिक मत-भेदों को दूरकर जातीय सङ्गठन के निर्माण की आवश्यकता का अनुभव किया। इटली में प्रजातन्त्र या कॉनफेडूेशन का शासन क़ायम करना असाध्य समझा गया। इसलिए यह विचार प्रबल होने लगा कि इटली को मुक्त और एकीकृत करने के लिए सार्डिनिया के विधायक शासन को ही केन्द्र बनाने में सफलता है।

सार्डिनिया का राजा विक्टर इमेनुएल था। वह उसी विधान के अनुसार चलता था, जिसे उसके पिता ने प्रचलित किया था। आस्ट्रिया ने उस पर यह ज़ोर डाला कि वह विधान को हटा दे। परन्तु विक्टर इमेनुएल ने इसे अस्वीकार किया। बस, इटालियन देश-भक्तों की आँखें विक्टर पर लग गईं। शायद विक्टर इमेनुएल के ही भाग्य में इटली का उद्धार करना था या यों कहना चाहिए कि उसके प्रधान मन्त्री कौंट कावूर और जातीय वीर गारीबाल्डो को उसके नाम से इटली को मुक्त करना बदा था।

विक्टर इमेनुएल द्वितीय, कौण्ट कावूर

विक्टर इमेनुएल सेवाय-वंश से था। ग्यारहवीं शताब्दी से यह राज-वंश योरुप में चला आता था। इसका आरम्भ फ्रांस के सेवाय नगर में हुआ था। बाद में एल्प्स से गुज़र कर शनैः शनैः इटली में ही सीमाबद्ध हो गया। जिस प्रकार

केस्टील स्पेन का और प्रशिया नये जर्मन-साम्राज्य का केन्द्र बना, उसी प्रकार पीडमॉण्ट-राज्य, जिसमें सार्डिनिया-द्वीप भी सम्मिलित था, स्वतन्त्र और एकीकृत इटली का केन्द्र बना।

कौण्ट कावूर को इटली का बिस्मार्क कहना चाहिए। यह उन महापुरुषों में से था जिन्होंने योरपीय लोगों के जीवन-निर्माण-काल में जाति-निर्माता की उपाधियाँ प्राप्त की हैं। वह वर्तमान इटली का वास्तविक निर्माता था। वह काव्यमय और वाक्-चातुर्य्यमय उतना नहीं था। उसने स्वयं कहा है—"मुझे कविता बनाना तो नहीं आती, परन्तु मैं इतना जानता हूँ कि इटली किस प्रकार बन सकता है!" उसने विभिन्न राज्यों के शासकों को समझा बुझाकर इस बात के लिए तैयार कर लिया कि अपने अपने राज्यों में वे स्वतन्त्र विधान प्रचलित करें।

सन् १८५५ में रूस ने फ्रांस तथा इँगलेण्ड के साथ क्रिमिया के रण-क्षेत्र में युद्ध किया। कावूर ने एक दूर-

करीमिया-युद्ध में सार्डिनिया का भाव

दर्शी नीति के अनुसार इँग्लेण्ड तथा फ्रांस की सहायता के लिए सार्डिनिया से पन्द्रह हजार सेना भेजी इसके द्वारा वह तीन बातें सिद्ध करना चाहता था—इँग्लेण्ड तथा फ्रांस को अपनी ओर झुकाना, रूस के जार को निर्बल करना और सार्डिनिया की योरुपीय शक्तियों में गणना कराना। किस भाव के साथ सार्डिनियन सैनिक मित्रों की सहायता

के लिए गये, यह बात एक छोटी सी घटना से प्रकट होती है। एक स्थान में मित्रों की खाइयाँ खोदने के पश्चात् कीचड़ से लदपथ एक सैनिक ने अपने अफ़सर से शिकायत की, इस पर उसने बड़ा सन्तोषजनक उत्तर दिया—"कुछ परवा नहीं, इसी कीचड़ से इटली की स्वतन्त्रता की इमारत बनाई जायगी।"

युद्ध के पश्चात् पेरिस की सन्धि में आस्ट्रिया इस बात पर ज़ोर देता था कि सार्डिनिया को कांग्रेस में सम्मिलित न किया जाय। परन्तु इँग्लेण्ड तथा फ्रांस कावूर के पक्ष में थे। इसलिए सार्डिनिया के प्रतिनिधि को योरुपीय राज्यों की कांग्रेस में बराबरी का दर्जा दिया गया। इसी लाभ के लिए कावूर ने उपर्युक्त युद्ध में भाग लिया था। अब से सार्डिनिया को इटली की ओर से बोलने का अधिकार प्राप्त होगया।

कावूर की आस्ट्रिया के साथ युद्ध की तैयारी

कावूर ने अब अपने द्रव्य-साधनों को उन्नत करना आरम्भ किया था। दूसरे शब्दों में, उसने उस युद्ध के लिए, जो उसे दिखाई दे रहा था, तैयारियाँ करना आरम्भ कर दीं। इनमें से एक बात यह भी थी कि उसने एल्प्स के नीचे एक टनेल बनाई जिससे उत्तरी योरुप के साथ इटली व्यापार कर सके। उसकी दूसरी नीति फ्रांस के राजा नेपोलियन तृतीय से मैत्री करना था। एक गुप्त भेट में नेपोलियन ने आस्ट्रिया को

निर्बल करने का कावूर को यह वचन दिया कि जब कभी इटली को आवश्यकता पड़ेगी तब फ्रांस दो लाख सेना उसे देने के लिए तैयार रहेगा।

इटली के लिए स्वतन्त्रता-युद्ध का दिन निकट आ रहा था। सार्डिनिया ने शस्त्र सँभालने शुरू किये। सब ओर से इटालियन स्वयंसेवक टूरिन में एकत्र होने लगे। आस्ट्रिया यह देखकर घबरा गया; उसने सार्डिनिया को तैयारियाँ बन्द करने के लिए युद्ध की धमकी दी। कावूर ने चैलेञ्ज मंजूर कर लिया। फ्रेञ्च सेना मदद पर आ पहुँची। माजेन्टा और सॉलफ़ेरेनो में विजय होने पर आस्ट्रिया को लम्बार्डी और वेनेशिया ख़ाली करने पड़े।

सार्डिनिया का आस्ट्रिया के साथ युद्ध (१८५८–१८६०)

पर नेपोलियन भी इटली की बढ़ती हुई शक्ति देखकर उससे डरने लगा। उधर प्रशिया तथा अन्य जर्मन-राज्य भी अपने-अपने स्थानों में तैयार होने लगे। इसलिए नेपोलियन ने आस्ट्रिया के सम्राट् के साथ सन्धि के लिए प्रार्थना की। इस सन्धि के अनुसार लम्बार्डी का एक बड़ा भाग उसे वापस मिल गया। किन्तु वेनेशिया उसी के पास रहा। सार्डिनियन भी इससे बड़े अप्रसन्न हुए और सम्राट् नेपोलियन पर धोखे का अपराध लगाने लगे। परन्तु इस युद्ध का एक और सुपरिणाम यह हुआ कि टस्कनी, मॉडेना, परम और रोमानिया राज्यों के निवासियों ने अपने शासकों को हटा कर

अपने आपको विक्टर इमेनुएल के राज्य में सम्मिलित कर दिया। इस प्रकार एक इटालियन राज्य की दृढ़ता बढ़ने से मानो इटली की मुक्ति तथा एकीकरण की नींव पड़ गई।

परन्तु एक बात से इटलीवासियों का, विशेष कर गारीबाल्डी को, बड़ा दुःख हुआ। वह यह कि कावूर ने फ्रांस को उसकी सेवा के बदले सेवाय और नीस उसे दे दिये।

सिसली का बोर्बोन राजा फ़र्डिनन्ड द्वितीय एक आदर्श स्वेच्छाचारी था। उसके अत्याचार से पीड़ित होकर लाखों मनुष्य सार्डिनिया में चले आये। १८२६ में उसका लड़का फ्रेंसिस सिंहासन पर बैठा। सर्वसाधारण ने राजद्रोह कर दिया। कावूर हृदय से तो लोगों के साथ सहानुभूति रखता था, किन्तु आस्ट्रिया के भय से प्रकट-रूप से उनकी सहायता नहीं करता था। गारीबाल्डी एक हज़ार जातीय स्वयंसेवकों का समूह लेकर वहाँ जा पहुँचा और राजा को भगा दिया। वापस लौटते समय वह नेपल्स आया। वहाँ के निवासियों ने उसे सहर्ष अपना मुक्तिदाता स्वीकार किया।

सिसली तथा नेपल्स अम्बरिया तथा मार्चेस का विक्टर के साथ मिलना (१८६०)

गारीबाल्डी की इस तेज़ी से घबराकर कावूर ने अम्बरिया तथा मार्चेस में अपनी सेना भेज कर उन्हें अपने अधीन कर लिया। चारों राज्यों के बहुमत से वे सार्डिनिया-राज्य में

सम्मिलित कर लिये गये। वीर गारीबाल्डी ने, जो चारों राज्यों का निर्देशक बना हुआ था, स्वदेश के हित की दृष्टि से अपना निर्देशक-पद राजा विक्टर इमेनुएल को सुपुर्द कर दिया स्वयं कपरेरा के छोटे द्वीप में चला गया। १८६१ में ट्यूरिन-नगर में पहली पार्लमेण्ट की गई, जिसमें विक्टर को इटली के राजा की उपाधि प्रदान की गई।

इटली की एकता लगभग पूर्ण हो गई। अब केवल दो राज्य—रोम और वेनेशिया—इसके बाहर रह गये। इतना भारी काम समाप्त करके इटली के महापुरुष, देशभक्त तथा राज-नीतिज्ञ कौण्ट काबूर ने १८६१ में स्वर्गारोहण किया।

इसी बीच में अँगरेज़-मज़दूरों की प्रार्थना करने पर गारी-बाल्डी इँग्लेण्ड पहुँचा। विभिन्न नगरों में बड़ी धूम-धाम के साथ उसका जुलूस निकाला गया। कहा जाता है कि इससे पूर्व इँग्लेण्डवासियों ने किसी मनुष्य का इतना सम्मान न किया था।

इँग्लेण्ड में गारीबाल्डी का स्वागत (१८६१)

जुलूस का इतने समारोह के साथ निकाला जाना इस बात का सूचक है कि इँग्लेण्डवासी केवल क्रियात्मक मनुष्य का ही सम्मान करना जानते हैं। एक सभा में मात्सीनी भी उपस्थित था। उसने गारीबाल्डी के स्वास्थ्य-पान का प्रस्ताव पेश करते हुए उसके कृत्यों की प्रशंसा की। उसका उत्तर देते हुए गारीबाल्डी ने ये शब्द कहे थे—

"आज मैं एक बात स्वीकार करने लगा हूँ, जो मुझे बहुत

पहले स्वीकार करना चाहिए थी। आज यहाँ एक ऐसा नर-रत्न उपस्थित है, जिससे बढ़कर न तो किसी ने अपने देश की सेवा की है और न स्वतन्त्रता के विचारों का प्रसार। जब मैं नौजवान था और जब मेरे विचारों का झुकाव उपकार की ओर हुआ तब मुझे एक ऐसे मनुष्य की आवश्यकता हुई, जो मेरे यौवन-काल का मार्गप्रदर्शक और परामर्शदाता बन सके। मैं ऐसे मनुष्य की खोज में फिरता था जैसे प्यासा जलस्रोत की तलाश में फिरता है। अन्त में मुझे वही मनुष्य मिला जिसकी ओर मेरा संकेत है। जब सब सो रहे थे तब वही अकेला जागता था, उसने अकेले ही उस पवित्र ज्योति को जगा रक्खा है।"

वेनेशिया इटली के हवाले (१८६६)

सन् १८६६ में आस्ट्रिया और प्रशिया के बीच युद्ध हुआ। विक्टर इमेनुएल ने प्रशिया से यह वचन ले लिया कि युद्ध के पश्चात् सन्धि के शर्तों में से एक यह शर्त भी होगी कि वेनेशिया इटली के हवाले कर दिया जायगा। युद्ध सात हफ़्तों में समाप्त होगया और वेनेशिया इटली का एक भाग बन गया।

रोम का राजधानी बनना (१८७०)

१८६५ में राजा ने टूरिन के बजाय फ्लॉरेन्स को इटली की राजधानी बना ली। परन्तु इटलीवासी रोम को राजधानी बनाना चाहते थे। रोम में पोप का राज्य था और फ्रांस पोप की सहायता के लिए सदा तैयार रहता था। इसलिए रोम पर अधिकार करने का अर्थ फ्रांस के साथ युद्ध करना

था। गारीबाल्डी ने दो बार स्वयंसेवकों की सेना इकट्ठी करके रोम लेने का निश्चय किया। परन्तु हर बार नेपोलियन विक्टर इमेनुएल को लिख भेजता था कि यदि गारीबाल्डी कोई ऐसा प्रयत्न करेगा तो उसका उत्तरदायित्व तुम पर होगा। इसलिए हृदय से गारीबाल्डी का साथ देते हुए भी इमेनुएल उसे बलात् रोक लेता था।

सन् १८७० में प्रशिया और फ्रांस के बीच युद्ध छिड़ गया। बस इटली के हाथ एक अवसर लग गया। फ्रेञ्च-सैनिक रोम से बुला लिये गये और फ्रांस में साम्राज्य के स्थान में फिर प्रजा-तन्त्र क़ायम कर दिया गया। फ्रेञ्च-गवर्नमेण्ट ने विक्टर इमेनुएल को सूचना दे दी कि अब हम पोप की सहायता न करेंगे। इस पर इटली की गवर्नमेण्ट ने पोप को लिख भेजा कि अब से रोम भी इटली का एक भाग समझा जायगा। इटालियन सेना नगर में प्रविष्ट हुई और रायें लेने पर बहुत मत से रोम इटली के अन्तर्गत कर लिया गया।

इस प्रकार इटली एक जाति और एक राष्ट्र बन गया। योरुप में यही अकेला एक ऐसा राष्ट्र है जो 'विजय से नहीं, वरन् सम्मति से' राष्ट्र बना। २ जुलाई, १८७१ को विक्टर इमेनुएल ने रोम में प्रवेश किया। तब से यही प्राचीन नगर इटली—मुक्त और संयुक्त इटली—के राष्ट्रीय शासन की राजधानी हो गया।

विक्टर इमेनुएल द्वितीय १८७८ में मरा। हम्बेर्ट उसका

उत्तराधिकारी हुआ। १६०० में उसका क़त्ल हो जाने पर उसका इकलौता लड़का विक्टर इमेनुएल तृतीय सिंहासनारूढ़ हुआ।

एक क़ानून के अनुसार पोप के रहने के लिए वटिकन के राजप्रासाद तथा कुछ अन्य मकानात एवं छः लाख डालर भत्ता दिया जाने लगा। वह इटली के शासन की प्रजा न माना गया। पर इटली के संयुक्त शासन से जो लाभ देश को होना चाहिए थे वे नहीं हुए। इसके कई कारण हैं। उनमें से एक मुख्य कारण पोप की इटालियन गवर्नमेण्ट से शत्रुता है। पोप ने उपर्युक्त क़ानून को न्याय न समझकर कई बार उसका विरोध किया। कई बार उन्होंने भत्ते का स्वीकार भी नहीं किया और अपने प्रासादों से एक क़दम भी बाहर नहीं रक्खा। पोप के पक्ष में भी एक दल था, जिसके विरोध के कारण इटली के सुधार एवं उत्कर्ष में सदैव अड़चनें पैदा होती रहीं।

पोप की शक्ति का अन्त

तेरहवाँ अध्याय

नया जर्मन-साम्राज्य—आरम्भ और अन्त; योरुप का महासमर

नेपोलियन का अन्त करने के पश्चात् योरुप की विभिन्न जातियों ने विएना में एक काँग्रेस की, जिसने जर्मनी को जर्मन-कानफेड्रेशन का रूप दिया। उसमें प्रशिया, बवेरिया, सेक्सनी—और वर्टम्बर्ग-राज्य सम्मिलित हुए और इसका प्रमुख आस्ट्रिया का सम्राट् हुआ। इनके पारस्परिक झगड़ों का निर्णय एक 'डायट' अर्थात् सभा के अधिकार में रक्खा गया, जिसके अधिवेशन फ्रेंक्फ़ोर्ट में हुआ करते थे। कानफेड्रेशन को तीन लाख सेना रखने का अधिकार था, परन्तु उसके सेनानायक डायट नियुक्त किया करती थी। शेष मामलों में ये राज्य स्वतन्त्र थे; यहाँ तक कि स्वेच्छानुसार अन्य देशों से युद्ध और सन्धि भी कर सकते थे। शर्त केवल यह थी कि उनके किसी काम से कानफेड्रेशन को किसी प्रकार की हानि न हो।

जर्मन-कानफेड्रेशन (१८१५)

कानफेड्रेशन कदापि सशक्त शासन नहीं कर सकता। जर्मन-कानफेड्रेशन में भी कई स्वाभाविक त्रुटियाँ थीं, जो

जर्मन-साम्राज्य को दृढ़ नहीं होने देती थीं। प्रथम तो यह कि डायट के पास अपने आदेशानुसार आचरण कराने के लिए कोई साधन न था। उसके आदेश राज्य के शासकों के लिए केवल सिफ़ारिश की तौर पर होते थे, जिनकी वे कुछ भी परवा नहीं करते थे। ये राज्य चिरकाल से स्वतन्त्र थे और उन्होंने यह भी निश्चय किया था कि डायट के सारे बड़े-बड़े आदेश बहुमत से पास होने चाहिए। इसलिए वह कोई लाभकारी क़ानून भी पास नहीं कर सकती थी।

कानफ़ेडेरेशन के दोष और त्रुटियाँ

इनसे भी बढ़कर एक दोष यह था कि कानफ़ेडेरेशन के दो बड़े राज्यों में अर्थात् आस्ट्रिया तथा प्रशिया के बीच में ईर्ष्या थी। हर एक दूसरे पर दबाव डालना चाहता था; दोनों में प्रतिवादिता का भाव विद्यमान था। इसलिए कानफ़ेडेरेशन में सदा दो दल रहा करते थे। आस्ट्रिया को अपने भूतकाल की महत्ता पर गर्व था। परन्तु इसमें दोष यह था कि उसकी आबादी में स्लाव, माँडयाँर, इटालियन तथा अन्य कई अ-जर्मन उपजातियाँ थीं। उसकी अपेक्षा प्रशिया यद्यपि नई शक्ति थी तथापि उसकी आबादी एक-दम जर्मन थी और उनमें जातीयता का भाव प्रबल-रूप से काम कर रहा था।

विएना की कॉंग्रेस के पश्चात् जर्मनी के इतिहास में दो बड़े आन्दोलन प्रारम्भ हुए। एक का उद्देश था जर्मन-एकता

और दूसरे का विभिन्न राज्यों के लोगों में स्वतन्त्र शासन स्थापित करना। पर दोनों का संयुक्त उद्देश एक स्वतन्त्र तथा संयुक्त जर्मन-साम्राज्य बनाना था। राईन-नदी के तट:वर्ती कई छोटे राज्यों ने, क्योंकि उन पर फ्रांस के विचारों का प्रभाव पड़ चुका था, अपनी प्रजाओं को यथेष्ट अधिकार देकर विधायक शासन स्थापित कर दिये।

मेटरनिश और स्वेच्छाचारिता की प्रतिक्रिया (१८१५)

आस्ट्रिया का प्रधान मन्त्री मेटरनिश उनके इस काम को पसन्द नहीं करता था। उसका विश्वास था कि शासन में लोगों का किसी प्रकार से अधिकार होना अच्छा नहीं, मानो लोगों को अधिकार देना ही देश में अशान्ति का फैलाना था। संयोग-वश इस समय जर्मनी में कई ऐसी घटनायें हुईं, जिनसे मेटरनिश की नीति का समर्थन होने लगा।

हम यह देख चुके हैं कि जर्मन-विश्वविद्यालयों ने नवयुवकों को युद्ध की तैयारी में कितनी भारी सहायता की थी। फ्रेंच-अधिकार के उठ जाने से ये विश्वविद्यालय और भी स्वतन्त्र विचारों के केन्द्र बन गये। सन् १८१७ के सत्र में विद्यार्थियों की समितियों ने लीपसिग की लड़ाई और मज़हबी सुधार की स्मृति में एक जलसे में स्वेच्छाचारी शासकों के विरुद्ध भाषण किये और कुछ ऐसी पुस्तकें तथा मासिक पत्र जलाये, जो स्वेच्छाचारिता के पक्ष में

थे। इसके साथ ही एक पागल विद्यार्थी ने एक जर्मन-गुप्तचर को, जो कि राजाओं का एजन्ट समझा जाता था, मार डाला।

अब तो राजाओं के दरबार भय से काँपने लगे। मेटरनिश ने उनकी इस घबराहट से लाभ उठाकर जर्मन-राज्यों के शासकों का एक सम्मेलन किया और उसमें कुछ प्रस्ताव पास कराये। ये प्रस्ताव डायट के आदेशों के रूप में सभी राज्यों में भेजे गये। इनके भेजने का अभिप्राय यह था कि समाचारपत्रों पर देख-रेख रक्खी जाय। विद्यार्थियों की समितियाँ बन्द कर दी जायँ और विश्वविद्यालयों के अध्यापकों का निरीक्षण किया जाय कि वे क्या पढ़ाते हैं। इसके साथ ही मेटरनिश ने जर्मन-राज्यों को सावधान कर दिया कि तुम कदापि सार्वजनिक सभायें न करना क्योंकि ऐसी सभाओं से ही फ्रांस की राज्य-क्रान्ति का आरम्भ हुआ था।

अगले दस वर्ष तक जर्मनी मेटरनिश के सिद्धान्तों पर चलता रहा। पठन-पाठन की स्वतन्त्रता का अन्त होगया। गवर्नमेण्ट की भेदिया-पुलिस रिपोर्ट करने के लिए सर्वत्र उपस्थित रहती थी। कई शासकों ने पहले के दिये हुए प्रजा से अधिकार वापस ले लिये।

इतने ही में १८३० की राज-क्रान्ति हुई। इसने योरुप में फिर स्वतन्त्रता की लहर चला दी और जर्मनी के स्वतन्त्र दलों

को प्रबल होने का सुयोग मिल गया। लोगों ने ब्रन्सविक के ड्यूक के महलों को जला दिया। वह देश से भाग गया और उसका राज्य उसके भाई के हाथ में चला गया, जिसने लोगों के लिए विधायक शासन बनाया। अगले वर्ष सेक्सनी में भी ऐसा ही शासन प्रचलित होगया। कई अन्य राज्यों ने भी लोगों को बहुत से अधिकार प्रदान किये।

१८३० की राज्यक्रान्ति—विधायक शासन को लाभ

इसी क्रान्ति-काल में जर्मन-राज्यों ने एक व्यापार-गोष्ठी ('सोलफ़ेरिन') बनाई। इसका यह अर्थ था कि जो राज्य गोष्ठी में सम्मिलित हों उनके लिए पारस्परिक व्यापार पर की कोई पाबन्दी न रहे, अर्थात् किसी राज्य को अपना माल दूसरे राज्य में भेजने से उसे किसी प्रकार का कोई महसूल नहीं देना पड़ेगा। इससे जर्मनी के आन्तरिक व्यापार को बहुत लाभ हुआ। इससे भी बढ़कर यह बात हुई कि इससे जर्मनी के विभिन्न राज्यों में जातीय एकता का भाव उत्पन्न होने लगा। इस भाव को सबसे अधिक उत्तेजना देनेवाला प्रशिया था, इसलिए सभी राज्य प्रशिया को अपना नेता समझने लगे।

व्यापार-गोष्ठी का बनना; जर्मन-एकता की ओर प्रथम पद (१८२८-१८३६)

इसके पश्चात् १८४८ तक का जर्मनी का इतिहास एक शब्द में इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है कि एक ओर लोग अपने

शासकों से अधिकार लेने का प्रयत्न करते थे और दूसरी ओर शासक सारी शक्ति अपने हाथ में ही रखना चाहते थे। वे काल की गति की कुछ भी परवा न करते हुए उनकी कोई बात सुनने के लिए भी तैयार न थे।

१८४८ की राज्य-क्रान्ति, विधायक शासन को और लाभ

सन् १८४८ में फ़्रांस में लुइस फ़िलिप के विरुद्ध एक राज्य-क्रान्ति हुई और फ़्रांसवासियों ने एक नया प्रजातन्त्र क़ायम किया, जिसका सभापति नेपोलियन तृतीय बनाया गया और जो तीन वर्ष बाद सम्राट् बन गया। योरुप में फिर स्वतन्त्रता की लहर चली और जर्मनी के छोटे-छोटे राज्यों के शासकों ने भी लोगों को प्रसन्न करने के लिए अपने-अपने शासन में सुधार करना आरम्भ कर दिये। आस्ट्रिया के साम्राज्य के विभिन्न भागों के इटली, कोहेनिया, हङ्गरी तथा विएना के लोगों ने स्वराज्य प्राप्त करने के लिए राजद्रोह किये। विएना का सारा द्रोह मेटरनिश के विरुद्ध था, क्योंकि वह शासन के हर एक सुधार को रोकता था। लोग उससे इतनी घृणा करने लगे कि उसे अपना देश छोड़ इँग्लैण्ड भागना पड़ा, जहाँ उससे पहले लुइस फ़िलिप गया था। सम्राट् फ़र्डिनन्ड प्रथम ने आस्ट्रिया का सिंहासन अपने भतीजे फ़्रेंसिस जोज़फ़ के सुपुर्द कर दिया। उसने विधायक शासन तथा एक-जातीय व्यवस्थापिका सभा बनाने की प्रतिज्ञा की।

बर्लिन में भी सेना और जनता में परस्पर लड़ाई

हुई, जिस पर राजा फ्रेड्रिक विलियम चौथे को लोगों के इच्छानुसार विधायक गवर्नमेण्ट क़ायम करना पड़ी। इस समय से प्रशिया ने जर्मनी को संयुक्त देश बनाने में वही काम किया जो पीडमॉण्ट ने इटली में किया था।

मई १८४८ में फ्रेङ्कफोर्ट में 'व्यवस्थापिका सभा' की गई। उसके लिए विभिन्न जर्मन-राज्यों ने अपने-अपने प्रतिनिधि रवाना किये। इस सभा का काम जर्मन-राज्यों के लिए एक जातीय विधान तैयार करना था।

'व्यवस्थापिका सभा' (१८४८–१८४९) जर्मन-एकता के लिए प्रयत्न

परन्तु वह ऐसा न कर सकी, क्योंकि आस्ट्रिया प्रशिया से ईर्ष्या रखने के कारण ऐसा असाधारण पद लेना चाहता था कि अनेक राज्य उसके विरुद्ध होगये, यहाँ तक कि उन्होंने यह निर्णय किया कि आस्ट्रिया और उसकी अ-जर्मन जन-संख्या को एकता से निकाल दिया जाय और प्रशिया के राजा फ्रेड्रिक विलियम को सम्राट् का मुकुट पहनाया जाय। पर फ्रेड्रिक ने इस प्रजा-सत्तात्मक सभा से मुकुट लेना अस्वीकार किया। इस पर आस्ट्रिया और कई अन्य राज्यों ने अपने प्रतिनिधि वापस बुला लिये। इस सम्मेलन का यद्यपि कोई क्रियात्मक परिणाम नहीं निकला, तथापि यह बात सबको भली भाँति ज्ञात होगई कि जर्मन राज्यों में स्थायी एकता की बड़ी आवश्यकता है।

इधर जर्मनी की एकता के लिए प्रयत्न हो रहे थे, उधर

हङ्ग्रीवासी आस्ट्रियन शासन से बड़े तङ्ग थे। लोग अपने नेता कोशूट की अध्यक्षता में उठ खड़े हुए। आरम्भ में तो वे अपना प्रधान विधान माँगते थे, बाद में उन्होंने स्वतन्त्रता का निर्देश कर दिया। हङ्ग्री के देश-भक्तों ने बड़ी वीरता के साथ स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन किया। परन्तु आस्ट्रिया ने रूसी सैनिकों की सहायता से उन्हें दबा दिया।

हङ्ग्री में राज्यद्रोह (१८४८–१८४९) कोशूट

इधर आस्ट्रिया हङ्ग्री के झगड़े में फँसा हुआ था, उधर प्रशिया ने आस्ट्रिया को निकालकर अपनी अध्यक्षता में जर्मन-एकता का नया आन्दोलन आरम्भ किया। बहुत से छोटे राज्य प्रशिया के साथ होगये और १८४९ में प्रशिया ने 'प्रशियन गोष्ठी'—नामक एक सभा बनाई। परन्तु ज्योंही आस्ट्रिया उस तरफ़ से हटा, त्योंही उसने पुरानी 'डायट' के द्वारा दबाव डालकर प्रशिया को गोष्ठी बन्द करने के लिए विवश किया। बस, फिर जैसी की तैसी अवस्था होगई।

सन् १८६१ में फ़्रेड्रिक विलियम मर गया और उसका भाई विलियम प्रथम तिरसठ वर्ष की आयु में उसका उत्तराधिकारी बना। उसने ऑटोवन बिज़मार्क को अपना प्रधान मन्त्री एवं परराष्ट्र-मन्त्री बनाया।

जर्मनी को एक बनानेवाला बिस्मार्क

बिज़मार्क जर्मनी के महापुरुषों में से एक है। उसका शरीर तथा मस्तिष्क इतना बड़ा था, मानो

किसी दैत्य के साँचे में ढला हुआ हो। विज़मार्क यह समझता था कि प्रशिया का विशेष उद्देश जर्मन-जाति की एकता है और वह प्रशिया के राजवंश-द्वारा ही सम्पन्न हो सकती है। उसके मतानुसार इस उद्देश की पूर्त्ति के लिए राजा के हाथ में पूर्ण अधिकार होना आवश्यक था। राजा के सामने वह पार्लमेण्ट का कोई मूल्य नहीं समझता था। राजा की शक्ति को कम करना जर्मन-एकता को कम करना था। आस्ट्रियन समस्या का हल वह "खड्ग और रक्त" द्वारा करना चाहता था। इससे पहले कि जर्मन-राज्य एक जाति अथवा एक राष्ट्र बन सकें, आस्ट्रिया की शक्ति और दवाव को भङ्ग करना आवश्यक था। विज़मार्क के हाथ में शक्ति आने के समय से प्रशिया, जर्मन और योरुप के इतिहास में एक नया युग शुरू होता है।

प्रशियन पार्लमेण्ट के साथ विज़मार्क का झगड़ा

अपनी सेना को बलवान् बनाने के लिए ही विलियम ने विज़मार्क को अपना प्रधान मन्त्री चुना था। वह यह भी जानता था कि केवल विज़मार्क ही, पार्लमेण्ट का विरोध होने पर भी इस नीति को सफल बना सकता है। पार्लमेण्ट सेना के लिए रुपया मंजूर नहीं करती थी। विज़मार्क ने बिना पार्लमेण्ट की स्वीकृति के जर्मनी से कर वसूल करना आरम्भ कर दिया, इस प्रकार वह बात जिसने इँगलेण्ड में चार्लेस प्रथम तथा स्ट्रेफ़र्ड को फाँसी पर लटका दिया था, जर्मन-एकता के लिए साधक सिद्ध हुई।

बिज़मार्क को अपनी सेना तीन युद्धों के लिए तैयार करना पड़ी। पहला युद्ध श्लेसविग-हॉलस्टीन का हुआ।

श्लेसविग-हॉलस्टीन-युद्ध (१८६४)

हॉलस्टीन जर्मनी में डेनमार्क के राजा के अधीन एक छोटा सा राज्य था, जैसे हनोवर इँग्लेण्ड के अधीन था। १८६४ में डेनमार्क का राजा किसी उत्तराधिकारी के बिना ही मर गया। इसलिए जर्मन यह कहते थे कि हॉलस्टीन तथा उसके साथ मिला हुआ श्लेसविग-राज्य डेनमार्क के शासन से मुक्त हो जाना चाहिए, जिस प्रकार विलियम चौथे की मृत्यु के पश्चात् हनोवर इँग्लेण्ड से मुक्त होगया था। इस पर डेनमार्क के नये राजा क्रिश्चियन नवें ने आस्ट्रिया और प्रशिया के साथ युद्ध किया, परन्तु इसमें पराजित होने पर उसे अपना अधिकार छोड़ना पड़ा।

इन्हीं राज्यों के लिए अब आस्ट्रिया और प्रशिया के बीच में युद्ध शुरू हुआ। बिज़मार्क उन्हें प्रशिया में

आस्ट्रिया और प्रशिया में युद्ध (१८६६)

मिलाने पर तुला हुआ था। इस लिए वह आस्ट्रिया से युद्ध करने के लिए भी तैयार हो गया। आस्ट्रिया ने भी 'चैलेंज' स्वीकार कर लिया। बिज़मार्क ने फ्रांस के सम्राट् नेपोलियन को बेलजियम और इटली को वेसेशिया देने की प्रतिज्ञा करके दोनों को अपनी ओर मिला लिया। उसने कई अन्य प्रलोभन देकर छोटे-छोटे जर्मन-राज्यों को भी

अपनी ओर सम्मिलित करने का प्रयत्न किया, परन्तु वे सब आस्ट्रिया की ही तरफ़ रहे। यद्यपि आस्ट्रिया की शक्ति अधिक थी और प्रशिया की थोड़ी, परन्तु इसी अभिप्राय से तो वह प्रशिया की सेना को इतनी देर से तैयार कर रहा था।

सन् १८६६ में अढ़ाई लाख से अधिक सेना 'मार्च' के लिए तैयार हुई। तीन स्थलों—इटली, बोहेमिया तथा दक्षिणी जर्मनी में युद्ध हुए। पर सडोवा-स्थल पर प्रशिया और आस्ट्रिया की सेनाओं में जो बड़ा निर्णायक युद्ध हुआ, उसमें आस्ट्रिया के भाग्य का निर्णय होगया। प्रशिया की सेना विएना की ओर बढ़ रही थी। फ्रेंसिस जोज़फ़ ने सन्धि के लिए प्रार्थना की। प्रेग में सन्धि हुई। उसके अनुसार आस्ट्रिया पुराने जर्मन कानफ़ेड्रेशन का विसर्जन करने के लिए राजी होगया। पर एक शर्त यह थी कि प्रशिया जैसे चाहे वैसे राज्यों का सङ्गठन करे। वेनेशिया इटली को दे दिया गया।

सन् १८६७ में प्रशिया ने इक्कीस राज्यों को एकत्र करके 'उत्तरीय जर्मन कानफ़ेड्रेशन' नामक संघ स्थापित किया। हेनवर, हेसकसेल, नसो, श्लेसविग, हॉलस्टीन और फ्रेंकफ़ोर्ट के स्वतन्त्र नगर अपने राज्य के साथ मिलाने से प्रशिया के बिखरे हुए भाग एक संयुक्त राज्य में आ गये।

'उत्तरी जर्मन कानफ़ेड्रेशन' की स्थापना (१८६७)

कानफ़ेड्रेशन का एक नया विधान भी तैयार किया गया, जिसके अनुसार एक 'फ़ेड्रल पार्लमेण्ट' या राज-सभा बनाई गई। उसके सदस्य विभिन्न राज्यों के निर्वाचित प्रतिनिधि होते थे। नये विधानानुसार प्रशिया का राजा कानफ़ेड्रेशन का परम्परागत प्रबन्धाधिकारी और उसकी सारी सेना का सेनानायक बनाया गया। यद्यपि बिज़मार्क अपनी नीति में यहाँ तक सफल होगया उसको अभी बहुत कुछ करना बाक़ी था।

मेन-नदी के दक्षिण के राज्य कानफ़ेड्रेशन में सम्मिलित नहीं हुए थे। यद्यपि उनमें से बहुत से देश-भक्त जर्मन-एकता के पक्ष में थे, तथापि दक्षिण की रोमन-कैथॉलिक जन-संख्या प्रशिया के अधीन होने के लिए बिलकुल तैयार नहीं थी। इसके अतिरिक्त फ़्रांस का सम्राट् नेपोलियन भी उन्हें यह परामर्श देता था कि तुम मेरी सहायता से दक्षिणी राज्यों का एक पृथक् कानफ़ेड्रेशन बना लो।

फ़्रांस का जर्मनी के मामलों में इस प्रकार हस्तक्षेप करना जर्मनों को सह्य नहीं हो सकता था। परन्तु इसके साथ ही फ़्रांस भी यह नहीं देख सकता था कि उसके पड़ोस में एक महान् शक्तिशाली साम्राज्य बन जाय। उसकी ईर्ष्या तथा घृणा का पात्र अब हेप्सबर्ग-वंश के स्थान में होएनज़ोलेर्न-वंश होगया। इसलिए फ़्रांस

फ़्रांस और प्रशिया में युद्ध (१८७०-१८७१)

कोई मौका ढूँढ़ ही रहा था कि कब वह प्रशिया की उठती हुई शक्ति को दबा सके। पर इसके लिए उसे बहुत समय तक प्रतीक्षा न करना पड़ी।

सन् १८६६ में जब स्पेन का सिंहासन ख़ाली हुआ तब ल्युपोल्ड-नामक एक होएनज़ोलेर्न-वंशीय राजा उसके लिए निमंत्रित किया गया। फ़्रांस ने इसे पसन्द न किया। फ़्रांस की नाराज़गी से बचने के लिए यद्यपि ल्युपोल्ड ने स्पेन की प्रार्थना अस्वीकार कर दी तथापि नेपोलियन ने राजा विलियम से इस बात की प्रतिज्ञा माँगी कि उस (विलियम) के वंश का कोई भी सदस्य स्पेन के सिंहासन का उम्मेदवार न होगा।

राजा विलियम एम्स-नामक स्रोत पर था कि फ़्रांसीसी दूत उसके पास पहुँचा। जब उसने राजा से प्रतिज्ञा लिखने के लिए कहा तब उससे अधिक बातें न करके विलियम ने एक तार-द्वारा बिज़मार्क को इस बात की सूचना दी। साथ ही उसने इस बात की भी अनुज्ञा दे दी कि बिज़मार्क उस तार को चाहे जैसे उपयोग में ला सकता है। बिज़मार्क के पास अन्य राजपुरुष भी बैठे थे। उसने सेनानायक से पूछा कि इस समय युद्ध करना हितकर होगा या अहितकर? सेनानायक ने उत्तर दिया कि युद्ध जितनी जल्दी प्रारम्भ हो उतना ही अच्छा! बिज़मार्क ने राजा के तार को इस प्रकार सम्पादित किया कि उसका अर्थ यह होगया कि राजा ने दूत

के साथ भेट नहीं की तथा उसे अपने दरबार से हटा दिया। परन्तु, जैसा कि ऊपर कहा गया है, वास्तव में ऐसा नहीं हुआ था। यह तार बिज़मार्क ने पत्रों में छपा दिया। आधी रात के समय यह बात फ़्रांस में पहुँची। इससे सारे पेरिस में आग लग गई, उसके लिए युद्ध करना आवश्यक होगया।

जर्मनी में फ़्रांस के विरुद्ध युद्ध करने का इतना आवेश था कि न केवल उत्तरी कॉनफेड्रेशन ने, प्रत्युत दक्षिणी राज्यों ने भी अपनी सेनायें विलियम के सुपुर्द कर दीं। जर्मनी में देश-भक्ति की ज्वाला प्रज्वलित होगई। इस युद्ध ने एक जातीय सङ्कट का रूप धारण कर लिया। युद्ध का आरम्भ करते समय विलियम ने घोषित किया—"समस्त जर्मनी एकस्वर से अपने उस पड़ोसी के विरुद्ध युद्ध करने पर तैयार हुआ है, जिसने अकारण हमारे विरुद्ध युद्ध की घोषणा की है। हम अपने गौरव, अपने घर तथा अपने देश की अपने प्राणों-द्वारा रक्षा करेंगे।"

प्रशिया ने युद्ध-सेना इस प्रकार ढाली थी कि उससे बढ़कर अभी तक किसी देश ने मशीनों-द्वारा शस्त्र भी नहीं ढाले हैं। सेनाओं के लिए आने-जाने और ठहरने के सम्बन्ध की सभी बातें पहले से ही निश्चित कर ली गई थीं। केवल एक ही बात से इनकी तैयारी का अनुमान लगाया जा सकता है कि एक सौ पचास रेलगाड़ियों में से, जिनसे डेढ़ लाख सैनिक

फ़्रांस की सीमा पर गये थे, एक गाड़ी भी एक मिनट के विलम्ब से नहीं पहुँची। इसके विरुद्ध फ़्रांस में न कोई तैयारी थी और न प्रबन्ध। रेज़ीमेण्ट बिना शस्त्रों के ही आगे भेज दी गईं। जनरल किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर तार पर तार दे रहे थे कि वे क्या करें और किधर जायँ।

फ़्रांस ने सेना और आस्टेट के बल पर युद्ध आरम्भ किया था। परन्तु मेट्ज़ और सेडॉङ्ग में फ्रेञ्च सेनाओं की बड़ी पराजय हुई। सेडॉङ्ग में तिरासी हज़ार सैनिक और स्वयं सम्राट् नेपोलियन पकड़े गये। जर्मन-सेनायें सीधी पेरिस आ पहुँचीं। तीन मास तक पेरिसवासियों ने भूख और सरदी सहन करके उनका विरोध किया। पर अन्त में पेरिस ने जर्मनी की अधीनता और शर्तें स्वीकार कर लीं। युद्ध-खर्च के अतिरिक्त उसने आलसास तथा लोरेन भी जर्मनी को वापस दे दिये।

नया जर्मन-साम्राज्य (१८७१)

जर्मनी की इन अद्वितीय विजयों से देश में जातीय भावों की ख़ूब वृद्धि हुई। इन विजयों में यह बात स्मरणीय है कि जर्मनी की यह वीरता और अनुपम देश-भक्ति उस अद्भुत शिक्षा-क्रम के फल थे, जो स्वातन्त्र्य-युद्ध के समय देश में प्रचलित किया गया था। जर्मन-सेना में कालेजों के सुशिक्षित नवयुवक थे। साडोआ के युद्ध में अवकाश मिलने पर वे परस्पर अफलातूँ की दार्शनिक बातों पर वाद-विवाद किया करते थे। फ़्रांस के साथ युद्ध करते समय सेना में भाषा-शास्त्र से प्रेम रखनेवाले

इतने नवयुवक थे कि उन्होंने एक जातीय गीत के बत्तीस विभिन्न भाषाओं में भाषान्तर कर दिये।

पेरिस का घेरा अभी समाप्त नहीं हुआ था कि वेरसेल्ज़ में दक्षिणी राज्यों के प्रतिनिधि विलियम के पास पहुँचे। उन्होंने अपने आपको उत्तरी जर्मन कॉनफ़ेड्रेशन में सम्मिलित करने की इच्छा प्रकट की। वहीं पर बडेन, हेस, बरटम्बर्ग और बावेरिया राज्य कॉनफ़ेड्रेशन में शामिल कर लिये गये और उनके पहले नाम के स्थान में जर्मन कॉनफ़ेड्रेशन उनका नाम रख दिया गया।

बावेरिया के राजा की सम्मति से विलियम को, जो अभी तक कॉनफेड्रेशन का सभापति था, जर्मन-सम्राट् की उपाधि देने का विचार किया गया और १८७१ में बड़ी धूम-धाम के साथ वेरसेल्ज़ में वह सम्राट् बनाया गया। इस प्रकार इस युद्ध के अनन्तर उस नये जर्मन-साम्राज्य की नीव पड़ी जो सदियों से ऐक्य और स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन कर रहा था।

आलसास तथा लोरेन दोनों राज्य-भाषा तथा जातीयता की दृष्टि से एक-दम फ्रेञ्च थे। विज़मार्क ने इनको जर्मनी के अन्तर्गत करके न केवल जातीयता के सिद्धान्त को तोड़ा, वरन् एक बड़ी भारी राज-नैतिक भूल की। परन्तु विज़मार्क यह समझता था कि भावी युद्ध को रोकने के लिए यह आवश्यक है। क्योंकि वह समझता था

आलसास तथा लोरेन का जर्मनी के अन्तर्गत होना

कि फ़्रांस अपने अपमान के घाव को धोने के लिए अवश्यमेव युद्ध करेगा और इस युद्ध की तैयारी के वास्ते यह सबसे उत्तम है कि जर्मनी अपनी सीमाओं को फ़्रांस के इन राज्यों तक बढ़ा ले जिससे फ़्रांस पहले अपने ही प्रदेशों से युद्ध का सूत्रापत करे।

बाद की घटनायें

तत्पश्चात् बिज़मार्क ने बीस वर्ष तक साम्राज्य-अध्यक्ष ('इम्पीरियल चान्सलर') के रूप में जर्मन-साम्राज्य को सुदृढ़ बनाया। उसकी सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण जर्मन-साम्राज्य, आस्ट्रिया तथा इटली की वह सन्धि है, जिसके द्वारा उसने रूस तथा फ़्रांस की शक्ति को बढ़ने से रोक दिया था।

१८८८ में सम्राट् विलियम का देहावसान होगया। उसके लड़के ने भी तीन मास राज्य करके अपने पिता का अनुसरण किया। इसलिए अब फ़्रेड्रिक का लड़का विलियम द्वितीय सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। वह नवयुवक सम्राट् बड़ा उद्धत और विचित्र स्वभाव का था। अपने राज्य के दूसरे ही वर्ष में उसने जर्मन-साम्राज्य के जन्मदाता तथा होएनज़ोलेस-वंश के निर्माता बिज़मार्क का अपमान करके उसे पदच्युत कर दिया और सारी शासन-शक्ति अपने हाथ में लेली। इसके राज्य-काल की सबसे बड़ी घटना थी योरुप का महासमर, जिसने जर्मन-साम्राज्य का अन्त कर दिया।

प्रत्येक बड़ी राज्य-क्रान्ति से पहले कुछ विशेष विचारों का

प्रसार आवश्यक होता है। इस काल के जर्मन-दर्शन-शास्त्र ने जर्मन-जाति के सामने एक विशेष उद्देश रक्खा था। सबसे बड़े दार्शनिक निट्शे के दर्शन का मूल सिद्धान्त यह था कि विकासवाद के अनुसार विभिन्न पशुओं की सीढ़ियों से उन्नति करके प्राणी मनुष्य का रूप धारण मनुष्य करता है। अब विकास की आगामी श्रेणी यह होगी कि मनुष्यों में से कोई विशेष जाति उन्नति करके 'सुपरमैन' या 'अतिमनुष्य' का पद प्राप्त करेगी। जर्मन-जाति के अन्दर असाधारण गुण हैं, इसलिए उसे यह आदर्श-पद प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

योरुपीय महासमर के कारण—जर्मन-दर्शन-शास्त्र

इसके अतिरिक्त जर्मन-नवयुवकों को यह शिक्षा दी जाती थी कि जो जाति सैनिक ढंग से सबसे अधिक बलवती तथा सशक्त होती है वही संसार पर शासन कर सकती है। जहाँ योरुप के अन्य देशों की यह इच्छा थी कि व्यापारिक मामलों को एक समान योरुपीय जातियों के परस्पर के झगड़ों का निपटारा करके युद्ध का अन्त कर दिया जाय, वहाँ जर्मन-जाति इस बात पर तुली हुई थी कि मानव-उन्नति के क्षेत्र में विभिन्न जातियाँ एक दूसरे के साथ इस प्रकार संग्रथित हो जायँ, जिस प्रकार टूरनामेंट में खिलाड़ी-दल एक दूसरे पर विजय पाने का सम्मिलित प्रयत्न करते हैं। युद्ध केवल एक खेल है, जिससे जातियों के उत्कर्ष तथा पतन; भावी जीवन तथा मृत्यु का

निर्णय होता है। इस अर्थ से युद्ध संसार के लिए एक ईश्वर-दत्त प्रसाद है, जो पतनशील जातियों को क्षेत्र से पीछे हटाकर उन्नति-शील जाति को आगे ले आता है।

स्वभावतः बालक को छोटे प्राणियों को सताने में कुछ प्रसन्नता होती है। नवयुवकों को आखेट प्रिय होता है। बड़े-बड़े राज्यों के प्रारम्भ में आखेट-द्वारा ही राज्य बनाना आरम्भ कर दिया गया था। योरुपीय जातियों के शिकारियों ने अफ़रीक़ा के जङ्गलों में शिकार करते हुए राज्य बनाये थे और चङ्गेज़ख़ाँ, हैदरअली या शिवाजी ने भी शिकार द्वारा राज्य क़ायम करना सीखा था। जर्मन-दर्शन-शास्त्र के अनुसार जब जातियाँ वृद्ध होने लगती हैं तब उनमें जैनों के समान दया-भाव प्रबल होने लगता है। इसी सिद्धान्त पर कई मज़हबों ने प्राणियों की हत्या आवश्यक बता दिया है।

जर्मन-जाति में अपनी विजयों से काफी गर्व उत्पन्न होगया था। जर्मन समझने लगे थे कि केवल हमीं ईश्वर के विशेष कृपापात्र हैं। और संसार का भविष्य ईश्वर ने हमारे हाथ ही में सौंप दिया है।

जर्मन राजा कैसर विलियम ने जर्मन-जाति की प्रतिनिधि-हैसियत से अपना सारा समय तथा शक्ति इसी काम में लगा दी। उसके स्वभाव में घमण्ड तथा गर्व कूट कूटकर भरा था। नेपोलियन के समान वह भी चाहता था कि जर्मनी सारे योरुप का केन्द्र हो जाय और मैं स्वयं जर्मन-साम्राज्य का केन्द्र बन जाऊँ।

जर्मन-वासियों के विचारों का झुकाव इस ओर सबसे अधिक था कि जर्मनी का भविष्य इँग्लेण्ड के निर्बल होने से उज्ज्वल होगा। जर्मन ऐतिहासिक वॉनटे-रीइख़ ने बर्लिन में खुल्लमखुल्ला व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया था कि जर्मनी को मीठी नींद में सुलाकर इँग्लेण्ड ने संसार में इतना बड़ा साम्राज्य बना लिया है। जर्मनी को योरुप के शतवर्षीय युद्ध में फँसाकर इँग्लेण्ड चालाकी से अपने उपनिवेश बढ़ाता रहा है। उस समय प्रतिवर्ष लाखों जर्मन विदेशों में जाते थे। पर अपनी जाति से निकल जाने पर भी वे अँगरेज़-जाति की बढ़ती में सहायक होते थे। क्योंकि सबको अँगरेज़ी उपनिवेशों में अँगरेज़ी-भाषा सीखना पड़ती थी, इसलिए दूसरी या तीसरी पीढ़ी में वे जर्मन से अँगरेज़ बन जाते थे। जर्मनी ने सोचा जिस चतुराई तथा युद्ध के द्वारा इँग्लेण्ड ने संसार पर अधिकार किया है उसी चतुराई तथा युद्ध के द्वारा उसका अधिकार हटाया जा सकता है। जर्मनी इसके लिए तैयारी करने लगा।

इँग्लेण्ड का उत्कर्ष

इँग्लेण्ड का संसार पर स्वत्व हो चुका था, इसलिए उसका स्वाभाविक लाभ इसी में था कि कोई युद्ध न छिड़े और संसार में शान्ति बनी रहे। अपना स्वत्व बनाये रखने के लिए इँग्लेण्ड जर्मनी को राज़ी करने तथा योरुप में शान्ति रखने के उपाय सोचता था। जर्मन-राजनीतिज्ञ ब्रिटिश-साम्राज्य को ही इँग्लेण्ड के मार्ग में सबसे बड़ा अवरोध समझते थे

वे सोचते थे कि इतने काल आराम से शासन करने के बाद अब वह पतन की ओर जा रहा है और एक आध ठोकर लगने पर इसका साम्राज्य टूट जायगा।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्ष में इँग्लेण्ड को दक्खिनी अफ़रीका के बोरों से युद्ध करना पड़ा। इस युद्ध ने जर्मन-जाति की दृष्टि में ब्रिटिश-साम्राज्य को निर्बल सिद्ध कर दिया।

बोर-युद्ध (१८९९)

बोर वास्तव में हॉलेण्ड के निवासी थे, जो सत्रहवीं शताब्दी के बीच में अफ़रीका के दक्खिनी अन्तरीप में जा बसे थे। नेपोलियन के साथ युद्ध करते समय इँग्लेण्ड ने इनके उपनिवेश को अपनी हिफ़ाजत में ले लिया और नेपोलियन की क़ैद के पश्चात् इस पर अपना स्वत्व कर लिया। बोरों को इँग्लेण्ड की अधीनता पसन्द न आई। वे अपना माल-असबाब बैल-गाड़ियों में लादकर अफ़रीका के आन्तरिक वनप्रदेश में नये घरों के लिए स्थान की तलाश में निकल पड़े। इसे वे 'महायात्रा' कहते थे। उनमें से कुछ तो ऑरेञ्ज-नदी के तट पर जा बसे और शेष ने वाल-नदी के तट पर ट्राँसवाल-उपनिवेश बसाया।

बोरों के दुर्भाग्य से १८८५ में वहाँ पर सोने की खानें निकल आईं और योरुपीय एक बड़ी संख्या में खानों की खोज में वहाँ जा पहुँचे। उनमें से बहुत से अँगरेज़ थे। बोरों ने उन्हें अपने शासन में भाग देने से

इनकार कर दिया, क्योंकि वे समझते थे कि उन (अँगरेज़ों) को मत-दान का अधिकार देना मानो अपने आपको ब्रिटिश-साम्राज्य में सम्मिलित कर लेना है। इस घोर वाद-विवाद के परिणाम-स्वरूप में इँग्लेण्ड और बोरों का युद्ध हुआ।

बोरों की जन-संख्या तीन लाख से अधिक नहीं थी, फिर भी यह छोटी सी जाति महान् ब्रिटिश-साम्राज्य का विरोध करने के लिए तैयार होगई। उनमें किसी प्रकार की उच्च शिक्षा भी न थी, परन्तु अपने पूर्व-पुरुषों के मज़हबी तथा राजनैतिक स्वतन्त्रता की प्रेम-कथाएँ सभी बच्चों तथा स्त्रियों के मुँह पर थीं। उनके कुछ पूर्व-पुरुष वे ह्युजनाट थे, जिन्होंने लुइस चौदहवें से तङ्ग आकर स्वदेश छोड़ दिया था और कुछ वे थे, जिन्होंने अपनी स्वतन्त्रता के लिए स्पेन के विरुद्ध युद्ध किया था और बाद में योरुप छोड़कर 'यात्री पिताओं' के समान मज़हबी स्वतन्त्रता के लिए अफ़रीक़ा में अपना उपनिवेश बसाया था। जब वहाँ भी अँगरेज़ों का राज्य हो गया तब भी उनको उनके अधीन रहना सह्य न हुआ।

इन पूर्व-पुरुषों का रक्त बोरों के खून में जोश मार रहा था। युद्ध के आरम्भ में उन्होंने अँगरेज़ी सेना को ऐसा पराजित किया कि यह डर पैदा होगया कि कहीं अफ़रीक़ा में ब्रिटिश-साम्राज्य का अन्त न हो जाय। इँग्लेण्ड को जनरल रॉबर्ट के साथ तीन लाख सेना भेजना पड़ा। तीन वर्ष तक बोर युद्ध करते रहे और जब तक सारे बोर-

बालक और नवयुवक अफ़रीका से बाहर निकालकर विदेशों में न भेज दिये गये तब तक उन्होंने अपने हथियार न डाले।

इस युद्ध में जर्मनी की सहानुभूति बोअरों के साथ थी। इस युद्ध से जर्मन-राजनीतिज्ञों ने यह समझा कि अँगरेजों में सैनिक बल नहीं रह गया है। इसलिए यदि वह एक सैनिक शक्ति के रूप में ब्रिटिश-साम्राज्य पर आघात करेगा तो वह आसानी से छिन्न-भिन्न हो जायगा।

फ्रांस से घृणा

जर्मनी के विश्वविद्यालयों में इतिहास-अध्यापक जर्मन-नवयुवकों को यही शिक्षा देने लगे कि जर्मनी के उत्कर्ष के मार्ग में इँग्लेण्ड की शक्ति ही एक ऐसी चट्टान है, जिसे किसी न किसी तरह अवश्य हटाना होगा। परन्तु उन्हें यह भी डर था कि फ्रांस भी उनका शत्रु है। इसलिए कैसर ने इन दोनों देशों के विरुद्ध अपनी शक्ति बढ़ाने का निश्चय किया।

जर्मनी के प्रति फ्रांस की घृणा की नींव आलसास तथा लोरेन ने रक्खी थी। इन दोनों प्रदेशों को छीनकर बिज़मार्क ने मानो सदा के लिए शत्रुता का बीज बो दिया था। फ्रांस में प्रतिवर्ष इन दोनों के पार्थक्य पर शोक मनाया जाता था और लोग अपने बिछुड़े हुए भाइयों को अपने साथ मिलाने के लिए प्रण किया करते थे। आलसास तथा लोरेन के सारे निवासी फ्रेञ्च थे। इसलिए यदि बिज़मार्क चाहता तो इन्हें फ्रांस को देकर उसे अपना कृतज्ञ बना लेता। किन्तु उस समय बिज़-

मार्क को यह नीति ठीक नहीं प्रतीत होती थी। आज हम देखते हैं कि इसी नीति ने जर्मनी के विनाश का बीज बो दिया था।

पर जर्मनी को फ्रांस की घृणा की परवाह न थी, उनको यदि भय था तो इँग्लेण्ड की समुद्री शक्ति का। इँग्लेण्ड के समुद्री बेड़े ने गत युद्धों में इँग्लेण्ड के प्रभाव को और भी बढ़ा दिया था। केसर यही चाहता था कि जर्मनी के पास भी एक वैसा ही शक्तिशाली बेड़ा हो जाय। प्रतिवर्ष ज्यों-ज्यों जर्मन-गवर्नमेण्ट सैनिक जहाज़ तैयार करती थी, त्यों-त्यों इँग्लेण्ड की सरकार भी अपने जहाज़ों की संख्या दुगुनी करती जाती थी। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही यह सङ्घर्ष आरम्भ हो गया था।

इँग्लेण्ड ने फ्रांस के साथ सन्धि कर ली थी। १९११ में फ्रांस तथा मोरक्को के बीच कुछ खटपट सी होगई। केसर में इँग्लेण्ड तथा फ्रांस की मैत्री की जाँच करने के लिए एक सैनिक जहाज़ मोरक्को भेज दिया। इँग्लेण्ड तुरन्त फ्रांस की सहायता के लिए तैय्यार होगया। इससे जर्मन-सरकार को यह पूर्ण विश्वास हो गया कि युद्ध की अवस्था में इँग्लेण्ड तथा फ्रांस एक साथ रहेंगे।

रूस तथा तुर्की में चिरकाल से पारस्परिक शत्रुता चली आती थी। रूस तुर्की की राजधानी क़ुस्तुनतुनिया पर अपना स्वत्व करना चाहता था। १८५४ में क्रीमिया-युद्ध के समय ज़ार निकॉलस ने

तुर्की

तुर्की को योरुप के बीच एक पुराने रोगी से उपमा दी थी, इससे पिंड छुड़ाना योरुप के लिए आवश्यक था।

सन् १८७५ में हेरसेज़ोवीना तथा बोजिया-राज्यों की ईसाई आबादी कर एकत्र करनेवाले तुर्कों के अत्याचार से पीड़ित होकर द्रोही हो गये। बलगरिया भी उनके साथ होगया। इस पर तुर्कों ने बलगरिया के बाल-वृद्ध और स्त्री-पुरुष सभी को बड़ी निर्दयता के साथ मार डाला। परिणाम-स्वरूप रूस ने तुर्की के साथ युद्ध छेड़ दिया। रूस की सेनायें फिर एक बार कुस्तुनतुनिया में आ पहुँचीं।

इससे योरुप में तुर्की का अन्त हो जाता यदि इँग्लेण्ड उसमें हस्तक्षेप न करता। उसने तुर्की राजधानी रूस के हाथ में जाने से बचा ली। १८७८ में बर्लिन की सन्धि हुई, जिसके अनुसार तुर्की-राज्य को बाँट कर कई ईसाई-राज्य बना दिये गये। सर्विया तथा मॉण्टेनेग्रो स्वतन्त्र कर दिये गये, मॉलडेविया तथा वॉलेकिया रुमानिया के साथ मिला दिये गये। बलगरिया को स्वतन्त्रता प्रदान की गई, पर उसके लिए सुलतान को राजत्व देना आवश्यक रक्खा गया। पूर्वी रूमेलिया एक ईसाई शासक के अधीन कर दिया गया। परन्तु १८८५ में रूमेलिया बलगरिया के साथ शामिल कर दिया गया, बोज़िया तथा हासेंगोवीना आस्ट्रिया को दे दिये गये, साईपरस-टापू इँग्लेण्ड को; आरदाहान, कार्स,

बातूम आरमेनिया को और बेस्सेरेबिया रूस को दे दिये गये। इस प्रकार तुर्की राज्य पहले से आधा रह गया। उसकी जन-संख्या लगभग पचास लाख रह गई, जिनमें से आधे ईसाई थे।

इसके बाद बालकान-राज्य विभिन्न योरुपीय शक्तियों के लिए षड्यन्त्र रचने के केन्द्र से बन गये। एक ओर तो रूस तथा आस्ट्रिया दोनों एक दूसरे के शत्रु थे, रूस अपना दबदबा बढ़ाना चाहता था और बलकान में आस्ट्रिया के रोब को रोकना चाहता था; और दूसरी ओर तुर्की में अपना अपना प्रभाव जमाने के लिए इँग्लेण्ड तथा जर्मनी का संघर्ष शुरू हो गया था। जर्मनी एशिया में अपना व्यापार बढ़ाना चाहता था और उसका मार्ग तुर्की में ही संभव हो सकता था।

यद्यपि गत शताब्दी में इँग्लेण्ड रूस के विरुद्ध तुर्कों की सहायता करता रहा था परन्तु तुर्क इसमें इँग्लेण्ड का स्वार्थ देखते थे। तुर्कों का नया दल "तरुण तुर्क" अपने देश में अपना शासन रखने तथा उसे अँगरेज़ों के प्रभाव से स्वतन्त्र बनाने के इच्छुक थे। इसी लिए धीरे धीरे वे जर्मनी की मैत्री की ओर झुक रहे थे। जर्मनी को सीरिया तक रेलवे लाईन बनाने की अनुज्ञा दे दी गई। महासमर के आरम्भ होने पर रूस इँग्लेण्ड और फ्रांस के साथ था। उसे पक्का विश्वास था कि इस युद्ध में कुस्तुनतुनिया प्राप्त

करने की उसकी पुरानी इच्छा पूर्ण हो जायगी। तुर्की स्वभावतः जर्मनी का सहायक होगया।

आस्ट्रिया

सडोवा की पराजय के पश्चात् आस्ट्रिया को विश्वास हो गया कि अब पुरानी स्वेच्छाचारिता का समय नहीं रह गया है। सम्राट् फ्रैंसिस जोज़फ़ ने यह निश्चय कर लिया कि वह मॉडयॉर लोगों को स्वतन्त्रता देकर उन्हें शासन का सच्चा मित्र बना लेगा।

सन् १८४८ में हङ्गरीवासियों ने कोशूट के नेतृत्व में आस्ट्रिया के विरुद्ध राजद्रोह करके अपने आपको स्वतन्त्र जताया था। परन्तु रूस के ज़ार ने अपनी सेनायें आस्ट्रिया-सम्राट् के सहायता के लिए भेज दीं। यद्यपि हङ्गरी के देश-भक्त स्वतन्त्रता के लिए बड़ी वीरता से लड़ते रहे तथापि अगणित सेना के सामने उनकी कुछ न चली। राज के दब जाने पर कोशूट यह कहकर कुस्तुनतुनिया चला गया—"हाथ से तलवार तो छीनी जा सकती है परन्तु इससे आत्मा नहीं कुचली जा सकती।"

मॉडयॉर लोग उसी समय से आस्ट्रिया से जलते थे। परिणाम-स्वरूप १८६७ में हङ्गरी तथा आस्ट्रिया की सन्धि हुई, जिससे साम्राज्य के दो भाग कर दिये गये—एक आस्ट्रिया और दूसरा हङ्गरी। दोनों भाग आन्तरिक मामलों में एक दूसरे से स्वतन्त्र होगये, पर उनका राजा एक ही रहा।

इससे आस्ट्रिया की एक बड़ी भारी समस्या हल होगई। आस्ट्रि-यन साम्राज्य की दो बड़ी जातियों—जर्मनों तथा मॉडयॉरों—में मैत्री स्थापित होगई।

परन्तु उसमें इन दो के अतिरिक्त अन्य कई ऐसी छोटी जातियाँ भी थीं, जिनके अधिकारों का कोई ख़याल नहीं किया गया था। इन जातियों की संख्या का अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि आस्ट्रियन पार्लमेण्ट में प्रतिज्ञा के समय आठ भाषाओं का प्रयोग किया जाता था। जर्मन-भाग में बोहे-सिया के अन्दर चेश और गलिशिया में पोल्स-लोग थे, जो अपने अधिकारों के लिए आन्दोलन करते थे। हङ्गरी-भाग में विभिन्न क़बीलों के स्लव थे जिन्हें मॉडयॉर अपनी भाषा तथा रीति-रिवाज ग्रहण करने के लिए विवश करते थे। इनके अति-रिक्त ट्रीस्ट तथा टिरल में इटालियन लोग थे। ये इटली की ओर झुके हुए थे। ट्रन्सलवनिया में रूमानिया के लोग थे, इनका झुकाव रूमानिया की ओर तथा उत्तर के स्लव रूस की ओर आँखें लगाये बैठे थे।

इन विभिन्न अङ्गों को एक में मिलानेवाली आकर्षण-शक्ति थी। वृद्ध सम्राट् जोज़फ़ की असाधारण सर्वप्रियता पर आस्ट्रिया के पड़ोसी देश किसी ऐसे मौक़े की तलाश में रहते थे, कि कब वे इन बिखरे हुए अङ्गों को किसी प्रकार अपने अन्दर सम्मिलित कर लें। यह स्पष्ट दिखाई देता था कि सम्राट् के मर जाने पर आस्ट्रिया का साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने से न बच

लगेगा। योरुप में इस सम्राट् की मृत्यु एक महान् सङ्कट लानेवाली घटना समझी जाती थी।

इस प्रकार योरुप के राजनीतिज्ञ जिस बात से डरते थे वही संघटित हुई। सन् १९१४ में सम्राट् का उत्तराधिकारी मोटर में सैर करते समय मार डाला गया। आस्ट्रिया को यह सन्देह हुआ कि इस वध के अन्तस्तल में बड़े देशों का षड्यन्त्र काम कर रहा था। इसलिए उसने अन्वेषण तथा दण्ड के लिए सर्विया से अपने अभियुक्तों को माँगा। उसने देने से इनकार किया। बस, इसी एक चिनगारी ने सारे योरुप में आग लगा दी, यही इस युग का महासमर कहलाता है। आस्ट्रिया ने सर्विया में अपनी सेना भेजी और रूस अपनी सेना के साथ सर्विया की रक्षा के लिए तैयार होगया। जर्मनी आस्ट्रिया की मदद के लिए सेना लिये बैठा था। रूस की सन्धि के अनुसार फ्रांस भी युद्ध में सम्मिलित हो गया। जर्मनी ने बेलजियम से फ्रांस पर आक्रमण करने के लिए रास्ता माँगा। उसके इनकार करने पर जर्मनी ने बेलजियम पर ही अपनी सेनायें चढ़ा दीं। इस पर इँग्लैण्ड भी दलबल-सहित युद्ध में उतर पड़ा।

महासमर के परिणाम

अगस्त १९१४ से लेकर लगभग चार वर्ष तक सारा संसार इस युद्ध के आतङ्क से काँपता रहा। यह युद्ध इतना भयङ्कर हुआ कि संसार के पुराने युद्धों की इसकी तुलना में कोई गणना ही नहीं। न केवल योरुप के सभी देशों ने किसी न किसी

पक्ष में सम्मिलित होकर युद्ध में भाग लिया, प्रत्युत एशिया, अफ़रीक़ा तथा अमरीका के अनेक रण-क्षेत्रों में भी विभिन्न जातियाँ एक दूसरे के विरुद्ध लड़ती रहीं। पृथ्वी का कोई कोना ऐसा नहीं था जो इस युद्ध के प्रभाव से बचा हो। समस्त संसार चकित होकर युद्ध के दृश्यों को देखता था। इस समय सभी प्रकार की विद्यायें, विज्ञान तथा रसायन का उद्देश युद्ध-संचालन हो गया था। इसमें अनेक प्रकार की विषैली गैसें तथा बारूद इस्तेमाल किये गये। न केवल जल और स्थल पर, वरन् आकाश में वायुयानों के द्वारा युद्ध होते थे और समुद्र के नीचे भी जहाज़ तथा पनडुब्बियाँ एक दूसरे से युद्ध करके उन्हें डुबो देती थीं।

संसार के इतिहास में यही पहला युद्ध था जिसमें सभी बड़े बड़े देशों के नवयुवक विद्यालय, महाविद्यालय तथा विश्व-विद्यालय छोड़कर रणक्षेत्रों में बसने लगे थे। अपनी जाति तथा देश के रक्षार्थ लाखों-करोड़ों नवयुवक तोप के मुँह के सामने जा खड़े हुए, स्त्रियों ने गृह-प्रबन्ध छोड़कर मनुष्यों के काम सँभाले, बारूद तथा बॉम्बों के कारख़ानों तक में वे काम करने लगीं। यह पहला युद्ध था, जिसमें इटली, रूस, फ़्रांस, जर्मनी, इंग्लैण्ड आदि प्रत्येक देश से पचास लाख और एक करोड़ के बीच नवयुवक मैदान में लड़ने के लिए निकले थे। स्वदेश के हितार्थ प्राण देनेवालों तथा घायलों की संख्या भी करोड़ों तक जा पहुँची थी।

फ़्रांस तथा बेलजियम की भूमि, जहाँ पर युद्ध का सबसे अधिक ज़ोर रहा था, एकदम नष्ट-भ्रष्ट होगई। अनेक नगर उजड़ गये। एक स्थान में दो तोपों के धड़ाकों से मीलों तक स्थल के स्थान में जल भर गया, एक बड़ी झील हो गई। युद्ध के प्रारम्भ ही में रूस की लगभग पचीस लाख सेना मारी गई। वहाँ ज्यों ज्यों युद्ध आगे बढ़ता गया त्यों त्यों देश वीरान होता गया। सहस्रों जहाज़ समुद्र में डुबो दिये गये। जिसमें इतने प्राणियों के प्राण गये कि वहाँ जन-धन या माल के नाश का अनुमान लगाना मानव-शक्ति से बाहर है।

युद्ध-काल में इटली मित्र-राष्ट्रों की ओर होगया था। तुर्की जर्मनी का सहायक था। बलगरिया, रूमानिया, मॉण्टेनेग्रो आदि सभी किसी न किसी पक्ष के साथ थे। जापान मित्र-राष्ट्रों की सहायता करने लगा। तीन वर्ष से कुछ अधिक समय तक जर्मनी सेनायें अपनी अद्भुत और तीस-तीस मील तक चलनेवाली तोपों से समर को हिलाती रहीं। वे जिस ओर धावा करती थीं उसी ओर मैदान मार लेती थीं।

इँग्लेण्ड की शक्ति का एक-मात्र आधार उसका समुद्री बेड़ा था। उसने एक समुद्री लड़ाई में जर्मनी बेड़े को ऐसी हानि पहुँचाई कि वह फिर खुले समुद्र में युद्ध करने के अयोग्य होगया। इँग्लेण्ड ने अपने जहाज़ों से जर्मनी की नाकाबन्दी करके उसका सारा विदेशी व्यापार बन्द कर दिया।

इस प्रकार कई वर्षों के पश्चात् खाद्य-सामग्री के चुक जाने से जर्मनी को बड़ी तङ्गी उठाना पड़ी। दुर्भिक्ष ने देश में जर्मनी के युद्ध-दल तथा युद्ध के विरुद्ध ऐसी घृणा उत्पन्न कर दी कि जर्मनी के शासन में क्रान्ति शुरू हो गई।

इधर इँग्लेण्ड की नीति युद्ध को अधिक काल तक चलाने की थी। इँग्लेण्ड की विजय-आशा केवल इस बात पर अवलम्बित थी कि युद्ध को अधिक समय तक जारी रखने से ही वह जर्मनी को लड़ने के लिए अशक्य बना सकेगा।

युद्ध के कुछ प्रारम्भिक मासों में ही जर्मन-सेनायें बेलजियम को विजित करती हुई, फ्रांस की राजधानी पेरिस जा पहुँचीं। इँग्लेण्ड के लिए यह समय बड़े सङ्कट का था। क्योंकि यदि इँग्लेण्ड अपनी पुरानी सेना का वहाँ पर बलिदान न कर देता और यदि भारतवर्ष से भारतीय सेना सहायता के लिए न पहुँचती तो जर्मन की सेनायें इँग्लेण्ड में जा पहुँचतीं।

जर्मनी की सबसे बड़ी निर्बलता यह थी कि उसके साथियों—आस्ट्रिया, तुर्की, बलगरिया—में न तो लड़ने का जोश ही था और न शक्ति ही। जहाँ जर्मन-सेनायें उनकी सहायता के लिए न पहुँचतीं वहाँ वे कुछ न कर पाते और जर्मनी के साथियों की संख्या भी बहुत थोड़ी थी। सारा अधिकार अकेले केसर के हाथ में होने से जर्मन-कूटनीति भी सफल न हुई। दूसरे शब्दों में, जर्मनी में इतना अधिक घमण्ड था कि उसने मित्र बनाने के बजाय सबको अपना शत्रु बना लिया था।

सन् १९१७ में रूस में राज्य-क्रान्ति होगई। ज़ार और उसका परिवार क़त्ल कर दिया गया। यह एक ऐसा सुअवसर था कि उससे यदि जर्मन-राजनीतिज्ञ चाहते तो लाभ उठा सकते थे; रूस के साथ थोड़ी रियायत करके वे उसे अपना मित्र बना सकते थे। परन्तु उन्होंने ऐसा न किया, प्रत्युत रूस को विजित समझकर देश का बहुत सा भाग जर्मनी के साथ मिलाने लगे। परिणाम यह हुआ कि जर्मनी को अपनी बहुत सी सेना रूस में रखनी पड़ी। इधर कैसर ने अमरीका को भी, जिसकी सहानुभूति आरम्भ ही से इँग्लेण्ड के साथ थी, खुले तौर पर अपना शत्रु बना लिया। जब जर्मन-सेनायें युद्ध का निपटारा करने के लिए क़िस्मत-आज़माई के तौर पर पेरिस की ओर बढ़ रही थीं तभी अमरीका की ताज़ी सेनायें उनके सामने रण-क्षेत्र में आ उपस्थित हुईं। इँग्लेण्ड के लिए यह फिर एक बड़ा नाज़ुक मौक़ा था। पर अमरीका ने इँग्लेण्ड तथा मित्र-राष्ट्रों को बचा लिया। रणक्षेत्र में अमरीकन सैनिकों को देखकर ही जर्मन-सेना का हृदय काँप उठा। फ़्रांस में जर्मन-सेनाओं को पीछे हटना पड़ा। उधर जर्मनी से कैसर का सारा दबदबा उठने लगा। वह जर्मनी का शासन साम्यवादी दल के सुपुर्द करके सपरिवार हॉलेण्ड चला गया।

यदि दार्शनिक दृष्टि से देखा जाय, तो इस महासमर के अन्तस्तल में हमें योरुप के बड़े बड़े राष्ट्रों या जातियों की वह इच्छा दृष्टिगोचर होती है, जिसके द्वारा वे निर्बल तथा

निर्धन राष्ट्रों और जातियों को लूटकर अपने आपको माला-माल करने एवं उनको नष्ट करके अपना मान क़ायम रखना चाहते हैं। अन्त में उसी धन ने, जो चिरकाल से निर्धन जातियों से लूटा जा रहा था, तोपों और गोलों का रूप धारण करके उन्हीं लुटेरी जातियों का विनाश कर दिया।

चौदहवाँ अध्याय

रूस

१—आदि-निवासी

हम यह देख चुके हैं कि आठवीं शताब्दी के अन्त में समुद्री लुटेरों—'नार्थमन' (उत्तरी मनुष्यों) ने इँगलैण्ड, आयरलैण्ड आदि देशों के अतिरिक्त रूस पर भी अपना अधिकार जमाया था। नवीं शताब्दी के मध्य में इनके एक सरदार रूरिक ने वहाँ के रहनेवाले स्लव-क़बीलों पर राज्य करना आरम्भ किया। स्कैण्डेनेविया से आकर बसनेवालों का नाम रॉस होने से इस राज्य का नाम रूस पड़ गया। रूरिक रूस के प्रथम राज-वंश का जन्मदाता था। एक दो पीढ़ियों के बाद स्वयं आक्रमणकारी नार्थमन वेष-भाषा आदि सभी बातों में स्लव होगये।

रूस का आरम्भ

ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त से पहले रूस-राज्य सर्वथा नष्ट हो चुका था। छोटे-छोटे सरदार अपने-अपने प्रदेशों पर राज्य करते थे। उन सबका कोई एक प्रमुख न होने के कारण चङ्गेज़ख़ाँ ने आक्रमण करके रूस को अपने अधीन कर लिया। तेरहवीं शताब्दी से लेकर अढ़ाई सौ वर्षों तक रूस मुग़लों की अधीनता में पड़ा

मुग़लों का आक्रमण

रहा। इस काल में रूसियों ने बड़े बड़े कष्ट सहन किये। अधीन होने से इन्हें मुग़लों को राजस्व भी देना पड़ता था। मुग़लों के शासन ने रूस को इतना निर्बल कर दिया कि उसका एक जाति का रूप धारण करना कई शताब्दियाँ पीछे हट गया।

तातारियों के राज्य-काल में मस्कोवी-राज्य, जिसकी राजधानी मास्को था, अन्य छोटे छोटे स्लव-राज्यों का सरदार बन गया था। इसने अपने आपको दृढ़ करके मुग़लों के जूए को उतारने का निश्चय किया। मास्कोवी के राजा महान् एवाँन (१४६२-१५०५) ने बहुत समय तक तातारियों के साथ युद्ध करके उन्हें अपने राज्य से निकाल ही दिया।

मुग़लों से छुटकारा

एवाँन रूस का पहला राजा था, जिसने "ज़ार और रूसियों के अधिपति" की उपाधि ग्रहण की थी। अपने देश के लिए अन्य योरुपीय जातियों के समान इसने भी नये क़ानून आदि तैयार किये थे। पूर्वी साम्राज्य (या बाइज़ेण्टाईन) के अन्तिम सम्राट् के साथ विवाह हो जाने से रूस में यूनानी विद्यायें तथा संस्कृति ने भी प्रवेश किया।

इस प्रकार मध्य-युग के अन्त में रूस एक बड़ी शक्ति बन गया। परन्तु योरुपीय मामलों पर प्रभाव होने के लिए अभी इस पर शत्रुओं के आघात होना शेष था।

२—रूस का उत्थान

वर्तमान-युग के रूसी शासकों में से सबसे पहला

भयानक इवान था, जो अपनी निर्दयता के लिए बड़ा प्रसिद्ध था। अभी यह बालक ही था कि इसने क्रोध-वश एक सरदार को कुत्तों से फड़वा डाला। नोवगोर्ड नगर के एक कल्पित षड्यन्त्र के दण्ड-स्वरूप उसने पन्द्रह सौ से अधिक मनुष्यों का वध करवा दिया। बड़ी आयु में भी उसने स्वयं अपने बड़े लड़के को छड़ी से मार डाला।

भयानक इवान (१५३३–१५८४)

यद्यपि वह सर्वथा असभ्य था तथापि रूस की सीमा को इसने कास्पियन सागर तक पहुँचा दिया और शनैः शनैः तुर्कों को योरपीय एशिया से निकालकर उनके एशिया के प्रदेश पर अधिकार करना आरम्भ कर दिया। साइबेरिया की विजय भी इसी के राज्य-काल में हुई थी। रानी इलिज़बेथ के साथ इसने विवाह किया था। १५४७ में इसने ज़ार की उपाधि ली, जिसका अर्थ यह था कि रूस का राजा क़ुस्तुनतुनिया का सम्राट् समझा जाय। जिस प्रकार सोलहवीं शताब्दी में स्पेन ने मेक्सिको तथा पीरू में अपना शासन स्थापित किया था उसी प्रकार अगली शताब्दी में रूस ने साइबेरिया में अपना शासन क़ायम करना आरम्भ कर दिया।

सन् १५९८ में नार्थमन सरदार रूरिक के वंश का अन्त हो गया और पोलैण्डवासियों ने रूस पर आक्रमण करके वहाँ अशान्ति उत्पन्न कर दी। १६१३ में रोमानोव-

वंश का पहला राजा माइकेल रूस का ज़ार बनाया गया। इसने १६८२ तक राज्य किया।

इसके बाद रूस के सिंहासन पर एक ऐसा मनुष्य बैठा जिसकी योग्यता ने संसार को चकित कर दिया। यह मनुष्य था महान् पीटर।

महान् पीटर (१६८२);
उसका चरित्र

बाल्यावस्था से ही पीटर एक अत्यन्त बलवान् और कुशाग्रबुद्धि लड़का था। उसे नावें बनाने का बड़ा शौक़ था। वह अपने साथियों को इकट्ठा कर नकली युद्ध भी किया करता था। पीटर का चरित एक आदर्श रूसी चरित है। उसमें वे सभी गुण एवं दुर्बलतायें थीं जो तात्कालिक रूसवासियों में पाई जाती थीं। अपनी प्रजा और देश की सेवा करने का उसे बड़ा शौक़ था। रूस के लिए उसके दो उद्देश थे। पहला, रूस को समुद्र तक बढ़ा कर योरूप के साथ उसका व्यापारिक सम्बन्ध जोड़ना; दूसरा, रूस में योरुपीय विचार, विद्यायें, कला-कौशल तथा अन्य संस्थायें प्रचलित करके रूस को योरुपीय जातियों के परिवार में सम्मिलित करना।

सन् १६९६ में पीटर ने डुन-नदी के द्वारा आज़ोव पर अपना अधिकार कर लिया। ज्योंही उसे एक बन्दर मिल गया त्योंही उसने जहाज़ों का बेड़ा बनाना आरम्भ किया। इसी अभिप्राय से उसने स्वयं इटली, हालेण्ड तथा

पीटर की पश्चिम की यात्रा (१६९७)

इँग्लेण्ड में भ्रमण करके समुद्री मामलों को समझने तथा जहाज़-निर्माण-शिल्प को सीखने का प्रयत्न किया।

वह जहाँ कहीं जाता था उसके साथी भी वहाँ जाते थे। जिस मार्ग से वे गुज़रते सभी लोग उन्हें देखने लग जाते मानो असभ्यों का कोई दल हो। जिस मकान या होटल में वे ठहरते वहाँ वे खिड़कियों आदि के शीशे फोड़ देते थे। नीदरलैण्ड के एक नगर में उसने फाँसी की चर्खी देखी। एक अधिकारी से उसने कहा—किसी मनुष्य को इस चर्खी पर चढ़ाकर दिखाओ, पर अधिकारी ने उत्तर दिया, इस समय मृत्यु-दण्ड का कोई अपराधी नहीं है। पीटर को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि केवल इतनी सी बात उसकी इच्छा-पूर्त्ति में अवरोध डाल सकती है। उसने कहा—"एक मनुष्य के मारने में इतना आडम्बर!"

हालेण्ड से पीटर इँग्लेण्ड गया। वहाँ उसने हर प्रकार के कल-कारखानों, अस्पतालों, अजायबघरों आदि को देखा। ऐसी ही अन्य अनेक वस्तुएँ देखीं, जिन्हें वह अपने देश के लिए लाभप्रद समझता था।

विदेश-यात्रा से लौटकर पीटर ने अपनी सेना को नये ढंग से सङ्गठित किया। उसने सर्वसाधारण को भी पश्चिमी जीवन का अनुसरण करने के लिए विवश किया। उनके लम्बे चोगे उतरवा दिये, दाढ़ियों पर टेक्स लगा दिया। अपने दरबारियों की दाढ़ियों को तो

पीटर के सुधार

उसने स्वयं कई बार साफ़ कर दिया था। अपने देश में उसने कल-कारख़ाने स्थापित किये, नहरें और सड़कें बनवाईं, डाकख़ानों की व्यवस्था की, पाठशालायें खोलीं और चर्च को अपने अधीन किया। १७०० में उसने अपनी राजधानी पीटर्सबर्ग की नीव रक्खी।

स्वीडन का चार्लेस बारहवाँ

सन् १६९७ में स्वीडन का राजा, चार्लेस ग्यारहवाँ मर गया और उसके स्थान में उसका पन्द्रह वर्ष का लड़का चार्लेस बारहवाँ सिंहासनारूढ़ हुआ। उसे बालक समझ कर डेनमार्क, पोलेण्ड, सेक्सनी तथा रूस ने परस्पर सन्धि करके चार्लेस के कुछ प्रदेशों पर स्वत्व करना चाहा। परन्तु उसने सबके कान काट दिये। उसने पहले डेनमार्क पर आक्रमण करके उसे सन्धि के लिए विवश किया। तत्पश्चात् उसने रूस की सेना को पराजित किया। पोलेण्ड पर आक्रमण करके उसने राजा को पदच्युत कर दिया। इससे उसे इतना घमण्ड हो गया कि उसने पीटर को भी सिंहासन से उतारने का निश्चय किया। उसने मास्को पर चढ़ाई की। मास्कोवासी इतने भयभीत हुए कि उन्होंने उसके मार्ग के गाँव छोड़ दिये और आग लगा दी कि उन्हें किसी प्रकार की सामग्री प्राप्त न हो सके। इसलिए चार्लेस को मास्को का मार्ग छोड़ कर दूसरी दिशा में मुँह फेरना पड़ा। पर पुलटावा-स्थल पर पीटर ने उसे पराजित किया और उसे तुर्की की ओर भागना पड़ा।

बाल्टिक-तट के प्रदेशों पर रूस का स्वत्व हो जाने से रूस की गणना योरुप की बड़ी शक्तियों में होने लगी।

बाल्टिक प्रदेश तथा कास्पियन सागर रूस के हाथ में

१७२२ में ईरान में झगड़ा हो जाने से कुछ रूसियों का वध हो गया। इस पर पीटर ने वाल्गा-नदी-द्वारा कास्पियन सागर पर अधिकार कर लिया।

यद्यपि पीटर ने सेना-बल को निर्बल करके रूस में राजा की शक्ति को अनियन्त्रित बना दिया था। तथापि इसके साथ ही उसने अपने देश में उस पश्चिमी सभ्यता का प्रसार भी किया था, जो स्वतन्त्रता तथा प्रजाधिकार-विचार अपने साथ आई थी। अन्त में इन्हीं विचारों ने अनियन्त्रित शासन का अन्त कर दिया।

पीटर के राज्य के पश्चात् अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक रूस का सिंहासन स्त्रियों के हाथ में रहा, जिनमें केथराईन

केथराईन (१७७२-१७९६)

द्वितीय सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसमें नैतिक दोष होते हुए भी इसने रूसी शासन को अच्छा बनाने का प्रयत्न किया। रूस में पश्चिमी क़ानून तथा सभ्यता का बड़ा प्रचार हो गया। वह स्वयं फ्रेञ्च-दर्शन-शास्त्र की बड़ी प्रशंसा करती थी। वालटेयर की मृत्यु पर उसने प्रसिद्ध दार्शनिक के पुस्तकालय को ख़रीद लिया।

सन् १७८३ में केथराईन ने करीदिया को विजित करके

रूस के साथ सम्मिलित कर लिया। इससे रूस का अधिकार कृष्णसागर तक फैल गया। कृष्णसागर रूस के अधीन हो जाने से वह मार्ग, जिससे तातारी आक्रमणकारी रूस पर आक्रमण किया करते थे, बन्द होगया। तत्पश्चात् उसने तुर्कों को सदा के लिए योरुप से बाहर निकालने का विचार किया और मास्को के दक्षिणी द्वार पर उसने ये शब्द लिखवाए—"कुस्तुनतुनिया का मार्ग।" मेरी थेरेसा तथा महान् फ्रेड्रिक के साथ मिलकर उसने पोलेण्ड का विभाजन करके उसका कुछ भाग रूस के साथ मिला लिया। १७९३ में दूसरी बार और १७९५ में तीसरी बार उसने पोलेण्ड का विभाजन किया। इस प्रकार केथराईन के राज्य-काल में रूस एक योरुपीय शक्ति बन गया।

३—फ्रांस की राज्य-क्रान्ति के बाद का रूस

अपनी राजधानी पेट्रोग्रेड के सम्बन्ध में पीटर ने कहा था, "यह मेरी वह खिड़की है जिसमें से मैं योरुप को देखा करूँगा।"

रूसी शासक तथा फ्रांस की राज्य-क्रान्ति।

इसी खिड़की-द्वारा रूस में योरुप की वे बातें आईं, जिनके कारण रूस के अन्दर क्रान्तिकारी विचारों का प्रसार होने लगा। हम देख चुके हैं कि केथराईन द्वितीय फ्रांसीसी विद्वानों की बड़ी प्रशंसा करती थी। परन्तु जब रूस-

वासियों ने इन विद्वानों के कथनों पर आचरण करना आरम्भ किया तब केथराईन बहुत डरी। यहाँ तक कि उसने अपने प्रासाद से वालटेयर की मूर्ति तक निकाल बाहर कर दिया। उसने क्रान्तिकारी विचारों के आन्दोलन को एक-दम कुचलना चाहा।

केथराईन का लड़का तथा उत्तराधिकारी पाल प्रथम (१७९६-१८०१) फ़्रांस की राज्य-क्रान्ति तथा ऐसे विचारों का बड़ा विरोधी था। परन्तु जब फ़्रांस में नेपोलियन का आधिपत्य हुआ तब वह बड़ा प्रसन्न हुआ। वह नेपोलियन की मैत्री से भारतवर्ष को विजित करके इँग्लेण्ड को ध्वंस करने के उपाय सोचने लगा। उसने दो मार्गों से भारतवर्ष पर आक्रमण करने का निश्चय किया --एक, रूसी खीवा तथा बुख़ारा से; दूसरा, रूस तथा फ़्रांस के संयुक्त बल से कास्पियन सागर में होकर हिरात तथा कन्धार से। चालीस हज़ार सेना सचमुच ही रूस से रवाना हो पड़ी। परन्तु पाल का वध हो जाने से ये बातें बीच में ही रुक गईं।

इसके बाद अलक्ज़ाण्डर (१८०१-१८२५), ज़ार बना। यह कभी नेपोलियन का मित्र बन जाता कभी शत्रु। एक समय वह नेपोलियन के साथ मिल कर संसार को दो भागों में बाँट रहा था। दूसरे समय वह योरुपीय जातियों को संसार की शान्ति भङ्ग करनेवाले को पदच्युत

अलक्ज़ाण्डर एक उदार और प्रतिकारक के रूप में

करने की सलाह दे रहा था। पहले-पहल तो उसके विचारों का झुकाव स्वतन्त्रता की ओर था। इसलिए उसने लिवॉनिया तथा कूरलेण्ड में सर्फों (दासों) को स्वतन्त्रता प्रदान कर दी। उसने और भी अनेक सुधार किये और अपनी प्रजा को यह विश्वास दिलाया कि रूस में एक विधायक शासन क़ायम कर दिया जायगा।

उसके स्वभाव में मज़हबी प्रेम था। अपने राज्य-काल के मध्य के पश्चात् वह एक भावयोगिनी के वश में आ गया। उसने "पवित्र सम्बन्ध" नामक एक संस्था सङ्गठित की। प्रकट-रूप में तो उसका उद्देश योरुप में मज़हब तथा शान्ति स्थिर रखना था। परन्तु वास्तव में यह 'पवित्र सम्बन्ध' योरुप के स्वेच्छाचारी राजाओं की एक सन्धि सी थी, जिसके द्वारा वे अपने अपने देश में प्रजा की राजनैतिक स्वतन्त्रता की इच्छा को दबाना चाहते थे। रूस में भी प्रजा अलक्ज़ाण्डर के विरुद्ध षड्यन्त्र करने लगी, इसलिए उसे स्वतन्त्रता के विचारों से ऐसी घृणा हुई कि वह उनका कट्टर शत्रु बन गया। रूस का उदार दल दिन प्रतिदिन बढ़ रहा था क्योंकि रूसी सेनायें, जो नेपोलियन के युद्धों में योरुप गई थीं, स्वदेश लौटते समय अपने साथ स्वतन्त्र विचारों को ले आई थीं।

रूस में उन्नीसवीं शताब्दी के इतिहास में 'गुप्त षड्यन्त्रों तथा राजनैतिक अपराधों' की बड़ी प्रधानता रही है। जैसा कि

ऊपर कहा गया है कि क्रान्तिकारी विचारों को रूस के सैन्य अधिकारी फ्रांस से लाये थे। कर्नल पिस्टल तथा उसके साथियों के प्रयत्न से इस समय दो बड़ी गुप्त समितियाँ बनीं—उत्तरी तथा दक्षिणी। उन्होंने पोलेण्ड की गुप्त समिति से मिलकर १८२६ में राजद्रोह करने का निश्चय किया। १८२५ में ज़ार अलक्ज़ाण्डर की मृत्यु होगई। अलक्ज़ाण्डर के कोई लड़का नहीं था। रूसी विधान के अनुसार सिंहासन का उत्तराधिकारी उसका भाई कॉनस्टेण्टाईन था, पर एक क़ानून-विरुद्ध विवाह करने के कारण वह पहले से ही अधिकार खो बैठा था। इसलिए अलक्ज़ाण्डर ने अपने छोटे भाई निकोलस के पक्ष में वसीयत कर दी थी।

दिसम्बर १८२५ का राजद्रोह

यह सारी कार्रवाई गुप्त रक्खी गई थी, यहाँ तक कि स्वयं निकोलस को भी इस बात का पता न था। इस बात का ज्ञान उसे अकस्मात् हुआ। निकोलस सेना में सर्वप्रिय न था। इसलिए वह चाहता था कि कॉनस्टेण्टाईन नियमानुसार यह घोषित कर दे कि मैं निकोलस के पक्ष में पद को त्याग देता हूँ। इसके लिए पहले सेना से आज्ञाकारिता की प्रतिज्ञा ली गई। उसमें निकोलस भी सम्मिलित था। लगभग पन्द्रह दिन के पश्चात् कॉनस्टेण्टाईन से घोषणा करा के फिर सेना से निकोलस की आज्ञाकारिता की प्रतिज्ञा के लिए कहा गया।

क्रान्तिकारी-दल ने इस संयोग से लाभ उठाने का प्रयत्न किया। प्रतिज्ञा के मामले को महत्त्व-पूर्ण बनाकर और सेना में गड़बड़ मचाकर वे निकोलस को एक विधान बना देने के लिए विवश करना चाहते थे। उन्होंने आपस में यह निर्णय किया कि दूसरी बार प्रतिज्ञा न देने के लिए सेना में आन्दोलन किया जाय। दिसम्बर में जब सैनिकों को प्रतिज्ञा के लिए आदेश दिया गया तब क्रान्तिकारी फ़ौजी अफ़सरों ने ऐसा करने से इनकार किया। परन्तु बारूद के सामने उनकी शक्ति कुछ न कर सकी, वे सब पकड़ लिये गये।

इसी समय कवि अपराधी रोटेलेफ़ ने अपने अभियोग के सम्बन्ध में बड़े साहस से कहा था—यदि मैं चाहता तो यह सारा द्रोह रुक सकता था। मैं सारा उत्तरदायित्व अपने सिर लेता हूँ, मेरे साथियों का इसमें कोई अपराध नहीं। उनमें से कुछ लोगों को फाँसी दी गई और शेष रूस के काले पानी साइबेरिया में आयु भर कड़ी क़ैद भुगतने के लिए भेज दिये गये।

संसार के इतिहास में 'असफल विद्रोह' सफल क्रान्ति से कम महत्त्व-पूर्ण नहीं है। इस राजद्रोह के नेताओं में से कई लोगों को विश्वास था कि वे अपने प्राण देकर एक ऐसा बीज बो रहे हैं, जो आनेवाली पुश्त के लिए काम देगा। एक कवि-नेता ने राजद्रोह से पहले अपने आत्मीयों से बिदा होते समय कहा था "हम मृत्यु के मुख में जा रहे हैं। परन्तु वह मृत्यु कैसी

सुन्दर है !" यही आदर्श था जिससे 'दिसम्बरी' राजद्रोहियों की सफलता का अनुमान लगाया जा सकता है। वास्तव में वे रूस के स्वातन्त्र्य-आन्दोलन के नेता थे। रूस के प्रसिद्ध कवि पश्किन ने, जो गुप्त समिति का सभ्य था और जो केवल साहित्य-सेवा के लिए अपने साथियों के अनुरोध करने पर भी द्रोह में सम्मिलित नहीं हुआ था, साइबेरिया में निर्वासित 'दिसम्बरियों' को धैर्य तथा साहस का सन्देश भेजा था। उसमें उसने रूस के भविष्य के इतिहास को इन दो शब्दों में कह दिया था—"जो आज एक चिनगारी है वही किसी दिन ज्वाला का रूप धारण करेगी।"

रूस में राजनैतिक अभियोगों के अपराधियों तथा क़ैदियों के साथ कैसा व्यवहार किया जाता था, इसके लिए यहाँ स्थान नहीं है। जिन लेखकों ने इनके वर्णन को लेख-बद्ध किया है, उनकी रचनायें कथायें प्रतीत होती हैं। साइबेरिया में अन्य यातनाओं के अतिरिक्त प्रकृति की ओर से भी बड़ी कड़ी और असह्य सरदी पड़ती है। बहुत से लोग जेल के व्यवहार से पागल हो जाते थे, और बहुत से आत्महत्या कर लेते थे। रूस के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक वसुविस्की ने अपने उपन्यास 'हौस आव् दि रेड' में साइबेरिया के रोमाञ्चकारी वर्णन दिये हैं।

सन् १८२८ में निकोलस ने तुर्कों के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया। इसका कारण यह था। फ्रांस की क्रान्ति ने यूनान

पर भी अपना प्रभाव डाला था, इसलिए यूनान के तुर्की प्रान्तों में भी एक स्वतन्त्र शासन की इच्छा उत्पन्न होगई थी। यूनान में स्वातन्त्र्य-आन्दोलन आरम्भ होगया और तुर्कों ने उसे दबाने के लिए अनेक अत्याचार किये। १८२३ में कीआस-द्वीप में लगभग चालीस सहस्र यूनानी कृत्ल कर दिये गये।

रूस-तुर्की युद्ध
(१८२८-१८२९)

प्रसिद्ध अँगरेज़-कवि लार्ड वायरन ने अपनी सारी धन-सम्पत्ति यूनान की इसी स्वतन्त्रता के लिए ख़र्च कर दी। यह आन्दोलन बहुत दिनों तक जारी रहा। अन्त में इँग्लेण्ड, रूस तथा फ्रांस ने मिल कर १८२७ में तुर्की बेड़े का ध्वंस कर दिया, जिससे रूसी फ़ौजें कुस्तुनतुनिया में जा पहुँचीं और सुलतान को सन्धि करनी पड़ी। मॉलडेविया तथा वॉलेकिया—प्रान्त तुर्की शासन से मुक्त कर दिये गये और तुर्कों का कुछ एशियाई भाग रूस के साथ मिला लिया गया।

सन् १८३० की क्रान्ति के पश्चात् पोलेण्ड में भी स्वतन्त्रता की तरङ्ग फैली। पोलेण्डवासी उठे और रूसी सेना को निकालकर उन्होंने अपना शासन स्थापित कर लिया। विएना की काँग्रेस ने पोलेण्ड में एक विधायक शासन स्थापित करके उसे रूस के अधीन कर दिया था। परन्तु पोलिश देशभक्त अपने राजनैतिक मामलों में रूस के हस्तक्षेप को पसन्द नहीं करते

पोलेण्ड तथा आस्ट्रिया में
राजद्रोह दबाना
(१८३०-१८३२, १८४८)

थे। ज़ार की सेनायें पोलेण्ड में जा पहुँचीं। १८३४ में पोलेण्ड रूस का प्रान्त बना लिया गया और सहस्रों मनुष्य साइबेरिया में भेज दिये गये, लोगों से शस्त्र भी छीन लिये गये। पोलेण्ड का अस्तित्व मिटाने के लिए वहाँ रूसी भाषा का सीखना अनिवार्य कर दिया गया और प्रत्येक सरकारी पद के लिए भी रूसी जानना आवश्यक कर दिया गया।

सन् १८४८ में रूस ने आस्ट्रिया को भी हङ्गरी के स्वातन्त्र्य-आन्दोलन को दबाने में बड़ी सहायता की। हङ्गरी आस्ट्रिया के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ था। निकोलस की दो लाख सेना आस्ट्रिया की सहायता के लिए जा पहुँची और द्रोह को दबाकर हङ्गरी भी एक दूसरा पोलेण्ड बना लिया गया।

निकोलस तुर्की-सुलतान को योरुप का 'रोगी' समझता था। उसकी यह इच्छा थी कि इँग्लेण्ड मिस्र तथा क्रेट पर अपना स्वत्व कर ले और तुर्की के योरुपीय प्रदेश रूस के सुपुर्द कर दिये जायँ। इँग्लेण्ड ने यह बात अस्वीकार की। फिर यारोशलम में ईसाइयों के आपस के दङ्गों के कारण ज़ार निकोलस ने सुलतान से यह कहा कि तुर्की राज्यों के ईसाइयों का रक्षक रूस बना दिया जाय। पर सुलतान इसे कैसे स्वीकार कर सकता था। इसलिए निकोलस ने युद्ध की तैयारी शुरू कर दी।

क्रिमिया-युद्ध (१८५३-१८५६)

सुलतान ने अपनी ईसाई प्रजा को स्वतन्त्रता देकर

योरुपीय शक्तियों से सहायता की प्रार्थना की। इँग्लेण्ड तथा फ्रांस रूस के विरुद्ध होगये और १८५३ में क्रिमिया का युद्ध छिड़ गया। इसकी एक प्रधान घटना सेवसटोपोल का घेरा है, जो ग्यारह मास तक रहा था। इसमें फ्रांसीसी तथा अँगरेज़ी सेनाओं ने बड़ी वीरता दिखाई थी और रूसियों को सेवसटोपोल-नगर ख़ाली करना पड़ा था। १८५६ में पेरिस की सन्धि के अनुसार यह युद्ध समाप्त हुआ। इससे रूस को कोई लाभ न हुआ।

आलक्ज़ाण्डर द्वितीय (१८५५-१८८१) तथा सर्फ़ों का उद्धार

क्रिमिया का युद्ध हो ही रहा था कि रूस के सिंहासन पर अलक्ज़ाण्डर द्वितीय बैठा। मानसिक सङ्कीर्णता को दूर करके उसने महान् पीटर के समान रूस में कई एक सुधार किये, जिनमें सबसे महत्त्व-पूर्ण सर्फ़ों या कृषक-दासों को स्वतन्त्रता देना था। सर्फ़डम या दासत्व का आरम्भ सोलहवीं शताब्दी से हुआ था, उस समय रूस के कृषकों का एक स्थान से दूसरे स्थान में जाना रोकने के लिए यह राजाज्ञा हुई थी कि वे वहीं रहें, जहाँ काश्त करें। रूस में ज़मीन के दो भाग होते थे—एक ज़मींदारी का, दूसरा कृषक-दासों का, यह उन्हें अपने उपयोग के लिए दिया जाता था। सप्ताह में तीन दिन इन्हें अपने स्वामी की ज़मीन पर काम करना होता था। ज़मीन के बिकने पर ये भी बिक जाते थे।

रूस के धनाढ्यों की ओर से विरोध होने पर भी १८६१ में सर्फों को अपनी काश्त की हुई भूमि की मलकियत दे दी गई और वे स्वतन्त्र कर दिये गये। इनकी संख्या लगभग दो करोड़ थी। अब इन्हें केवल ज़मीन का लगान देना पड़ता था। अलक्ज़ाण्डर ने सबसे पहले स्वयं इसलिए ऐसा किया कि अन्य सरदार भी उसका अनुकरण करें। पर सन् १८६३ में पोलेण्ड में एक राजद्रोह हुआ, जिससे अलक्ज़ाण्डर ने अपनी नीति बदल दी।

तुर्क ईसाइयों से घृणा करते थे और इसी लिए उन पर अत्याचार करते थे। बोज़निया तथा हेरज़ेगोवेना—प्रान्तों की ईसाई-आबादी ने कर इकट्ठा करनेवाले तुर्कों से तङ्ग आकर राजद्रोह कर दिया। १८७१ में सर्विया तथा मॉण्टेनेग्रो ने युद्ध आरम्भ कर दिया, इस पर रूस ने अपनी सेनायें तुर्की में भेजी। यदि उस समय इँग्लेण्ड अपनी समुद्री सेना तुर्की की सहायता के लिए न भेजता तो कुस्तुनतुनिया रूसियों के हाथ में आ जाता और तुर्कों का अन्त हो जाता।

१८७७-१८७८ का रूस-तुर्की युद्ध; बर्लिन की सन्धि

सन् १८७८ में बर्लिन की सन्धि हुई, जिससे तुर्की अपने एक बड़े प्रदेश से वञ्चित हो गई और सर्विया, मॉण्टेनेग्रो और बलगरिया—राज्य स्वतन्त्र कर दिये गये, बोज़निया

तथा हेरजेगोवेना आस्ट्रिया के अधीन हो गये; और अरमेनिया के कुछ नगर तथा बेस्सरेबिया रूस को दे दिये गये।

इधर रूस के ज़ार अपने राज्य को इधर-उधर फैलाकर अपनी शक्ति को दृढ़ कर रहे थे, उधर रूस में क्रान्तिकारी विचार ख़ूब ज़ोर पकड़ रहे थे। क्रान्ति के सिद्धान्त योरुप के सभी देशों में बो दिये गये थे और देशों को अपनी भूमि की उर्वरा-शक्ति के अनुसार उन्हें उगाने तथा फल लाने में कहीं थोड़ा और कहीं अधिक समय लगता था। सभ्यता की दृष्टि से रूसवासी योरुपीय जातियों में सबसे पीछे थे। इसलिए इस देश में, इन विचारों को अपना प्रभाव जमाने में कुछ देर लगी। रूस में भी स्वराज्य-आन्दोलन आरम्भ होगया और ज्यों-ज्यों रूसी जगते जाते थे त्यों-त्यों यह आन्दोलन फैलता जाता था। जिस प्रकार १७७६ में फ्रेञ्च-सैनिकों ने अमरीका में जाकर स्वतन्त्रता के विचारों को आत्मसात् कर लिया था, उसी प्रकार रूसी सैनिक क्रान्तिकारी युद्धों में भाग लेते हुए क्रान्ति के सिद्धान्तों को सीखते रहे।

रूस में स्वातन्त्र्य-आन्दोलन, शून्यवाद

इन सिद्धान्तों को फैलानेवाला रूस में दार्शनिकों का एक दल भी था, जो अपने आपको शून्यवादी ('निहिलिस्ट') कहते थे। इसके अधिकांश सदस्य विश्वविद्यालयों के अध्यापक तथा विद्यार्थी थे। रूस में विधायक शासन स्थापित करने के

अतिरिक्त पत्र-स्वतन्त्रता, वाक्-स्वतन्त्रता तथा अदालत के क्रम को बदलना, इस आन्दोलन के मौलिक सिद्धान्त थे। रूस के कृषक, जो राजा पर अगाध भक्ति तथा विश्वास रखते थे, इस आन्दोलन के मार्ग में बड़े बाधक थे। इसी कारण यह आन्दोलन रूस में बहुत समय तक रुका रहा, वास्तव में यह ठीक ही कहा गया है कि क्रान्ति के लिए, चाहे वह किसी प्रकार की हो, पहले सर्वसाधारण में जागृति होना आवश्यक है।

पहले-पहल रूस के लोग क्रान्तिकारी विचारों के विरोधी थे। ज़ार ईश्वर की ओर से भेजा हुआ शासक माना जाता था, इसलिए उसके विरुद्ध कुछ भी कहना पाप समझा जाता था।

सर्वसाधारण की अवस्था

परन्तु त्याग और बलिदान मानव-विचारों को बदल देते हैं। रूस में इनके बदलने में इतना विलम्ब लगा, क्योंकि सर्वसाधारण मूर्खता के अन्धकार में फँसे हुए थे। दिसम्बर के राजद्रोह में क्रान्तिकारियों का सिंहनाद था "ज़ार कॉनस्टेण्टाईन और कॉनस्टीट्यूशन (या विधान)"। परन्तु जो सैनिक प्रतिज्ञा लेने से इनकार कर रहे थे वे स्वयं इसका अर्थ न समझते थे। उनमें से एक तो कॉनस्टीट्यूशन-शब्द को कानस्टेण्टाईन के अनुकूल देखकर (रूसी भाषा में यह अनुकूलता और भी अधिक है) यह समझ रहे थे कि कॉनस्टीट्यूशन कॉनस्टेण्टाईन की रानी का ही नाम है।

क्रान्तिकारी विचारों के विरोध का एक कारण यह भी

बताया जाता है कि क्रान्तिप्रिय रूसी केवल राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न नहीं करते थे, वरन् वे समाज-वाद ('सोशलिज़म') के भी कट्टर पक्षपाती थे। प्रायः मनुष्य या जाति की निर्बलता और दृढ़ता दोनों की कुञ्जी एक ही वस्तु में मिलती है। समाज-वाद का प्रचार रूस की मूर्ख जनता में कठिन था, इसलिए क्रान्तिकारियों को बहुत समय तक असफलता का मुँह देखना पड़ा, पर अन्त में सम्भवतः साम्यवाद के आकर्षण से ही सर्वसाधारण स्वतन्त्रता के आन्दोलन में सम्मिलित हुए, और आज भी रूस के गुण-दोष समाज-वाद से निकलते हैं।

सामाजिक वाद

क्रान्ति के विचार पश्चिमी योरुप के स्वतन्त्रता-सम्बन्धी विचार थे। इसलिए यह स्वाभाविक था कि उनके सबसे बड़े प्रेमी पश्चिमी दर्शन-शास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र तथा विज्ञान पढ़नेवाले विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों में होते थे। गुप्त समितियों के सभ्य भी अधिकतर विद्यार्थी ही होते थे। विद्यार्थियों ने सर्वसाधारण में मेल-जोल तथा रहन-सहन के द्वारा अपने विचारों का प्रचार आरम्भ किया। यहाँ पर यह कह देना भी अना-वश्यक न होगा कि रूस का शासन अपने राजनैतिक उद्देशों के लिए शिक्षा-क्रम को प्रयोग में लाया था। इसी लिए अलक्ज़ाण्डर द्वितीय के राज्य-काल में विश्वविद्यालय की श्रेणियों में पाठ्य-पुस्तकें बहुत बड़ी और परीक्षायें कड़ी कर दी गई कि विद्यार्थी

विद्यार्थी और राजनीति

केवल इन्हीं में लगे रहें और स्वतन्त्रता-आन्दोलन में भाग न ले सकें। परन्तु सर्वसाधारण में मूर्खता तथा निरक्षरता होने और आबादी के बहुत बिखरे हुए होने से ये विचार शीघ्रता से ग्रहण न किये जा सके।

अन्त में तार और रेल का युग आया। इसके अतिरिक्त सर्फ़ लोग भी एक प्रकार से स्वतन्त्र कर दिये गये थे पर उनके लिए ज़मीन का प्रश्न हल नहीं किया गया था, इसलिए कारख़ानों में काम करनेवाले श्रमियों की संख्या बढ़ने लगी। ज़मीन पर काम करनेवाले नगरों से दूर एवं बिखरे हुए रहते हैं, इसलिए उनमें प्रजासत्तात्मक विचार जल्दी नहीं फैलते। परन्तु फ़ैक्ट्रियों के बढ़ जाने से क्रान्तिकारियों की एक समस्या हल हो गई। जहाँ उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में क्रान्तिकारी अपना ध्यान कृषकों की ओर दे रहे थे, वहाँ उत्तरार्द्ध में उन्होंने मज़दूरों का सङ्गठन करके साम्यवादी विचारों का प्रचार करना आरम्भ किया।

शिक्षा, सभ्यता, स्वतन्त्रता और सभी बातों में भी पीछे रहनेवाली रूसी स्त्रियों के नये विचारों ने आश्चर्यजनक परिवर्तन उत्पन्न कर दिये। गुप्त समितियों में

स्त्रियों का भाग

स्त्रियों ने विशेष भाग लिया। उन्नीसवीं शताब्दी में 'झूठे विवाह' की भी नई रीति चली। कई क्रान्तिकारिणी युवतियाँ, जो विवाह न करना चाहती थीं, केवल अपने माता-पिता को धोखा देकर प्रसन्न करने के लिए अपनी

समिति के सदस्यों के साथ विवाह कर लेती थीं। यद्यपि विवाह-संस्कार के सभी रस्म हो जाते थे तथापि वे परस्पर पति-पत्नी-सम्बन्ध नहीं रखते थे। कई बार ऐसा भी हुआ कि कुछ वर्षों के पश्चात् वे वास्तविक विवाह भी कर लेते थे। मनुष्य-प्रकृति से इससे बढ़कर त्याग तथा संयम की आशा करना कठिन है।

सन् १८८१ में अलक्ज़ाण्डर द्वितीय को बम्ब से क़त्ल करने के षड्यन्त्र में एक अमीर घराने की सोफ़ी-नामक युवती ने अधिक भाग लिया था। सोफ़ी ने अदालत के सामने स्वीकार किया—मैं 'लोकेच्छा' नामक एक बड़ी गुप्त समिति की सभ्य तथा षड्यन्त्र में सम्मिलित थी। परन्तु साथ ही उसने पाषाणहृदयता और नीति-विरुद्ध आचरण का घोर विरोध किया। फाँसी दिये जाने से पहले उसने ये शब्द कहे—यदि मुझे खेद है तो केवल इसी बात का कि मेरे पास एक ही जीवन है जो मैं अपने देश के लिए अर्पण कर सकती हूँ। एक समाचारपत्र में एक व्यंग्य चित्र प्रकाशित किया गया, जिसमें सोफ़ी फाँसी पर लटकती हुई दिखाई गई। चित्र में एक अन्य स्त्री यह कह रही थी—"यदि स्त्रीत्व मुझे फाँसी पर चढ़ने से नहीं रोक सकता तो फिर वह मुझे पार्लमेण्ट के वोट देने में किस तरह बाधक हो सकता है?" इन शब्दों से स्त्रियों के आन्दोलन का अनुमान किया जा सकता है।

रूस के शासन ने लोगों की माँगों की ओर ध्यान देने के बजाय उनको दबाना और पीड़ित करना आरम्भ कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि शून्यवादी आन्दोलन ने, जो एक प्रकार से मज़हबी आन्दोलन था, परिवर्तित होकर हिंसात्मक-रूप धारण कर लिया। यह परिवर्तन रूस-तुर्की युद्ध के समय हुआ था। १८७८ में रूस में नवयुवकों के अराजक-दल तथा अत्याचारी शासन में ऐसा आन्दोलन शुरू हुआ कि उसमें कोई भी पक्ष ने किसी भी शस्त्र के प्रयोग करने से संकोच न किया। चाहे वह कैसा ही भयानक तथा नैतिक दृष्टि से बुरा क्यों न हो। इन नये अराजकों का यह विचार हो गया था कि राजनैतिक सुधार के लिए अत्याचारी अफ़सरों का वध ही एक साधन है। गवर्नमेण्ट के बहुत से अधिकारी, जो अत्याचार के मूल आधार माने जाते थे, वध कर दिये गये और ज़ार पर भी हमले किये गये।

अराजक-दल

अन्त में शासन ने कौण्ट मेकेकाफ़ को एक प्रकार का निर्देशक नियत किया और उसने कुछ सुधार भी किये। परन्तु वह दल उनसे सन्तुष्ट न हुआ और शासन का विरोध पूर्ववत् ही बना रहा। १३ मार्च, १८८१ को ज़ार अलक्ज़ाण्डर एक बम्ब के द्वारा मार डाला गया। उसके लड़के और उत्तराधिकारी अलक्ज़ाण्डर तृतीय ने, इस दल को पहले से भी अधिक यातनायें देना आरम्भ किया। इसने प्रेस की

स्वतन्त्रता छीन ली और मज़हबी, राजनैतिक तथा बौद्धिक स्वतन्त्रता के विचारों को पूर्ण-रूप से रोक देने के लिए हक्सले तथा स्पेंसर जैसे अनेक विद्वानों की पुस्तकों का रूस में प्रवेश बन्द कर दिया। सन् १८६४ में अलक्ज़ाण्डर तृतीय के स्थान में निकोलस द्वितीय सिंहासन पर बैठा। अपने बाप-दादा के समान उसने भी शासन-विरोधी-दल पर अत्याचार जारी रक्खे।

निकोलस द्वितीय के राज्यकाल में शासन में कई त्रुटियाँ आ गई। यह ज़ार बड़े चिड़चिड़े स्वभाव का था तथा अति विश्वासी होने के अतिरिक्त अपनी लोक-अप्रिय रानी के इशारे पर नाचता था। यह रानी एक पाखण्डी एवं अशिक्षित साधु रस्पोटन के जाल में फँसी हुई थी। निकोलस सदा अपने वंश के हितचिन्तक राजनीतिज्ञों की सम्मतियों की ओर ध्यान न देकर रस्पोटन तथा अपनी रानी के कथनानुसार कार्य करता था।

निकोलस का राज्य-काल; १६०६ का राजद्रोह

इसके अतिरिक्त १९०४ के रूस-जापान के युद्ध ने रूस की निर्बलता को समस्त संसार में प्रकट कर दी। देश की दशा और भी बिगड़ती गई। १९०५ में अनेक हड़तालें और शस्त्र-सज्जित राजद्रोह भी हुए जिनको दबाने के लिए निकोलस को एक विधान तैयार करके रूस में लोगों की एक पार्लमेण्ट स्थापित करना पड़ी, जो डूमा कहलाती है। परन्तु निको-

लस अपनी प्रतिज्ञा पर कभी दृढ़ नहीं रहता था। जब सर्वसाधा-
रण के प्रतिनिधियों ने कुछ थोड़ा-बहुत वास्तविक प्रतिनिधित्व से
काम लेना आरम्भ किया तब उसने उनकी कार्रवाई को क़ानून-
विरुद्ध बता कर उन्हें अधिकारच्युत कर दिया। इस पर एक
सदस्य ने कहा—डूमा मर गई, ईश्वर करे, डूमा सदा
जीवित रहे !

रूस की वैदेशिक नीति

एक ओर रूस के अन्दर शासन तथा अराजक-दल के
बीच में लड़ाई-झगड़ा चल रहा था, यद्यपि उसका प्रभाव सर्व-
साधारण पर कुछ नहीं हुआ, तथापि
दूसरी ओर रूसी शासन की वैदेशिक
नीति का एकमात्र उद्देश यह हो रहा था कि किसी
प्रकार तुर्की तथा कुस्तुनतुनिया पर अधिकार कर लिया
जाय। इस उद्देश की पूर्ति के लिए रूस ने फ़ारस
की ओर फ़ारस की खाड़ी तक बढ़ना आरम्भ किया
और मध्य एशिया में बढ़ते हुए भारतवर्ष की सीमा तक
अपनी शक्ति बढ़ाने का निश्चय किया। भारतवर्ष के निकट
पहुँच कर वह इँग्लेण्ड को इस बात के लिए विवश कर
सकता था कि इँग्लेण्ड उसके मार्ग में बाधा न दे।
इसलिए तुर्किस्तान के क़बीलों को विजित करता हुआ
रूस अफ़ग़ानिस्तान के इतने निकट आ पहुँचा कि अँगरेज़ी
प्रदेश और रूस के बीच केवल तीस मील का अन्तर रह
गया। जिस प्रकार रूस भारत-वर्ष की ओर बढ़ रहा था

उसी प्रकार चीन की ओर बढ़ते हुए उसने मञ्चुरिया पर स्वत्व करने का निश्चय किया। इसलिए १८९८ में रूस ने पोर्ट आर्थर-नामक प्रसिद्ध बन्दर को चीन से ठेके पर ले लिया।

रूस के इस साम्राज्य-विस्तार को रोकने के लिए प्रकृति ने एक एशियाई जाति को उत्पन्न कर दिया। जापान एशिया के देशों में एक छोटा सा द्वीप है। परन्तु एशिया में इसका वही स्थान है जो योरुप में इँग्लेण्ड का। कुछ समय से जापान रूस के फैलाव को ईर्ष्या की दृष्टि से देख रहा था। उसे पोर्ट आर्थर तक पहुँचते देखकर जापान बिलकुल चौकन्ना हो गया। क्योंकि जापान भी मञ्चु में अपना शासन स्थापित करने का प्रयत्न करता था। उसे यह विश्वास हो गया कि जीवित रहने और अपना मान बनाये रखने के लिए उसे जल्दी ही किसी न किसी योरुपीय शक्ति से युद्ध करना होगा।

जापान में जागृति

वर्तमान जापान का इतिहास हमें बहुत पीछे नहीं ले जाता। गत उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक जापान कोई एक जाति नहीं था, वरन् देश विभिन्न कबीलों तथा सरदारों के बीच में बँटा हुआ था। ये सरदार एक दूसरे से लड़ते और ईर्ष्या करते थे। १८५० के पश्चात् इँग्लेण्ड, अमरीका

जापान एक जाति के रूप में

आदि के जहाज़ों ने जापान में व्यापार के लिए जाना आरम्भ किया। जहाज़ों के आवागमन से जापानियों के साथ विदेशियों की कई स्थानों में मुठभेड़ हुई, जिससे युद्ध होने का भय उत्पन्न होगया।

जापानियों ने जब विजातियों को अपना देश निगल जाने के लिए तैयार देखा तब स्वभावत: उन्हें उसकी रक्षा के उपाय सोचने पड़े। यद्यपि इस समय तक जापानी पश्चिमी सभ्यता तथा विद्याओं से अपरिचित थे, परन्तु उनके रक्त में स्वस्थता थी, उनके अन्दर ऐसे गुण थे जिनसे वे एक संयुक्त जाति बन सकते थे। जापानी-जाति ऐसी अवस्था में न थी जिसके यौवन के दिन गुज़र चुके हों और बुढ़ापा सिर पर हो, बल्कि एक प्रकार की नीमवहशी अवस्था में होने के कारण उसके रक्त में पर्याप्त आवेग था।

इस बाह्य सङ्कट को देखकर सारे जापानी सरदार या राजा एकत्र हुए और मिकेडो-वंशी राजा को अपना सम्राट् स्वीकार किया। इसके साथ ही एक नियमबद्ध शासन-व्यवस्था निश्चित करके अपने राज्य सम्राट् के सुपुर्द कर दिये। अपने आपको एक संयुक्त जाति बनाने के लिए जापानी सरदारों का इस प्रकार का त्याग संसार के इतिहास में एक ही उदाहरण है।

इसके पश्चात् जापान ने यह देखा कि पश्चिमी जातियों के

मुक़ाबले जीवित रहने के लिए उसे अपने आपको उन सारे अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित करना होगा जो पश्चिमीयों के हाथों में हैं। इस नीति का

जापान का उत्कर्ष

अनुसरण करते हुए जापान-सरकार ने जापानी नवयुवकों को अमरीका आदि देशों को भेजकर उन सारी विद्याओं तथा विज्ञानों को सिखलाया जिन पर वर्तमान युग की उन्नति आश्रित है। जापानी विद्यार्थियों ने केवल विश्वविद्यालयों में ही शिक्षा नहीं ग्रहण की, प्रत्युत अमरीकन कारख़ानों में कुलियों का काम करते हुए सारे कौशलों को सीखकर उन्हें अपने देश में आ फैलाया। एक-दो पुश्तों में ही जापान ने पश्चिमी विद्याओं को ऐसा अपनाया, मानो वे चिर-काल से उसकी परम्परागत थीं।

जिस प्रकार रूस ने पश्चिमी सभ्यता को अपना कर समुद्री बेड़ों तथा कारख़ानों की नींव रक्खी थी, उसी प्रकार जापान ने भी पश्चिमी आदर्श को सामने रख कर अपने देश में विभिन्न शिल्पों के कारख़ाने जारी कर दिये। जापान में स्थल-स्थल पर पाठशालाएँ स्थापित करके जातीय खेलों तथा गीतों-द्वारा बालकों के शरीर तथा मस्तिष्क में जाति तथा देश-प्रेम की अग्नि उत्पन्न कर दी गई।

जापान की व्यापारिक उन्नति को देखकर अमरीका, रूस आदि पश्चिमी जातियाँ उससे ईर्ष्या करने लगीं। सभी देश चीन में अपना व्यापार तथा शक्ति को बढ़ाना

चाहते थे, इसलिए वे किसी एशियाई शक्ति का उठना पसन्द न करते थे।

अपनी शक्ति का पहला प्रमाण जापान ने १८९४ में दिया। इस भय से कि कहीं कोरिया रूस के हाथ में न चला जाय, जापान ने चीन से कहा कि तुम कोरिया को हमारे सुपुर्द कर दो और इसके लिए उसने चीन में अपनी सेना भी भेज दी। इसमें जापान का एक उद्देश यह भी था कि मुर्दा हाथी के समान पड़े हुए चीन को गहरी नींद से जगाकर योरुपीय जातियों के सङ्कट से उसे सावधान करे ताकि वह (चीन) जापान को सदा अपना सहायक समझे। जापानी सेनाओं के पेकिङ्ग पहुँचने पर चीन-सरकार ने जापान को फ़ारमोसा तथा पोर्ट आर्थर के सहित दक्षिणी मञ्चुरिया देकर सन्धि कर ली।

चीन और जापान में युद्ध (१८९४)

इस समय फ़्रांस और जर्मनी ने रूस की सहायता करके जापान को केवल फ़ारमोसा-द्वीप लेने पर राज़ी कर लिया। जापान के इस साहस से संसार को चीन की मृतप्राय अवस्था का ज्ञान हुआ। योरुपीय जातियों—जर्मनी, रूस, फ़्रांस तथा इँग्लेण्ड ने परस्पर मिलकर चीन के तट पर विभिन्न प्रदेश अपने अपने लिए लेने शुरू

क्या चीन विभाजित होगा? चीन पर इसका प्रभाव

किये। योरुप और अमरीका में चीन के विभाजन के सम्बन्ध में खुले तौर पर उल्लेख होने लगा।

इन सब बातों का प्रभाव चीन पर भी पड़ा। १९०० में बॉक्सर लोग योरुपीयों के विरुद्ध खड़े हो गये। एक जन-समूह ने योरुपीय राज्यों के सारे दूतों के मकानों को घेर लिया इससे यह बात मशहूर होगई कि सारे योरुपीय वध कर दिये गये हैं। इससे योरुप में आश्चर्यजनक जोश पैदा हो गया और रूसी, फ्रेञ्च, जर्मन, अँगरेज़ी तथा अमरीकन सेनायें उनके बचाव के लिए चीन को रवाना की गईं। जापान ने भी उनकी सहायता की। वहाँ जाकर मालूम हुआ कि किसी योरुपीय का वध नहीं हुआ। इस बॉक्सर-हलचल के अन्तस्तल में घृणा का वह भाव काम करता था जो चीनियों के अन्दर अन्य जातियों के लिए पाया जाता था। इस हलचल से चीन कुछ समय के लिए बच गया।

रूस-जापान-युद्ध (१९०५)

मञ्चुरिया में रूस तथा जापान के बीच लड़ाई का बीज उपस्थित था। पहले रूस ने इस ओर अपने हाथ फैलाये थे। तत्पश्चात् जापान को कोरिया में अब शासन स्थापित करके अपनी शक्ति बढ़ाने की चिन्ता हुई। जापान यह बात समझता था कि अवश्य ही उसे एक न एक दिन रूस के मुक़ाबले में आना पड़ेगा।

सन् १९०५ में रूस तथा जापान में युद्ध छिड़ गया, जिसमें जापानी सेनाओं ने संसार को चकित कर दिया। जहाँ एक ओर जापानी सैनिकों ने भयानक रूसी सेना को पराजित करके पोर्ट आर्थर पर अधिकार कर लिया, वहाँ दूसरी ओर जापानी नाविकों ने पहली बार पनडुब्बी या 'टॉरपीडो' का प्रयोग करके रूस के प्रसिद्ध बाल्टिक बेड़े को विनष्ट कर दिया।

रूस के फ़ौजी अफ़सर और सैनिक, यद्यपि उनकी संख्या तथा शारीरिक बल जापानियों से कहीं अधिक था, युद्ध को केवल बेगार समझते थे। उनके मुक़ाबले छोटे क़दवाले जापानी सैनिक देश-प्रेम की अग्नि से जल रहे थे और उन्होंने अपने देश का नाम तथा मान बढ़ाने के लिए ऐसे चमत्कार किये कि वे उनके स्मारक रहेंगे। इस युद्ध में जापानी नवयुवक हथेली पर जान रखकर देश के नाम पर दौड़ा-दौड़ कर मरने के लिए आगे बढ़ते थे। जापान की युवतियों तथा स्त्रियों ने देश की धन-सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए धन कमाने का कोई साधन न उठा रख छोड़ा था।

परन्तु रूस अन्दर से खोखला था। रूस-सरकार अपने आपको निर्बल समझती थी। रूसी प्रजा का शासन के साथ किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध न था। रूस तो अपने रहे-सहे मान को बचाने के लिए सन्धि करना चाहता था। इधर जापान के साधन भी बहुत थोड़े थे, इसलिए इतनी

पुरानी तथा बड़ी शक्ति के साथ अधिक समय तक युद्ध जारी रखना उस (जापान) के लिए ख़तरे से ख़ाली न था। अमरीका के बीच में आ जाने से दोनों में सन्धि हो गई और जापान की भी संसार की जातियों में गणना होने लगी। एक जापानी राजनीतिज्ञ ने युद्ध करने की शक्ति की बड़ी अच्छी प्रशंसा की है। जब उससे पूछा गया कि जापान कैसे सभ्य बना है तब उसने उत्तर दिया—"एक लाख मनुष्यों का बध करके !"

इँग्लेण्ड, रूस-जापान-युद्ध को ख़ास दिलचस्पी से देख रहा था। एशिया में रूस इँग्लेण्ड का सबसे पुराना प्रतिद्वन्दी एवं शत्रु था। पूरे एक सौ साल तक इँग्लेण्ड को रूस से भारतवर्ष के लिए भय लगा रहा। जापान की बढ़ती हुई शक्ति भी इँग्लेण्ड के लिए चिन्ताजनक थी। दोनों शत्रुओं में से किसी का निर्बल हो जाना इँग्लेण्ड के लिए लाभकारी था। युद्ध के अन्त में रूस इतना अशक्त हो गया कि इँग्लेण्ड का उससे सारा भय जाता रहा। यहाँ तक ही नहीं, प्रत्युत इँग्लेण्ड ने रूस की निर्बलता से लाभ उठाकर उससे मैत्री की सन्धि की। तत्पश्चात् फ़्रांस के साथ मिल जाने से योरुप की तीन बड़ी शक्तियाँ एक ओर हो गईं। यह पारस्परिक सन्धि स्वम्भवतः जर्मनी तथा आस्ट्रिया के विरुद्ध थी।

सन् १९०५ के युद्ध के पश्चात् रूस में स्वातन्त्र्य-

आन्दोलन के कार्यकर्त्ताओं ने पहले से अधिक दृढ़ता तथा धैर्य से काम करना आरम्भ किया।

रूस पर योरुपीय महासमर का प्रभाव

एक ओर तो क्रान्तिकारियों की शक्ति बढ़ती गई और दूसरी ओर सरकार की शक्ति घटती गई। सरकार में एक बार अग्नि-प्रयोग की कसर थी। वह महासमर ने पूरी कर दी। अग्नि और युद्ध का प्रभाव एक जैसा होता है। आग पर चढ़ाने से या तो अङ्ग सर्वथा पृथक् हो जाते हैं या उनसे एक यौगिक बन जाता है। इसी प्रकार युद्ध की भट्टी में पड़कर भिन्न प्रकार की आबादियाँ या तो पृथक् हो जाती हैं या इकट्ठा ख़ून बहाने से सदा के लिए एक हो जाती हैं।

रूस पर प्रथम प्रकार का प्रभाव हुआ। हमने देखा है कि रूस के शासक इस आन्दोलन को किस प्रकार दबाते रहे। सैकड़ों नवयुवकों को मृत्यु-दण्ड हुआ और सहस्रों साईबेरिया के दूरस्थ जङ्गलों में निर्वासित कर दिये गये, परन्तु स्वतन्त्रता का आन्दोलन समाजवाद ('सोशलिज़म') के रूप में जारी रहा। युद्ध के समय रूसी सेनाओं के बार बार पराजित होने से रूस-सरकार सामग्रीहीन होगई। देश निर्धन हो गया और अकाल पड़ जाने से लोग भूख से मरने लगे।

रूसी सैनिक युद्ध से तङ्ग आ गये थे, इसलिए रण-क्षेत्र में

रूसी 'छावनी' में अशान्ति फैलने लगी। घर पर श्रमिकों का आन्दोलन उग्ररूप धारण करने लगा। इसके साथ ही महँगी आदि सर्वसाधारण के लिए सर्वथा असह्य होगई। यहाँ तक कि सब कुछ सह लेनेवाले तथा भाग्य पर विश्वास रखनेवाले अशिक्षित कृषकों ने "रोटी तथा ज़मीन" चिल्ला चिल्लाकर आसमान को सिर पर उठा लिया।

१९१७ की रूस राज-क्रान्ति

एक ओर ये बातें हो रही थीं, दूसरी ओर देश का राजा ज़ार असावधान पड़ा था। अब लोगों से न रहा गया। १९१७ में राज्य-क्रान्ति हुई और बिना रक्त की एक बूँद गिराये रूस ने ज़ार के शासन से मुक्ति प्राप्त की। पेट्रोग्रेड के सहस्रों-लाखों स्त्री-पुरुष रोटी के लिए चिल्लाते हुए राजा के प्रासादों के इर्द-गिर्द इकट्ठे होगये। सेना को गोलियों-द्वारा लोगों को भगाने की आज्ञा हुई। एक-दो गोलियाँ चलीं। परन्तु जब उनको समझाया गया कि वे किस पर गोलियाँ छोड़ते हैं तब वे भी जन-समूह में सम्मिलित होगये। ज़ार को सिंहासनच्युत करके सारा अधिकार डूमा को दे दिया गया। ज्यों ही क्रान्ति के समाचार बाहर फैले, त्यों ही लेनिन और ट्राटस्की जैसे निर्वासित नवयुवक रूस में आ उपस्थित हुए और अपना दल दृढ़ करने लगे।

सन् १९१८ के मार्च महीने में समाजवादी दल ('सोशलिस्ट पार्टी') ने शासन की बागडोर सँभाली। उसने भी

लोगों के लिए ज़मीन का सवाल हल करने में कुछ विलम्ब किया। इस कारण उसी वर्ष नवम्बर महीने में दूसरी क्रान्ति हुई, जिससे साम्यवादी ('बॉल्शेविक') शासन स्थापित हुआ। ज़ार नये शासन के विरुद्ध गुप्त षड्यन्त्र रचने के अपराध में परिवार तथा अन्य आत्मीय सहित मार डाले गये।

साम्यवादी शासन (१९१८)

सर्वसाधारण से गरम समाजवादियों या साम्यवादियों का साथ होने के दो कारण थे। हाथ में शासन लेते ही उन्होंने सारी भूमि सर्वसाधारण के सिपुर्द कर देने और सारी रूसी सेना को युद्ध-क्षेत्र से वापस बुला लेने की प्रतिज्ञायें कीं। साम्यवादी शासन के गुण-दोषों का उल्लेख न करते हुए यहाँ केवल इतना ही कह देना पर्याप्त है कि नई गवर्नमेण्ट ने अपनी प्रतिज्ञायें पूर्ण कर दीं। लेनिन रूस का राष्ट्रपति और ट्राटस्की सेनानायक नियत हुए और सभी रूसवासी स्वतन्त्र और एक समान कर दिये गये।

———

पन्द्रहवाँ अध्याय

आयरलैण्ड

१—फ्रांस की राज्य-क्रान्ति से पूर्व का आयरलैण्ड

आयरलैण्ड इँग्लैण्ड के प्रतिवेश में उसकी अपेक्षा एक छोटा द्वीप है। इस बात ने आयरलैण्ड के इतिहास पर बड़ा महत्त्व-पूर्ण प्रभाव डाला है। पूर्व-काल में जब कि आवागमन के साधन वर्तमान काल की अपेक्षा बहुत साधारण थे, आयरलैण्ड समस्त योरुप से पृथक् होने से अपनी भिन्न सभ्यता रखता था, रोमन-साम्राज्य की शक्ति भी इँग्लैण्ड तक आकर ही रुक गई। तत्पश्चात् जो जातियाँ रोमन-साम्राज्य के विनाश का कारण हुईं वे भी अपना पद आयरलैण्ड में न रखने पाईं। तब समस्त योरुप रोमन-साम्राज्य की महत्ता, सभ्यता तथा शक्ति का करुणाजनक अन्त देख रहा था, तब आयरलैण्ड आराम से बैठा विभिन्न विद्याओं में उन्नति कर रहा था।

अँगरेजी आक्रमण से पूर्व

मसीह के लगभग साढ़े चार सौ बरस बाद आयरलैण्ड में ईसाई-मज़हब फैलना आरम्भ हुआ। और उस समय से कई सदियाँ बाद तक आयरलैण्ड के प्रचारक ज्ञान तथा मज़हब की उल्का लिये समस्त योरुप में फिरते रहे। उन्होंने स्थान-

स्थान में पाठशालायें और पुस्तकालय स्थापित किये। उनका अपना देश तो ज्ञानेच्छुकों तथा विद्याव्यसनियों के लिए एक तीर्थ था। आयरलेंड की प्राचीन सुन्दर सभ्यता में शनैः शनैः इतना सामर्थ्य आगया कि सभ्यता तथा साहित्य की दृष्टि से उनके विजेता भी उनसे विजित हो जाते थे। नवीं शताब्दी में डेन लोगों ने आयरलेंड पर आक्रमण करने आरम्भ किये। परन्तु थोड़े ही समय में आयरलेंडवासियों में मिल गये और उनकी सभ्यता, भाषा तथा रीति-रिवाज ग्रहण कर लिये। आज वे मूलवासियों से पृथक् नहीं पहचाने जा सकते।

ज़माना बदला। जो लोग दूसरों तक ज्ञान का प्रकाश पहुँचा रहे थे उनके ही घर का दीया बुझने लगा।

इँग्लेण्ड से पहला आक्रमण (११६१)

नार्थमैन लोगों का अधिकार होने के पश्चात् आयरलेण्ड के पड़ोसवाला द्वीप इँग्लेण्ड अपने लिए एक उज्ज्वल इतिहास बनाने के लिए प्रयत्नशील हुआ। स्वभावतः उसकी आँखें आयरलेण्ड की ओर फिरीं। एक ओर इँग्लेण्ड की इच्छा प्रबल हुई, दूसरी ओर आयरलेण्ड अपने पुराने ढङ्ग पर विभिन्न क़बीलों में, जिनकी पारस्परिक ईर्ष्या की कभी समाप्ति ही न हुई थी, विभक्त था। परिणाम यह हुआ कि स्वयं आयरलेण्ड ने इँग्लेण्ड को अपनी इच्छा पूर्ण करने का मार्ग दिखलाया। सन् ११६६ में चार प्रान्तों में से एक

लीस्टर के निमन्त्रण पर एमेरिक के अँगरेज़ रईस रिचर्ड ने आयरलेण्ड पर चढ़ाई कर दी।

कुछ मास के पश्चात् इँग्लेण्ड का राजा हेनरी द्वितीय (११५४-११८९) स्वयं डबलिन पहुँचा और बड़े दिनों का सप्ताह वहीं व्यतीत किया। आयरलेण्ड पर अपना अधिकार जताने के लिए वह एक मज़हबी आदेश, जो सम्भवतः जाली था, अपने साथ ले गया और कई आयरिश सरदारों को बड़ी बड़ी आशायें दिलाकर यह कहलवा लिया कि हेनरी आयरलेण्ड के सरदारों का भी शासक है। हेनरी द्वितीय के उत्तराधिकारी आयरलेण्ड पर अपना अधिकार जताने के लिए सदा इसी आदेश का उपयोग करते रहे।

हेनरी द्वितीय का आक्रमण

हेनरी द्वितीय के जाने के पश्चात् आयरलेण्ड के पूर्वी तट के प्रदेश में अँगरेज़ी सेना रहने लगी, अँगरेज़ी दुर्ग बनने आरम्भ हुए और अँगरेज़ी रस्म-रवाज फैलाने का भी प्रयत्न किया गया। यह प्रदेश एक प्रकार से आयरलेण्ड से पृथक् होगया। यह पील कहलाने लगा।

उसका प्रभाव

इस प्रदेश की सीमा से बाहर भी विदेशी शक्ति ने फूट के बीज बोने आरम्भ किये। यद्यपि आयरलेण्ड की एक सभ्यता, एक मज़हब—रोमन कैथॉलिक—और एक भाषा थी, तथापि एक दृढ़ केन्द्र शासन के न होने से उसमें जातीयता

का भाव निर्बल था। इसी कारण अनेक रईस तथा सरदार अपने व्यक्तिगत हित के लिए अँगरेज़ी राजाओं से उपाधियाँ तथा पद आदि लेकर अपने प्रदेश उनके अधीन कर देते! कई अपने घरों में अँगरेज़ी भाषा तथा रहन-सहन जारी करने में भी अपना गौरव समझने लगे।

शनैः शनैः आयरलेण्ड में इँग्लेण्ड का रोब-दाब बढ़ता गया। यहाँ तक कि यद्यपि हेनरी के आक्रमण के पाँच सौ वर्ष बाद तक आयरिश सरदार युद्ध-क्षेत्र में अँगरेज़ी शक्ति के विरुद्ध प्रयत्न करते रहे, तथापि पारस्परिक ऐक्य न होने से उनके सारे प्रयत्न विफल हुए। ज्यों ज्यों विदेशी शक्ति अपनी जड़ों को दृढ़ पाती, त्यों त्यों विजितों पर अत्याचार बढ़ा देती। सरदारों पर द्रोह का अपराध लगाकर उनकी ज़मीन ज़ब्त कर ली जाती। सरदारों पर आश्रित लोग भी अपनी भूमि से वञ्चित हो जाते। ज़ब्तशुदा ज़मीन अँगरेज़ सैनिकों, व्यापारियों तथा ज़िमींदारों में बँट जाती।

परन्तु जैसा पहले कहा गया है, आयरलेण्ड की संस्कृति बड़ी दृढ़ थी। उसमें आकर्षण-शक्ति भी थी। जो अँगरेज़ सैनिक या भूमिपति वहाँ जाकर रहना आरम्भ करते वे आयरिशों के साथ विवाह-सम्बन्ध कर लेते, उन्हीं का वेष पहनने तथा आयरलेण्ड की भाषा बोलने लगते। अँगरेज़ अफ़सरों ने अब आयरिश संस्कृति को समूल उखाड़ने का निश्चय किया। नवागत

संस्कृति का विनाश

अँगरेज़ों के लिए आयरिश भाषा बोलना, आयरिश नाम रखना, आयरिश युवतियों से विवाह करना, आयरिश वेष पहनना, यहाँ तक कि आयरिश ढङ्ग पर दाढ़ी-मूँछ बनवाना भी नियम-विरुद्ध ठहराया गया। परन्तु ये सारे नियम विफल हुए। नवागत अँगरेज़ कुछ ही समय में आयरिशों के साथ घी-खिचड़ी हो जाते। अन्त को अँगरेज़-राजाओं ने आयरलेण्ड में अँगरेज़ी सभ्यता का सिक्का जमाने के लिए आयरिश पादरियों तथा अध्यापकों को अपनी बातों की शिक्षा प्रदान करने से रोक दिया। इसका कारण यह बताया गया कि जिस रोमन-कैथॉलिक-सम्प्रदाय की वे शिक्षा देते थे वह कुफ़्र था। इस प्रकार एक ओर तो आयरलेण्ड में मज़हबी सवाल खड़ा कर दिया गया और दूसरी ओर आयरिश संस्कृति का उन्मूलन करने के लिए सबसे बढ़िया शस्त्र का प्रयोग—शिक्षा तथा भाषा का विनाश आरम्भ किया गया। इसके अतिरिक्त मज़हब की आड़ में अकथनीय अत्याचार करने आरम्भ कर दिये गये। सबसे पहले रानी इलिज़बेथ ने इस ज़ोर-जुल्म को मज़हबी रङ्ग देने का प्रयत्न किया।

स्पेन के राजा के उकसाने पर हेवावनेल ने राजद्रोह किया। द्रोह को दबाकर अलस्टर की उपजाऊ भूमि से आयरलेण्डवासियों को निकाल अँगरेज़ों तथा स्कॉटों को वहाँ पर बसाया गया।

क्रामवेल आयरलेण्ड में
(१६४९)

क्रॉमवेल के सफल हो जाने पर आयरलेण्ड ने राजा चार्लेस का पक्ष लिया। तिस पर क्रॉमवेल सेना लेकर वहाँ पहुँचा। सन् १६४६ में उसने ईसा के नाम पर अनेक कृतल आम किये। जब वह लोगों का पीछा करता था तब उच्च स्वर में ये शब्द कहता—"नरक या कनार"।

अलस्टर का समस्त प्रदेश क्रॉमवेल के सैनिकों तथा अन्य अँगरेज़ एवं स्कॉटों से आबाद कर दिया गया। शनिपात-नदी के पूर्व में किसी भी आयरिश का रहना मृत्यु-मुख में जाना था। उसी समय में वर्तमान अलस्टर की नींव रक्खी गई और कनार की निर्धनता भी तभी से आरम्भ होती है।

इस प्रकार विदेशी शासन की छत्र-छाया में आयरलेण्ड में निर्धनता तथा दुर्भिक्ष, निरक्षरता तथा मूर्खता खूब फली-फूली। स्वभावतः आयरलेण्डवासी अपनी जननी-जन्मभूमि से विदा होकर इटली, फ्रांस, स्पेन और बाद में अमरीका की राह लेने लगे। अठारहवीं शताब्दी में सरकार की ओर से भूमि-हरण बराबर जारी रहा। इसके अतिरिक्त अँगरेज़ी पार्लमेण्ट ने आयरलेण्ड के लिए हिंसात्मक नियम निर्माण करने आरम्भ कर दिये। इन सब बातों से आयरलेण्ड इतना निर्बल हो गया कि उसके लिए इँग्लेण्ड का मुक़ाबला करना असम्भव था।

अठारहवीं शताब्दी में

हाँ, एक बात थी जिसके द्वारा आयरलेण्ड का उद्धार सम्भव था। पोलेण्ड के एक प्रसिद्ध देश-भक्त कवि ने अपने नन्हे तथा निर्बल देश को योरुप की महती शक्तियों का ग्रास होते देखकर जब विचार किया तब उसे बचाव की एक ही सूरत नज़र पड़ी। अपनी एक कविता में वह ईश्वर से प्रार्थना करता है—"हे ईश्वर, इन शक्तियों को परस्पर ऐसा लड़ा कि ये नष्ट हो जायँ!" आयरिशों ने भी इस बात को समझा। इसी कारण उनकी भाषा में एक लोकोक्ति है—"इँग्लेण्ड की कठिनाई आयरलेण्ड के लिए सुअवसर है।"

अमरीका के स्वातन्त्र्य-युद्ध से लाभ

सन् १७७६ में अमरीका में स्वातन्त्र्य-युद्ध आरम्भ हुआ। विवश होकर इँग्लेण्ड को आयरलेण्ड से अपनी सेना हटानी पड़ी और उसे देश के रक्षार्थ चालीस हज़ार स्वयंसेवक भरती करने की अनुमति प्राप्त हुई। इस सेना की बदौलत आयरलेण्ड अपने अधिकारों को एक ख़ासी हद तक इँग्लेण्ड से वापस ले सका। १७८२ में आयरिश देश-भक्त गरेट के अनवरत प्रयत्न से आयरलेण्ड को एक पृथक् पार्लमेण्ट बनाने की अनुमति मिल गई। अब इँग्लेण्ड का राजा आयरलेण्ड का राजा भी था, परन्तु पार्लमेण्टें दोनों की पृथक् पृथक् होगईं।

———

२—फ्रांस की राज्य-क्रान्ति के बाद का आयरलेण्ड

सन् १७८६ में फ्रांस की राज्य-क्रान्ति हुई, जिससे एक स्वेच्छाचारी राजा के स्थान में फ्रांस में प्रजातन्त्र स्थापित कर दिया गया। क्रान्तिकारी राजनीतिज्ञों तथा दार्शनिकों के गीत प्रत्येक देश में गाये जाते थे। जातीयता, स्वतन्त्रता तथा मनुष्य-अधिकार, ये भाव सभी देशों में अपना काम करने लगे। आयरलेण्ड में भी कइयों के हृदय जलने लगे और उनकी स्वतन्त्रता की इच्छा बढ़ने लगी। ववलफ़टोन ने इन सिद्धान्तों का देश में खूब प्रचार किया। इसके नेतृत्व में आयरलेण्ड इँग्लेण्ड के लिए एक भय होगया। आयरलेण्ड की नाममात्र की पार्लमेण्ट के तीन सौ सदस्यों में से सर्वसाधारण-द्वारा निर्वाचित केवल सत्तर सदस्य थे। शेष सब इँग्लेण्ड की पेंशन, नज़राने तथा घूस की कठपुतलियाँ थीं। गरेटन इसमें सुधार की आवश्यकता समझता था, इसलिए उसने फिर अपना क़ानूनी आन्दोलन आरम्भ किया। वह पार्लमेण्टरी ढङ्ग की मार का मारनेवाला था और खुल्लम-खुल्ला द्रोह को उचित न समझता था।

फ्रांस की राज्य-क्रान्ति का प्रभाव

इसके अतिरिक्त आयरलेण्ड पर एक और अत्याचार यह था कि रोमन केथॉलिक, बल्कि प्रेसबिटिरियन तथा एङ्गलिकन को भी इँगलिशचर्च के लिए उसे अपनी ज़मीन की उपज के अनुसार कर देना पड़ता था। यद्यपि गरेटन, ववलफ़टोन और

गरपलिडया आदि सारे नेता स्वयं प्रोटेस्टेण्ट थे, तथापि अपने देश से उन्हें सच्चा प्यार था। इसी कारण गरेटन कहा करता था कि "जब तक मेरे देश का एक रोमन केथॉलिक भी दास है तब तक आयरलेण्ड स्वाधीन नहीं कहा जा सकता!" उसने अपने आन्दोलन के उद्देशों में पार्लमेण्ट के सुधार के अतिरिक्त कर को हटाना भी सम्मिलित कर लिया था।

जब वबलफ़टोन ने देखा कि गरेटन को सफलता नहीं प्राप्त हो रही है तब उसने आयरलेण्ड के भाग्य-निर्णय के लिए रक्त की आवश्यकता समझी। उसने स्वयंसेवक-दल तैयार करने शुरू किये। इनका नाम उसने 'संयुक्त आयरिश' रक्खा। स्वयंसेवकों की संख्या पाँच लाख तक पहुँच गई। परन्तु इसके साथ ही फ्रांस की राज्य-क्रान्ति का दूसरा ज़माना भी आ पहुँचा। जहाँ पहले क्रान्ति के सिद्धान्त स्वतन्त्रता तथा मनुष्य-अधिकार सर्वसाधारण पर जादू का असर करते थे, वहाँ अब क्रान्तिकारियों की ओर से भयानक रक्त-प्रवाह होने से उनका जी स्वतन्त्रता से खट्टा होगया। आयरलेण्ड में भी वबलफ़टोन के आन्दोलन के विरुद्ध एक भाव उत्पन्न होना आरम्भ हुआ। किन्तु वह तो राजद्रोह करने का निश्चय कर चुका था, इसलिए उसने फ्रांस से सहायता का वचन भी ले लिया।

फ्रांस ने जनरल होच के अधीन पन्द्रह हज़ार सैनिक तथा तैंतालीस जङ्गी जहाज़ों का बेड़ा आयरलेण्ड की सहा-

यता को भेजा। परन्तु आयरलेण्ड के दुर्भाग्य से न जनरल होच पहुँचा, न सेना ही। वे राह में ही तूफ़ान के आने से डूब गये। फिर भी मई सन् १७९८ में राजद्रोह आरम्भ हो गया।

राजद्रोह तथा ऐक्य (१७९८)

परन्तु आयरिशों की ओर से मिलकर हल्ला न होने के कारण सफलता न हुई। फ्रांसीसी बेड़ा लेकर ववलफ़टोन अगस्त में आयरलेण्ड पहुँचा। उसे पराजय हुई और देश-प्रेम के कारण उसे फाँसी से लटकना पड़ा।

आयरलेण्ड की स्वतन्त्र पार्लमेण्ट यद्यपि निकम्मी थी, तथापि सम्भव था कि कुछ समय में लोग उसे ठीक मार्ग पर ला सकें। इसके अतिरिक्त निकम्मे होते हुए भी उसका काल आयरलेण्ड के लिए व्यापारिक तथा औद्योगिक उन्नति का काल था।

इँग्लेण्ड के प्रधान मन्त्री विलियम पिट ने देखा कि आयरलेण्ड की पार्लमेण्ट किसी दिन इँग्लेण्ड के लिए अहितकर सिद्ध हो सकती है, अतएव अँगरेज़ वायसराय लार्ड कार्नवालिस ने पिट के इशारे पर पार्लमेण्ट में इँग्लेण्ड के वज़ीफ़ा-ख़ोर भरती करने आरम्भ कर दिये। सोसों मनुष्यों को उपाधियाँ, मान-पद तथा जागीरें दी गईं, ताकि वे आयरिश पार्लमेण्ट में अपना मत इस बात के पक्ष में दें कि आयरिश-पार्लमेण्ट के पृथक् रहने की कोई आवश्यकता नहीं। लगभग दो करोड़ रुपया रिश्वत में ख़र्च करके आयरलेण्ड की पार्लमेण्ट से

उसकी अपनी ही मौत का बिल पास करा लिया गया। बाद में यह रुपया भी आयरिश-कोष से वसूल कर लिया गया।

सन् १८०० में ऐक्य-एक्ट पास हुआ, जिसके अनुसार आयरलेण्ड को अपनी स्वतन्त्र पार्लमेण्ट बनाने का अधिकार न रहा और उसके बदले में उसे अँगरेज़ी पार्लमेण्ट में कुछ सदस्य भेजने की आज्ञा प्रदान की गई। इस समय पिट ने जो कार्रवाइयाँ कीं वे अँगरेज़ी इतिहास के कलुषित पृष्ठों पर बड़े स्याह धब्बे हैं। इनके विषय में ग्लेडस्टोन ने कहा—'मेरी समझ में मनुष्य का इतिहास इँग्लेण्ड तथा आयरलेण्ड के ऐक्य से बढ़कर अन्य कोई अधिक कलुषित तथा कलङ्कित पृष्ठ नहीं दिखला सकता।'

रॉबर्ट एमेट और १८०३ का राजद्रोह

१७९८ की आवाज़ें अभी गूँज रही थीं। लोग बेबस थे, किन्तु गतिहीन न थे। मनचले आयरिश नवयुवकों के हृदयों में पराजय का विचार, उसके बाद के अत्याचार तथा ऐक्य-एक्ट नया आवेश भर रहे थे। 'संयुक्त आयरिश' फिर इकट्ठे हुए। परन्तु उन्हें कुछ सूझता न था, वे न आगे जा सकते थे, न पीछे। निस्सन्देह विजित तथा पीड़ित जातियों को अधिकार है कि वे स्वतन्त्रता के लिए हथियार उठावें। परन्तु क्या कुछ एक नवयुवकों को यह अधिकार भी प्राप्त है कि बाह्य परिस्थितियों की ओर बिलकुल ध्यान न देते हुए तथा अपने चारों ओर काली घटाओं के सिवा कुछ न पाते हुए

देश में खून की नदियाँ बहा दें ? क्या देश-भक्तों के अमूल्य प्राणों को व्यर्थ खो देने से यह अच्छा नहीं है कि धैर्य से काम किया जाय ? इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है। रॉबर्ट एमेट ने सम्भवतः भूल ही की। परन्तु आज तक वह उस 'भूल' के कारण अपने देश का प्रेमी बना हुआ है।

सन् १८०३ में रॉबर्ट के कुछ साथियों ने नेपोलियन से सहायता माँगी और अगस्त के महीने में स्वतन्त्रता का झण्डा खड़ा कर दिया। परन्तु इस बार भी जो कुछ हुआ वह या तो समय से पहले हुआ या उसके पीछे। एमेट के एक गुप्त शस्त्रालय में एक दुर्घटना हो गई, जिसके कारण उसे साथियों के ही विना कार्रवाई करनी पड़ी। जुलाई में उसने डबलिन के क़िले पर धावा किया, किन्तु सफलता न हुई।

रॉबर्ट अपने साथियों को लेकर विक्लव-पर्वतों में जा छिपा। अन्त को उस फ्रांस को भाग जाने का निश्चय किया। अतएव जब वह अपनी प्रेमिका से भेंट करने के लिए डबलिन पहुँचा तब गिरफ़्तार कर लिया गया और उसका नाम भी आयरलेण्ड के हुतात्माओं की सूची में लिख लिया गया। उसके अगाध देश-प्रेम, जीवन तथा प्रेम की पवित्रता और सत्यता ने आयरलेण्ड में रॉबर्ट एमेट का नाम अमर कर दिया है।

संसार के क़ानूनी चोभक्तों में से डेनियल ओकेनल सबसे बड़ा माना जाता है। उसका नेतृत्व सन् १८०८ से प्रारम्भ होता है।

इसी साल उसने अपना कार्यक्रम निश्चित किया था। उसके कार्य-क्रम में दो बातें थीं—ऐक्य-एक्ट तथा रोमन केथॉलिकों पर से अत्याचार हटना। ओकेनल की

डेनियल ओकेनल केथॉलिक स्वतन्त्रता

हलचल सर्वसाधारण लोगों के दिल में घर करती जाती थी। परीक्षा का समय भी आ पहुँचा। १८२८ में क़्लीर-ज़िले में पार्लमेण्ट के लिए चुनाव होना था। सरकार की ओर से ओकेनल के मुक़ाबले में एक उम्मेदवार खड़ा किया गया। परन्तु ओकेनल की विजय से यह प्रकट हो गया कि सर्वसाधारण पर किसका प्रभाव है। पार्लमेण्ट के मेज़ के सामने उसने प्रतिज्ञा लेने से इनकार कर दिया, क्योंकि प्रतिज्ञा के शब्द रोमन केथॉलिकों के विरुद्ध थे। पार्लमेण्ट के सामने अब दो बातें थीं—केथॉलिकों की स्वतन्त्रता या युद्ध। इँग्लेण्ड के लिए कोई तीसरा रास्ता न था। इसलिए विवश हो कर उसे रोमन केथॉलिकों के अधिकारों को स्वीकार करना पड़ा और १८२९ में इसी अभिप्राय का एक क़ानून पास किया गया।

ओकेनल के 'प्रोग्राम' की एक बात तो कुछ हल हो गई। सफलता ने उसकी शक्ति तथा साहस को पहले से दुगुना कर दिया। अब उसने अपना ध्यान उस कर की ओर दिया जो अँगरेज़ी चर्च की ओर से आयरलेण्ड के रोमन केथॉलिक, मेथॉडिस्ट आदि लोगों से वसूल किया जाता था।

सरकार को विवश होकर इसमें भी सुधार करना पड़ा। यद्यपि यह प्रथा बिलकुल नहीं हटाई गई, तथापि कर के केवल एक चौथाई रह जाने से लोगों का बोझ बहुत हलका हो गया। इसके अतिरिक्त कर का चुकाना ज़मीन के स्वामियों के ज़िम्मे कर दिया गया।

ओकनेल ने आयरलेण्डवासियों के हृदयों पर इतना अधिकार कर लिया था कि सभी उसे आयरलेण्ड का बेताज बादशाह स्वीकार करते थे। अब उसने ऐक्य-एक्ट को बिलकुल मंसूख करने के लिए अपने पूर्ण बल से आन्दोलन आरम्भ किया। इस काम के लिए १८४० में डबलिन में एक सभा स्थापित की गई। स्थापना के समय उसके पास कुल चवालीस पौण्ड की पूँजी थी। किन्तु इससे उसने वह आग लगा दी जो अति शीघ्र देश में चारों ओर फैल गई। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे कोई आयरिश हृदय इस ज्वाला से शून्य न हो। कुछ समय के लिए तो इसकी तेज़ी यह दावा कर सकती थी कि जब तक यह ऐक्य-एक्ट को भस्म न कर देगी तब तक शान्त न होगी। परन्तु ओकनेल का बड़प्पन इस बात में न था कि उसने बाँस के जङ्गल में अग्नि प्रचण्ड कर दी है। उसका महत्त्व इस बात में था कि इतना भारी क्षोभ उत्पन्न करके भी उसने लोगों को संयम की ही शिक्षा दी थी।

इसी समय फ़ादर मेथ्यु नामक एक पादरी ने मद्य-पान के विरुद्ध आन्दोलन शुरू किया। स्थान-स्थान पर पहुँचकर

वह सर्वसाधारण लोगों से मद्य का त्याग करने को कहता। ओकेनल के स्वयंसेवकों के संयत होने का एक कारण यह था कि उन पर 'ह्विस्की' न सवार होती थी।

ओकेनल में देश-प्रेम की ज्वाला इतनी तेज थी कि चवालीस पौण्डवाली सभा के संदूक में कर को हटाने के लिए धनी-निर्धनी सभी सैकड़ों-हज़ारों पौण्ड भेजने लगे। बहुत से लोग स्वदेश पर अपना सर्वस्व निछावर करने के लिए तैयार हो गये। इसके साथ ही ओकेनल के स्वयंसेवकों का प्रबन्ध भी बहुत अच्छा था।

ओकेनल की 'भूल'

परन्तु अन्त में धैर्य की भी सीमा होती है। आयरिश लोगों का मन कभी युद्ध से न भरा था। दिन प्रतिदिन उनमें इँग्लेण्ड का विरोध करने का भाव बढ़ रहा था। १७९८ के पश्चात् लोग अब फिर कुछ सँभले थे। वबलफ़टोन तथा रॉबर्ट एमेट के वध की स्मृति उनमें जोश ले आती थी। पर ओकेनल तलवार चलाने के विरुद्ध था। किन्तु लोगों को सन्तुष्ट करने के लिए उसने पार्लमेण्ट में जाकर वाद-विवाद करना छोड़ दिया। अब उसने अपने काम करने के ढङ्ग को बदल दिया था। वह स्थल-स्थल पर जाकर भारी जलसों में अपने भाषणों-द्वारा सर्वसाधारण से अपीलें करता था।

टारा के प्राचीन खँडहर आयरलेण्ड के उत्कर्ष-काल की कथा सुनाने के लिए अभी तक खड़े हैं। किसी समय वहाँ

देशी राजाओं के प्रासाद खड़े थे और लोगों की पुराने ढङ्ग की एक पार्लमेण्ट बैठक शासन-सम्बन्धी नियम बनाती थी। लोग अपने विद्या-सम्बन्धी तथा जातीय त्योहार भी वहाँ ही मनाते थे। उन खँडहरों को अब और दृश्य देखना था, ताकि आयरिश इतिहास को पूर्णतया सुना सकें। ओकेनल ने वहाँ एक जलसा करने की घोषणा की। आयरलेण्ड में उस समय रेलों और तारों का ताना नहीं तना था। फिर भी एक रविवार को वहाँ लाखों मनुष्य एकत्र हुए। बालक तथा स्त्रियाँ भी बड़ी बड़ी दूर से कई दिन पैदल चलकर वहाँ पहुँची थीं। टारा की यह सभा या बैठक आयरिश इतिहास में बड़ी प्रसिद्ध है।

परन्तु असली आज़माइश की घड़ी ८ अक्तूबर १८४३ को क्लोनटारफ़ पर आई। ओकेनल समझ रहा था कि उसका आयु भर का स्वप्न पूरा होनेवाला है। वह सफलता के दर्शन करने की प्रतीक्षा कर रहा था। ठीक आरम्भ से पहले क्लोनटारफ़ की सभा को सरकार ने नियम-विरुद्ध ठहरा दिया। लोगों को हटाने के लिए वहाँ सेना भी भेज दी गई। अभी तक कई लोगों की यह सम्मति है कि यदि ओकेनल उस समय सर्वसाधारण की इच्छा के अनुसार सरकार से मुक़ाबला करने का आदेश देता तो वह अवश्य ही थोड़े समय में सफल हो जाता। परन्तु उसका विश्वास था कि शस्त्र रहित लोगों को कोई ऐसा परामर्श देना मुफ़्त में ख़ून गिराना

है । इसके अतिरिक्त वहाँ बालक तथा स्त्रियाँ भी उपस्थित थीं । अस्तु, ओकेनल ने अपने विश्वास के अनुसार लोगों को वहाँ से चले जाने को कहा । इस घटना के पश्चात् यद्यपि ओकेनल के लिए सर्वसाधारण के हृदयों में स्थान था, तथापि पहले जैसी उसके प्रति आज्ञाकारिता का भाव उनमें न रह गया।

जिस सिंहासन पर बैठकर ओकेनल ने वर्षों राज्य किया, उसके पश्चात् वह ख़ाली नहीं पड़ा रहा । शीघ्र ही नये विचार प्रकाश में आये, जो अपने साथ नये ढङ्ग से काम करनेवाले देश-भक्त भी लेते आये ।

तरुण आयरलेण्ड

ओकेलन के उत्तराधिकारी सम्भवतः अपनी देश-भक्ति के भाव में उससे कम न थे, परन्तु लोगों के हृदयों पर जिस प्रकार का एकाधिपत्य ओकेनल को प्राप्त था वह नवागतों को न प्राप्त हुआ। फिर भी आयरलेण्ड के इतिहास में जान माइकेल, टामस फ्रेंसिस मेफ़र तथा स्मिथ ओब्राईन के नाम सदा ही चमकते रहेंगे।

सन् १८४६ के दुर्भिक्ष ने आयरलेण्ड में ब्रिटिश-राज्य के लिए घोर घृणा उत्पन्न कर दी । इधर लोग तो भूखों मर रहे थे, उधर आयरिश भूमि के विदेशी स्वामी खाद्य पदार्थ देश से बाहर भेज रहे थे । कहा जाता है कि अकाल ने तीन वर्षों में आयरलेण्ड के डेढ़ लाख प्राणियों के प्राण हरण कर लिये। दूसरे ही वर्ष लगभग साढ़े चार करोड़ पौण्ड की फ़सल हुई, पर उसका भी अधिक भाग बाहर भेज दिया गया।

अतएव दुर्भिक्ष के कारण बहुत से लोग विदेशों को, विशेषकर अमरीका, चले गये। तभी से अमरीका की आबादी में आयरिश रक्त का पर्याप्त भाग चला आता है। आयरलेण्ड के साथ अमरीका की सहानुभूति का मुख्य कारण भी यही है।

आयरलेण्ड की इस दुर्दशा ने एक नये आन्दोलन की नीव रक्खी। ओकेनल के आन्दोलन के समान यह शान्तिमय या अहिंसात्मक न था, क्योंकि सर्वसाधारण के मतानुसार वह पूरा न उतरा था। आन्दोलनकारियों ने हिंसात्मक साधनों का उपयोग तो किया, किन्तु कोई सुफल न निकला। पहले कुछ बलवे हुए। माइकेल की गिरफ़्तारी पर ओब्राइन मेफर ने बड़ी हलचल मचाई। किन्तु एक साधारण द्रोह के पश्चात् अन्य नेता आयरलेण्ड से निर्वासित कर दिये गये। मेफर तथा माइकेल वानडेमन आयरलेण्ड से भाग गये और अमरीका में जाकर लेखों तथा वक्तृताओं-द्वारा अपने देश की सेवा में लग गये।

अमरीका आयरलेण्डवासियों के लिए वही होगया था जो किसी समय येरोशलम यहूदियों के लिए। जिन आयरिश लोगों को स्वदेश में रहना कठिन हो जाता था

फ़िनियन-आन्दोलन

वे अमरीका को चल देते। अमरीका के गृह-युद्ध ('सिविल वार') के अन्त होने पर बहुत से आयरिश, जो शस्त्रों का प्रयोग जानते थे, अपने देश की सेवा के लिए तैयार

हुए। अमरीका में उन्होंने फ़िनियन्स नामक एक गुप्त समिति बनाई। इसका नाम तो नया था, परन्तु ढङ्ग पुराना ही। 'आयरिश रिपब्लिकन ब्रॉदरहुड' की नीव १८६१ में अमरीका में ही रक्खी गई।

यह आन्दोलन शीघ्र ही आयरलेण्ड में भी पहुँच गया। इसका नेता जेम्स स्टीफ़ेन्स था। स्टीफ़ेन्स १८४८ वाले मनुष्यों में से था। अब उसने गुप्त समितियाँ बनाना आरम्भ किया। लेकिन चर्च की ओर से उसके रास्ते में रोड़े अटकाये गये, क्योंकि चर्च ऐसी समितियों के विरुद्ध था।

सन् १८६१ के आरम्भ में बेलो एममेनस नामक एक मनुष्य, जो १७४८ वाले बचे हुए ख़मीर में से था, मर गया। लोगों ने यह निश्चय किया कि उसकी समाधि उसके अपने देश में बने। उसकी मिट्टी अमरीका से लाई गई। अब तो चर्च से मुक़ाबले का समय आगया। चर्च ने उसकी मिट्टी के विश्राम के लिए स्थान देने से इनकार किया। दूसरी तरफ़ लोग उसका जुलूस निकालने के पश्चात् उसे गाड़ने के लिए एकत्र हो रहे थे। पादरियों के इस व्यवहार से फ़िनियनों का काम बन गया। एक मृतक का अनादर होने से लोगों के दिलों को बड़ी ठेस पहुँची। उन्होंने चर्च की ज़रा परवा न करते हुए एक मकान लिया और वहाँ पर संस्कार आदि सब बातें कीं। इस दिन से चर्च ने उस छोटे पौधे पर

वह जादू का पानी छिड़क दिया, जिससे वह देखते देखते ही एक बड़ा वृक्ष बन गया।

फ़िनियनों के १८६७ के प्रयत्न में फिर वही १८४८ वाला मामला दिखाई पड़ता था। सरकार का एक आदमी स्टीफ़न्स का एक विश्वस्त अधिकारी था। पुलिस का एक हेड कॉन्स्टेबल दक्षिण-भाग में एक अग्रसर कार्यकर्त्ता था। इन भेदियों के कारण सरकार को सब बातें मालूम हो जाती थीं। १८६५ में जब फ़िनियन समाचारपत्र 'आयरिश पीपल' के दफ़्तर में तलाशी ली गई तब डबलिन तथा अन्य कई स्थानों में एक ही समय पर स्टीफ़न्स के अतिरिक्त बहुत से लोग गिरफ़्तार किये गये।

जिस प्रकार गुप्त फ़िनियन समितियों में सरकारी भेदिये काम कर रहे थे, उसी प्रकार सरकारी महकमों में फ़िनियन भी घुसे हुए थे। जिस जेल में स्टीफ़न्स को क़ैद किया गया, उसके कई अफ़सर तथा सन्तरी कट्टर फ़िनियन थे। उन्हीं के कारण वह भागकर एक ग़रीब स्त्री के यहाँ रहता रहा। यह स्त्री जब चाहती स्टीफ़न्स को पुलिस के हवाले करके अपनी दरिद्रता को दूर कर सकती थी। परन्तु उसने सुख के बदले में अपनी जातीयता बेच देने का कभी विचार तक न किया। कुछ समय के पश्चात् स्टीफ़न्स फ़्रांस चला गया। सरकार फ़िनियनों से बहुत तङ्ग आगई थी, क्योंकि जेल, फ़ौज और पुलिस तक के अधिकारिवर्ग में फ़िनियन घुसे हुए थे।

गवर्नमेण्ट ने सर्वत्र सैनिक क़ानून जारी कर दिया। कई स्थानों में छोटे-मोटे विद्रोह हुए किन्तु वे आसानी के साथ दबा दिये गये। एक जहाज़ अमरीका से कुछ सैनिक तथा शस्त्र लेकर आया, किन्तु पकड़ लिया गया। लगातार तीन वर्ष तक यह अशान्ति जारी रही। इँग्लेण्ड का एक जेल भी फ़िनियनों ने बारूद से उड़ा दिया। स्टीफ़न्स के दो साथी आवारागर्दी के अपराध में डबलिन में पकड़े गये। पुलिस उन्हें एक गाड़ी में ले जा रही थी कि राह में उनके साथियों ने हमला किया। आक्रमणकारियों के पिस्टल से एक पुलिस सारजेण्ट का वध हो गया।

इस वध के बदले में पाँच आदमियों को फाँसी का दण्ड दिया गया, जिनमें से दो पीछे निर्दोष समझे जाकर मुक्त कर दिये गये। शेष तीनों को उस दिन से आज तक

मानचेस्टर के हुतात्मा

आयरलेण्डवासी 'मानचेस्टर के हुतात्मा' के नाम से स्मरण करते हैं। जिस समय मानचेस्टर के अपराधियों को फाँसी का आदेश सुनाया गया उस समय उनमें से एक ने बड़े साहस से ये शब्द कहे—'ईश्वर आयरलेण्ड की रक्षा करे!' बाक़ियों ने भी यही शब्द दोहराये। उस दिन से आज तक आयरलेण्ड के उत्सवों में यही जातीय गीत गाया जाता है।

फ़िनियनों ने क्या काम किया इसका उत्तर यह है— "प्रकट-रूप में तो फ़िनियन आन्दोलन एक स्वाँग सा दिखाई

पड़ता था। परन्तु वास्तव में जहाँ ओकेनल और तरुण आयरलेण्ड असफल रहे वहाँ इसे सफलता हुई। इसने आयरलेण्ड में एक नया चक्र चलाया और देश के सामने सुधार-काल ले आया।" सच बात तो यह है कि इँग्लेण्ड के प्रधान मन्त्री ग्लेडस्टोन ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि उसने जो सुधार आयरलेण्ड के क़ानून-आराज़ी में किये उनका कारण फ़िनियनों के अपराध थे।

फ़िनियनों का कार्य

अँगरेज़ राजनीतिज्ञ ग्लेडस्टोन को यह बात अब स्पष्ट दिखाई देने लगी कि इँग्लेण्ड केवल कड़ी नीति से आयरलेण्ड पर शासन नहीं कर सकता। क्रान्तिप्रिय आयरिश इस बात पर तुले हुए मालूम देते थे कि न स्वयं चैन से बैठेंगे, न शासन के रथ को मौज के साथ चलने देंगे। १८६८ से ग्लेडस्टोन ने अपना ध्यान आयरलेण्ड की ओर किया। उसी वर्ष पहले चर्च-भङ्ग का बिल पास कराया, जिसके अनुसार मज़हबी अत्याचार कुछ कम होगये। १८७० में उसने भूमि-नियम में सुधार-सम्बन्धी एक बिल पास कराया। यद्यपि उस समय यह बिल आयरिश लोगों के लिए स्वयं कुछ न कर सका, तथापि भविष्य के लिए इसने और सुधारों का द्वार खोल दिया।

ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट की ओर से रियायतों का आरम्भ

अँगरेज़ राजनीतिज्ञ समझते थे कि आयरलेण्ड की

तकलीफ़ केवल मज़हबी और भूमि-सम्बन्धी है। इसलिए कुछ सुधार आवश्यक हैं। सम्भवतः उन्हें यह न मालूम था कि आयरलेण्ड में एक वास्तविक जातीयता की तरङ्ग भी बह रही है। अर्थात् आयरलेण्ड का रोग राजनैतिक है। अस्तु, ग्लेडस्टोन ने अपने निदान के अनुसार उसका इलाज शुरू कर दिया।

स्वराज्य-आन्दोलन और बट्ट

इधर दूसरी ओर आयरलेण्ड में क़ानूनी हलचल के लिए एक नये आन्दोलन का आरम्भ हो रहा था। अब तक जो आयरिश सदस्य इँग्लिश-पार्लमेण्ट में जाते थे वे प्रायः उदार दल के सदस्य होते थे। परन्तु १८७० में एक प्रॉटेस्टेण्ट आयरिश वकील बट्ट ने स्वराज्य या 'होम-रूल' के लिए एक सभा खोल दी। होम-रूल-शब्द पहले-पहल बट्ट ने ही गढ़ा था। भारतवर्ष में भी यह शब्द आयरलेण्ड से ही आया है। सभा की स्थापना के पश्चात् पार्लमेण्ट के आयरिश सदस्यों ने एक पृथक् देश-भक्त-दल बनाया, जिसका नेता बट्ट चुना गया।

बट्ट एक योग्य वकील था और मानचेस्टर के हुतात्माओं के अभियोग में अभियुक्तों की ओर से पैरवी की थी। इस अभियोग में उन फ़िनियन देश-भक्तों के वास्तविक देशप्रेम ने बट्ट पर बड़ा प्रभाव डाला और उसने होम-रूल की नीव रक्खी। बट्ट अपनी योग्यता, विशेषकर क़ानूनी योग्यता, के

कारण स्वराजियों का नेता बना हुआ था। वह चोभक न था, वह पार्लमेण्ट में जाकर वाद-विवाद करके बिल पास करवा सकता था। परन्तु प्रस्तावों को कार्यरूप में लाने के लिए जिस वस्तु की आवश्यकता होती है वह उसमें न थी।

पारनेल एक पुराने रईस घराने का प्रॉटेस्टेण्ट था और जिस पहली बात ने उसका ध्यान अपने देश की ओर खींचा वह मानचेस्टर की रोमाञ्चकारी घटना थी। पार्लमेण्ट का सदस्य होने पर उसे बट्ट के वकीलों जैसे तरीके पसन्द न आये। बट्ट पार्लमेण्ट में इस प्रकार वक्तृता करता था, मानो एक योग्य वकील के रूप में किसी जूरी के सामने करता हो। वह यही समझता था कि उसकी दलील की मज़बूती के अनुसार ही निर्णय होगा।

इस समय भी आयरिश-दल का बिगार नामक एक सदस्य अवरोध-नीति का अवलम्बन करता था। वह एक ओर तो 'आयरिश रिपब्लिकन ब्रॉदरहुड' का सदस्य था और दूसरी ओर पार्लमेण्ट का। उसके कई मित्र उसकी दोरङ्गी चाल के कारण उससे अप्रसन्न थे। परन्तु वह इन बातों को देश-सेवा में बाधक न समझता था। वह कहता था, "यदि अँगरेज़ सदस्य अपने बहुमत के बल पर हमारे बिल पास नहीं होने देते हैं, तो हम भी पार्लमेण्ट का समय व्यर्थ में खोकर उसकी कार्रवाई रोक सकते हैं।" इसलिए जब वह उठता तब

सबका समय नष्ट करने के लिए घण्टों तक इधर-उधर की बातें कहता रहता। वह यह सर्वथा उचित समझता था कि पार्लमेण्ट की ऐसी दशा कर दी जाय कि वह कोई भी क़ानून न बना सके।

पारनेल को बिगार का तरीक़ा पसन्द आया। पहली बात जो पारनेल ने सीखी वह यह थी कि अँगरेज़ों से मीठी-मीठी दलीलें काम नहीं निकाल सकतीं। उसका कहना था कि ब्रिटिश सिंह की जब तक पूँछ न मरोड़ी जाय तब तक वह किसी की ओर ध्यान ही नहीं देता। इसलिए पहला सिद्धान्त उसका यह था कि यदि पार्लमेण्ट से कुछ काम लेना है तो पहले उसे तङ्ग करना होगा। पारनेल का दूसरा सिद्धान्त यह था कि पार्लमेण्ट के दल के सदस्यों में फ़िनियन आदि ग़ैरक़ानूनी कार्यकर्त्ताओं के लिए जो घृणा है वह सर्वथा अनुचित है, क्योंकि एक स्वराजी स्वदेश के लिए इतना ही कर सकता है कि वह पार्लमेण्ट में चला जाय। किन्तु इसके विरुद्ध एक फ़िनियन स्वदेश की ख़ातिर अपनी जान हथेली पर लिये फिरता है। इसी कारण यद्यपि पारनेल राजनैतिक अपराधों में सम्मिलित न हुआ, तथापि फ़िनियनों से सदा मेल-जोल रखता था। पारनेल यह भली भाँति समझता था कि जिस प्रकार युद्ध में जल, स्थल तथा आकाश-क्षेत्रों के लिए विभिन्न प्रकार के शस्त्रों का उपयोग किया जाता है, उसी प्रकार स्वतन्त्रता के लिए भी केवल पार्ल-

मेन्ट की कार्रवाई ही पर्याप्त नहीं, प्रत्युत वहाँ पर सभी साधनों से आन्दोलन करना होता है।

सन् १८८८ में पारनेल होम-रूल-पार्टी का पार्लमेण्ट में नेता बन गया और बिगार आदि भी उसके दल में सम्मिलित होगये। अब तक स्वराजी तथा गरम-दल में शत्रुता रहती थी, परन्तु पारनेल के नेतृत्व ने यह मामला तय कर दिया। इसके अतिरिक्त यद्यपि उसका तात्कालिक उद्देश स्वराज्य था, तथापि वह समझता था कि होमरूल के पश्चात् पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करना भी बहुत कठिन नहीं। वह कहता था—"किसी जाति की उन्नति की दौड़ में हद नहीं खींची जा सकती कि वह उससे परे न जाय।"

अवरोध-नीति

पारनेल-दल इस विचार को दूर करके पार्लमेण्ट में गया था कि केवल 'ब्रिटिश न्याय' के नाम पर कह देने से या मनुष्य के अधिकारों पर विद्वत्तापूर्ण वक्तृता देने से या अपने आपको किसी की दया पर छोड़ देने से कोई भी काम नहीं हो सकता। इस कारण नेतृत्व सँभालते ही उसने बट्ट के समय की रीति को, होमरूलर सदा उदार-दल के साथ रहें, तोड़ डाली। उसका मत था कि आयरलेण्ड के लिए ह्विग और टोरी में या लिबरल और कॉन-सर्वेटिव में भेद समझना बिलकुल व्यर्थ है। उसने यह नियम बनाया कि चाहे किसी पार्टी के हाथ में शासन की बागडोर हो, आयरिश सदस्यों को 'विरोधी बेंचों' पर ही बैठना होगा।

· इसके अतिरिक्त जो अँगरेज़ सदस्य आयरलेण्ड के मामलों में कुछ ध्यान न देते थे उनको प्रतीकार करने के लिए पारनेल ने बिगार की अवरोध-नीति का आश्रय लिया। इसके द्वारा आयरिशों ने अँगरेज़ी शासन-कार्य को एक प्रकार से ढील कर दिया। जो पार्लमेन्ट का कार्य पहले घन्टों में होता था, अब उस पर कई दिन ख़र्च होते। कई बार पार्लमेण्ट को सारी रात ही नहीं बल्कि सूर्योदय तक बैठना पड़ता, किन्तु फिर भी सन्तोषजनक कार्य न हो पाता। इस प्रकार नई नीति ने पार्लमेण्ट को तङ्ग कर दिया। परन्तु सबसे बड़ी बात १८८५ की पार्लमेण्ट के चुनाव की बदौलत हुई।

पारनेल का अँगरेज़ी पार्टी से लाभ उठाना

इँग्लेण्ड के शासन-प्रबन्ध के अनुसार जब पार्लमेण्ट का चुनाव होता है तब जिस दल के सदस्य सबसे अधिक होते हैं उसका नेता प्रधान मन्त्री बनता है और वह अपनी केबिनट के सदस्य स्वयं चुनता है। यह केबिनट बिल आदि बनाकर पार्लमेण्ट के सामने उपस्थित करती है। यदि उसके बिल बहुमत से गिर जाते हैं तो उस दल के सभी सदस्यों को त्यागपत्र देना पड़ता है और विरोधी दल अपनी गवर्नमेण्ट बना लेता है।

सन् १८८५ के चुनाव में लार्ड साल्ज़बरी के अनुदार दल के ३२३ सदस्य निर्वाचित हुए और उदार के ३३३।

अलस्टर के योगवादी ('यूनियनिस्ट') सदस्यों की संख्या २५१ हो जाती थी। पारनेल के अल्पसंख्यक दल में ८५ सदस्य थे। जैसा कि इन संख्याओं से प्रकट है अब सारी शक्ति पारनेल-दल के हाथ में हो गई थी। यदि ये उदार दल के साथ हो जाते तो उदार गवर्नमेण्ट चल सकती थी और यदि अनुदार दल का पक्ष लेते तो अनुदारों की बहुसंख्या हो जाती। किसी दल की पार्लमेण्ट के लिए पारनेल की सहायता आवश्यक थी। अँगरेज़ी पार्लमेण्ट की मशीनरी को हाथों से पकड़ कर पार्लमेण्ट ने उसे आयरलेण्ड के हित के लिए चलाना आरम्भ किया। एक ही वर्ष में उसने दोनों दलों को शासन की बागडोर दिलवाई और फिर छिनवा भी लिया। इस प्रकार उसने दोनों दलों पर यह बात प्रकट कर दी कि आयरिश मतों का भी कुछ अर्थ होता है।

इस अवरोध का फल यह हुआ कि ग्लेडस्टोन ने १८८६ में पार्लमेण्ट के सामने एक आयरिश होमरूल-बिल पेश की। यद्यपि वह गिर गई, तथापि उससे आयरलेण्ड के इतिहास में एक नया अध्याय आरम्भ होगया। दूसरी बार १८९३ में जब वह बिल दोबारा उपस्थित हुई तब कॉमन-सभा में तो पास हो गई, लेकिन सरदार-सभा ने उसे अस्वीकार कर दिया।

होमरूल-बिल (१८८६-१८९३)

पारनेल के समय में 'लेण्ड-लीग' का जो दूसरा बड़ा

आन्दोलन हुआ उसका वर्णन करने से पूर्व माईकेल डेवट के सम्बन्ध में कुछ कहना आवश्यक है।

माइकेल डेवट

माईकेल डेवट एक निर्धन के घर में १८६६ में उत्पन्न हुआ। उसके माता-पिता बड़े मामूली कृषक थे और आयरलेण्ड के अन्य सहस्रों दुर्भाग्य किसानों के समान इनसे भी ज़मीन छीन ली गई थी। छोटेपन से ही इसे स्वयं मिहनत करनी पड़ी। अभी लड़का ही था कि फ़ेक्टरी में एक दुर्घटना हो जाने से इसकी एक बाँह कट गई। बाल्यावस्था से ही इसमें एक असाधारण मनुष्य बनने के लक्षण थे। छोटी उम्र में ही इसने फ़िनियनों की गुप्त समिति का सदस्य बनकर अपनी जान को जोखिम में डालकर इसने समिति का कार्य—शस्त्र आदि एकत्र करना—आरम्भ कर दिया। चौबीस वर्ष की आयु में यह जेल में डाल दिया गया। क़ैद तो आयु भर की थी, किन्तु मजिस्ट्रेट की कोशिश से छः वर्ष में ही मुक्त होगया।

मुक्ति के पश्चात् यह फिर अपनी समिति का सदस्य बन गया। लेकिन अब इसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि फ़िनियनों के इतना त्याग तथा बलिदान करने पर भी उनका उद्देश क्यों नहीं पूर्ण होता। बहुत सोच-विचार के पश्चात् यह इस परिणाम पर पहुँचा कि गुप्त समितियों की सफलता का वृत्त बहुत तङ्ग होता है, इसलिए निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने के लिए सर्वसाधारण का आन्दोलन में सम्मिलित होना

अत्यावश्यक है। परन्तु इसमें कठिनाई यह थी कि सर्वसाधारण स्वतन्त्रता, अधिकार और न्याय के केवल पुस्तकों में लिखे हुए विचारों को नहीं समझते। उनसे तो जिस बात के लिए अपील की जा सकती है वह उनके निर्वाह तथा सुख की बात है। डेवट ने देखा कि उससे तीस बरस पूर्व तरुण आयरलैण्ड के समय में लालर ने अपने पत्र में इस बात पर बल दिया था कि लोग वही बातें सुनते हैं जिनसे उनको अपने दैनिक जीवन में काम पड़ता है। वह कहता था—आयरिश कुत्ता स्वराज्य के लिए लड़ने को तैयार नहीं, किन्तु वह अपनी रोटी की ख़ातिर काटने से नहीं चूकेगा।

सन् १८७९ में एक ओर दुर्भिक्ष का भूत अपना भयानक रूप दिखा रहा था, दूसरी ओर बेचारे कृषकों से उनकी सूखी रोटी भी छीनी जा रही थी। लोग क्या करेंगे? क्या वे हर प्रकार के अत्याचार को चुपचाप सहते जायँगे? १८६४ के समान क्या वे फिर अकाल और मरी के शिकार होंगे? इसका साहस-पूर्ण उत्तर पारनेल और डेवट की ओर से आया। उन्होंने स्थान-स्थान पर भूमि-सङ्घ ('लेण्ड-लीग') स्थापित किये। उनका उद्देश लालर के उन लेखों के अनुसार बनाया गया। जिनकी उसके जीवन-काल में कुछ परवा न की गई थी, इस आन्दोलन को लोगों ने जीवन-मरण का आन्दोलन समझा। यह हलचल इतनी

भूमि-सङ्घ

बढ़ी कि यदि कोई ज़िमींदार अकारण अपने किसानों को तङ्ग करता तो शेष किसानों की ओर से उसका सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता। यहाँ तक कि उसे धोबी, नाई आदि की सेवाओं से वञ्चित रहना पड़ता।

सन् १८८१ में पार्लमेण्ट ने विवश होकर भूमि-सम्बन्धी एक क़ानून स्वीकार किया, जिससे कुछ हद तक भूमि-सङ्घ की माँगें पूर्ण की गईं। ज़िमींदार बिना किसी कारण के कृषकों को न निकाल सकते थे और न लगान को ही बढ़ा सकते थे। कुछ समय के अनन्तर भूमि-सङ्घ को नियम-विरुद्ध ठहराकर पारनेल आदि नेता पकड़ लिये गये। इस पर आयरलेण्ड में और भी जोश बढ़ा और राजनैतिक अपराध भयानक रूप धारण करने लगे। अन्त को १८८२ में ग्लेडस्टोन को पारनेल के सामने अपनी शर्तें रखनी पड़ीं और वह रिहा कर दिया गया। यद्यपि अधिक गरम दल ने पारनेल के इस कार्य पर अप्रसन्नता प्रकट की, तथापि ग्लेडस्टोन आदि ने तो पारनेल को आयरलेण्ड का बेताज का राजा समझा। अँगरेज़ राजनीतिज्ञों की समझ में यह बात आ गई कि उसकी इच्छा के विरुद्ध सर्वसाधारण लोगों से किसी प्रकार का समझौता नहीं किया जा सकता।

भूमि-सम्बन्धी सर्वसाधारण के क्षोभ ने पारनेल और उसके आन्दोलन को बड़ा दृढ़ कर दिया था। १८९० में उस पर एक अभियोग चलाया गया, जिसका निर्णय उसके

विरुद्ध हुआ। इस कारण उसे राजनैतिक क्षेत्र से पृथक् हो जाना पड़ा। १८६१ में उसका देहावसान हो गया।

पारनेल के साथ ही आयरिश पार्लमेण्ट-दल की आत्मा भी निकल गई। उसका नेतृत्व कई हाथों में गया। अन्त में यह काम जान रेडमण्ड ने सँभाला। मार्ले आदि के प्रयत्न से १६१० में सरदार-सभा के अधिकार कम कर दिये गये और सबका ख़याल था कि इसका अभिप्राय होमरूल-बिल पास कराना है। रेडमण्ड के नेतृत्व-काल में भी होमरूल की चर्चा रही, किन्तु अपने देश के हितार्थ उसने कोई प्रयत्न न किया। अन्त को १६१४ में जब होमरूल-बिल पेश भी हुआ तब उसकी क़ीमत योरुपीय महासमर के लिए भर्ती रक्खी गई। रेडमण्ड ने अपने देश-बान्धवों को भरती होने की सलाह दी। किन्तु होमरूल-बिल की हालत इतनी निकम्मी कर दी गई कि उसको सर्वप्रिय होने में थोड़ी गुंजाइश रह गई थी। फिर भी इस बिल को स्वीकार करने के साथ ही इसके इस्तिवा का क़ानून भी पास कर दिया गया।

जॉह्न रेडमण्ड

आयरलेण्ड की पुरानी लोकोक्ति कि इँग्लेण्ड की मुशकिल में आयरलेण्ड का लाभ है, रेडमण्ड को भूल गई थी। परन्तु फिर भी इस समय ऐसे मनुष्य भी थे जो महासमर के आरम्भ होते ही नई दुनिया के स्वप्न देखने लगे।

आयरलेण्ड पर अँगरेज़ी सभ्यता का प्रभाव इतना बढ़

गया कि लोग आयरिश भाषा, आयरिश गीत तथा आयरिश साहित्य को भूल रहे थे। कई मनुष्यों ने समझा कि आयरलैण्ड

गेलिक लीग

की सभ्यता ही उसकी आत्मा है और उसी में उनकी वास्तविक मुक्ति है। इसी उद्देश से एक गेलिक लीग बनाई गई, जिसने डाकृर डुगलस हाईड के सभापतित्व में आयरिश भाषा तथा साहित्य में नवजीवन सञ्चार किया। देश-भक्त अब अपने नाम आयरिश ढङ्ग पर रखने लगे। उन्होंने पुरानी गेलिक लिखनी, पढ़नी और बोलनी भी आरम्भ की। गेलिक भाषा में कई काव्य, नाटक आदि तैयार किये गये। सर्वसाधारण पर इस लीग का यहाँ तक प्रभाव पड़ा कि अँगरेजी नाचों का स्थान पुराने गेलिक नाचों ने ले लिया।

इसके अतिरिक्त इस गुप्त आन्दोलन में दूसरी बड़ी शक्ति भूमि-विषयक सहयोग ('को आपरेशन') की थी। आयरलैण्ड

सहयोगी मण्डलियाँ

की आत्मा की रक्षा के लिए जो कार्य गेलिक लीग कर रही थी उसकी सहायता के लिए वही काम सहयोग-आन्दोलन करने लगा। यद्यपि 'आयरिश क़ानून आराज़ी' के अनुसार ज़मीन के मालिक काश्तकार हो रहे थे, तथापि यह भय था कि किसानों पर फिर वही मुसीबतें आजायँगी, क्योंकि ज़मीन के छोटे टुकड़े शायद बड़ी ज़मीनों का मुक़ाबला न कर सकें। होरेस प्लँकेट ने इस भय के निवारण के लिए काश्तकारों में सहयोगी मण्डलियाँ

बनानी आरम्भ कीं। इनके द्वारा उन्हें ज़मीन से अधिक पैदावार करने, बीज सस्ते तथा अच्छे ख़रीदने और अपनी उपज को बाज़ार में ठीक भाव से बेचने आदि की शिक्षा मिलने लगी।

इस समय आर्थर ग्रिफ्थ ने सिनफ़िनियन नामक एक नये स्वदेशी-आन्दोलन की नींव रक्खी। सिनफ़िनियन शब्द का अर्थ है 'हम स्वयं'। इस आन्दोलन के उद्देश पार्लमेण्ट का बहिष्कार, स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग, स्वदेशी उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिए प्रयत्न करना, अँगरेज़ी अदालतों का बहिष्कार, पञ्चायतों की स्थापना, जातीय शिक्षा का प्रचार, मद्य-पान का विरोध, सरकारी विशेषकर फ़ौजी नौकरियों के विरुद्ध प्रचार आदि थे। सिनफ़िनियन आन्दोलन को सजीव बनाने के लिए किसी बाह्य शक्ति की आवश्यकता थी। वह बाह्य शक्ति योरप का महासमर सिद्ध हुई।

सिनफ़िनियन और योरपीय महासमर

महासमर के आरम्भ में ही सर राजरकेसमण्ट आदि नेताओं ने आयरलेण्डवासियों को यह परामर्श दिया कि युद्ध के सम्बन्ध में उन्हें अपनी नीति अपने जातीय हित के सामने रखकर निश्चित करनी चाहिए। इस अभिप्राय से वह स्वयं जर्मनी गया और सुधार के लिए उस (जर्मनी) की सहायता पर २३ एप्रिल, १९१६ का दिन विद्रोह के लिए नियत किया। यद्यपि वह नियत समय पर आयरलेण्ड पहुँच गया तथापि,

जर्मनी के जहाज़ के समुद्र की भेंट हो जाने से विद्रोह होने की कोई आशा न रही और केसमण्ट गिरफ़ार कर लिया गया। विभिन्न स्थानों में सर्वसाधारण भी विद्रोही हो गये, इसलिए आयरिश नेताओं ने २४ तारीख़ को आयरलेण्ड में प्रजातन्त्र की घोषणा कर दी। अनेक मनुष्यों के वध किये जाने के पश्चात् उन्होंने हथियार डाल दिये। प्रजातन्त्र की घोषणा पर हस्ताक्षर करनेवाले पीयर्स, मेगडॉल्फ़ और क्लार्क ३ मई को कोर्ट-मार्शल के पश्चात् गोली से उड़ा दिये गये।

इसके अनन्तर स्वतन्त्र दल ने डिवलेरा को अपना सभा-पति निर्वाचित किया और आयरलेण्ड को स्वतन्त्र करने के लिए आन्दोलन करना आरम्भ कर दिया। उसके उत्तर में अँगरेज़ी पार्लमेण्ट ने आयरलेण्ड को होमरूल या स्वराज्य प्रदान करके वहाँ पर एक पृथक् पार्लमेण्ट ायम कर दी। आयरलेण्ड के देश-भक्तों के अब दो दल हो गये—उनमें से एक पार्लमेण्ट में नियम-पूर्वक सम्मिलित है और दूसरा स्वतन्त्र-रूप से अपना आन्दोलन बराबर किये जा रहा है।

———

सोलहवाँ अध्याय

उन्नीसवीं शताब्दी का फ्रांस

योरुप के अन्य देशों का वर्णन योरुपीय महासमर तक पहुँच गया है। योरुप के इतिहास को समाप्त करने से पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि वर्तमान युग के फ्रांस तथा इँग्लेण्ड का संक्षेप से वर्णन कर दिया जाय।

क्रान्ति के बाद फ्रांस

जर्मनी, इटली, रूस, आयरलेण्ड आदि देशों का वर्णन करते हुए हमें फ्रांस की क्रान्तियों की ओर बारम्बार इशारा करना पड़ा है। इससे उनके महत्व का अनुमान लगाया जा सकता है। संक्षेप में वर्तमान फ्रांस का इतिहास एक शब्द "राज्य-क्रान्ति" में पाया जाता है। अर्थात् उसके बाद का फ्रांस फ्रांस की राज्य-क्रान्ति की ही उपज है। क्रान्ति का विशेष उद्देश यह था कि देश के प्रत्येक निवासी को शासन में पूर्ण अधिकार दिया जाय। यद्यपि इस सिद्धान्त के मार्ग में कई अवरोध हुए, तथापि वह दिन प्रतिदिन बढ़ता ही गया।

सन् १८१५ में लुइस अठारहवाँ सिंहासन पर बैठाया गया। उसने 'सौ दिन' के शासन से शिक्षा ली और समय

की परिवर्तित परिस्थिति के अनुसार राज्य करने का प्रयत्न किया। उसकी मृत्यु पर १८२४ में चार्लस दसवाँ उत्तराधिकारी बना। चार्लस ने क्रान्ति के सारे प्रभावों को मिटा देने का निश्चय किया। उसकी आँखें समय के परिवर्तनों को देख ही न सकती थीं। वह कहा करता था कि मैं अँगरेज़ी ढङ्ग पर शासन करने की अपेक्षा जङ्गल में लकड़ियाँ काटना पसन्द करूँगा। उसके परिणाम-स्वरूप १८३० में पेरिसवासी उसके विरुद्ध उठ खड़े हुए और वह जहाज़ पर सवार होकर इँग्लेण्ड को भाग गया।

फ्रांस के राजा

लोगों ने उसके स्थान में उसके वंश की एक छोटी शाखा से लुइस फ़िलिप को सिंहासनारूढ़ कर दिया। पहले राजा राज्याभिषेक के समय यह कहा करते थे—"ईश्वर की कृपा से मैं फ्रांस का राजा बना हूँ।" फ़िलिप ने इस वाक्य के साथ ये शब्द और जोड़ दिये—"जाति की इच्छा से"। मध्य-श्रेणी के लोग राजा को अपने जैसा समझकर इसे 'नागरिक राजा' कहने लग गये। पेरिस की इस बात ने सारे योरुप को हिला दिया। बेलजियमवासी हॉलेण्ड से स्वतन्त्र हो गये और उन्होंने अपना पृथक् राजा चुन लिया।

फ़िलिप का शासन सन् १८४८ तक शान्तिपूर्वक चलता रहा। किन्तु इसी समय में फ्रांस में "मतदान का अधिकार"

का विचार बड़ा ज़ोर पकड़ने लगा। १८४८ में पेरिसवासी बिगड़ उठे और कहने लगे कि हर व्यक्ति को मतदान का अधिकार दिया जाय। राजा डरकर भाग गया। लोगों ने राजसिंहासन को राजप्रासाद से निकालकर अग्नि की भेंट कर दिया। फ्रांस में प्रजातन्त्र स्थापित कर दिया गया। मतदाताओं की संख्या शीघ्र ही अढ़ाई लाख से अस्सी लाख हो गई और नेपोलियन बोनापार्ट का भतीजा लुइस नेपोलियन पहला राष्ट्रपति निर्वाचित किया गया। योरुप पर इस 'फ़रवरी की राज्य-क्रान्ति' का बड़ा प्रभाव हुआ। यहाँ तक कि यह कहा गया है कि मार्च १८४८ का कोई दिन ऐसा न था जब किसी न किसी देश में लोगों को विधान प्रदान न किया गया हो।

१८४८ की राज्य-क्रान्ति और दूसरे प्रजातन्त्र की स्थापना

ठीक वैसे ही जैसे नेपोलियन प्रथम सम्राट् बन गया, लुइस नेपोलियन ने भी प्रजातन्त्र का अन्त करके अपना साम्राज्य बना लिया। राष्ट्रपति तथा राष्ट्रीय व्यवस्थापिका सभा में अनबन हो जाने पर राष्ट्रपति ने एक रात अपने विरोधी दल को पकड़कर कुछ का वध कर दिया। लोगों के मत लेने पर सत्तर लाख मत से नेपोलियन दस वर्ष के लिए राष्ट्रपति बनाया गया। अगले बरस उसे सम्राट् की उपाधि दी गई। कारण, एक तो फ्रांसवासी उसके नाम का बड़ा मान

दूसरा साम्राज्य (१८५२-१८७०)

को पवि और दूसरे उनको पुराने कलई्आओं से भय उत्पन्न किया । ा था ।

फ्रांस के ा ालियन ने क्रिमिया-युद्ध (१८५३) तथा आस्ट्रिया- ...नियो-युद्ध (१८५८) में भाग लिया । उसका तीसरा और अन्तिम युद्ध प्रशिया के साथ था । इस ा परि...म हम पिछले प्रकरणों में यथास्थान देख चुके हैं। सन् १८७० में साम्राज्य का अन्त हुआ और फ्रांस में फिर प्रजातन्त्र स्थापित हुआ, जो अभी तक चल रहा है ।

नये प्रजातन्त्र के सामने पहली बड़ी समस्या ालसास तथा लोरेन की थी और दूसरी शिक्षा की थी । फ्रांस में मजहबी स्वतन्त्रता हो जाने से मजहबी सभाओं ने ...सी पाठशालायें स्थापित कर ली थीं । इनमें से अधिकतर ...सुइट सोसायटी की थीं । स्वतन्त्र विचार के फ्रांसीसी इन सभाओं को बहुत बुरी समझते थे और शिक्षा को स्वतन्त्र करना चाहते थे। १८८० में सारी मजहबी पाठशालायें और १९०३ में बहुत सी सोसाइटियाँ बन्द कर दी गईं ।

तीसरा प्रजातन्त्र (१८७०)

सन् १८७५ में फर्डिनण्ड डिलेसेप नामक एक फ्रेंच इंजिनियर ने भूमध्यसागर तथा लालसागर को नव्वे मील की सुएज़ नहर खोद कर एक में मिला दिया । इसका फल यह हुआ कि योरप से अफ़रीका के नीचे से आने में ज

नहर सुएज़ (१८७९) तथा पानामा (१८८९)